प्रकाशक
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) प्राइवेट लि०,
डावर हाउस
१४२, रासबिहारी एवेन्यू,
कलकत्ता-२६

लेखक
श्री ताराशकर वैद्य

प्रथम सस्करण—१९६८ ई०—५०००

मूल्य—दस रुपये

अकन
वेस्टर्न पब्लिसिटी सर्विस
१७१-एच, रासबिहारी एवेन्यू
कलकत्ता-१९

मुद्रक
श्रीप्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स
४७।२१३, रामापुरा
वाराणमी-१

खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स
मान मन्दिर
वाराणसी-१

संजीवन प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड
१४२, रासबिहारी एवेन्यू
कलकत्ता-२६

विनरक—
वेस्टर्न पब्लिसिटी सर्विस
१७१-एच, रामबिहारी एवेन्यू
कलकत्ता-१९

अपनी बात

प्रस्तुत पुस्तक आपलोगो के सम्मुख उपस्थित कर हमारी बहुत दिनो की मनोकामना पूरी हुई। पुस्तक कैसी है, इसका निर्णय तो अब आप ही को करना है। गुसाई जी की चौपाई 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' के अनुसार पुस्तक के सम्बन्ध मे अपना निर्णय देना आत्मप्रशसा मात्र होगी।

सत्-साहित्य के प्रकासन मे डावर सदा से विशेष रुचि लेता आ रहा है। डावर के सस्थापक स्व० डा० श्रीकृष्ण वर्म्मन की सदा यह नीति रही है कि पत्र-प्रकाशन के माध्यम से भारतीय ज्ञान-विज्ञान को प्रकाश मे ला जनसाधारण और वैद्य-समाज को उससे लाभान्वित किया जाय। इन्ही उद्देश्यो से प्रेरित हो हमने 'श्रीकृष्ण सन्देश' नामक पत्रिका के प्रकाशन का कार्य शुरू किया था, जिसके यशस्वी सपादक थे स्वर्गीय लक्ष्मण नारायण गर्दे। इसके पश्चात् उन्होने कई अन्य उपयोगी पुस्तको का प्रकाशन कराया, जिनका देश मे पर्याप्त सम्मान हुआ।

डा० श्रीकृष्ण वर्म्मन के निधनोपरान्त प्रकाशन का यह कार्य शनै शनै अग्रसर होता रहा। सन् १९६२ मे आयुर्वेद-विकास नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया गया, जिसका सुधी-समाज मे आज पर्याप्त आदर है। आयुर्वेद के उत्थान, प्रचार-प्रसार आदि मे 'आयुर्वेद-विकास' ने अपना महत्तपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है।

डावर का मुख्य लक्ष्य है, आयुर्वेदीय औषधियो को देश-विदेश मे लोकप्रिय बनाना। इस ध्येय को चरितार्थ करने के लिये निर्माण मे वैज्ञानिक यन्त्रो का उपयोग, अनुसधानशाला का निर्माण, सैद्धान्तिक मतो का सरक्षण, पैकिंग आदि मे सुधार तथा सारे देश मे सस्ती औषधियो के वितरण की ओर हमने पर्याप्त ध्यान दिया है।

आज आयुर्वेद के सम्बन्ध मे जितने भी लक्षण-ग्रन्थ उपलब्ध हैं प्राय सभी सस्कृत भाषा मे हैं। आयुर्वेद के लक्षण-ग्रन्थो को जन-भाषा मे प्रस्तुत कर आयुर्वेद को जन-साधारण मे प्रचारित किया जाय, इस उद्देश्य से ही प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन कराया गया है। हमे प्रसन्नता है कि इसके प्रकाशन से वैद्य समाज के अतिरिक्त साधारण जनता भी लाभान्वित होगी।

जय हिन्द !

पूरनचन्द बर्म्मन

॥ श्री गुरवे नमः ॥

सङ्कल्प

राष्ट्रिय स्वास्थ्य समस्या—हमारे राष्ट्र की जनसंख्या सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार ४३,९३,७२,५८२ है। चिकित्सकों की संख्या सन् १९६५-६६ के अनुमान के अनुसार ८६,००० है। अनुपात का अनुमान लगाया गया है कि इसी सन् में इस देश में १ चिकित्सक ५८०० जनता की सेवा कर रहा है। जब कि अन्य देशों की स्थिति यह है :—

सन् १९५९

देश और जनसंख्या	चिकित्सक संख्या	अनुपात
फ्रान्स— ४,५५,४२,०००	५७००	१.७९८
जापान—९,२४,१८,०००	१,०१,४४९	१ ९१६

सन् १९६०

रूस— २१,२३,००,०००	४,०१,६१२	१ ५२९
अमेरिका—१७,९३,२३,१७५	२,४२,०००	१ ७१०
इंग्लैंड— ४,५७,५५,०००	४०,४८३	१:१,१३०

व्यापक सांख्यिकी में सूक्ष्म हिसाब न लगाकर लगभग की कल्पना की जाती है। इस कल्पना के अनुसार भारतेतर देशों में चिकित्सकों की संख्या अपर्याप्त समझी जा रही है। यद्यपि मानव का कष्ट परिस्थितियों की अपेक्षा नहीं करता। रोग परिस्थिति पर, दीनता पर और विवशता पर दया नहीं करता। इसलिये समुचित सेवा के दृष्टिकोण से एक चिकित्सक पर कम से कम जनसंख्या का भार पड़ना चाहिये। तथापि यदि इस दशा में परिस्थितिवशात् एक भारतीय चिकित्सक पर अमेरिकी चिकित्सक जैसा भार लाद दिया जाय तो भी यहां के समस्त चिकित्सक ६,१०,६०,००० (छः करोड़ दस लाख साठ हजार) जनता की ही सेवा कर सकते हैं। शेष ३७,८३,१२,५८२ (सैंतीस करोड़ तिरासी लाख बारह हजार पांच सौ

वयासी) भारतीय जनता पर क्या वीत रही है ? पीडा से कराहती उसकी आत्मा की पुकार पर कितने चिकित्सक दौड पडते हैं ? उसे कौन सान्त्वना के दो शब्द सुनाता है ? इसका उत्तर एक सहृदय के हृदय को विदीर्ण कर देता है। हृदयहीनों की वात जाने दीजिये। यह कठोर सत्य है कि आज का भारत चिकित्सकीय सेवा से रहित ही माना जायगा।

नगरो मे भी जहा पग-पग पर चिकित्सक होने की वात कही जाती है, जनता त्रस्त है। इसलिए कि वहा चिकित्सा सेवा नही है, व्यवसाय है। उनकी क्रूर दृष्टि पैसे पर है, पीडित मानवता पर नही। वह हृदय से नही, आत्मा मे नही, वल्कि पैसे से पीडा का मूल्याङ्कन कर रही है। जिनके पास पैसे हैं उनकी पीडा दूर की जाती है, शेष अनाथ श्वानो की मौत मरते हैं या पीडा से तडपते रहते हैं। अब जरा पैसे वालो पर भी दृष्टिपात कीजिये, निदान और चिकित्सा के व्यय भार से वे भी त्रस्त हैं। विशेषत मध्यम वर्ग ! इसे अपनी साधारण चिकित्सा के लिये भी प्रिय परिवार की रोटी और शिक्षा मे (पेट और शिर मे) कटौती करनी पडती है। सही वात यह है कि इने गिने धन-कुवेर ही चिकित्सा-सेवाओ का उपयोग कर सकते हैं। शेष सभी परेशान है। कुल मिलाकर राष्ट्र की स्वास्थ्य समस्या अत्यन्त गम्भीर है। इसे हल करने के लिए वहुव्यय-साध्य दीर्घकालीन योजनायें वन सकती हैं। पर तव तक पीडित मानवता की सेवा के लिये यह आवश्यक है कि कम समय मे सुविधा से अधिक लोग काम चलाऊ चिकित्सकीय ज्ञान प्राप्त कर लें। इसके लिये अन्यान्य साधनो के अतिरिक्त ऐसी पुस्तको की भी आवश्यकता है जो जनता की भाषा मे उसके सहज सस्कारो के अनुकूल रोग ज्ञान और चिकित्सा-ज्ञान करा सकें। जिन्हे पढकर जनसाधारण चिकित्सा शास्त्र का गम्भीर ज्ञान भले ही न कर सकें पर चिकित्सक के अभाव में अपनी और समीपस्थ लोगो की पीड़ा अवश्य दूर कर सकें। "काय चिकित्सा" लिखने का मुख्य सङ्कल्प यही है।

शास्त्रज्ञ चिकित्सक—क्षमा प्रार्थना करते हुए हम इतना कह देना चाहते है कि चिकित्सकीय व्यवसाय मे प्राय शास्त्र चिन्तन का समय नही मिल पाता। लक्ष्मी के आगे सरस्वती की वन्दना विरले चिकित्सक ही कर पाते हैं। शेष का शास्त्र-ज्ञान विस्मृत सा हो जाता है। इस ज्ञान के अभाव मे उत्पन्न कठिनाइयो की उपेक्षा कर दी जाती है। यदि स्मृतिपटल पर शास्त्र-ज्ञान उपस्थित रहे तो कर्म करने मे अधिक सुविधा रहती है। इसलिये यह अनुभव किया जाता है कि कोई ऐसी पुस्तक होनी चाहिये जो कम समय में व्यवसायोपयोगी शास्त्र ज्ञान को तत्क्षण स्मरण करा सके। प्रस्तुत पुस्तक लिखने का प्रथम उपसङ्कल्प यही है।

शास्त्र-ज्ञान रहित चिकित्सक—पीडा से रहित मनुष्य तत्क्षण आराम चाहता है। वह समीपस्थ किसी भी व्यक्ति से पीडा की मुक्ति चाहता है। वह यह नही देखता कि समीपस्थ व्यक्ति राज्यमान्य चिकित्सक है या नही। समीपस्थ जन भी उसे पीडा से मुक्त करने का उपाय अपनी साधारण जानकरी से करते ही है। वहाँ योग्य चिकित्सक की प्रतीक्षा के लिये समय नही। समीपस्थ जनो मे पीडित के पारिवारिक सदस्य और इष्ट मित्र होते हैं। कुछ अज्ञात भी होते है। इन शुद्ध अन्त करणवाले अनियमित चिकित्सको के लिये समय पर काम आने वाली पुस्तको का अभाव है। जिसकी सुविधाजनक पूर्त्ति पुस्तक का द्वितीय उप-सङ्कल्प है।

जिज्ञासु छात्र—अगणित छात्र अपने भावी जीवन को सुखमयी आशा से आप्लावित करते हुए श्रद्धा से गुरुदेव की शरण मे आत्म-समर्पण कर देते हैं। आयुर्वेद की पढाई प्रारम्भ होती है। 'वाचयामास' अथवा 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' का वेग चलने लगता है। छात्र प्रथम मूक हो सुनता है। पर जिज्ञासाओ का, शङ्काओ का सृजन होने लगता है। जिनका उत्तर न मिलने से छात्र उदास, उद्विग्न और अन्ततोगत्वा उद्दण्ड हो उठता है। श्रद्धा को डण्डे मारकर अनादर मे परिवर्त्तित कर दिया गुरुदेव ने! आयुर्वेद के भक्त ने!! और तथाकथित तत्वदर्शी ने!!! आखिर क्यो? येन केन प्रकारेण आयुर्वेद का विद्वान् बता कर आयुर्वेदाध्यापक बन बैठने वाले महानुभाव ने समय की, श्रम की चोरी की। पूर्वार्जित ज्ञान को पुनः ठीक से अभिवृद्ध नही किया। कुल मिला कर स्वय बिना समझे छात्र को समझाने का प्रयत्न किया। छात्र की भाषा मे, उससे भी आगे बढ कर, आज की भाषा मे बोल न सके। जो गुरुजन आज की भाषा मे बोलते है वे मुख मे बोलते हैं, हृदय से सच्चे अर्थ मे शब्दो को निनादित नही कर पाते। बडी विषम स्थिति है! योग्य अध्यापक भावनाहीन, विश्वासहीन और अवसर मिलने पर आयुर्वेद के विरुद्ध होने के साथ ही, भ्रमवश अपनी जीविका के विरुद्ध आन्दोलन करने वाले हैं। दूसरी ओर भावना और विश्वास से ओत-प्रोत अध्यापक अल्पज्ञ, आलसी और प्रमादी हैं। परिणामत छात्रो के आन्दोलन का एक प्रबल कारण रात-दिन उपस्थित होकर आयुर्वेद को गर्त्त मे गिराता जा रहा है। आयुर्वेद हितैषी जननायक किंकर्त्तव्यविमूढ और उदासीन होते जा रहे हैं। ऐसी अवस्था मे आयुर्वेद के प्रत्येक कण को समझाने के लिये छात्रो की भाषा मे सरल पुस्तक होनी चाहिये। 'काय चिकित्सा' मे यह पुस्तक कुछ काम कर सके, इस तृतीय उप-सङ्कल्प के साथ आयुर्वेदीय विश्वास से ओत-प्रोत और छात्रो की जिज्ञासाओ का शमन करने वाले सच्चे अर्थ मे विद्वान अध्यापको से क्षमा प्रार्थना करते हुए हमारा कथन है कि आप जैसे अगुलिगणनीय अध्यापको से ही तो

आयुर्वेद के पाव टिके हैं। हम आपकी वन्दना करते हुए अनुरोध करते हैं कि आप अपनी विद्या को सरल भाषा मे जिज्ञासुओ की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये और सबसे बढ कर लोकोपकार के लिये कागज पर उतार देने की कृपा करें।

औषधि-व्यवसायियों के प्रतिनिधि—औषधि व्यवसायियो ने पीडित मानवता की कम सेवा नही की है। उनके विज्ञापनमय साहित्य के ही वल पर कितने पीडित औषधियो का व्यवहार कर रोगमुक्त होते है। यही कारण है जो विदेशी औषधियो की बिक्री गाव-गाव मे होने लगी है। यही नही, वे आज लेखपालो, प्राइमरी स्कूलों के अध्यापको एव चिकित्सकीय ज्ञान से रहित अन्यान्य जनो द्वारा सरकारी माध्यम से बँटवायी जा रही हैं। यद्यपि जनता के स्मृति-पटल पर उनके ज्ञान का सस्कार नही है। उनके निदान एव चिकित्सा प्रणाली के ज्ञान का भी वहा अभाव है। फिर भी वे बटती हैं, बिकती हैं और आगे चलकर व्यवहृत भी होती हैं। इसलिये कि पीडित को पीडा दूर करने के लिये अपना काम चलाना है। उसके पास योग्य चिकित्सक के लिये समय नही, साधन नही, सुविधा नही और पैसे नही।

आयुर्वेदीय औषधि व्यवसायियो ने भी इस दृष्टिकोण से पीडित मानवता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन किया है। साथ ही उन्होने आयुर्वेद का, भारतीयता का प्रचार भी किया है। यह सब करते हुए भी राष्ट्र का धन राष्ट्र मे सुरक्षित रक्खा है। इसलिये वे अपेक्षाकृत अधिक वन्दनीय हैं। यह एक बहुत बडी बात है कि उनकी औषधियो—लवणभास्कर, हिंग्वष्टक, सितोपलादि, द्राक्षासव, च्यवनप्राश, मकरध्वज और वसन्त-मालती प्रभृति के ज्ञान का सस्कार भारतीय जनता के स्मृति-पटल पर पूर्वजो की कृपा से लाखो वर्षो से पडा है। उनकी निदान प्रणाली, त्रिदोष सिद्धान्त, ज्वर आदि रोगो के लक्षण एव चिकित्सा सूत्र का ज्ञान-सस्कार मन्द प्रकाश कर रहा है। उसके लिये समय-समय पर स्नेह देने की आवश्यकता है। वह स्नेह इस पुस्तक से उपलब्ध हो सकेगा और जनता इसके द्वारा औषधि-व्यवसायियो से औषधि खरीद कर स्वत अपनी पीडा दूर कर सकेगी।

चिकित्सक के अभाव मे पीडित जनता औषधि-व्यवसायियो के समीपस्थ प्रतिनिधियो के पास जाती ही है। वे अपनी साधारण जानकारी और पूर्वजो द्वारा प्राप्त सस्कार के बल पर कुछ औषधि देते हैं तथा कुछ उपाय बता देते हैं, जिनसे जनता का कल्याण हो जाता है। उन्हे भी शास्त्र का काम-चलाऊ ज्ञान हो सके तो वे कुछ अधिक जन-सेवा कर लेंगे। प्रस्तुत पुस्तक लिखने का चतुर्थ और अन्तिम उपसङ्कल्प औषधि-क्रेताओ और विक्रेताओ के लिये ही है।

पुस्तक लिखने का तात्पर्य यह न लगाया जाय कि हम अयोग्य चिकित्सको के हिमायती या औषधि व्यवसायियो के प्रचारक हैं। नही, नही ! हम तो केवल योग्य चिकित्सको के अभाव मे जनता को तडपने नही देना चाहते। इस अवस्था मे जो भी उसकी सेवा करते हैं या करना चाहते हैं उनकी शास्त्र-ज्ञान सम्बन्धी कुछ कठिनाइयो को दूर कर देना चाहते है, साथ ही योग्य चिकित्सको की विस्मृत शास्त्र-ज्ञान से उत्पन्न पग-पग पर पडने वाली कठिनाइयो को भी कुछ अश मे दूर कर देना चाहते हैं और पीडित मानव के परिवार, इष्ट-मित्रो और हितैषियो को कुछ सम्बल दे देना चाहते हैं। कुल मिलाकर ये ही हमारे शिव-सङ्कल्प हैं।

इनके विन्दु-विसर्गो, अक्षरो और शव्दो मे उपक्षेणीय त्रुटिया सम्भव हैं, पर भावना मे तनिक भी न-नु-न-च नही है। यही समझ कर त्रुटियो को क्षमा कर पुस्तक पूरी पढ़ी जाय, यही प्रार्थना है।

श्री धन्वन्तरि जयन्ती, २०२२ वि०

— ताराशङ्कर वैद्य

काय चिकित्सा के लेखक—

श्री ताराशङ्कर वैद्य

का

संक्षिप्त परिचय

पवित्र कुल परम्परा—वाराणसी जनपद मे पवित्र गगातट पर स्थित टाण्डा ग्राम के

पूर्वाञ्चल मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का एक परिवार है, त्याग, तपस्या, सेवा और ज्ञान की मूर्त्ति ज्यौतिष-तन्त्र-कर्मकाण्ड-रत्नाकर श्री पण्डित अयोध्यानाथ मिश्र जिसके एक मूर्धन्य सदस्य थे। उन्होने मिर्जापुर मे उपलब्ध अपने विद्वान् मामा की कई लाख रुपयो की सम्पत्ति का सहर्ष परित्याग कर टाण्डा ग्राम मे आकर आत्मबल पर अपना घर बनाया। मिश्रजी के चार सुपुत्र श्री शम्भु शङ्कर मिश्र, श्री सकठा मिश्र, श्री जगन्नाथ मिश्र एव श्री केदारनाथ मिश्र हुए। श्री प० सकठा मिश्र के दो सुपुत्र श्री ताराशङ्करजी एव श्री राजाशङ्करजी हुए।

जन्म एवं शिक्षा—श्री ताराशङ्करजी का जन्म सवत् १९७३ की श्री कृष्ण जन्माष्टमी को हुआ। अपनी जन्मभूमि टाण्डा के मिडिल स्कूल से वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद हिन्दू विश्वविद्यालय की रणवीर सस्कृत पाठशाला से आपने प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी मे प्रथम होकर उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् वाराणसी के ही श्री अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय से आयुर्वेदाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी मे प्रथम होकर उत्तीर्ण की। परीक्षाओ के वर्त्तमान स्वरूप एव मुख्य लक्ष्य नौकरी के कारण आपने अन्यान्य परीक्षायें देने से मुख मोड लिया। किन्तु कई मान्य परीक्षा सस्थाओ मे आप वरिष्ठ अधिकारी हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय, इण्डियन मेडिसिन बोर्ड उत्तर प्रदेश मे परीक्षक रह चुके हैं। आयुर्वेद विभागीय परीक्षा राजस्थान, राजकीय आयुर्वेद यूनानी फेकेल्टी पजाब, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ एव हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रभृति उच्च कोटि की परीक्षा-संस्थाओ मे उच्च परीक्षाओ के परीक्षक हैं।

कार्य—अपने ग्रामीण छात्र-जीवन से ही आप उच्च कोटि के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता रहे हैं। १३ वर्ष की आयु मे वाराणसी के ग्रामीण क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालय 'बाल

पुस्तकालय' के आप प्रधान मंत्री हो गये। अपने गाँव मे आपने इण्टर कालेज, हरिजन विद्यालय, कन्या विद्यालय और पोस्ट आफिस की स्थापना करायी। काशी वैद्यसभा एवं छात्र मंडल अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के भी आप संस्थापक हैं। संस्कृत विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग की स्थापना मे आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विश्व संस्कृत परिषद् वाराणसी एवं काशी वैद्यसभा के आप मंत्री तथा निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के उपमंत्री हैं।

आयुर्वेदीय छात्रावस्था से ही आपने श्री अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय को अपना जीवन समर्पित कर दिया। इसके कारण वाराणसी के बाहर की उच्च कोटि की सेवाओ को भी आपने तिलाञ्जलि दी। इसी महाविद्यालय मे ही आज आप प्रधानाचार्य पद पर कार्य कर रहे हैं। अत्यन्त कष्ट और संघर्ष के बावजूद भी आप इसकी सेवा कर रहे हैं। उत्तर प्रदेशीय भारतीय चिकित्सा परिषद के आप लगातार १५ वर्ष सदस्य रहे हैं।

साहित्यसेवा— वैद्यजी हिन्दी और संस्कृत के उच्च कोटि के लेखक, नाटककार, वक्ता और कवि हैं। आठ वर्ष की आयु से ही आप तत्कालीन बालोपयोगी पत्रो मे लिखते रहे हैं। १३ वर्ष की आयु मे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र 'आज' मे आपका लेख छपा। तब से न जाने आपके कितने लेख और कवितायें उच्च कोटि की पत्रिकाओ मे छप चुकी। छात्रावस्था मे ही आपने आयुर्वेद परिभाषा और माधव निदान की हिन्दी टीका की। स्वस्थ वृत्त समुच्चय की हिन्दी टीका भी आपने की। नाडी-दर्शन नामक उत्तम नाडी ग्रन्थ का भी प्रणयन आपने किया। धन्वन्तरि नामक संस्कृत नाटक, दोष-दर्शन, देह-दर्शन और पदार्थ-दर्शन आपकी अप्रकाशित रचनाएं हैं। 'आज' के आयुर्वेदीय विशेषांको एवं धन्वन्तरि के विष चिकित्साङ्क तथा चिकित्सा समन्वयांक का आपने सम्पादन किया है। राजकीय आयुर्वेदानुसंधान समिति बम्बई के आग्रह पर आपने विष तन्त्र का भी प्रणयन किया है। आकाशवाणी से भी आपकी वार्त्ताएँ प्रसारित होती रहती हैं। आयुर्वेदीय पत्रिकाओ एवं अन्यान्य पत्रो मे आपके लेख निकलते रहते हैं।

चिकित्साकौशल—पितामह के निर्देश के कारण आपने आयुर्वेदीय चिकित्सा को अपनी जीविका नही बनाया। किन्तु आयुर्वेद चिकित्सक के रूप मे आपकी ख्याति समस्त देश मे है। आयुर्वेद के आप कट्टर पक्षपाती हैं। इसके लिये सर्वदा शास्त्रीय पक्ष के साथ ही व्यवहार पक्ष भी उपस्थित करते रहते हैं। अन्यान्य पद्धतियो की प्रतिस्पर्धा मे आप आयुर्वेद का पीछे हटना सहन नही कर सकते। ऐसी अगणित अवस्थाओ मे आपने आयुर्वेद का मुख उज्वल किया है, जिसकी कहानी प्रामाणिक पुस्तको एवं पत्रिकाओ में देखने को मिल सकती है। काशी की साहित्यिक मण्डली और न्यायाधीश आदि अधिकारी आपके चिकित्साकौशल के अनुभवी हैं। शास्त्र, कर्म और धर्म की ऐसी त्रिवेणी अन्यत्र मिलना कठिन है।

श्री धन्वन्तरि जयन्ती
दिनांक ३१-१०-६७ ई०

राजेश्वर दत्त शास्त्री
भू० पू० प्रधानाचार्य, आयुर्वेद महाविद्यालय,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषय और उनके पृष्ठ

अध्याय १ त्रिदोष

(दोष चक्र पृष्ठ ३९ पर देखें)

अध्याय २ निदान

अध्याय ३ चिकित्सा

अध्याय ४ द्रव्य गुण

अध्याय ५ पञ्चकर्म

अध्याय ६ अष्टविध ज्वर

अध्याय ७ विविध ज्वर

अध्याय ८ अतिसार

अध्याय ९ ज्वरातिसार

अध्याय १० ग्रहणी विकार

अध्याय ११ अर्श (ववासीर) एवं चर्मकील

अध्याय १२ अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक, विलम्बिका

अध्याय १३ क्रिमिरोग

अध्याय १४ पाण्डु, कामला, काला ज्वर

अध्याय १५ रक्त पित्त

अध्याय १६ राजयक्ष्मा (टी बी)

अध्याय १७ श्वास

अध्याय १८ हिक्का (हिचकी) श्वास और न्यूमोनिया

अध्याय १९ स्वरभेद (गला बैठ जाना)

अध्याय २० अरुचि, छर्दि और तृष्णा

अध्याय २१ मूर्छा, भ्रम (चक्कर), तन्द्रा, सन्यास

अध्याय २२ मदात्यय (नशा), दाह, अंशुघात (लू)

अध्याय २३ उन्माद, अपस्मार और अतत्वाभिनिवेश

अध्याय २४ वात व्याधि या वायु के रोग

अध्याय २५ वातरक्त

अध्याय २६ ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात), आमवात (गठिया)

अध्याय २७ शूल उदावर्त्त एव आनाह

अध्याय २८ गुल्म या गोला

अध्याय २९ हृद्रोग

अध्याय ३० मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी

अध्याय ३१ प्रमेह और बहुमूत्र

अध्याय ३२ उदर रोग

अध्याय ३३ शोथ रोग

अध्याय ३४ वृद्धि, गलगण्ड, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद

अध्याय ३५ उपदंश, फिरंग और पूयमेह

अध्याय ३६ कुष्ठ एवं विसर्प

अध्याय ३७ जलपित्ती (शीतपित्त), उदर्द व कोठ

अध्याय ३८ अम्लपित्त

अध्याय ३६ शीतला (चेचक), रोमान्तिका, मसूरिका, विस्फोट

अध्याय ४० क्षुद्र रोग

अध्याय ४१ शालाक्य तन्त्र के रोग—मुख, नासिका, कान और आंख के रोग

अध्याय ४२ शिरो रोग

अध्याय ४३ स्त्री रोग

अध्याय ४४ बाल रोग

अध्याय ४५ योग संग्रह

———

अध्याय १

त्रिदोष

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की कठिनाई—आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की एक बहुत बड़ी कठिनाई है निदान। उसमे रोगो का कारण जीवाणु माना गया है। प्रत्येक रोग की उत्पत्ति अलग-अलग जीवाणु से होती है। तदनुसार ही चिकित्सा भी होती है। परिणामत. प्रत्येक रोग के जीवाणु का निश्चय हो जाने पर ही चिकित्सा सम्भव होती है। इसीलिए उसमे रोगी के मल-मूत्र-रक्त-थूक आदि की परीक्षा का बहुत बडा स्थान है। जो एक ओर रोगी के लिए बहुव्यय और बहुसमय साध्य है तो दूसरी ओर चिकित्सक के लिए भ्रान्तियो का कारण है। विशेषत. उस समय जब कि उसकी दृष्टि मे किसी नये रोग का प्रादुर्भाव होता है, वह किंकर्त्तव्य-विमूढ हो जाता है। जब तक रोग के जीवाणु का निश्चय नही हो जाता, वह एक पग भी आगे नही बढ सकता। दूसरी ओर रोग पग-पग आगे बढता ही जाता है। आगे चलकर उसका प्रकोप शान्त भी हो जाता है। पर चिकित्सक जीवाणु का पता न चलने के कारण निदान भी न कर पाया, चिकित्सा को कौन चलाये? जनता जीवाणुओ मे से एक को भी न समझ पायी। एक का भी ज्ञान-संस्कार उसके स्मृति पटल पर चित्रित न हो सका। परिणामतः वह प्रत्येक साधारण से साधारण रोग मे चिकित्सक का ही मुख देखती है। अपनी ओर से न तो कुछ सोच सकती है और न कुछ कर ही सकती है। चिकित्सक एवं जनता की इस कठिनाई से चिकित्सा मे क्या-क्या सम्भव है, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती।

प्राचीन चिकित्सा-विज्ञान की सरलता—आयुर्वेद के त्रिदोष वात, पित्त, कफ के भीतर समस्त रोगो के लक्षण समाविष्ट हैं। इनके बाहर किसी रोग का कोई लक्षण नहीं मिल सकता। परिणामतः आयुर्वेद के लिए कोई रोग नया नही होता। प्रत्येक रोग को वैद्य इसी तीन के भीतर खोजकर निदान कर लेगा चिकित्सा-सूत्र भी स्थिर कर लेगा। इसी लिए तथाकथित नये रोग मे वह किंकर्त्तव्य-विमूढ नही होगा। प्रत्येक भारतीय वयस्क (बालिग) भी वात-पित्त-कफ का नाम जानता है। इनमे उत्पन्न लक्षणो एवं उनकी चिकित्सा भी कुछ न कुछ जानता है। परिणामत वह चिकित्सक के अभाव में अपना काम चलाने का प्रयत्न तो करता ही है साथ ही चिकित्सक उपलब्ध होने पर उसके सहयोगी का काम करता है। और, रोगी अपनी जानकारी के अनुसार लक्षणो से सजग रहते हुए चिकित्सा-सूत्रो का पालन करता है। वैद्य से विचार-विमर्श करने के साथ ही रोगनाशन मे उसकी सहायता भी करता है। कुल मिलाकर त्रिदोष सिद्धान्त के कारण निदान-चिकित्सा भारत में बड़ी सरल है।

त्रिदोष की उत्पत्ति—त्रिभुवन की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश से हुई है। किसी भी वस्तु का विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि उसमे इन पांचो के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। प्राणिमात्र का शरीर भी इन्हीं पांचो से वना है और इन्हीं से पुष्ट होकर विनाश के वाद इन्ही मे मिल जाता है। उसका समस्त आहार-विहार भी इन्ही से सम्पन्न होता है। सही वात यह है कि स्थूल या दृश्य जगत् में इनके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु उपलव्व नही हो सकती। इन पांचो को पंच महाभूत या पंच-तत्व कहते हैं। 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' के अनुसार ये प्रकृतिस्थ रहकर ब्रह्माण्ड मे जो-जो काम करते हैं उसी ढंग का काम पिण्ड या शरीर मे प्रकृतिस्थ रहकर करते हैं। विकृत होने पर जो काम कर ब्रह्माण्ड को विनष्ट करते है उसी ढंग का काम शरीर मे कर उसे विनष्ट करते हैं। अर्थात् एक ओर ये प्रकृतिस्थ होकर शरीर का पालन करते है तो दूसरी ओर विकृत होकर उसमे रोग उत्पन्न कर उसे विनष्ट भी कर देते हैं। रोग और आरोग्य के कारण इन पांचो महाभूतो को महर्षियो ने विभिन्न दृष्टिकोणो से वात (वायु), पित्त और कफ नामक तीन भेदो मे वांट दिया है। जिनका नाम त्रिदोष (तीन दोष) है। यद्यपि मल शब्द पुरीष (दस्त मे निकलनेवाले द्रव्य) के लिए रूढि-सा हो गया है तथापि इन दोषो को मल भी कहते है। इसी प्रकार धातु शब्द रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओ के लिए रूढि है परन्तु दोषो को भी धातु कहते है। असल वात यह है कि सप्तधातु पुरीष मूत्र स्वेद आदि दूष्यो (दूषित होनेवालो) को दूषित करने के कारण इन्हे दोष, शरीर को मलिन करने के कारण मल एवं शरीर को धारण करने के कारण धातु कहा जाता है। मुख्य नाम दोष ही है। इनमे वात या वायु की उत्पत्ति पंचमहाभूतो के वायु और आकाश से, पित्त की उत्पत्ति तेज या अग्नि से एवं कफ की उत्पत्ति जल और पृथ्वी से हुई है। इसी कारण ये दोष अपने-अपने जनको का गुण-धर्म धारण करते हुए उनका प्रतिनिधित्व करते है। आप वायु दोष का अधिक सम्बन्ध वायु महाभूत से एवं कफ दोष का सम्बन्ध जल महभूत से समझिये। और पित्त, अपने प्रमुख जनक तेज से स्वच्छन्द सम्बन्ध रखता है।

वात

कार्य लक्षण एवं गुणधर्म—वात शब्द का अर्थ होता है गति और गन्ध करानेवाला। जगत् मे देखा जाता है कि वायु के विना एक पत्ता भी नही हिलता। सागर मे यही गति उत्पन्न कर लहरे उठाता है। शरीर मे गति सम्बन्धी समस्त कार्य यही करता है। हाथ, पैर, आंख, ओठ, जिह्वा, गुदाग, हृदय, फुफ्फुस (फेफडा), आंत इत्यादि अगो एवं इन्द्रियों मे सभी गतियां इसी के कारण होती हैं। दोष, धातु एवं मलो को यही जहां तहां ले जाता है। छींक, जम्भाई, आंसू, खांसी, मल-मूत्र शुक्र आदि का वेग यही करता है। रोमाच यही करता है। अन्न पान को यथा स्थान भेजना इसी का काम है। धातुओ, मलों आदि में विभाग भी यही करता है। कुल मिलाकर नेता (ले जानेवाला) होने के कारण शरीर मे इसका सर्वश्रेष्ठ महत्व

है। गन्ध के विषय मे भी आप जानते ही हैं कि वायु यदि आपसे विपरीत दिशा की ओर बह रहा है तो समीपस्थ वस्तु की गन्ध भी नही प्रतीत होती है। बिना श्वास का वायु लिये नाक मे पुष्प आदि की गन्ध प्रतीत नही होती। गन्ध का अर्थ उत्साह भी होता है जो वायु के बिना नहीं होता। कुल मिलाकर संक्षेप मे ये प्रकृतिस्थ (अपने भाव मे स्थित) वायु के कार्य हैं। इसके लक्षण एवं गुणधर्म ये हैं—

यह रुक्ष, लघु, चल, विशद (बालू के समान बिखरनेवाला), खर, सूक्ष्म (छोटे से छोटे छिद्रो मे प्रवेश करनेवाला), शीतल योगवाही[1] और रजोगुणमय[2] है।

प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक) और विकृतिस्थ वायु के स्पष्ट कार्य समझ लेने पर रोग के निदान एवं चिकित्सा मे सहायता मिलती है। इसलिए उन्हे इस प्रकार समझिये—

प्रकृतिस्थ	विकृतिस्थ
शरीर को धारण करना। उसके समस्त अगो, प्रत्यंगो, इन्द्रियो एवं धातुओ आदि का नियमन करना तथा उनसे यथा नियम कार्य कराना।	बल, वर्ण, सुख, आयु को नष्ट कर शरीर को नष्ट करना तथा सभी अंगो, प्रत्यंगो, उपागो, इन्द्रियो, धातुओ आदि पर से नियंत्रण हटा लेना। परिणामत वे अनियमित कार्य करने लगते हैं।
गर्भ को धारणकर सुव्यवस्थित रखना और उसे यथा समय ठीक ढंग से बाहर करना।	गर्भ को धारण न होने देना, होने पर भी उसको अव्यवस्थित कर देना, उसमे विकृति उत्पन्न करना, उसे असमय मे अनुचित ढंग से बाहर करना।
समस्त चेष्टाओ का यथावत् प्रवर्त्तन।	चेष्टाओ को कुण्ठित करना एवं उनका असम्यक् प्रवर्त्तन।
मन को नियन्त्रित करना एवं उसे प्रेरित करना।	मन पर से नियन्त्रण हटा लेना एवं उसे प्रेरणाहीन कर देना।
इन्द्रियो को विषयो मे प्रेरित करना।	इन्द्रियो को नष्ट करना।

१—वायु शीत से कुपित और उष्णता से शान्त होता है इसलिए शीतल है परन्तु यह योगवाही भी है अर्थात् दूसरों के संयोग से उनका वीर्य (शीतलता या उष्णता) धारण करता है। तेज (अग्नि) के संयोग से उष्ण एवं जल के संयोग से शीत होता है। इसलिए साधारण चिकित्सा में तो शीतल मानकर काम करना चाहिए। पर गम्भीर अवस्था प्रलापक सन्निपात आदि में इसके योगवाहित्व पर विचार करना पड़ता है।

२—रजोगुण से मन में राग और प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जिनसे कामनाओं का भी उदय होता है। इस गुण का प्रभाव वात प्रकृति के मनुष्यों में भलीभाँति देखा जाता है। प्रकृति का वर्णन चिकित्सा (अध्याय ४) में देखें।

इन्द्रियों के विषयों[1] को वहन करना ।	इन्द्रियों के विषयों का यथास्थान न पहुँचना ।
अग्नि को प्रदीप्त करना ।	अग्नि की विषमता ।
मलों को बाहर फेंकना ।	मलों के बाहर निकलने में बाधा या अनियमितता ।
हर्ष उत्साह को उत्पन्न करना ।	दीनता या अनवसर हर्ष-उत्साह प्रकट करना ।
दोषों को सुखाना ।	दोषों को गीला करना ।
श्वास नि.श्वास को ठीक रखना ।	श्वास नि.श्वास में अव्यवस्था उत्पन्न करना ।
आयु का विश्वास दिलाना ।	आयु के विश्वास की समाप्ति ।

वायु से होनेवाले विकार

[१] नखभेद (नखों का टूटना या फटना) [२] विपादिका (बिवाई या पैर का फटना) [३] पैरों मे पीडा [४] पादभ्रंश (पैरों का यथेच्छ स्थान पर न पडना) [५] पाद सुप्तता (पैरों मे स्पर्श ज्ञान न होना या पैरों को हिलाने-डुलाने मे असमर्थता) [६] वात खुड्डता (खुड्ड अर्थात् ऐंडी के ऊपर लगभग ४ अगुल विस्तीर्ण पिछले हिस्से मे वायु का प्रकोप) [७] गुल्फ ग्रह (एडी के ऊपर दाहिने बायें बाहर निकले हुए हड्डी के हिस्से मे जकडन) [८] पिण्डलियों मे ऐंठन [९] गृध्रसी (देखिए वातव्याधि अध्याय) [१०] घुटनों मे फटने की सी पीडा [११] घुटने की सन्धि का ढीला या शिथिल पड़ जाना [१२] ऊरुस्तम्भ (जाँघ का जकड जाना) [१३] ऊरु-साद (ऊरुओं मे शिथिलता) [१४] लगडापन [१५] गुदभ्रंश (कांच का निकलना) [१६] गुदा मे पीडा [१७] अण्डों का अण्डकोष से ऊपर चढना, नीचे न उतरना [१८] लिंग का जकड जाना [१९] वंक्षणानाह (जंघासा अर्थात् पेडू और जाघ की सन्धि मे गति की रुकावट) [२०] श्रोणि भेद (नितम्बों मे फटने सी पीडा [२१] मल का अत्यन्त निकलना [२२] उदावर्त्त (देखिये उदावर्त्त अध्याय) [२३] खंजता (देखिये वातव्याधि अध्याय) [२४] कुबड़ापन [२५] बौनापन [२६] त्रिकग्रह (त्रिक अर्थात् नितम्बों एवं कमर के सन्धिस्थल की जकडन) [२७] पीठ का जकड़ जाना [२८] पसलियों के प्रदेश मे मर्दन के समान पीड़ा [२९] पेट मे मरोड़ [३०] हृन्मोह (हार्ट फेल या हृदय का कार्य बन्द होना) [३१] हृद्द्रव (हृदय की धड़कन का बढ जाना) [३२] छाती या फेफडों मे घर्षण की सी पीडा [३३] छाती मे रुकावट की अनुभूति[2] [३४] बाहु का सूखना [३५] गर्दन के पिछले हिस्से की जकडन

१—ज्ञानेन्द्रियों के विषय ये हैं —आख का देखना, कान का सुनना, नाक का सूंघना, जिह्वा का रस ग्रहण करना, त्वचा का स्पर्श करना। कर्मेन्द्रियों के विषय ये हैं —हाथ का कर्म करना पैर का चलना वाणी का बोलना गुदा का मलोत्सर्जन, उपस्थ (लिङ्ग) का गर्भधारण कराना।

मन की गणना दोनों इन्द्रियों में है। वह इन्द्रियों का राजा भी है। मन का सम्बन्ध इन्द्रियों से होने से ही उन्हें विषयों का ज्ञान होता है।

२—इसके अतिरिक्त वहीं सूई चुभने की पीड़ा भी हो सकती है।

[३६] गर्दन के अगल-बगल की जकडन [३७] कण्ठ का ध्वस्त होना, जिसका एक लक्षण स्वरभेद या स्वाभाविक स्वर मे अन्तर है [३८] हनुस्तम्भ (जबडो मे जकडन) [३९] ओठ का फटना [४०] दांतो का फट-फटकर टूटना [४१] दांतो की शिथिलता [४२] गूँगापन [४३] वाणी की रुकावट [४४] मुँह का कसैलापन [४५] मुख का सूखना [४६] जिह्वा मे रस का ज्ञान न होना [४७] नाक मे गन्ध का ज्ञान न होना जैसे जुकाम मे [४८] सूंघने की शक्ति का नाश [४९] कानो मे पीडा [५०] शब्द के अभाव मे भी शब्द सुनना [५१] ऊँचा सुनना [५२] बहरापन [५३] बरौनी का न हिलना [५४] बरौनी का संकोच (बरौनी का सिकुड जाना या उसका न खुलना) [५५] तिमिर (आँखो मे अँधेरा छाना) [५६] आँखो मे पीडा [५७] आँख या पुतली का ऊपर चढ जाना [५८] भौहो का ऊपर चढ जाना [५९] शंख या पुटपुटी या कक्षा प्रदेश मे पीडा [६०] ललाट मे पीड़ा [६१] शिर मे पीडा [६२] शिर मे बालो की जगह का फटना [६३] अर्दित (मुँह का लकवा) [६४] एक अंग का लकवा [६५] पक्षवध [६६] सब अंग का लकवा [६७] आक्षेपक (देखिये वात व्याधि अध्याय) [६८] शरीर का डण्डे के समान जकड जाना [६९] बिना परिश्रम के थकावट [७०] चक्कर आना [७१] कम्पन [७२] जम्भाई [७३] हिचकी [७४] प्रलाप [७५] ग्लानि- [७६] रूक्षता [७७] परुषता (कठोरता) [७८] शरीर का सांवला या अरुण वर्ण का होना [७९] नींद न आना [८०] स्थिर न होना।

वायु के ये खोजे गये प्रधान बिकार हैं। वैसे तो ये असंख्य हो सकते हैं।

यह स्मरणीय है कि शरीर मे कही भी वायु के बिना पीडा नहीं हो सकती। हलकापन, रूक्षता, शुष्कता, सुषिरता (छिद्रमयत्व), स्पर्श ज्ञान न होना, अंगो का स्थान-च्युत होना, कम्पन, सिकुडन, गतिहीनता या गति मे विकार आदि वायु के साधारण विकार हैं। आंतो या हड्डियो का शब्द भी वायु से ही होता है।

वायु के विकारो का चिकित्सा-सूत्र हम वातव्याधि मे लिखेंगे। यहाँ वायु के प्रकोप या वृद्धि और शमन के प्रधान कारणो पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इससे रोग के कारणो को समझने एवं चिकित्सा करने मे सहायता मिलेगी।

प्रकोप या वृद्धि के कारण	शामक कारण
लघु, शीत, रूक्ष, खर (खरदरा सा), विशद (जिसके अणु दूर-दूर हो) द्रव्यो का सेवन। यथा नेवाडी (तीनो), सांवा, कोदो, खेसारी, चना, मटर, अरहर, मोथी, मूँग, मसूर आदि। (अन्य दालो की अपेक्षा मूँग कम वातप्रकोपक है।)	गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मृदु, घन यथा उरद, मास, घृत, मलाई, दधि आदि द्रव्यो का सेवन।

कटु तिक्त[1] कपाय (कसैला) द्रव्यो का सेवन ।	मधुर, अम्ल, लवण द्रव्यो का सेवन ।
वलार्द्ध[2] मे अविक व्यायाम या परिश्रम ।	व्यायाम या परिश्रम न कर विश्राम ।
मैथुन या धातुक्षय ।	मैथुन का अभाव या धातु पुष्टि ।
तैरना, गिरना, चोट लगना ।	तैरने, गिरने या चोट से वचाव ।
मल, मूत्र, अधोवायु, छींक, जँभाई, आँसू, डकार, खाँसी, श्वास, भूख, प्यास आदि के वेगो को रोकना ।	वेगोत्सर्ग (मल-मूत्रादि के वेगो का त्याग)
जागरण ।	निद्रा ।
काम, शोक, चिन्ता, भय ।	काम-शोक का अभाव, निश्चिन्तता, निर्भीकता ।
उपवास, अल्पभोजन, अनियमित या विपम भोजन ।	नियमित, समयानुकूल और मात्रानुसार भोजन ।
अजीर्ण (अध्यशन अपच पर भोजन),	भोजन का सुपाक ।
प्रलाप उच्च भापण, अति भापण ।	कम, अवसर पर, मृदु, उचित भापण ।
रोगजनित कृशता, वृद्धावस्था ।	पुष्टि, वालावस्था या वालकवत् रागद्वेप रहित होना, आहार करना, स्नेह, स्थान पर श्रद्धा प्राप्ति ।
वर्पा (प्रावृट् भी), शिशिर, दिन और रात का अन्तिम भाग (२ वजे से ६ वजे तक)	वसन्त ऋतु, दिन और रात का प्रथम भाग (६ वजे से १० वजे तक) ।
वमन, विरेचन, रक्तस्राव ।	निरूहण वस्ति (एनिमा), अनुवासन वस्ति (तैल आदि स्नेहो की वस्ति), स्वेदन, निकलते हुए रक्त का अवरोध, मालिश, मर्दन ।
कुल मिलाकर सभी कारण धातु क्षय एव मार्ग के आवरण (वायु की गति के लिए मार्ग का निरोध) के अन्दर आ जाते हैं ।	कुल मिलाकर सभी कारण धातु-पुष्टि एवं वायु की गति के लिए उचित मार्ग के अन्दर आ जाते हैं ।

१—लोक में मिर्चा को तीता (तिक्त) और नीम को कडवा (कटु) कहा जाता है । यह प्रयोग गलत है । वस्तुत मिर्च कटु और नीम तिक्त है । यह स्मरणीय है कि कटु पित्त कारक या दाहकारक है तो तिक्त पित्त नाशक या दाह नाशक है । कटु उष्ण है तो तिक्त शीत है । लोक के गलत प्रयोग से चिकित्सक सावधान रहें ।

२—परिश्रम के समय श्वास फूलना ललाट और कांख में पसीना आना । ये वलार्ध के लक्षण हैं व्यायाम करते समय इनके उत्पन्न होने पर व्यायाम वन्द कर देना चाहिए ।

साम वायु और निराम वायु के सम्बन्ध मे इसी अध्याय मे वर्णित दोषो की सामता का वर्णन अवश्य पढ ले ।

वायु के भेद स्थान एव उनके कर्म

शरीरस्थ वायु के पांच भेद होते है ।

[१] प्राण—इसका मुख्य स्थान हृदय और मस्तिष्क है । मुख, जिह्वा, कण्ठ, नासिका मे भी काम करता है । इसका कार्य ज्ञानेन्द्रियो, (नेत्र-कान-नाक-जिह्वा-त्वचा) हृदय-मन-वातनाडियो और प्राण को धारण करना, थूकना, कै, डकार, श्वास, नि.श्वास, कास करना एवं अन्न को भीतर प्रविष्ट कराना आदि है । इसके दूषित होने से हिक्का (हिचकी) और श्वास आदि रोग होते हैं । इसके स्थान, कर्म एव रोग से सम्बन्ध रखनेवाली परिस्थितियो मे इसका ध्यान रखना चाहिये ।

[२] उदान—इसका मुख्य स्थान कण्ठ है । पर नाभि, समस्त छाती, कण्ठ और नासिका मे भी जाता है । इससे वाणी, गीत आदि की प्रवृत्ति होती है । यह दूषित होने पर जत्रु (अक्षक या हँसली, छाती मे स्थित सबसे ऊपर की अस्थि) के ऊपर अर्थात् स्वरयन्त्र या मुँह के रोग यथा गूँगापन, तुतलाना आदि एव स्वरभेद कर देता है । हिक्का श्वास भी करने मे सहायक होता है । इसके स्थान, कर्म एवं रोग जन्य परिस्थिति मे इसे ध्यान मे रखना चाहिये ।

[३] समान—यह नाभिमण्डल मे रहता है । पर पेडू के अतिरिक्त समस्त उदर-प्रदेश मे घूमता है । अग्निदीपन, अन्न पचाने मे अग्नि को सहायता देना, अन्न से उत्पन्न रस-मल-मूत्र का पृथक्करण इसका मुख्य कार्य है । इसके दूषित होने पर अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी रोग और गुल्म आदि रोग होते है । इसके स्थान, कर्म एवं रोग जन्य परिस्थितियो में इसपर ध्यान देना चाहिये ।

[४] अपान—इसका मुख्य स्थान पक्वाशय है । गुदा, मूत्राशय, शुक्राशय, अण्डकोष आदि पेडू के अंगो में भी काम करता है । इसका कार्य मल-मूत्र-वीर्य-आर्तव एवं गर्भ को बाहर करना है । यह कुपित होकर मल-मूत्र-वीर्य आस्राव एवं गर्भ के बाहर निकलने मे बाधा, अनियमितता, पीडा, अतिकाल या शाघ्रता आदि कर देता है । वीर्य रज, मासिक धर्म एवं मूत्र के रोग (यथा कष्ट से मूत्र निकलना, कम मूत्र या प्रमेह) भी करता है । इसके स्थान, कर्म एव रोगो की परिस्थितियो मे इसका ध्यान रखना चाहिये । यह स्मरणीय है कि समस्त वायुओ का मुख्य केन्द्र मस्तिष्क एव उन्हे दूषित या कुपित करने का मुख्य स्थान पक्वाशय या वस्ति (पेडू) प्रदेश है । अपान वायु के ठीक रहने से समस्त वायु ठीक रहते हैं । मस्तिष्क का सूक्ष्म पर गहरा प्रभाव समस्त वातनाडियो पर पडता है । धनुस्तम्भ, आक्षेपक, हनुस्तम्भ आदि रोगो मे पक्वाशय की शुद्धि के साथ ही मस्तिष्क पर भी ध्यान देना चाहिये । इस वायु के ठीक करने का उत्तम उपाय वस्तिकर्म है । (देखें पंचकर्म)

[५] व्यान—इसका स्थान सम्पूर्ण शरीर है। पलको का गिरना-उठना और ओठ, जीभ, हाथ, पैर, अंगुलियों, गुप्तेन्द्रियों, गुदा आदि अंगो से सम्बन्ध रखने वाली सभी गतियां इसी के कारण होती है। यह कुपित होने पर सर्वांग या एकांग की व्याधि यथा लकवा आदि कर देता है। गति, तनाव, ऐंठन आदि से सम्बद्ध रोगो मे इस पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु अपान वायु की शुद्धि को न भूलिये।

समस्त शरीर के संचालक वायु के सम्बन्ध में इस पुस्तक मे इससे अधिक नही कहा जा सकता। वातव्याधि अध्याय मे हम इस पर कुछ और प्रकाश डाल सकेंगे।

पित्त

पित्त शब्द का अर्थ होता है ताप करना। यह शरीर मे तेज (सूर्य या अग्नि) का प्रतिनिधित्व करता है। विश्व मे अग्नि का जो कार्य है वह सब शरीर मे यही करता है। अन्न एवं अन्यान्य सभी पदार्थों का पाचन, देखना, गर्मी, रंग, शूरता, क्रोध, हर्ष, बुद्धि, मेधा (धारणा) शक्ति, इत्यादि कार्य शरीर में पित्त ही करता है। कुल मिलाकर ये प्रकृतिस्थ या स्वाभाविक पित्त के कार्य है।

लक्षण-गुण-धर्म

पित्त उष्ण, द्रव, पीला, नीला[१], कटु, अम्ल[२], तीक्ष्ण और सत्वगुण[३] प्रधान है। निदान एवं चिकित्सा के दृष्टिकोण से स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक या दूषित या प्रकुपित पित्त का कर्म जानना आवश्यक है। जो इस प्रकार है :—

प्रकृतिस्थ पित्त	विकृतिस्थ पित्त
पचन	अपचन
देखना	न देखना
ठीक मात्रा मे ताप की स्थिति	ताप का ठीक मात्रा मे न रहना
स्वाभाविक वर्ण	अस्वाभाविक वर्ण (वर्ण परिवर्तन)
शूरता	भय
हर्ष	क्रोध और मोह
रस को रंगकर रक्त वर्ण करना	रस को न रंगना या रक्त वर्ण से अतिरिक्त हरा वर्ण आदि करना।
तेजस्विता	तेजहीनता
मालिश या लेप आदि को पचाकर शरीर के योग्य बनाना	मालिश आदि के पदार्थ न पचाना
सात्विकता	सात्विकता का अभाव

१—आमदोष के साथ पित्त नीला होता है। आमदोष का वर्णन इसी अध्याय में आगे देख।

२– विपाक में पित्त अम्ल होता है।

३—इस गुण का प्रभाव पित्त प्रकृति वाले मनुष्यों में देखा जाता है। जिसका वर्णन चिकित्सा विधान में होगा।

पित्त से होनेवाले विकार

[१] बेचैनी और स्वेद युक्त सर्वांगीण दाह [२] एक स्थान का स्वेदरहित दाह (झुलसने के समान) [३] सर्वांगीण स्वेदरहित तीव्र सन्ताप [४] नेत्र आदि इन्द्रियो मे दाह [५] कण्ठ, तालु और सिर आदि मे धूंवा सा लगना [६] खट्टी डकार [७] हाथ पैर आदि मे जलन [८] अन्तर्दाह (इसमे बाहर शरीर शीतल होता है भीतर अत्यन्त दाह होता है कभी कभी रोगी पंखा तक झलने को कहता है) [९] किसी एक अंग में दाह [१०] ताप या टेम्परेचर का बढना [११] सर्वांग मे अधिक पसीना [१२] अंग विशेष यथा हाथ पैर आदि मे अधिक पसीना [१३] अंगो (कांख आदि या सर्वांग) मे तीक्ष्ण गन्ध (जैसी कि युवावस्था मे बहुत लोगो को होती है) [१४] अंगावदरण (अंग का गल-गल कर गिरना) [१५] रक्त का सडना अर्थात् उसका काला होना, दुर्गन्धि युक्त होना या पतला होना [१६] मास का सडना [१७] त्वचा मे दाह (केवल चमडे में जलन या भभाना) [१८] मांस मे जलन [१९] बाह्य त्वचा का गल-गल कर हटना [२०] त्वचा के पर्तों का गल-गलकर गिरना [२१] लाल गोल या विभिन्न प्रकार का चकत्ता [२४] शरीर या चक्षु आदि का हरा होना [२५] शरीर का वर्ण हल्दी के समान होना [२६] नीलिका (देखिये क्षुद्ररोग) [१७] कखौरी (कांख मे फोडा) [२८] कामला [२९] मुंह का तीता होना [३०] मुंह मे दुर्गन्ध [३१] अधिक प्यास [३२] भोजन मे तृप्ति न होना [३३] मुंह का पकना [३४] गले का पकना [३५] आंख का पकना [३६] गुदा का पकना [३७] लिंग का पकना [३८] जीव रक्त (शुद्ध रक्त) का निकलना [३९] अन्धकार में प्रविष्ट होने सा भासित होना [४०] मल-मूत्र-नेत्र-नख आदि का हरा या पीला होना।

यह स्मरणीय है कि अग्नि से उत्पन्न होनेवाला कोई भाव यथा उष्णता, दाह, पाक, स्वेद, सड़न, ललाई, पीलापन, हरापन बिना पित्त के नही होता। मुंह का कडुआ खट्टा तीता होना, डकार का खट्टा आना, बिना चोट के रक्त निकलना आदि विकार पित्त से ही होते हैं।

प्रकोप या वृद्धि के कारण	शामक कारण
कटु[1] अम्ल और लवण रस, उष्ण और दाहकारक पदार्थ	मधुर तिक्त[1] कषाय रस,
	शीत और दाहनाशक पदार्थ
तीक्ष्ण[2] पदार्थ और क्रोध	मृदु[2] पदार्थ और हर्ष
उपवास	घृत-दुग्ध आदि आहार, छाया व चांदनी,
घाम, सूर्य, दिन	रात

१ इनकी व्याख्या वात प्रकोपक कारणों में अवश्य पढ लें।

२ कटु [illegible] तिक्त पदार्थ मृदु होते हैं।

प्रकोप या वृद्धि के कारण	शामक कारण
मैथुन (वात प्रकोपक भी है)	स्त्रीगात्र संस्पर्श
प्यास और क्षुधा को रोकना	पानी पीना एवं भोजन करना
शराब	दुग्ध
शरद और ग्रीष्म ऋतु	हेमन्त[1] व वसन्त ऋतु
मध्याह्न, या मध्यरात्रि (१० से २ तक)	प्रात. या रात का प्रथम प्रहर (६ से १० तक)
भोजन पचते समय	भोजन करते समय
युवावस्था	वाल्यावस्था और वृद्धावस्था
कोष्ठवद्धता	विरेचन
स्वेद-मूत्र का कम होना	स्वेद-मूत्र का अधिक होना
कुल मिलाकर उष्ण और कफनाशक पदार्थ पित्त को कुपित करते हैं।	कुल मिलाकर शीत और कफकारक पदार्थ पित्त शामक हैं। विरेचन सर्व-श्रेष्ठ पित्त शामक है।

पित्त के भेद एव कर्म

पित्त के पांच भेद होते हैं :—

[१] पाचक—यह अग्न्याशय (पेंक्रियाज, वायी ओर आमाशय के नीचे) मे रहता है। भोजन को पचाता है। अवशिष्ट चार पित्तो, रस रक्त मास मेदा अस्थि मज्जा शुक्र स्थित सात धात्वग्नियो एवं पंचमहाभूतो की अग्नियो को भी यही प्रेरणा तथा वल देता है। अग्नियां तेरह होती हैं—सात धात्वग्नियां, पांच महाभूताग्नियां एव एक जठराग्नि। यहां जठराग्नि या पाचक पित्त के ही अन्तर्भूत शेष चार पित्त भी हैं। इसके कुपित एवं नष्ट होने का प्रभाव अन्य पित्तो पर पडता है। यह विरेचन से आसानी से नष्ट होता है।

[२] रंजक—यह यकृत् (लीवर, दाहिनी ओर पसलियो के नीचे) और प्लीहा (वरवट या तिल्ली या स्प्लीन) मे रहता है। अन्न से वने रस धातु को रंगता है। जिससे रक्त वनता है।

[३] साधक—यह हृदय मे रहता है। वुद्धि, मेधा (ज्ञानो को धारण करनेवाली शक्ति) और स्मृति को करता हुआ सभी मनोरथो को सिद्ध करता है।

[४] आलोचक—यह दोनो नेत्रो में पीछे की ओर रहकर सभी दृश्यो या रूपो को ग्रहण करता है। जिससे प्राणी देखता है।

[५] भ्राजक—यह त्वचा में रहता हुआ अभ्यंग (मालिश) और लेप आदि को पचाता है। कान्ति भी यही करता है।

---

१ हेमन्त में जठराग्नि दीप्त रहती है।

पञ्चपित्त
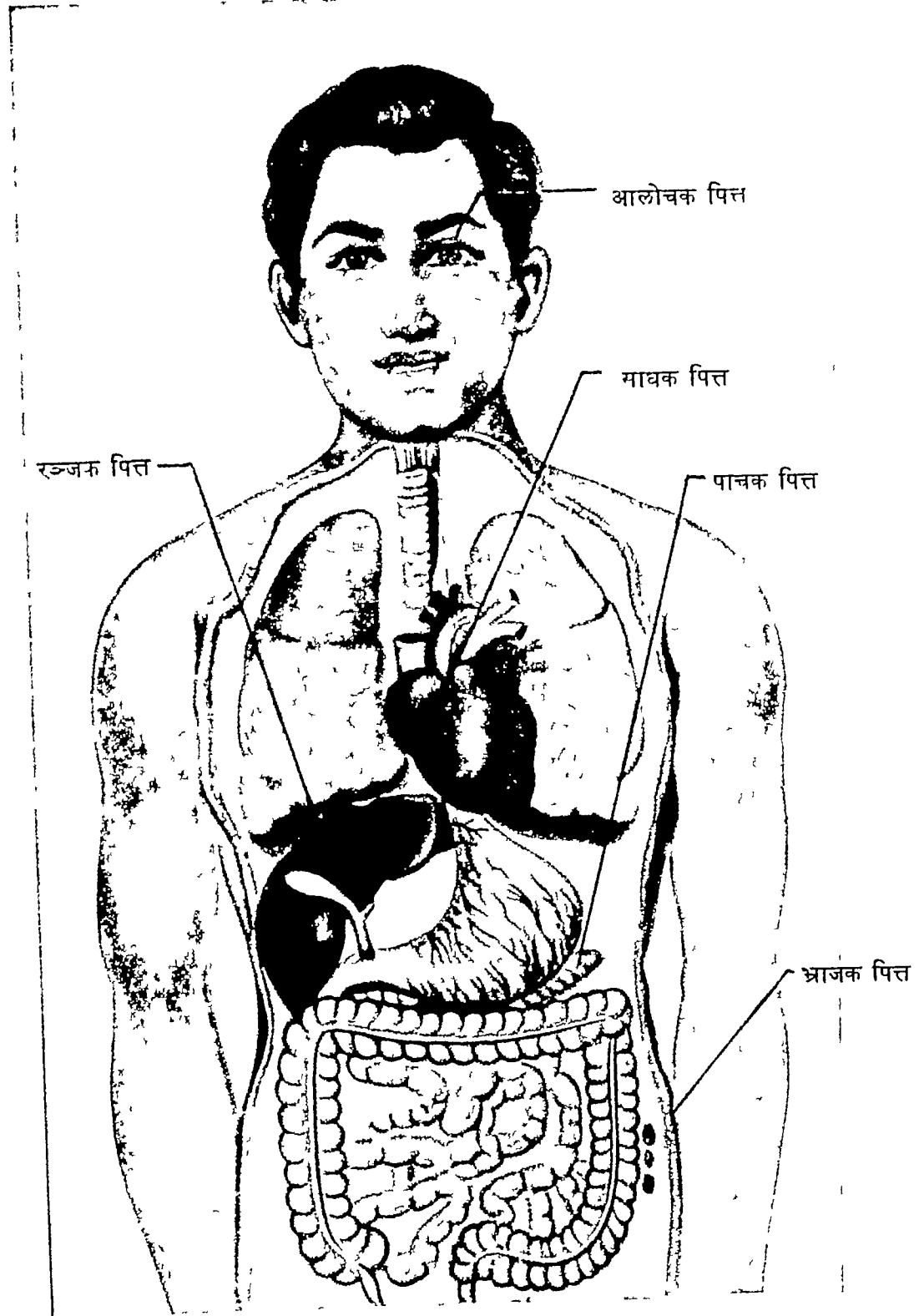
श्लेष्मा या कफ

श्लेष्मा शब्द का अर्थ होता है पकडनेवाला। और, कफ का अर्थ है क (जल) से फलने वाला। यह जल (या चन्द्र) महाभूत का प्रतिनिधि है। दृढता, स्थिरता, पुष्टि, मैथुनशक्ति, स्नेह, बन्धन आदि यही करता है। ये प्रकृतिस्थ या स्वाभाविक कफ के कर्म हैं।

लक्षण-गुण-धर्म

श्लेष्मा श्वेत, गुरु (भारी), स्निग्ध, लसीला, मधुर, शीतल और तमोगुण प्रधान है। विदग्ध या कच्चा कफ नमकीन होता है। निदान एवं चिकित्सा के दृष्टिकोण से स्वाभाविक (प्रकृतिस्थ) और अस्वाभाविक (विकृतिस्थ) कफ का कर्म जानना आवश्यक है। जो इस प्रकार है :—

प्रकृतिस्थ	विकृतिस्थ
स्निग्धता	रूक्षता
बन्धन (सन्धियो का बन्धन)	सन्धियो का ढीला होना
स्थिरता या दृढता	शिथिलता या आलस्य
भारीपन (गौरव)	हलकापन
पुष्टि	कृशता (शरीर का पतला होना)
मैथुन शक्ति	नपुंसकता
बल	दुर्बलता
क्षमा	प्रतिकार की भावना
धैर्य	असहिष्णुता
अलोभ	लोभ

कफ से होनेवाले बिकार

[१] तृप्ति (पेट भरा हुआ प्रतीत होना) [२] तन्द्रा (उंहाई) (३) निद्राधिक्य [४] स्तैमित्य या स्तिमितता (शरीर का गीले कपडे से ढका प्रतीत होना या चिपचिपापन से युक्त होना) [५] अंगो में भारीपन [६] आलस्य [७] मुंह से लार बहना [८] बारम्बार कफ का थूकना [१०] मल की अधिकता [११] कण्ठ का कफ से लिपा हुआ होना [१२] बल नाश [१३] हृदय या छाती पर कफ का लेप [१४] धमनियो (रक्त-वाहिनियो) का मोटा होना [१५] गलगण्ड (घेंघा) [१६] स्थूलता [१७] अग्निमान्द्य, [१८] उददं (फैले हुए दिदोरे) [१९] त्वचा का सफेद होना [२०] मूत्र, नेत्र, नख और पुरीष (मल) का सफेद होना। कफ के खोजे गये विकारो मे ये बीस मुख्य विकार हैं।

कुल मिलाकर चिकनाई, शीतलता, भारीपन, मधुरता, खुजली ये बिना कफ के नहीं होते।

कफ के प्रकोप या वृद्धि और शमन के कारण ये हैं :—

प्रकोप या वृद्धि के कारण	शामक कारण
मधुर, अम्ल, लवण रस	कटु, तिक्त, कषाय रस
क्षार रहित पदार्थ	क्षार युक्त पदार्थ
स्निग्ध पदार्थ	रूक्ष पदार्थ
द्रव पदार्थ	शुष्क पदार्थ
गुरु पदार्थ	लघु पदार्थ
दिन मे सोना	रात्रि जागरण
आराम की अधिकता या श्रम न करना	परिश्रम
वसन्त ऋतु	वर्षा या प्रावृट् (वर्षाऋतु का प्रारम्भिक काल)
दिन या रात का प्रथम भाग (६ से १० तक)	दिन या रात का अन्तिम भाग (२ से ६ तक)
भोजन करते समय	भोजन पच जाने पर
बालावस्था	वृद्धावस्था

प्रकोप या वृद्धि के कारण	शामक कारण
शीतलता	उष्णता
अमैथुन	मैथुन
स्नेहन	वमन
शिर पर अधिक स्नेह रखना	शिरोविरेचन (छींक आना)
अधिक जलपान	प्यास
धूम्रपान न करना एवं ताम्बूल न खाना	धूम्रपान या ताम्बूल का सेवन
एक स्थान स्थिति	मार्गगमन
थूक न निकलना	थूक निकलना
कुल मिलाकर वातनाशक कारण	कुल मिलाकर शीत को छोडकर शेष वातकारक कारण

कफ के भेद, स्थान एवं कार्य :—

कफ के पाँच भेद इस प्रकार हैं :—

[१] क्लेदन—यह आमाशय में रहता है। अन्न को क्लिन्न अर्थात् गीला करता है। यहीं स्थित हुआ अन्यत्र स्थित हुए कफ के शेष ४ भेदो को शक्ति देता है। इसका सब पर प्रभाव है। इसके कुपित होने एवं नष्ट होने का प्रभाव सभी के प्रकोप और नाश पर पड़ता है। यह ज्ञातव्य है कि इसके नाश करने का उत्तम उपाय वमन और उपवास है। क्षीण या अत्यन्त दुर्बल रोगो मे वमन और उपवास निषिद्ध है।

(२) अवलम्बन—यह छाती या फुफ्फुसो मे रहता है। यहीं से हृदय एवं त्रिक (रीढ एव नितम्बो की सन्धि, परन्तु यहाँ अर्थ है ग्रीवा और दोनो बाहुओं का सन्धिस्थल) को अवलम्बन देता है। अष्टांग संग्रह मे इसी कफ को अन्यान्य कफो को शक्ति देनेवाला लिखा है। हमारे विचार से इस सम्बन्ध मे क्लेदन का अधिक ध्यान रखना चाहिये पर इसे भुलाना न चाहिये। यह खखारने से नष्ट होना है।

(३) रसन या बोधक—रसना या जिह्वा में रहता हुआ यह मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय इन छ रसो का ज्ञान कराता है। इसी को बोधक कफ भी कहते हैं।

(४) स्नेहन या तर्पक—यह शिर में रहता हुआ स्नेह दान से समस्त इन्द्रियो को तृप्त करता है। इसी को तर्पक कफ भी कहते हैं।

(५) श्लेषक—सभी सन्धियो में रहता हुआ अस्थि की सन्धियो को जोडता है। कुछ लोग इसे श्लेष्मण कफ भी कहते हैं। श्लेष्मण शब्द कफ के साधारण नाम के लिए भी व्यवहृत होता है।

दोषों की सामता

आम रस—आहार के भली भांति पच जाने पर जो सार भाग बनता है वह सर्वप्रथम धातु रस है। परन्तु अग्नि की दुर्बलता के कारण जब आहार का सार या रस नहीं पच पाता तो उसी को आम या आम रस कहते हैं। आम शब्द का तात्पर्य ही कच्चा है। यह अधिकाश व्याधियो का आश्रय है। परिपक्व रस का पाक होने पर रक्त बनता है। अपक्व रस का रक्त नहीं बनता। किन्तु वह रक्त के साथ मिलकर शरीर मे सर्वत्र जाता है। जहाँ रुकता है। वहीं पीडा करता है। यह सामान्यत दूषित कफ का सहधर्मी है। मल के साथ भी यह निकलता है पर उसमें मिलता नहीं। अलग ही रहता है। लसीला, दुर्गन्वित एवं सारे शरीर को पीडित करनेवाला होता है। तीनो दोष वात-पित्त-कफ, सभी दूष्य (दूषित होने योग्य अर्थात् रस रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र नामक सप्तधातु, मल-मूत्र-स्वेद-त्वचा) और सभी व्याधियाँ इससे युक्त रहने पर साम विशेषण धारण करती है। तब उनका नाम साम वात, साम पित्त, साम रक्त, साम मल, साम ज्वर, आदि पड जाता है। दोषो, दूष्यो या व्याधियो की सामता में चिकित्सा का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। इसलिए इसकी जानकारी अच्छी तरह होनी चाहिये।

साम व्याधि—आलस्य, तन्द्रा (ऊंघाई), हृदय की अशुद्धि, दोषो (उद्गार जंभाई अधोवायु के रूप मे दूषित वायु, मल और मूत्र के साथ दूषित पित्त, और थूक या नाक बहने के रूप में दूषित कफ) अथवा मलो (मल-मूत्र, नाक, आंख कान का मल) का न चालू होना, मटमैला मूत्र, पेट का भारीपन, अरुचि और सुप्तता (अधिक नींद या त्वचा में स्पर्श ज्ञान का न होना) ये साम व्याधि के लक्षण हैं।

साम व्याधि की चिकित्सा मे आम के पाचन के लिए लंघन (उपवास), उष्ण जल और स्वेदन आदि प्रयुक्त होते हैं।

निराम व्याधि—साम व्याधि के लक्षणों से विपरीत लक्षण मिलते हैं। मलों (मलमूत्र, स्वेद आदि), वायु (अधोवायु व उद्‌गार) और छींक आदि की प्रवृत्ति होती है। शरीर हलका प्रतीत होता है। रोगी के सभी कष्ट कम हो जाते हैं। उसे भूख प्यास लगने लगती है। कुछ प्रसन्नता का अनुभव करता है। पहले की अपेक्षा दुर्बलता अधिक प्रतीत होती है। अब रोग अच्छा होने की दिशा मे प्रगति करेगा।

साम दोष—दोषो की सामता का सामान्य लक्षण इस प्रकार है—पुरीष (मल) मूत्र, नख, दांत, त्वचा और नेत्रो मे पीलापन लालिमा या कालिमा, पीठ, हड्डियो, कमर तथा सन्धियो मे पीड़ा, सिर मे तीव्र पीडा, नींद, मुख में फीकापन, अंगों में कहीं कहीं सूजन, ज्वरातिसार और रोमाच होना।

निराम दोष—निराम दोषो से उत्पन्न सामान्य लक्षण साम दोष के लक्षणों से विपरीत होते हैं। यदि दोष कुपित न हो तो उनकी निरामता से स्वास्थ्य लाभ की दिशा में प्रगति होती है।

साम वायु[1]—साम वायु से मलबद्धता, अग्निमान्द्य, तन्द्रा (उंघाई), आंतो में कूजन (आंतो मे कूंजने या कूँ कूँ करने का शब्द), पीडा, सूजन और सूई के चुभने की-सी पीड़ा होती है। वह एक ही समय सब अंगो मे घूमता हुआ उन्हे पीडित कर देता है। स्नेह कर्म, बदली, सूर्योदय और रात से बढता है।

निराम वायु[2]—निराम वायु साफ, रूक्ष, गन्धरहित, अत्यन्त अल्प वेदनावाला होता है। अपने विपरीत गुणो अर्थात् प्रशामक द्रव्यो यथा स्नेह कर्म आदि से शान्त होता है।

साम पित्त[3]—साम पित्त खट्टा दुर्गन्धित, हरा, गुरु, सांवला और स्थिर होता है। यह खट्टी डकार और गला-हृदय में दाह उत्पन्न करता है।

निराम पित्त—निराम पित्त गहरे ताम्रवर्ण का या लाल, अत्यन्त उष्ण, कटु, सारक (दस्तावर) दुर्गन्धित, रुचिकारक और अग्निकारक होता है।

साम कफ[4]—साम कफ मटमैला, तारयुक्त, गाढा, गला को भीतर से फाड़नेवाला, दुर्गन्धित और भूख-प्यास को रोकनेवाला होता है।

निराम कफ[5]—निराम कफ गन्धरहित, झागयुक्त, विना तार का अर्थात् छटककर या टूटकर निकलनेवाला, गांठदार, कुछ पीला, मुख के फीकापन को नष्ट करनेवाला होता है।

दोषों के सम्बन्ध में विशिष्ट ध्यान देने योग्य बातें

(१) कुपित या बढा हुआ दोष अपने स्थान को छोडकर दूसरे दोष के स्थान मे जा सकता है। तब स्थानीय और आगन्तुक दोनो दोषों के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसे

---

१ इसे आमवात या गठिया के रोगियों में भलीभांति पा सकते हैं।

२ गठिया अच्छा होते समय इसे पा सकते हैं।

३ साम पित्त का प्रत्यक्ष परिचय अम्ल पित्त रोग में मिलता है। मसीमेह (प्रमेह के अन्तर्गत) में इसी के कारण मूत्र काला आता है।

४ कफ क्षय या सामान्य परिस्थितियों में कुछ लोगों में इसके लक्षण उपलब्ध होते हैं।

५ खासी या जुकाम के अच्छा होते समय इसके लक्षण उपलब्ध होते हैं।

समझकर चिकित्सा मे आगन्तुक दोष पर अधिक ध्यान देते हुए दोनो दोषो की चिकित्सा करनी चाहिये। जैसे अम्लपित्त में आमाशय (कफ का स्थान) मे पहुँचा हुआ पित्त वमन (कफ का लक्षण) के साथ गले में दाह, खट्टी डकार आदि पित्त के लक्षण भी उत्पन्न करता है। वहाँ पित्त पर अधिक ध्यान देने अर्थात् विरेचन और मधुर-तिक्त पदार्थों से अधिक लाभ होता है।

(२) दोषों की विशिष्ट और प्रत्यक्ष जानकारी उनके रोगो यथा वात की वात-व्याधि, पित्त की ज्वर और कफ की प्रमेह-कास आदि में होती है। इन रोगो का वर्णन आगे इसी पुस्तक में है।

(३) वात के ऊपर आवरण होने से उसके रोगो मे कुछ विशेषता होती है। जिसे वातव्याधि प्रकरण में आप पढ लीजिये।

(४) दोषो के अनुसार रोग निदान करने में बड़ी सरलता होती है। तदनुसार दोषनाशक आहार, विहार एवं औषधि का उपयोग करने से चिकित्सा में सरलता होती है। यदि रोग का नामकरण न कर सकें तो केवल कुपित दोष का निर्णयकर तदनुसार चिकित्सा कर रोगमुक्त किया जा सकता है।

(५) कोई भी रोग केवल एक दोष से उत्पन्न नहीं होता और न किसी रोग मे केवल एक ही दोष के लक्षण उपलब्ध होते हैं। बल्कि सभी रोग सभी दोषो से उत्पन्न होते हैं और सभी रोगो में सभी दोषो के लक्षण मिलते हैं। दोषो के न्यूनाधिक्य के अनुसार निदान और चिकित्सा होती है। जो दोष अधिक हो उसपर अधिक और जो न्यून हो उसपर कम ध्यान दिया जाता है।

(६) निदान और चिकित्सा मे दोषो एवं व्याधि की सामता और निरामता पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। साम दोष और व्याधि में विशेषत. पाचन तथा निराम दोष और व्याधि में विशेषत. शामक व्यवस्था की जाती है।

(७) दोषजनित प्रकृति का चिकित्सा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत. इसका वर्णन आगेवाले अध्याय में होगा। उस पर विचार कर ही चिकित्सा करनी चाहिए।

[८] दोषो की अधिकतम जानकारी के लिए लेखक की 'दोष दर्शन' नामक पुस्तक की प्रतीक्षा कीजिये।

अध्याय २

निदान

निदान की परिभाषा

निदान की दो परिभाषायें बतायी गयी हैं :—

पहली—जिससे व्याधि उत्पन्न हो उसे निदान कहते हैं। अर्थात् रोग के कारण।

दूसरी—जिससे व्याधि का निश्चय या निर्णय किया जाय। अर्थात् वे सब उपाय जिनसे रोग का निश्चय होता है। इसके अन्तर्गत पहली परिभाषावाला निदान या रोग का कारण, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति ये पाँच रोगज्ञान के उपाय आते हैं। इन्हें मिलाकर पंचनिदान भी कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में इसी अध्याय में आगे जानकारी प्राप्त हो जायगी।

रोग निर्णय के लिए दो परीक्षायें

रोग निर्णय के लिए दो परीक्षायें की जाती हैं :—

[१] रोग परीक्षा—इसके लिए उपर्युक्त पाँच उपाय या पंचनिदान बताये गये हैं।

[२] रोगी परीक्षा—यह तीन प्रकार से की जाती है :—

(क) दर्शन परीक्षा—इसमे केवल रोगी का दर्शन किया जाता है। उसकी आकृति से दोष, प्रकृति, प्रभा, रोग की आकृति एवं रोग की साध्यता-असाध्यता का ज्ञान होता है। शरीर पर उत्पन्न व्रण, दानो, चकत्तो, शोथ और ग्रन्थि आदि से भी रोग-ज्ञान होता है।

(ख) स्पर्शन परीक्षा—इससे रूक्षता, स्निग्धता, मृदुता, कठोरता, स्तिमितता (गीलापन), शुष्कता, शीतलता, उष्णता एवं नाड़ी-हृदय-मन्या या अन्यान्य अंगो का (स्पन्दन) आदि देखकर रोगज्ञान होता है। श्वास-प्रश्वास के उभार एवं शब्द की उत्पत्ति से भी रोगज्ञान करना इसी के अन्तर्गत आता है। स्थान विशेष को दबाकर रोगी की चिहुँक से पीडा की जानकारी भी इसी के अन्तर्गत है।

(ग) प्रश्न परीक्षा—दर्शन और स्पर्शन परीक्षा की पुष्टि एवं उनके द्वारा अज्ञात बातो का ज्ञान इस परीक्षा से होता है। यह परीक्षा वैद्य के प्रश्न करने एवं रोगी के उत्तर देने की कला पर निर्भर करती है। इसके बिना रोग ज्ञान करना वैद्यकीय ज्ञान की उत्तमता का द्योतक है। कभी-कभी प्रश्नोत्तर की गलती से रोग निर्णय गलत हो जाता है। इसलिए इस पर निर्भर रहना ठीक नहीं है। इसकी सहायता से अन्यान्य परीक्षा की पुष्टि कर रोग निर्णय करना चाहिये। यदि आपका वैद्यकीय ज्ञान उत्तम कोटि का है, तब तो इसके बिना ही आप रोग निर्णय कर सकते हैं। अन्यथा इसकी उपयोगिता अनिवार्य है।

रोगि परीक्षा के आठ प्रकार—उपर्युक्त तीन प्रकार की रोगिपरीक्षा को एक अन्य दृष्टिकोण से आठ भेदो मे भी बांटा गया है। वे ये है [१] नाडी परीक्षा [२] मूत्र परीक्षा [३] मल परीक्षा [४] जिह्वा परीक्षा [५] शब्द परीक्षा [६] स्पर्श परीक्षा [७] नेत्र परीक्षा [८] आकृति परीक्षा।

इन परीक्षाओ द्वारा व्यापक परीक्षा होती है और ये उपर्युक्त तीनो रोगिपरीक्षाओं के अन्तर्गत ही हैं अतः इन पर हम कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहते हैं—

नाड़ी परीक्षा

आज इस परीक्षा की चाहे जो स्थिति हो पर हमारा विश्वास है कि केवल इसी परीक्षा से रोग के भूत, वर्तमान और भविष्य काल की पूरी पूरी जानकारी सम्भव है। इस दिशा मे सतत प्रयत्न करने वालो को बड़ी सिद्धि प्राप्त होती है। यदि चिकित्सको को इसकी जानकारी हो जाय तो वे इस पर अविश्वास कर ही नहीं सकते। इसका ज्ञान गम्भीर है, पर साधारण चिकित्सा व्यवसाय के लिए बडा सरल भी है। हम इसी दृष्टिकोण से इस पर विचार करेंगे।

नाडी परीक्षा के लिए समय, परिस्थिति, नाडी की स्वाभाविक स्थिति, दोष-ज्ञान एवं रोगो की जानकारी अपेक्षित है। दोष-ज्ञान पहले हो चुका है, रोग-ज्ञान आगे होगा। शेष बातें यहाँ बतायी जायँगी :—

नाडी परीक्षा के लिए उपयुक्त समय—यो तो आपत्ति पडने पर किसी भी समय नाडी देखनी ही चाहिये। किन्तु यदि अनिवार्य परिस्थिति न हो तो प्रात.काल १० बजे के भीतर नाड़ी परीक्षा के लिए सर्व श्रेष्ठ समय है। इस समय नाडी अपनी स्वाभाविक स्थिति मे रहती है। रोग या स्वस्थावस्था का सम्यक् पता चलता है। अनिवार्य परिस्थितियो में जिस समय नाडी देखी जाय उस समय के दोष प्रकोप को भी ध्यान में रखना चाहिये। यो तो रोगावस्था की नाडी स्वयं रोग पृथक् कहती है किन्तु उस पर अपने अपने समय मे स्वभावतः कुपित वात पित्त कफ का प्रभाव कुछ पडता हैं। उसे ५-७ बार नाड़ी परीक्षा करनेवाला वैद्य सरलता से पहचान सकता है। विभिन्न दोष के प्रकोप का समय हम प्रथम अध्याय में निवेदन कर चुके हैं।

यह विशेष स्मरणीय है कि अनिवार्य परिस्थितियां न हो तो अन्य समय में नाडी परीक्षा नहीं करानी चाहिये। और, पीड़ा के अतिरिक्त अन्य सभी परिस्थितियो की उपेक्षा कर नाडी परीक्षा के लिए अनुकूल समय की प्रतीक्षा करनी ही चाहिये।

नाडी परीक्षा के लिये अनुकूल परिस्थिति—वैद्य शौच, स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त हो चुका हो। इसी कार्य के लिए प्रस्तुत हो। वह अपने मन मे यथा सम्भव नाडी परीक्षा से सम्बद्ध विषयो के अतिरिक्त और कुछ न सोचे। उसकी तल्लीनता सफलता के लिये अनिवार्य है। किसी वस्तु को काटने की क्रिया जैसी हिंसा की ओर संकेत करनेवाली कोई परिस्थिति नाडी परीक्षा काल विशेषतः प्रात. या सायं न उत्पन्न करे।

रोगी भी शौच आदि क्रियाओ मे निवृत्त हो। स्नानादि वर्जित न हो तो यह सब कर चुका हो। नाडी परीक्षा के लिए उद्यत हो। रोग के अतिरिक्त अन्य कोई बात यथा सम्भव न सोचे। यथासम्भव स्वच्छ वस्त्र धारण किये हो। न भूखा हो और न भोजन किया हो। प्रातःकालीन जलपान न करे तो उत्तम है। यदि जलपान करना ही है तो अत्यन्त लघु होना चाहिए। नाड़ी परीक्षा के पूर्व कुछ देर स्थिर बैठना चाहिये। थकावट, घबराहट या तन-मन को आन्दोलित करनेवाली परिस्थिति न होनी चाहिये। मल-मूत्र आदि का वेग भी उस समय धारण नहीं करना चाहिये। हाथ पसीने या पानी आदि से गीला हो तो पोछ कर सुखा लीजिये, घड़ी आदि से कसकर बँधा हो तो बन्धन हटाने के कुछ देर बाद नाडी दिखाना चाहिये। हाथ कहीं से दबा न हो। उसका कूर्पर (केहुनी) भी किसी वस्तु पर टिका न हो। हाथ शिथिल और सीधा रखना चाहिये। यदि मुड़ा हो तो १० अंश से कम का कोण मोड़ पर न बने।

नाडी परीक्षा का प्रकार—रोगी यदि पुरुष है तो पहले उसके दाहिने हाथ की एवं यदि स्त्री है तो पहले बायें हाथ की नाडी देखनी चाहिए। तत्पश्चात् दूसरे हाथ की नाडी देखकर दोनो हाथो की नाडी परीक्षा का मिलान करना चाहिए। द्विविधा में पुरुष या स्त्री के लिए निर्धारित हाथ की नाडी परीक्षा के परिणाम को महत्व देना चाहिए। परन्तु जिस हाथ में लकवा मारे हो, श्लीपद (फीलपाँव) हो, शोथ हो या गिरने से अधिक चोट आई हो तो उस हाथ की नाडी परीक्षा का महत्व नहीं। फिर चाहे पुरुष रोगी हो चाहे स्त्री, लाचार होकर दूसरे हाथ पर ही परीक्षा निर्भर करनी चाहिए। श्लीपद तथा शोथ से युक्त हाथ की नाडी दबी सी चलती है। लकवा से युक्त और चोटीले हाथ की नाडी क्षीण सी चलती है। यह आवश्यक नहीं कि चोट थोडे दिन की लगी हो या लकवा भी थोडे ही दिन का हो। बीसो वर्ष पूर्व या लडकपन के समय हुई घटना का प्रभाव भी नाडी पर पडता है।

रोगी के हाथ की कलाई पर हथेली की ओर अंगूठे की जड में नाडी देखनी चाहिये। कतिपय लोगो की नाडी हथेली के पीछे या इधर-उधर चली जाती है। अतः सावधानी से जहाँ नाडी पर तीनो अंगुलियाँ तर्जनी, मध्यमा और अनामिका रखने से फड़कन मालूम हो वहीं नाडी परीक्षा करनी चाहिए। यहाँ की नाडी का नाम जीव-नाडी है। किन्हीं कारणो से यहां नाडी न देख सकें तो हाथ के मोड पर, काँख में, ग्रीवा में या पैर में नाडी देखनी चाहिए। इन अंगो के स्थानो का पता स्वयं अपना हाथ अपने ही अंग पर रखकर लगाइये। जहाँ फडकन मालूम हो वही स्थान नाडी परीक्षा के लिए उपयोगी है।

वैद्य अपने दाहिने हाथ से रोगी की कलाई पकडकर नाडी देखे। यदि आवश्यकता हो तो रोगी के हाथ (जिसकी नाडी परीक्षा कर रहे हो) की केहुनी को अपने बायें हाथ से आधार दे। रोगी सोया हो तो उसका हाथ फैलाकर नाडी देखना अच्छा होता है। तीनो अंगुलियो पर जब तक फडकन स्पष्ट न प्रतीत हो तब तक परिणाम नहीं स्थिर करना चाहिये। अपनी अंगुलियो से नाडी न अधिक जोर से न अधिक धीरे से दबाकर परिणाम का अनुमान लगाकर तनिक देर (२-३ सेकेण्ड) के लिए नाडी छोड़ दीजिये।

तत्पश्चात् पुन. नाडी पकडिये । इस प्रकार कम से कम ३ बार या जब तक निश्चित परिणाम का पता न लग जाय तब तक नाड़ी स्पर्श कर छोडते रहना चाहिए और अन्तत परिणाम स्थिर कर लेना चाहिये ।

नाडी के घ्मानो की संख्या--नाडी की फडकन या स्फुरण को ही घ्मान कहते हैं। ये सद्यः प्रसूत बालक में प्रति मिनट १४०, दुग्ध पायी बालक मे १२०-१३०, दुग्ध और अन्नभोजी (५-६ वर्ष के) मे १००, पंचदशवर्षीय नवयुवक मे ९०, ३५ वर्षीय युवक मे ७०-७५ एवं अतिवृद्धावस्था मे ७०-८० बार होते हैं। आज इनकी संख्या पर अधिक ध्यान दिया जाता है। आप इन्हे सरलता से गिन सकते हैं। केवल ५-७ बार अभ्यास करने की आवश्यकता है। क्षीणता या दुर्बलता मे ये कम हो जाते हैं। धातु क्षय, यक्ष्मा, टाइफाइड, लो ब्लडप्रेशर, अतिसार, विसूचिका (हैजा) इत्यादि में भी कम हो जाते हैं। ये घ्मान १ मिनट मे ३० बार से कम हो तो मृत्यु जानना चाहिए। रुक-रुककर मालूम होने या इनकी समाप्ति से भी मृत्यु ही समझिये। कलाई की नाडी मे घ्मान न प्रतीत होने पर केहुनी, पैर या ग्रीवा की नाडी के घ्मान को देखिए। उसके घ्मान मे कमी हो तो उसे अधिक प्रामाणिक मानिये क्योकि विसूची आदि कुछ रोगो में कलाई की नाडी-गति समाप्त होने पर भी ग्रीवा, पैर आदि की नाडी चलती ही रहती है।

उन्माद, हाई ब्लडप्रेशर, रक्तपित्त, वात प्रधान सन्निपात आदि रोगो मे नाडी की गति बढ जाती है ।

नाडी की गति गिनने के लिए सेकेण्ड की सूई से युक्त घडी उत्तम होती है। पल्सो मीटर नामक एक यन्त्र अल्प मूल्य का बाजार मे बिकता है। इसमें एक लम्बी नलिका में बालू भरा रहता है। नलिका उलटा देने पर ऊपर से बालू आधा मिनट मे नीचे चला आता है। जिसे देखने के लिए यन्त्र मे शीशा रहता है। आधे मिनट की गति जानने के बाद दूनाकर देने से प्रति मिनट की गति भी विदित हो जाती है।

नाड़ी द्वारा त्रिदोष ज्ञान

नाडी परीक्षा से यदि त्रिदोष का ज्ञान हो जाय तो रोग के विषय मे लगभग समस्त बातो का पता चल सकता है। इसलिए गम्भीरता-पूर्वक पता लगाने की पूरी चेष्टा होनी चाहिये कि नाडी परीक्षा से किस दोष का प्रकोप विदित हो रहा है। इसके लिए कुछ सरल उपाय यहाँ हम निवेदन करेंगे ।—नाड़ी परीक्षा करते समय वैद्य की तीनों अंगुलियो तर्जनी, मध्यमा और अनामिका पर रोगी की नाड़ी की फड़कन मालूम होती है। यदि रोगी मे वात का प्रकोप होता है तो वह फड़कन वैद्य की तर्जनी अंगुली पर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होगी। इसी प्रकार पित्त के प्रकोप में वह मध्यमा अंगुली पर अधिक स्पष्ट प्रतीत होगी। कफ के प्रकोप में अनामिका पर अधिक स्पष्ट होगी।

इसके पश्चात् यदि आप नाड़ी की गति पर ध्यान दें तो अपने निर्णय को और पुष्ट कर सकेंगे। वात प्रकोप मे नाड़ी वक्र (टेढी) चलती है। उसमे चंचलता अधिक होती है। कभी कभी उसकी गति इतनी तीव्र होती है कि गिनना कठिन हो जाता है।

प्राय वातोल्वण सन्निपात की अन्तिम अवस्था मे ऐसा होता है। पित्त के प्रकोप मे नाड़ी में उछाल अधिक होता है। कफ प्रकोप मे नाडी अपेक्षाकृत अधिक मन्द और भारी। चलती है।

यदि दो दोष का प्रकोप है तो उन दो दोषो की अंगुलियो पर अधिक स्पष्टता रहेगी उनकी मिश्रित गति भी ध्यान देने पर प्राप्त होगी। त्रिदोष या सन्निपात के प्रकोप मे तीनो अंगुलियो पर स्वस्थावस्था की अपेक्षा अधिक स्पष्टता प्रतीत होगी। पर इसमे भी किसी एक दोष की उल्वणता (अत्यधिक प्रकोप) उसकी अंगुली पर अधिक व्यक्त होगी।

यह स्मरणीय है कि दोष ज्ञान के सम्बन्ध में अंगुलियो पर दोष की नाडी की फड़कन की स्पष्टता से ज्ञान होना अधिक सरल है। इसलिए इस पर अधिक ध्यान दीजिये। नाडी मे दोष की गति जानने के लिए अधिक अध्ययन कीजिये।

साम और निराम दोष

साम दोष मे नाड़ी भारी और मन्द चलती है। इसमे कुछ भरा-सा प्रतीत होता है। यह नाड़ी लगभग कफ के समान चलती है। परन्तु कफ की नाड़ी मे अनामिका पर अधिक दबाव प्रतीत होगा। इसमें जो दोष साम होगा उसकी अंगुली पर विशेष दबाव प्रतीत होगा। यह स्मरणीय है कि आम कफवर्गीय होता है। निराम दोष मे नाड़ी सूक्ष्म (पतली सी) चलती है। इसमे कुछ भरा-सा नही प्रतीत होता।

भोजन का नाडी पर प्रभाव

भोजन करने के बाद नाड़ी स्थिर चलती है। उसमे चंचलता कम होती है। भरी-सी होती है। किन्तु भूख लगने पर वह चंचल होती है। दबाव अंगुलियो पर कम डाल पाती है।

आहार में छः रस होते हैं

(१) मधुर (२) अम्ल (३) लवण (४) कटु (५) तिक्त (६) कषाय। इनका दोषो से सम्बन्ध है। यह समझ लीजिये कि यदि कफ का प्रकोप हो तो मधुर अम्ल लवण रस युक्त भोजन करने का अनुमान कीजिए। साथ ही ऐसी औषधियाँ एवं दिवास्वप्न आदि का भी अनुमान करना होगा। भोजन का प्रसंग रहने पर मधुरादि का अनुमान कीजिए। पित्त की नाड़ी मे अम्ल कटु लवण रस युक्त भोजन, उष्णता एवं क्रोध आदि का अनुमान कीजिए। वायु का प्रकोप नाड़ी मे रहने पर कषाय कटु तिक्त रस युक्त भोजन, रात्रि-जागरण एवं श्रम का अनुमान कीजिए।

रसो का नाड़ी द्वारा अनुमान हो जाने पर समय एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए खाये हुए भोजन का पता लगाया जा सकता है। विशिष्ट भोजनो का नाड़ी पर क्या प्रभाव पड़ा है ? इसका विवेचन नाड़ी के स्वतन्त्र ग्रन्थो मे मिलता है। उन पर ध्यान देना चाहिए। यहाँ तो निदान एवं चिकित्सा के साधारण दृष्टिकोण को उपस्थित किया गया है।

रोगो का नाडी पर प्रभाव—यदि आपने परीक्षा द्वारा दोष का ज्ञान कर लिया तो रोगनिदान एवं चिकित्सा मे सरलता हो जायगी। यहाँ कुछ प्रमुख रोगो मे उत्पन्न नाडी की गति पर विचार किया जायगा :—

ज्वर

ज्वर मे साधारणतया नाडी वेगवती होती है। स्पर्श मे उष्णता प्रतीत होती है। फडकनो की सख्या भी कुछ अधिक होती है। परन्तु टाइफाइड मे उष्णता बढने पर भी संख्या अनुपात से कम ही रहती है। विषम ज्वरो मे ज्वर वेग समाप्त होने पर नाडी क्षीण और मन्द हो जाती है। पर ज्वर वेग बढने पर वेगवती हो जाती है।

यह स्मरणीय है कि टाइफाइड को छोडकर शेष सभी ज्वरो मे ताप बढने पर नाडी के स्फुरणो की संख्या मे भी वृद्धि होती है। साधारणत स्वाभाविक ताप (९८ फा०) से अधिक बढने पर प्रति डिग्री ८ या १० फडकन बढ जाती है। उदाहरण स्वरूप यो समझिये कि ९९ डिग्री ताप होने पर स्फुरणो की संख्या ७२ (स्वाभाविक संख्या) + ८ या १० अर्थात् ८० या ८२ हो जायगी। इसी प्रकार प्रति एक डिग्री पर इसी अनुपात मे नाडी की फड़कन की संख्या मे वृद्धि होगी।

अतिसार, आमातिसार, ग्रहणी

इस रोग मे नाडी अधिक मन्द चलती है। यहाँ तक कि स्फुरणो की अनुभूति कठिनाई से होती है। आमातिसार अथवा प्रवाहिका मे चिपटी व जडवत् चलती है। इसमे आम भरा होने से नाडी की गति मे अवरोध सा प्रतीत होता है। ग्रहणी मे नाडी मृत (मुमूर्षु) सर्प के समान मन्द वेगवाली हो जाती है।

अर्श (बवासीर)

इसमे कोष्ठबद्धता अधिक होती है। इसलिए नाडी स्थिर और भरी सी चलती है। अंगुलियो पर अधिक दबाव डालती है। परन्तु रक्तार्श (खूनी बवासीर) मे रक्त निकल जाने पर वह क्षीण और मन्द चलती है।

अजीर्ण

इसमे नाडी कठिन एवं तीनो अंगुलियो पर जडवत् प्रतीत होती है।

मन्दाग्नि

मन्दाग्नि मे नाड़ी अत्यन्त मन्द और वेगरहित चलती है।

दीप्ताग्नि

दीप्ताग्नि मे मन्दाग्नि के विपरीत नाडी हलकी और वेगयुक्त होती है।

विसूचिका (हैजा)

नाड़ी अत्यन्त क्षीण चलती है। बहुधा अपने स्थान अर्थात् कलाई को छोड देती है। तब उसकी अनुभूति कांख, ग्रीवा या पैर मे होती है। अन्य रोगो मे स्थानच्युत नाडी मे

रोगी की मृत्यु हो जाती है। पर यहां इस लक्षण से युक्त रोगी जीता है। मुमूर्षु होने के अन्य चिह्नो पर यहां विचार करना चाहिये।

यक्ष्मा (टी० बी०)

इसमे नाडी अत्यन्त मन्द होती है। ज्वर बढने पर भी ताप के अनुपात से कम स्फुरण होते हैं। अन्तिम दशा मे तीन तीन चार चार दिन तक सद्य. मुमूर्षु के समान नाडी चलती है। फिर भी रोगी जी जाता है।

हृद्रोग

यहां हृद्रोग की विभिन्न अवस्थाओ की नाडियो पर विचार न कर केवल उच्च रक्त भार (हाई ब्लड प्रेशर) एवं न्यून रक्तभार (लो ब्लड प्रेशर) पर विचार करना अधिक युक्तिसंगत है। उच्च रक्तभार में नाडी वैद्य की अंगुलियो को अपने ऊपर से जबर्दस्ती हटाती हुई सी चलती है। बहुत कुछ पैत्तिक नाडी के समान होती है। पर इसमे उसकी अपेक्षा कठिनता अधिक होती है। न्यून रक्तभार में नाडी अत्यन्त क्षीण होती है। यहां तक कि कभी कभी स्फुरणो की अनुभूति मे भी कठिनाई होती है।

प्रमेह

इसमे नाडी अपने दोष दूसरो पर अधिक निर्भर करती है। सामान्यतः दुर्बल होती है।

प्रदर

रक्त प्रदर एवं श्वेत प्रदर दोनो मे वेग के समय नाडी क्षीण होती है।

मूर्च्छा

इसमे नाडी प्राय. क्षीण चलती है।

उन्माद

इसमे प्राय. उष्ण एवं वक्र होती है।

लकवा

जिस अंग मे लकवा मारता है। उस अंग के ओर की नाड़ी प्राय। क्षीण होती है। दूसरी ओर कुछ स्वाभाविक होती है। क्षीण नाडी धातु क्षीणता जन्य लकवा में होती है। आवरण जन्य लकवा (जैसा कि कम होता है) में नाडी पहले कठिन बाद में क्षीण हो जाती है।

आमवात (गठिया)

इसमे नाडी मन्द एवं भारी चलती है। कुछ भरी हुई सी प्रतीत होती है।

नाडी द्वारा साध्यासाध्यता या मृत्यु का ज्ञान

रोगी की मृत्यु के चिह्नो पर चरक संहिता के इन्द्रिय स्थान में बडा गम्भीर और तथ्यपूर्ण विचार किया गया है। किन चिह्नो के उदय होने पर कितने समय में रोगी की मृत्यु होगी ? इस पर भी वहां सूक्ष्म विचार किया गया है। यदि उनका अध्ययन कर

लिया जाय तो संशय रहित ज्ञान प्राप्त होगा। यहाँ पर नाड़ी परीक्षा द्वारा ज्ञातव्य मृत्यु के स्पष्ट चिह्नों को बताया जायगा।

यह स्मरणीय है कि स्वस्थ की नाड़ी प्रति मिनट ७२ बार चलती है। उसकी लगातार गति में कोई अन्तर या अवरोध एक स्फुरण के लिए भी नहीं होता। एक मिनट मे न्यूनतम ३० बार यदि एक समान एक गति से नाड़ी की फड़कन (स्फुरण या स्पन्दन) प्रतीत हो तो रोगी निस्सन्देह जीवित रहेगा। सामान्यत ३० स्फुरणो के बीच मे यदि एक या अधिक स्फुरण के समय के लिए नाड़ी चलना बन्द कर दे अथवा उसकी चाल मे अन्तर पड़ जाय तो रोगी नहीं जी सकता। कुल मिलाकर यदि नाड़ी में समान गति से फड़कन न उत्पन्न हो, वह रुककर चले तो साधारणतः प्राण संकट मे ही समझिये।

यदि कलाई के स्थान की नाड़ी में गति न मालूम हो तो भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। विसूचिका (हैजा) मे इसका अपवाद समझिये। रोगी की कलाई में लकवा मार दिये हो अथवा चोट लगी हो तो भी यह बात नही लागू होती। स्वाभाविक स्थान पर नाड़ी न होकर हाथ के पृष्ठ भाग पर हो तो भी यह बात लागू न होगी।

मूत्र परीक्षा

निदान मे मूत्र परीक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त शरीर मे परिभ्रमित रक्त से मूत्र छनता है। अत. इससे समस्त शरीर की व्याधियो के परिचायक चिह्न प्राप्त होते हैं। अन्यान्य चिकित्सको की अपेक्षा हकीम चिकित्सक इस पर अधिक अधिकार रखते हैं। कम से कम साधन मे सरलता से मूत्र परीक्षा की जा सके, इसी दृष्टिकोण से हम यहाँ विचार करेंगे।

परीक्षार्थ मूत्र ग्रहण

रात के अन्तिम प्रहर (३ बजे से ६ बजे के बीच) मे सोकर उठने के बाद सभी को मूत्र त्याग की इच्छा होती है। उस समय सर्वप्रथम मूत्र त्यागते समय पहली धारा के मूत्र को छोडकर शेष मूत्र को कांच के स्वच्छ और सूखे पात्र में लेकर डाट लगा देनी चाहिये। मूत्र-पात्र पूर्णतया इस प्रकार भर जाय कि डाट लगाते समय कुछ बाहर गिरे तो उत्तम है। पहली धारा का तात्पर्य यहाँ पर यह है कि प्रारम्भ में निकलनेवाला कुछ मूत्र पात्र मे ग्रहण न करें। ऐसा करने से स्वप्नदोष या मैथुन आदि से निकले हुए वीर्य का अंश आदि जो मूत्रनलिका में फंसा रहता है, धुलकर बाहर चला जाता है और केवल मूत्र-पात्र में आता है। कांच का मूत्र-पात्र पूर्णतया पारदर्शक होना चाहिये। रंगीन होने से मूत्र देखने में बाधा पडती है। मूत्र ग्रहण करने के बाद यथाशीघ्र परीक्षा करनी चाहिये। यदि विलम्ब की सम्भावना हो तो अन्धेरे और शीतल स्थान में रख देना चाहिये।

विभिन्न रोगों में मूत्र

स्वस्थ मूत्र सामान्यत. पके गेहूँ के डण्ठल के रंग का होता है। विभिन्न रोगो एवं परिस्थितियो में इसके रंग मे परिवर्तन होता है। जिसे लक्ष्य कर रोग का बहुत सुन्दर

निदान हो सकता है। वायु के प्रकोप मे कुछ नीला या कुछ हलका पीला, पित्त के प्रकोप मे लाल या पीला तथा कफ के प्रकोप मे स्वच्छ या मटमैला मूत्र आता है। यह भी ज्ञातव्य है कि वात प्रकोप मे मूत्र मे कुछ रूक्षता, पित्त प्रकोप में उष्णता तथा कफ के प्रकोप मे चिकनाई और शीतलता होती है। पित्त की अत्यन्त प्रकुपितावस्था यथा मसीमेह में काला और क्षारीय तथा सन्निपात में कुछ काला मूत्र होता है। त्रिदोष प्रकोप मे तीनो दोषो के मिश्रित एवं द्विदोष मे दो दोष के मिश्रित लक्षण मिलते हैं। अब आप उपर्युक्त दोषो से होनेवाले रोगो मे मूत्र के वर्ण आदि का अनुमान लगा सकते है। कुछ प्रमुख व्याधियो मे मूत्र मे ये लक्षण उत्पन्न होते हैं :—

ज्वर

सरसो के तेल के समान पीला और उष्ण होता है। जितना ही ज्वर उग्र होगा पीलापन बढता जायगा यहाँ तक कि वह लाल भी हो जाता है।

रक्तपित्त

इसमे भी ज्वर की ही स्थिति होती है। पर मूत्र मार्ग से प्रवृत्त होनेवाले रक्तपित्त मे विदग्ध और ज्वर मे शुद्ध रक्त आता है।

उष्णवात

इसमे भी ज्वर या रक्तपित्त के समान मूत्र आता है। पर मूत्र निकलने मे कष्ट होता है।

पाण्डु, कामला और अधोग अम्ल पित्त

इनमे पीला मूत्र आता है।

अतिसार और विसूचिका

इनमे मूत्र नही या अत्यन्त कम आता है। परन्तु आरोग्य लाभ के लक्षणो मे मूत्र त्याग होता है। तब मूत्र थोड़ा और लालिमा या पीलापन के साथ आता है।

हारिद्र मेह

इसमें मूत्र हल्दी के समान वर्ण का होता है।

आम

उदर मे आम रहने पर सफेद पेशाब होता है। बच्चो मे प्राय: यह प्रत्यक्ष, यहाँ तक कि दूध या मट्ठा के समान सफेद देखा जाता है। आमवात मे भी कभी-कभी ऐसा देखा जाता है।

जलोदर

इसमें मूत्र चिकना होता है। पर उसकी मात्रा कम रहती है। यदि मूत्र की मात्रा अधिक हो तो इस रोग में लाभ होता है।

प्रमेह

इसके मूत्रो का वर्णन आगे प्रमेहाधिकार में होगा।

यह ज्ञातव्य है कि चाय, दूध, शर्बत, शराब, केशर, उष्णता, तथा घाम आदि के सेवन का प्रभाव अस्थायी रूप से मूत्र पर विभिन्न रूपो मे पडता है फिर प्रभाव नष्ट होने पर मूत्र पूर्व स्थिति मे आ जाता है।

स्वास्थ्यावस्था मे युवा को सामान्यत मूत्र ६-७ बार मे डेढ-दो सेर आता है। इससे अधिक या कम मूत्र रोग का सूचक है। रात मे मूत्र त्यागने के लिए बारम्बार निद्रात्याग हो तो भी रोग समझना चाहिये। साधारणत. रात मे सोने के बाद प्रात निद्रात्याग के पूर्व मूत्रत्याग की इच्छा नहीं होनी चाहिये। यह भी ज्ञातव्य है कि मूत्र मे कफ के समान धातु या वीर्य निकलता है। जो आमावस्था के समान सफेद या अधिक मात्रा मे नही होता। नाक के कफ के समान थोड़ा-थोडा यदा-कदा निकलता है। समस्त मूत्र मे एक ही बार एक स्थान पर आयगा। इसके अतिरिक्त गाढे पानी के तार जैसा पदार्थ भी निकलता है। यह पौरुष ग्रन्थि या प्रोस्टेट ग्रन्थि का रस है, जो मैथुनेच्छा मे सभी को निकलता है। यह शुक्र या वीर्य से भिन्न वस्तु है। इसी मे घुलने से वीर्य बाहर आने योग्य होता है। इसके निकलने से अधिक घबड़ाने की आवश्यकता नही।

मल परीक्षा

घृणित होने के कारण मल की परीक्षा से सामान्यत लोग दूर भागते हैं। पर यह सही है कि इसकी परीक्षा पर ध्यान दिया जाय तो महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होगे। इससे अन्त्र या उदर की विविध व्याधियो का पता तो चलता ही है साथ ही सारे शरीर मे कौन दोष कुपित है, इसका भी पता चलता है। यहाँ हम स्थूल रूप से इसकी आवश्यक बातों पर ही विचार करेंगे।

वात दोष के प्रकोप मे मल कठिन, सूखा, काला, रूखा, गांठदार या पतला होता है। पतला रहने पर शब्द युक्त निकलता है। अन्यथा शब्द कम होता है। गांठ बँध जाने या सूख जाने से सरलतापूर्वक न निकलने से वेदना भी होती है। पेट फूला रहता है। यदि अधोवायु निकलती है तो कुछ आराम रहता है।

पित्त दोष के प्रकोप मे मल पीला, द्रव, उष्ण या दाहयुक्त निकलता है। कभी-कभी उष्णता के कारण मलद्वार पर पाक भी हो जाता है। पित्त के अधिक कुपित होने पर जब अधोग रक्त पित्त हो जाता है। तब मल रक्त वर्ण का आता है। यहाँ पूरा मल ही रक्त मिश्रित या रक्त वर्ण का हो जाता है। प्रवाहिका मे मल के साथ जरा सा रक्त आता है या अत्यन्त न्यून मल रक्त या गुलाबी वर्ण से युक्त आता है। ऐसा वहाँ पित्त के अधिक कोप से नही बल्कि मरोड के कारण होता है।

श्लेष्मा के प्रकोप मे मल चिकना, श्वेत, लसीला, कफ या आँव से युक्त होता है। यह कच्चा (आम) और पक्का (पक्व) दोनो अवस्थाओ मे जल मे डूब जाता है। यदि आँव आंतो मे सटा नही है तो इसके निकलने मे विशेष पीडा नही होती। ऐसा आँव शीघ्र अच्छा भी नही होता।

त्रिदोष मे तीनो दोषो एवं द्विदोष मे दो दोषो के मिश्रित लक्षण मिलते हैं।

आम मल

श्लेष्मा के कोप के अतिरिक्त अन्य मल यदि आम या कच्चा हो तो जल मे डूब जाता है, बहुत दुर्गन्धित, सडा हुआ एवं लसीला होता है। पतले, गठीले, शीत से दूषित एवं कफ से दूषित मल मे जल मे डूबने की परीक्षा पर विश्वास न कर अन्य परीक्षाओ पर ध्यान देना चाहिये। आम मल प्राय श्वेतता और चिकनाई से युक्त होता है।

निराम या पक्व मल

यह जल मे तैरता है। इसमे दुर्गन्ध, चिकनाई या लसीलापन नही होता। अपने स्वाभाविक वर्ण का अर्थात् भूरा या किंचित् पीला होता है। बिना किसी पीडा के निकलता है।

असाध्य मल

पकी हुई जामुन के समान अत्यन्त चमकदार काला, यकृत के टुकडे के समान ताम्र वर्ण का, कूटे हुए मास, मासधोवन, दूध, दही आदि के वर्ण का मल असाध्य होता है। मल मे चन्द्रिका (आंतो के चन्द्राकार टुकड़े या पानी मे तेल पडने का सा रंग) दिखायी पडे तो वह भी असाध्य होता है। गुदा मे मल को रोकने की शक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी हो या मल निकलते निकलते गुदा पक गयी हो तो भी असाध्यता समझनी चाहिये।

यह स्मरणीय है कि केवल मल परीक्षा आदि से ही रोग की असाध्यता नही कहनी चाहिये। पूरे लक्षण मिलने पर ही असाध्यता कहनी चाहिये। साध्यता-असाध्यता के विषय मे हम रोग प्रकरण मे विचार करेंगे।

जिह्वा परीक्षा

जिह्वा पेट के रोगो का दर्पण है। ध्यान देने पर बहुत से उदर रोगो का ज्ञान जिह्वा देखने से हो जाता है। यदि उसके द्वारा दोष प्रकोप का ज्ञान हो तो कुपित दोष सर्व शरीर गत होने का भी अनुमान करना चाहिये। विभिन्न दोषो मे जिह्वा की स्थिति इस प्रकार की होती हैं :—

वात प्रकोप

वायु के प्रकोप मे जिह्वा रूक्ष, खुरदरी, बीच मे या यत्र-तत्र फटी सी होती है। कभी कभी उससे स्वाद का ज्ञान भी नहीं होता। प्रलाप युक्त सन्निपात मे स्पष्टतया जिह्वा खुरदरी और रूक्ष देखी जा सकती है। फटी हुई जिह्वा उदर मे मल संचय के कारण प्रतिलोम अपान वायु से भी होती है।

पित्त प्रकोप

पित्त का प्रकोप होने के कारण जिह्वा लाल हो जाती है। उसमे चारो ओर लाल लाल कण्टक (निनावे के समान) हो जाते हैं। जिह्वा मे दाह भी होता है। उदर मे संचित मल की विषमयता से भी जिह्वा मे लाल दाने पड जाते हैं। ग्रहणी-विकार की

कठिनावस्था मे ऐसा वारम्वार होता है। अशुद्ध पारद आदि कतिपय औषधियो के सेवन से भी ऐसा होता है। समस्त शरीर पर उसका प्रभाव पडने के पूर्व ही जिह्वा पर ये दाने आ जाते हैं। अत. औषधि सेवन मे इस पर ध्यान देना चाहिए। पर ग्रहणी विकार या मल की विषमयता मे यह एक विशिष्ट लक्षण है वहाँ केवल औषधि को दोष नही देना चाहिए। गम्भीर विचार कर वास्तविक दोषी का पता लगाना चाहिये।

कफ प्रकोप

कफ के प्रकोप मे जिह्वा पर सफेद लेप सा दिखायी पडता है। वह कुछ मोटी, भारी सी हो जाती है। उस पर श्वेताभ कोमल दाने उत्पन्न हो जाते हैं। श्लेष्म ज्वर या मोतीझरा मे जिह्वा पर श्वेत लेप देखा ही जाता है। यह लेप सामान्यत. जिह्वा की ऊपरी स्वच्छता से नहीं मिटता। साधारण अस्वच्छता से उत्पन्न लेप स्वच्छता करने से मिट जाया करता है। तीव्र अजीर्ण, आमाशय, शोथ और उपान्त्र शोथ मे भी जिह्वा पर श्वेत लेप हो जाता है। रक्ताल्पता या पाण्डु मे रक्ताल्पता के कारण जिह्वा मे लालिमा कम होकर गुलावी श्वेतता हो जाती है।

त्रिदोष प्रकोप मे तीनो दोषो के मिश्रित लक्षण और द्विदोष मे दो दोष के मिश्रित लक्षण मिलते हैं।

जिह्वा पर छाले

उपर्युक्त दानो या अंकुरो के अतिरिक्त जिह्वा पर छाले या फफोले भी पड़ जाते हैं। दुष्ट पायरिया, अग्निमान्द्य, ग्रहणी-विकार, अजीर्ण मे ऐसा होता है। उपदंश में जिह्वा पर व्रण हो जाते हैं। शीतला के प्रकोप मे अन्य स्थानो के अतिरिक्त यहां भी छाले पड़ जाते हैं।

आकार परिवर्त्तन

जिह्वा का नित्य के स्वाभाविक आकार से छोटी हो जाना अरिष्ट (निश्चित मृत्यु चिह्न) का परिचय देता है। श्वेतातिसार और दुष्ट रक्ताल्पता मे ऐसा होता है। जिह्वा का ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाना भी बडा घातक होता है। यह प्राय वात प्रकोप के कारण यदा-कदा होता है।

जिह्वा का रग

स्वभावत. जिह्वा गुलाबी रंग की होती है। परन्तु सन्निपात और वात प्रकोप मे काली, पित्त प्रकोप मे पीली या लाल, कफ प्रकोप मे श्वेत होती है। लाखो करोडो मे एक दो स्त्री-पुरुषो की जिह्वा स्वभावत काली होती है। जिसे करजिही कहकर अशुभ माना जाता है। हमारे अनुभव मे भी ऐसा ही है।

शब्द परीक्षा

शब्द परीक्षा को दो भेदो मे बांटा जा सकता है। एक रोगी मे स्वत उत्पन्न। दूसरा वैद्य द्वारा उत्पन्न कराया गया।

रोगी मे स्वत. उत्पन्न शब्द वायु के मल या कफ द्वारा निरुद्ध होने से उत्पन्न होते है।

वातातिसार मे मल द्वारा वायु मे रुकावट पड़ने से विचित्र प्रकार के शब्दो से युक्त अतिसार होता है।

अधोवायु मे निकलनेवाले विभिन्न प्रकार के शब्दो की भी यही स्थिति होती है।

आंतो मे कूजने या गुडगुडाहट का शब्द भी वायु के मल द्वारा रुकने से होता है।

वमन मे वायु के कफ द्वारा रुकने पर शब्द युक्त वमन होता है।

उद्गार का शब्द भी वायु के रुकने से ही होता है।

श्वास रोग मे कफ द्वारा वायु रुकने पर खरखराहट के शब्द से युक्त श्वास वाहर निकलता है।

खासी मे शुष्क कफ से वायु रुकने पर ठांय ठांय या टूटे हुए कांसे के वर्तन मे आघात लगने से उत्पन्न शब्द की भांति शब्द निकलता है।

स्वरभेद मे स्वरयन्त्र की विकृति या कफ द्वारा निरुद्ध वायु के कारण विभिन्न शब्द निकलते है।

यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त स्थिति मे जहां शब्द होता है वहां वायु निरुद्ध होकर निकलता रहता है। यदि निरोध को हटा दिया जाय तो शब्द नही होगा।

वैद्य वक्ष एवं उदर के रोगो की परीक्षा शब्द उत्पन्न कर भी करता है। रोगी के वक्ष पर अपने वाये हाथ की अंगुलियो को रख कर (अँगुलियो के करतल या गदोरी की ओर का हिस्सा वक्ष की ओर होगा) अपने दाहिने हाथ की मध्यमा अँगुली से उनपर ठेपन करता है। चाहे तो वह अपनी दाहिने हाथ की मध्यमा अँगुली को अपने अंगूठे के झटके से मुक्त कर वायें हाथ की अंगुली पर ठेपन करे अथवा बिना अंगूठे का प्रयोग किये ही ठेपन करे। सामान्यत. अपने वायें हाथ की मध्यमा अँगुली पर ही ठेपन करता है। कभी-कभी तर्जनी और अनामिका पर भी ठेपन करता है। इन दोनो विधियो मे कोई विशेष अन्तर नहीं पडता। इस प्रकार वह दोनो फुफ्फुसो पर साधारणत. चारो ओर ठेपन कर शब्द उत्पन्न करता है। केवल एक या दो स्थान पर ही ठेपन कर शब्द उत्पन्न कर निर्णय कर सकता है।

ठेपन करने से यदि भद्-भद् (जलभरी मशक पर ठेपन करने से उत्पन्न शब्द की भांति) शब्द उत्पन्न हो तो फुफ्फुस मे कफ का अनुमान करिये। प्ल्यूरिसी या फुफ्फुस मे कही क्षत होने पर ठेपन मे इसी प्रकार का शब्द निकलता है। रोगी उस स्थान पर ठेपन करने मे पीडा का अनुभव करता है।

वक्ष की ही भांति उदर पर भी ठेपन कर शब्द उत्पन्न किया जाता है। रोगी की दाहिनी पसलियो के नीचे यदि यकृत् वढा हुआ है तो वहां ठोस पदार्थ का सा शब्द उत्पन्न होगा। यही स्थिति वायें पार्श्व मे प्लीहा की भी होगी। अत्यधिक मल संचय मे भी आंतो पर ठेपन करने से ऐसा ही शब्द निकलता है।

आमाशय यदि शून्य होता है तो वहां से ऐसा शब्द निकलता है जैसे भीतर कोई चीज न हो। परन्तु यदि वायु भरा है तो वायु से भरी मशक पर ठेपन करने से जैसा शब्द उत्पन्न होता है, वैसा ही शब्द उत्पन्न होता है।

जलोदर के रोगी के उदर पर ठेपन करने से भद्भद् (जलयुक्त मशक पर ठेपन करने से उत्पन्न शब्द की भांति) शब्द उत्पन्न होता है।

उदर परीक्षा के लिए आगे स्पर्श परीक्षा भी पढ़ें।

स्पर्श परीक्षा

स्पर्श परीक्षा मे सामान्यत. यकृत (लीवर), प्लीहा (बरवट) व वृक्क (गुर्दा) आदि उदरस्थ अंगो की वृद्धि, सूजन या मल संचय का पता चलता है। पीडास्थल का अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त सर्वांग मे दोष के प्रकोप का ज्ञान भी होता है।

वायु के प्रकोप मे रूक्ष तथा खुरदरा स्पर्श होता है। पित्त के प्रकोप मे उष्ण स्पर्श होता है। कफ के प्रकोप में शीत, चिकना एवं मृदु स्पर्श होता है। शरीर मे जहां भी दबाने से रोगी चिहुक या कराह उठे व वैद्य का हाथ हटाना चाहे, वहां पीडा का अनुमान करना चाहिये। कभी कभी साधारण अस्वस्थ रोगियो मे गुदगुदी होने से वे हंस पडते हैं और हाथ को हटा देते हैं। वहां पीडा का अनुमान कम करिये। हां, स्पर्शस्थल कठोर होने पर वहां शोथ या मल संचय का अनुभव करना चाहिये। रोगी जब हँसता या पेट पर तनाव देता है तब भी ऐसा होता है। वहां भ्रम मे न पडना चाहिये।

रोगी को चित्त सुलाकर उसके दोनो पैर मोड़कर उदर की परीक्षा करें। रोगी के दाहिने हिस्से मे नीचे से आंत दबाते हुए और अनुमान लगाकर छोड़ते हुए यकृत की ओर बढ़ें। तत्पश्चात् यकृत, आमाशय और प्लीहा दबाकर अनुमान लगाकर छोड़ते जायें। तदनन्तर अन्त्र के शेष सभी भाग दबायें। जहां यकृत, प्लीहा व आमाशय आदि पर दबाने से कठोरता विदित हो वहां शोथ, अर्बुद या उस अंग की वृद्धि समझनी चाहिये। अन्त्र की कठोरता से मलसञ्चय समझिये। नाभि के सीध मे वृक्क को दबाकर उसकी कठोरता का अनुमान करें। पेडू मे दबाकर स्त्री के रक्तगुल्म या अर्बुद (ट्यूमर) का पता लगायें। कुशल वैद्य गर्भ के अंगो का भी पता लगाते हैं।

नेत्र परीक्षा

नेत्रो एवं मुखमण्डल पर उदय होनेवाले भावो से मन और हृदय की स्थितियो का पता चलता है। चतुर लोग सम्पर्क मे आए हुए व्यक्ति के मन के भावो को इसी से ताड लेते हैं। मुखमण्डल से जिन रोगो का पता चलता है, उनके सम्बन्ध मे हम आकृति परीक्षा मे निवेदन करेंगे। यहां नेत्रो को देखकर रोगो का परिचय बताया जायगा।

वात प्रकोप

वात के प्रकोप मे नेत्र रूखे, छोटे (भीतर धंसे हुए) धूमिल या गुलाबी वर्ण के और स्तब्ध (पलको के गिरने तथा उठने मे कठिनाई प्रतीत होती है) होते हैं। भीतर कभी

कभी लुत्ती (प्रकाश की रेखा) सी चमक उठने का अनुभव रोगी को होता है। आंसू शीतल और रूक्ष निकलता है, कीचड भी रूक्ष होता है। आंखो का परस्पर टेढी या छोटी वडी होना और लक्ष्य पर दृष्टि का आभास दूसरो को न होना वात विकार से ही होता है।

पित्त प्रकोप

पित्त के प्रकोप मे नेत्र लाल, पीले या हरित वर्ण के हो जाते हैं। उनमे दाह होता है। दीप या चमकदार वस्तुओ की ओर देखने मे असमर्थता होती है। स्राव या कीचड उष्ण होता है।

श्लेष्म प्रकोप

कफ के प्रकोप मे नेत्र श्वेत वर्ण का चमकदार, गीला, सूजन और खुजली से युक्त होता है। स्राव और कीचड शीतल, चिकना एवं गाढा होता है।

त्रिदोप मे तीन दोषो के सम्मिलित लक्षण नेत्रो मे उपलब्ध होते हैं। इसकी अरिष्ट (निश्चत मृत्यु चिह्न) अवस्था मे नेत्र टेढे व रक्त होते हैं। पुतली ऊपर चढी होती है।

रक्ताल्पता, पाण्डु एवं कामला में पलकें रक्तहीन दिखायी देती हैं। उदरस्थ कृमि मे पलकें कुछ मोटी हो जाती हैं। उनमे मटमैली कुछ मोटी मोटी शिरायें रेखा के रूप मे दिखाई देती हैं।

नेत्रो के चारो ओर विशेषत. नीचे सतत कालापन प्रमेह का द्योतक है। निद्राल्पता एवं निर्वलता मे भी ऐसा होता है। पर वह अस्थायी होता है।

मैथुन या स्वप्नदोप के कुछ घण्टो वाद तक नेत्र निस्तेज एवं विशिष्ट भाव से युक्त होते हैं।

धनुस्तम्भ (वातव्याधि के अन्तर्गत) मे भवें ऊपर खिची हुई व दांत मिचे हुए होते हैं।

वृक्क (गुर्दा) के प्रदाह मे शय्या त्यागने के वाद निचली पलक मे शोथ होता है जो दिन चढते समय क्रमश. कम होकर समाप्त हो जाता है।

कुक्कुर खांसी (हूपिंग कफ) से पीड़ित वच्चो एवं उत्कट कास वेग से पीड़ित प्रौढो मे भी ऐसा होता है।

विसूचिका या अतिसार मे नेत्र भीतर की ओर धँस जाते हैं। जिन रोगो मे वुद्धि मन्द हो जाती है उनमें रोगी पार्श्ववर्त्ती घटनाओ की चिन्ता न कर विचारमग्न की भांति शून्य सा देखता रहता है।

हृद्रोगो एवं श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) मे नेत्रो से चिन्ता तथा भय प्रगट होता है।

टार्च या अन्यान्य रोशनी डालने पर पुतली के भीतर दृष्टि सिकुडती न हो और प्रकाश हट जाने पर फैलती न हो तो २४ घण्टे मे मृत्यु समझनी चाहिये। किसी साधन के न रहने पर हाथ से आंख को ढककर अन्धेरे के अनुभव एवं हाथ हटा कर प्रकाश के अनुभव किये जा सकते हैं।

वैद्य मे श्रद्धा रखनेवाले रोगियो के नेत्रो मे दीनता और नम्रता के भाव प्रगट होते हैं। इसके विपरीत अश्रद्धालु या वैद्य से छल कपट करनेवाले या रोग अथवा पाप को छिपानेवाले रोगी की आँखें वैद्य के सन्मुख नही ठहरती, झेंप जाती हैं।

मरणावस्था में नेत्र निश्चल, अन्दर की ओर धँसे हुए या बाहर निकले हुए होते हैं। पलकें खुली या बन्द रह जाती हैं।

आकृति परीक्षा

सर्वप्रथम रोगी का साक्षात्कार होने पर उसकी आकृति से ही रोग का बहुत कुछ पता चल जाता है। दोषप्रकृति, दोष प्रकोप, रोग एवं मानसिक स्थितियो का पता उससे चल जाता है। रोगी का स्वागत करते ही यह परीक्षा हो जाती है। बस गम्भीर दृष्टि से उसके चेहरे पर ध्यान देने की आवश्यकता है। साथ ही उसके हावभाव, चेष्टाओ एवं बातचीत करने के ढंग पर भी ध्यान देना चाहिये।

प्रकृति के सम्बन्ध मे हम यहाँ संक्षेप मे निवेदन करेंगे। गर्भाधान के समय माता पिता में जो दोष प्रकुपित या उत्कट रहता है उसी दोष से युक्त रज एवं वीर्य होता है। इस रज-वीर्य के संयोग से उत्पन्न सन्तान मे भी जीवन भर के लिए वही दोष उत्कट रहता है। इसी दोष से उसकी दोष-प्रकृति बनती है। जो सात प्रकार की होती है—(१) वात प्रकृति (२) पित्त प्रकृति (३) कफ प्रकृति (४) वात-पित्त प्रकृति (५) वात-कफ प्रकृति (६) पित्त-कफ प्रकृति (७) वात-पित्त-कफ प्रकृति।

वात प्रकृति

इससे युक्त पुरुष कुत्ता और कौवा के समान स्वभाववाला होता है। अधीर, कृतघ्न, अस्थिर चित्त, कृश, उभडी हुई धमनियों या शिराओ से व्याप्त शरीरवाला और तेज चलनेवाला होता है। वह प्रलाप अधिक करता है। चेहरा भी सूखा, चंचल आंखो एवं विरल दांतो से युक्त रहता है। कुल मिलाकर उसमे क्रोध और चंचलता अधिक रहेगी।

पित्त प्रकृति

इससे युक्त पुरुष सर्प, वानर, बिलाव और बाघ के स्वभाववाला होता है। तेजस्वी, निपुण, मेधावी, विगृह्यवक्ता (झगड़े की भाषा मे बात करनेवाला), कुछ पीली या लाल कान्ति से युक्त होता है। अधिकतर मुख पाक हुआ करता है। "क्षणे रुष्ट और क्षणे तुष्ट" होता है।

कफ प्रकृति

इससे युक्त पुरुष दूब, नीलाकमल, नीम और सरपत इनमे से किसी एक के वर्ण का होता है। देखने मे सुन्दर, धैर्यशाली, सहिष्णु, अलोभी, बलवान, श्वेत आंख वाला, काले और स्थिर केशवाला, गम्भीर ध्वनिवाला, कृतज्ञ, स्थिर चित्त, वैद्य और गुरुओ का आदर करनेवाला तथा सुडौल शरीरवाला होता है।

यह स्मरणीय है कि दो दोषवाली प्रकृति मे दो दोष एवं तीनो दोषों की प्रकृति में तीनो के लक्षण मिश्रित रूप मे मिलेंगे ।

दोष प्रकोप की जानकारी पूर्वकथित दोष प्रकरण से करिये । यहाँ इतना ही जानना उचित होगा कि वात प्रकोप मे शरीर एवं चेहरे पर कुछ कालिमा (जैसे अधिक मार्गगमन से उत्पन्न थकावट मे चेहरे का रंग होता है) हो जाती है । वह मुरझाया रहता है । पित्त के प्रकोप मे चेहरा लाल या पीला रहता है । कफ के प्रकोप मे कुछ सफेदी रहती है पर मुखमण्डल स्निग्ध एवं सुशोभित होता है । नेत्र स्निग्ध एवं चमकदार होते हैं ।

सभी रोगो मे मानव का आकार-प्रकार हावभाव विभिन्न रहता है । उसपर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने से रोग परिचय मे सरलता होती है । सरलता मे आकृतियो से ज्ञात होनेवाले रोगो को आप यो समझिये—

ज्वर

ज्वर मे चेहरा गिरा हुआ या तमतमाया हुआ होता है । सन्निपात ज्वर की आकृति ज्वर प्रकरण मे पढिये ।

अतिसार

अतिसार मे आंखे धँसी हुई होती है । विसूचिका एवं ग्रहणी की प्रकुपितवस्था मे भी ऐसा ही होता है ।

कृमि

उदरस्थ कृमि मे बहुत से लोगो के कपोलो पर झाँई और रूक्षता रहती है ।

क्षय

क्षय रोग मे चेहरा सुन्दर और सुशोभित होता है । आँखें चमकदार होती हैं । चेहरे को छोडकर सारा शरीर कृश होता है ।

श्वास

दमा या तमक श्वास मे रोगी बैठने मे अधिक चैन का अनुभव करता है । तकिया या अन्य वस्तु के सहारे अपना सिर रखकर बैठा रहता है । सोने से उसका कष्ट बढ जाता है । आंख से बेचैनी प्रगट होती है ।

शूल

शूल मे पीडित रोगी स्थिरतापूर्वक एक करवट कुछ देर तक नहीं रह सकता । करवट बदलता रहता है ।

धातुक्षय

धातुक्षय मे आँखें धँसी हुई और चेहरा निस्तेज होता है । धातुक्षय के बाद कफ प्रकोप होने पर कफ प्रकोप से युक्त मुखमण्डल के समान चिह्न मिलेंगे ।

रक्ताल्पता

मे चेहरा सफेद या पीला होता है ।

पाण्डु

पाण्डु मे भी चेहरा पीला, सफेद और शोथयुक्त होता है।

वृक्क

वृक्क व प्लीहा-यकृत के रोगो तथा जलोदर की कठिनावस्था मे पेरो मे सूजन होती है। बाद मे मुँह पर भी हो जाती है।

उन्माद

मे पलकें जल्दी नही गिरती।

अतत्त्वाभिनिवेश

आँखें स्थिर शून्य सी रहती हैं।

शीतला

के पहले चेहरा तमतमाया हुआ होता है और बरौनियाँ खडी होती हैं।

केवल एक परीक्षा से किसी भी रोग का निर्णय कठिन है। अच्छा हो यदि अष्टविध परीक्षाओ से निर्णय की पुष्टि कर ली जाय।

रोग परीक्षा या पंच निदान

रोग परीक्षा करने के पांच उपाय हैं। (१) निदान (२) पूर्वरूप (३) रूप (४) उपशय (५) सम्प्राप्ति। इनसे रोग के सम्बन्ध की बातें जानी जाती हैं। इन्हे ही पच निदान कहते हैं। यह सही बात है कि पूर्वोक्त रोगिपरीक्षा से भी रोगज्ञान का सम्बन्ध है। पर स्थूल रूप से उससे रोगी की प्रकृति, आयु, मानसिक विचारधारा और दोष-प्रकोप आदि जाने जाते हैं। पंच निदान से रोग के कारण, पूर्वावस्था के लक्षण, चिकित्सासूत्र और रोगमार्ग जाने जाते है। निदान और चिकित्सा के लिए रोग परीक्षा एवं रोगिपरीक्षा दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने से उत्तम सफलता प्राप्त होगी।

पंचनिदान की जानकारी बडी गम्भीर है। इसका जानकार मूर्धन्य वैद्य बन सकता है। यह जानकारी गम्भीर अध्यवसाय एवं समय का विषय है। यहाँ हम स्थूल रूप से इस सम्बन्ध मे निवेदन करेंगे।

निदान

रोग के आदि कारण को निदान कहते हैं। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण इसके पर्यायवाची नाम हैं। पर इन पर्यायवाची नामो मे भी निदान या रोग कारण के भेद बताये गये हैं। जैसे निमित्त शकुन अपशकुन को कहते हैं। बिल्ली के रास्ता काटने आदि अपशकुनो का वैज्ञानिक आधार प्रत्यक्ष न मिले फिर भी प्रत्येक देश के जनसाधारण के मन पर इस प्रकार की बातो या घटनाओ का बुरा प्रभाव पडता ही है। यात्रान्त या यात्रा मे हुई व्याधि का निमित्त वह यात्रा के समय हुए अपशकुन को मान बैठता है। चिकित्सक यदि उसके मानसिक विकार को दूर नहीं कर पाता तो

उत्तम औषधियो का व्यवहार आदि भी व्यर्थ हो जाता है। चतुर चिकित्सक उसके मानसिक विकार अर्थात् अपशकुन आदि के प्रभाव को मिटाने के लिए वहाँ टोटका या मन्त्र आदि का व्यवहार कर देते हैं। साथ ही उचित होने पर कुछ औषधि भी देते हैं। इनसे रोगी के मन को आश्वासन मिलता है। और, रोग दूर हो जाता है। ऐसा प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप मे होता है।

हेतु—प्रेरक कारण (जैसे पाण्डु मे मिट्टी)। हेतु के अनुसार जब तक मिट्टी खाना रोगी बन्द नही करेगा तब तक पाण्डु अच्छा नहीं होगा।

आयतन—आयतन का अर्थ घर होता है। कुष्ठ का उडीसा, विषम ज्वर का बंगाल, श्लीपद या फीलपांव का आसाम की तराई घर है। वहाँ ये रोग अधिकता से होते हैं। वहाँ इन रोगो की उत्पत्ति का कारण वह देश भी माना जाता है। इसलिए यदि रोग अपने आयतनवाले देश मे हुआ है तो चतुर चिकित्सक रोगी को वह देश छोडने के लिए आग्रह करते हैं। उस देश के छोडने पर रोगी को सरलता से आरोग्य लाभ होता है। अन्यथा कठिनाई होती है।

प्रत्यय—प्रत्यय विश्वास को कहते हैं। भले ही रोगी मे टी० बी० या यक्ष्मा के कारण न मिलते हो। पर विश्वस्त लोगो द्वारा यदि उसे टी० बी होने का विश्वास हो जाय तो सचमुच उसे टी० बी० हो जाता है। बहुधा साँप के न काटने पर भी उसको देखने से उसके द्वारा काटे जाने का विश्वास हो जाने पर सर्पदंश के वेग या लहरें आने लगती हैं। जिसे शंकाविष भी कह सकते हैं। भले ही रोगी को औषधि देने की वास्तविक आवश्यकता न हो परन्तु मानसिक उपायो अथवा औषधियो द्वारा उसके विश्वास को नष्ट करना आवश्यक होता है। प्राय. रोग से सर्वथा सम्बन्ध न रखनेवाली परन्तु किसी प्रकार की हानि न पहुँचानेवाली औषधि उसे दी जाती है। और, कहा जाता है कि औषधि से तुम्हें लाभ हो रहा है। इस प्रकार उसके भ्रान्त विश्वास को नष्ट कर उसके रोग को नष्ट किया जाता है।

उत्थान—दौरेवाले रोगो मे दौरेके मूल कारण को ही समाप्त करने की चेष्टा करनी पडती है। नही तो वे बारम्बार रोगी को कष्ट देते ही रहेगे।

कारण—अभिघात तथा अभिशाप आदि इसके अन्तर्गत हैं। इनसे उत्पन्न रोग मे इसके उपचार पर भी ध्यान देना पडता है। अन्यथा रोग की औषधि व्यर्थ हो जायगी।

निदान से चिकित्सा

रोग के कारणो का परिवर्जन, आधी चिकित्सा है। इसलिए रोगी को सर्वप्रथम कारणो से दूर रहने को कहते हैं। जिससे रोग को बल नहीं मिलता। वह प्रकोप की दिशा में नहीं बढता। बहुत से रोग कारण का त्याग करने पर ही अच्छे हो जाते हैं। यदि चिकित्सा की जाय तो अति शीघ्र अत्यधिक लाभ होता है। इसके विपरीत कारण का सेवन करते रहने पर उत्तम से उत्तम चिकित्सा से भी यथोचित लाभ नहीं होता।

पूर्वरूप या प्राग्रूप

भविष्य मे होनेवाली व्याधि का ज्ञान करानेवाले लक्षणो को पूर्वरूप या प्राग्रूप कहते हैं। जिस प्रकार अंकुर की अवस्था मे ही वृक्ष सरलता से अल्प साधन और अल्प समय मे नष्ट हो सकता है उसी प्रकार व्याधि अपनी अंकुरितावस्था या प्राग्रूप की अवस्था मे बडी सरलता से नष्ट की जा सकती है। अथवा आगे बढने पर रूपावस्था मे उसके प्रकोप को रोका जा सकता है।

रूप

पूर्व रूप ही प्रगट होने पर रूप या लक्षण हो जाता है। यह व्याधि की जानकारी के लिए प्रधान है। विश्व के समस्त चिकित्सक अधिकाश इसी का आश्रय लेकर चिकित्सा करते हैं। लक्षणो के बल पर व्याधि की पहिचान बड़ी सरल है। मूल व्याधि के न पहचानने पर भी ज्ञात लक्षणो को दूर कर रोगी को लाभ पहुँचाया जाता है। आज अधिकाशत यही हो रहा है। यद्यपि मूल रोग बना रह सकता है पर रोगी की वेदना की शान्ति हो जाने से चिकित्सक को सस्ते यश के साथ ही रोग दूर करने का समय मिल जाता है। वेदना से तडपता प्राणी तुरन्त आराम चाहता है। उसे मूल रोग को दूर करने के लिए प्राय. धैर्य नहीं रहता। इसलिए लाचारी वश अनुचित होते हुए भी अधिकाश चिकित्सक लक्षणो की चिकित्सा करते हैं। मूल व्याधि को पहचानकर भी तुरन्त लाभ पहुँचाया जा सकता है पर यह जरा कठिन है।

रूप के पर्यायवाची नाम संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति हैं।

सस्थान

स्थान विशेप मे उत्पन्न रोग लक्षण। यथा—हृत्शूल, शिर. शूल, उदरशूल आदि।

व्यजन

विशिष्ट व्यक्तित्व। यथा-ज्वर मे सन्ताप, गुल्म मे गोला और अश्मरी मे पथरी आदि।

लिंग

रोगी द्वारा अनुभूत लक्षण। यथा—वेदना, खुजली, शूल और भारीपन आदि।

लक्षण

सहयोगी लक्षण यथा विसूचिका (हैजा) मे मूर्छा।

चिह्न

विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ। यथा अन्त्र कूजन, कूजन, गुडगुड़ाहट आदि।

आकृति

आकार। यथा क्रोष्टुकशीर्ष (देखिए वातव्याधि), कपालकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ आदि।

उपशय

हेतु व्याधि से विपरीत और विपरीत अर्थ करनेवाली औषधि, अन्न एवं विहार के सुखदायक उपयोग को उपशय कहते हैं। यही सात्म्य (आत्मा के अनुकूल) है। इसके

विपरीत अनुपशय या असात्म्य (आत्मा के प्रतिकूल) कहा जाता है। विश्व की समस्त चिकित्सा प्रणालियो का आधार यही उपशय है। जैसा कि नीचे के कोष्ठक मे पता चल जायगा।

उपशय चक्र

	औषधि	अन्न	विहार
हेतु विपरीत	कफ ज्वर मे आर्द्रक	थकावट से उत्पन्न वात ज्वर मे मास रस	दिवास्वापज (दिन मे सोने से उत्पन्न) ज्वर मे रात्रि-जागरण
व्याधि-विपरीत	अतिसार मे अहिफेन	अतिसार में मसूर	उदावर्त्त मे प्रवाहण (कांख कर या जोर देकर मल निकालने का प्रयत्न)
हेतु व्याधि-विपरीत	वातज शोथ मे दशमूल क्वाथ	वातज ग्रहणी रोग मे तक्र	दिवास्वापज तन्द्रा मे रात्रि जागरण
हेतु विपरी-तार्थकारी	व्रण शोथ पर अगुरु का लेप	व्रण शोथ मे विदाही पथ्य	वातज उन्माद में डराना
व्याधि विप-रीतार्थकारी	अल्प वमन मे मैनफल	अतिसार मे दूध	अल्प वमन मे प्रवाहण (जोर देकर वमन करना)
हेतु व्याधि-विपरीतार्थकारी	विष में विष	मदात्यय मे मद्य	व्यायाम जन्य वात प्रकोप मे जल में तेरना

इस कोष्ठक मे विपरीत का अर्थ तो आप अवश्य समझ गये होगे। विपरीतार्थकारी का तात्पर्य है अनुकूल होते हुए भी विपरीत अर्थ या काम करनेवाला। ऐसा पदार्थ अनुकूल होने पर भी परिस्थिति या विशिष्ट कारणवश प्रतिकूल कार्य करता है। इसमे विपरीत पद्धति एलोपैथी है। एलो का अर्थ विपरीत और पैथी का अर्थ चिकित्सापद्धति होता है। कुल मिलाकर एलोपैथी विपरीत चिकित्सा पद्धति है। विपरीतार्थकारी होमियोपैथी है। होमियो का अर्थ सम एवं पैथी का अर्थ है चिकित्सापद्धति। अर्थात् इसमे हेतु या व्याधि के समान या अनुकूल व्यवस्था की जाने पर भी प्रतिकूल अर्थ या प्रभाव अर्थात् व्याधि का नाशन होता है। इसी लिए होमियोपैथी को सम चिकित्सापद्धति भी कहा जाता है।

उपशय वस्तुत. चिकित्सा ही है। परन्तु इसके द्वारा गूढ लक्षणोवाली व्याधि पहचानी जाती है। इसी लिए इसकी गणना रोग विज्ञानोपाय या निदान मे की गयी है। उदाहरण के लिए समझिये :– रक्तपित्त और यक्ष्मा के समान लक्षण मिलने पर दोनो मे से कौन है, इसका निर्णय कठिन हो जाता है। वहाँ यथा सम्भव रोग निर्णय करने के वाद निर्णीत रोग की औषधि दी जाने पर यदि लाभ हुआ तो निर्णीत रोग ही है। अन्यथा दूसरा रोग समझना चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य सन्दिग्ध रोगो का निदान किया जाता है। आजकल भी मलेरिया का निर्णय क्विनाइन एवं कालाजार का निर्णय अन्टीमनी (सुरमा) से होता है।

सम्प्राप्ति

जिस प्रकार दुष्ट हुए दोष से और जिस प्रकार फैलते हुए दोष से रोग की उत्पत्ति हो उसे सम्प्राप्ति कहते हैं। कुल मिलाकर सम्प्राप्ति रोग मार्ग को कहते हैं। इसके पर्यायवाची नाम हैं जाति और आगति। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो पता चलेगा कि जाति (जन्मस्थान) दोष प्रकोप के जन्म स्थान का एवं आगति दोष के आगमन अर्थात् मार्ग एवं पहुँचने के स्थान की ओर संकेत करता है। स्थूल रूप से सम्प्राप्ति के पांच भेद माने गये हैं .—

(१) सख्या

रोगो के भेदो की सख्या को सम्प्राप्ति कहते हैं। जैसे—आठ ज्वर, पांच कास, पांच श्वास और वीस प्रमेह आदि। संख्या द्वारा भेद जान लेने पर उस भेद के निर्णय एवं चिकित्सा मे वडी सहायता होती है। जैसे—ज्वर होने पर पूरे ज्वर के निर्णय एवं चिकित्सा मे कठिनाई होती है। परन्तु वह वात ज्वर है या पित्त ज्वर है इसका पता चलने पर निर्णय की पुष्टि एवं चिकित्सा मे वडी सरलता होती है।

(२) विकल्प

व्याधि मे सम्मिलित हुए दोषो की अंशाश कल्पना का नाम विकल्प सम्प्राप्ति है। जैसे सन्निपात ज्वर मे वातपित्त कफ तीनो दोष मिले होते हैं। उनमे वातपित्त और कफ

कितने-कितने अंश मे है, इसी का निर्णय विकल्प सम्प्राप्ति है। जो दोप अविक अंश में होगा उसकी चिकित्सा मे अविक ध्यान और कम अंश वाले दोप मे कम ध्यान दिया जायगा। दोप के अंश के अनुपात से ही चिकित्सा मे अविक दोप पर अविक ध्यान और कम दोप पर कम ध्यान दिया जायगा। दोप के अंश के अनुपात से ही चिकित्सा करने से वड़ा लाभ होता है। न्यून अंशवाले दोप की ही चिकित्सा पर अधिक ध्यान देने मे अधिक अंश वाला दोप कुपित होकर मारक हो सकता है।

(३) प्राधान्य

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के विचार से व्याधि की प्रवानता और अप्रवानता कहने का नाम प्राधान्य सम्प्राप्ति है। दो या अविक व्याधियां यदि मिल गयी हो तो उनमे कौन व्याधि प्रवान और कौन अप्रवान है इसका विचार इस सम्प्राप्ति मे किया जाता है। स्वतन्त्र या प्रवान व्याधि की चिकित्सा पर कम एवं परतन्त्र या अप्रवान व्याधि की चिकित्सा पर अविक ध्यान दिया जाय तो प्रवान व्याधि कुपितहोकर मारक हो सकती है।

(४) वल

व्याधि के कारणो, पूर्वरूप, रूप और सम्प्राप्ति की सम्पूर्णता और अपूर्णता के अनुपात से व्याधि का वल कहना चाहिये। अर्थात् जिस व्याधि के सभी कारण मिलें और प्रत्येक कारण भी वलवान हो; इसी प्रकार पूर्वरूप, और सम्प्राप्ति में से सभी के प्रत्येक लक्षण आदि वलवान हो तो व्याधि को वलवान और कमजोर हो तो कमजोर कहना चाहिये। व्याधि वल के अनुपात से ही चिकित्सा अथवा औपधि की मात्रा आदि की व्यवस्था होती है। इसके विपरीत कार्य करने से हानि होती है।

(५) काल

रात, दिन, ऋतु और भोजन के विभाग से दोपानुसार व्याधि का काल कहना चाहिये। अर्थात् इनके जिस भाग मे स्वभावत. जो दोष कुपित होता है। यदि उसी दोप की व्याधि है तो निस्सन्देह उसी दोप की विशेपता के काल मे व्याधि कुपित होगी। यदि अविक कुपित हुई तो उसी समय मारक हो सकती है। कुशल चिकित्सक इसके वल पर मृत्यु का काल या व्याधि के कोप का काल वताकर या समझकर यशस्वी होते हैं। इसके साथ ही नाड़ी विज्ञान आदि रोगिपरीक्षाओ एवं अरिष्ट (निश्चित मृत्यु ज्ञापक चिह्न) विज्ञान का भी आश्रय लिया जाय तो अत्युत्तम होगा। अरिष्ट विज्ञान हम रोगानुसार या विभिन्न दृष्टिकोण से अलग कहेंगे। यहां दोप चक्र पर ध्यान दिलायेंगे। जिसमें सम्प्राप्ति के दृष्टिकोण से केवल आयु, दिन, रात एवं भोजन सम्बन्धी विशेपता जानने की आवश्यकता है। परन्तु निदान और चिकित्सा मे सहायक होने के कारण और बातें भी दी गयी हैं।

दोष चक्र

दोष	स्थान	विशेषता का काल				अग्नि	कोष्ठ	प्रकृति
		आयु	दिन	रात	भोजन			
वात	नाभि के नीचे	वृद्धावस्था	सायकाल २ बजे से ६ बजे तक	अन्तिम प्रहर २ बजे से ६ बजे तक	पाक हो जाने पर	विषम	क्रूर	हीन
पित्त	हृदय-नाभि के मध्य मे	युवावस्था	दोपहर १० बजे से २ बजे तक	मध्य १० बजे से २ बजे तक	पचते समय	तीक्ष्ण	मृदु	मध्य
कफ	हृदय के ऊपर	बाल्यावस्था	प्रातः काल ६ बजे से १० बजे तक	पहले पहर ६ बजे से १० बजे तक	भोजन करते समय	मन्द	मध्य	उत्तम

निदान में ध्यान देने योग्य

कभी कभी एक रोग ही दूसरे रोग का कारण हो जाता है। जैसे—ज्वर के सन्ताप से रक्तपित्त और रक्तपित्त के प्रकोप से ज्वर उत्पन्न हो जाता है। वहाँ रोग प्रकोपक रोग पर भी ध्यान देना चाहिए। कभी-कभी रोग प्रकोपक रोग दूसरा रोग उत्पन्न कर स्वयं शान्त हो जाता है। और, कभी-कभी शान्त नही होता तथा अन्य रोग उत्पन्न कर कष्ट देता रहता है। प्रत्येक अवस्था मे मूल रोग ध्यान मे रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

समस्त रोगिपरीक्षा एवं रोग विज्ञान के अनुसार रोग निर्णय करने से अधिक सफलता मिलती है। भले ही किसी एक परीक्षा या उसके विशिष्ट अंग से रोग निर्णय हो जाय, फिर भी निर्णय की पुष्टि के लिए यदि सम्भव हो तो पूरी परीक्षा कर स्थिर निर्णय करना चाहिए।

रोगी की प्रकृति, अग्नि, आयु आदि पर भी विचार करना चाहिए।

तृतीय अध्याय

चिकित्सा

चिकित्सा की परिभाषा :—

याभि· क्रियाभिः जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजाम्मतम् ॥

जिन क्रियाओ से शरीर मे धातुयें (दोप—वात पित्त कफ, धातु-रस रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र, मल-पुरीप या टट्टी मूत्र स्वेद आदि) समान अर्थात् यथोचित रूप मे हो जायँ वही विकारो की चिकित्सा है। और, वही वैद्यो का कर्म कहा गया है।

रोगस्तु दोप वैपम्यं, दोप साम्यमरोगता ।

अर्थात् दोपो की विपमता का नाम रोग एवं उनकी समता का नाम अरोगता (आरोग्य) है।

चिकित्सक का कार्य इसी परिभापा के अनुसार दोपो अथवा धातुओ की विपमता को समता या यथौचित्य के रूप मे परिणत कर देना है। इस दृष्टिकोण से चिकित्सा के कुल दो भेद कहे गये हैं :—

(१) कर्पण - बढ़ी हुई धातुओं को घटा कर उचित परिमाण में कर देना।

(२) बृंहण - घटी हुई धातुओं को वढा कर उचित मात्रा में कर देना।

किन कारणो से कौन दोप या धातु या मल बढकर कौन रोग हुआ ? इसका निर्णय हो जाने के बाद चिकित्सा करना सरल हो जाता है। इनमे से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसको उदाहरण के रूप मे यो समझिये :—

किसी को लू लगने से पित्त और वायु बढ गया उसे प्यास एवं सिर-दर्द होगया। उस व्यक्ति के लिये लू (हेतु) के विपरीत कार्य अर्थात् ठण्ढी हवा की व्यवस्था करनी होगी। बढे हुए पित्त और वायु को कम करने के लिये तिक्त रस, चन्दन, खस आदि एवं मधुर रस-शर्बत आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। सिर-दर्द

के लिये सिर पर लेप या अन्य औषधि तथा प्यास के लिये शीतल जल पिलाना पड़ता है। इस प्रकार यहां चिकित्सा मे हेतु विपरीत, कर्षण एवं व्याधि विपरीत तीनो प्रकार का उपचार करना पड़ता है। प्रत्येक रोग मे इन सभी बातो का ध्यान रक्खा जाता है। अन्यथा बड़ी हानि होती है। केवल व्याधि विपरीत अर्थात् रोग के विपरीत चिकित्सा करने का आजकल बड़ा प्रचलन हो रहा है। यही नहीं केवल रोग के लक्षण की ही चिकित्सा कर चिकित्सक यशस्वी बन रहे हैं। परन्तु इसका परिणाम रोगी के लिये बहुत बुरा पड रहा है। रोग का कारण और उसका दोष विद्यमान रहने से व्याधि दुबारा होती रहती है या नया-नया उपद्रव उत्पन्न होकर जीवन संकट मे पड जाता है। इसलिये इन तीनो पर विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये। सभी उत्तम चिकित्सको या चिकित्सा-प्रणाली के सम्मुख चिकित्सा करते समय यह दृष्टिकोण रहता है। आयुर्वेद, यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा और अन्यान्य परिपूर्ण प्रणाली मे यही बात है। केवल लक्षणो के अनुसार चिकित्सा व्यावसायिक दृष्टिकोण अथवा अधूरे ज्ञान का परिचायक है। इसलिये रोग निर्णय हो जाने पर केवल उसी के अनुसार स्थायी लाभ होने मे चिकित्सा कार्यकारी होती है। निदान का परिवर्जन अर्थात् रोग के कारणो का त्याग भी भावी चिकित्सा कही गयी है। यह हेतु विपरीतता का ही नाम ग्रहण करती है।

धातु-मलों का वृद्धि-क्षय और दूषण—

आगे प्रत्येक रोग मे क्या कारण है, कौन दोष-धातु-मल बढा या दूषित हुआ है और क्या चिकित्सा होगी, इस पर प्रकाश डाला जायगा। दोषो के प्रकोप या वृद्धि तथा उनके शमन या ह्रास का कारण त्रिदोष प्रकरण मे निवेदन कर चुके हैं। यहां संक्षेप मे धातु और मलो के वृद्धि, क्षय और दूषण पर प्रकाश डालेंगे।

सामान्यत. स्वयोनि (उत्पन्न करने वाले कारणों) के द्रव्यो का सेवन करने से धातु या मल-वृद्धि को प्राप्त होते हैं और विपरीत कारणो का सेवन करने या न बनने अथवा नष्ट होने या निकल जाने से वे ह्रास को प्राप्त होते हैं। इसलिये वृद्धि हुई धातु या मल में उनके उत्पन्न करने वाले कारणो के विपरीत अर्थात् ह्रास करने वाले कारणो का सेवन करना चाहिये। ह्रास हुई धातु या मल मे धातु या मल को उत्पन्न करने वाले कारणो अर्थात् धातु या मल को वृद्धि करने वाले कारणो का सेवन करना चाहिये। यह ज्ञातव्य है कि अपने समान रस-गुण-वीर्य वाले द्रव्यो से धातु या मल बढते हैं और विपरीत रस-गुण-वीर्य वाले द्रव्यो से वे घटते हैं। चिकित्सा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये। यह भी ज्ञातव्य है कि धातु या मलो का वृद्धि-ह्रास एक बात है और उनका दोषो द्वारा दूषित होना दूसरी बात है। वृद्धि-ह्रास और दूषण तीनो में से प्रत्येक से रोग होते हैं। इस ग्रन्थ में वृद्धिगत को कुपित, ह्रसित को क्षीण या शमित एवं दूषित को दुष्ट भी कहा जायगा। इन शब्दो की सूक्ष्म विवेचना मे यहा जाना अनुचित होगा।

सभी धातु या मल-दोषो (वात-पित्त-कफ) से दूषित होते हैं। उनके वृद्धि और ह्रास के कारण संक्षेप मे ये है —

रस—

सभी मधुर-गुरु-स्निग्ध आदि कफ कारक आहार और आराम-दिवास्वप्न, निश्चिन्ता आदि कफ कारक विहार से रस बढता है। कटु, कषाय-लघु-रूक्ष आदि वातकारक आहार, तथा परिश्रम-जागरण-चिन्ता-भय आदि वातकारक विहार से यह घटता है।

इसकी वृद्धि और दूषण से होने वाले रोग ये हैं :—अन्न मे द्वेष, अरुचि, अपचन, अंगों में टूटने-सी पीडा, ज्वर, जी मिचलाना, तृप्ति, पेट भरा मालूम होना, भारीपन, हृद्रोग, पाण्डु, मार्गों में रुकावट, कृशता, मुंह में फीकापन, सुस्ती, असमय में झुर्रियाँ पड जाना, केशो का पकना, नपुंसकता और अग्निमान्द्य।

यह स्मरणीय है कि रस धातु की वृद्धि से क्रमश. सभी धातुयें बढती हैं। पर यह कफ-वर्गीय है। इसलिये इसमे कफ वर्गीय धातुयें मेदा-मज्जा-शुक्र (स्त्रियो मे यदि स्थूलता से मार्ग ख रोध नहीं है तो दूध और आर्तव भी बढता है) और ओज विशेष बढते हैं। सामान्यत. इसके बढने से स्थूलता और घटने से कृशता होती है। रस के बढने, कुपित होने या दूषित होने से उत्पन्न विकारो की सामान्य चिकित्सा लंघन है। पर इसके घटने से उत्पन्न रोगो यथा कृशता आदि मे लंघन नही होता। लंघन के सम्बन्ध मे आगे ज्वर-प्रकरण पढिये।

रक्त—

पित्त के कुपित करने वाले कारणो यथा कटु, अम्ल, उष्ण, विरुद्ध, (दूध-मछली खिचड़ी-दूध आदि) इत्यादि आहारो एवं क्रोध, घाम, अग्नि आदि विहारो से यह कुपित होता है। कफ कारक आहारो एवं विहारो से रस के बढने पर यह भी बढता है। रक्तपान से विशेष बढता है। पित्त को शमन करने वाले कारणो यथा मधुर, तिक्त, शीत पदार्थो से यह शमित होता है। रस को क्षीण करने वाले कारणो से क्षीण होता है।

चिकित्सा में इसका ध्यान रखना चाहिये। इससे होने वाले रोग ये है'—कुष्ठ, वीसर्प, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तगुल्म, गुदा-मुंह-योनि-आख आदि मे पाक, विद्रधि या फोडा, मुंह की झाई, वातरक्त, रक्तमेह, खुजली, ताप, क्रोध, बुद्धि का मोह, अन्धकार का दिखायी देना या मूर्च्छा।

संक्षेप में यो समझिये यह पित्त-वर्गीय है। इसके बढने से या कुपित होने से मास बढता या कुपित होता है। पितवर्गीय सभी रोगो मे इसका हाथ रहता है। शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि उपचारो से जो रोग शान्त न होते हो वे रक्तज हैं। यह समझकर चिकित्सा करें।

इससे उत्पन्न विकारो में विरेचन, लंघन, रक्त-मोक्षण और रक्त-पित्त या पित्त को हरण करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तपित्त प्रकरण मे रक्त पित्त से सम्बद्ध बातें प्राप्त होगी।

रक्त के ह्रास में रक्त या रक्तवर्द्धक वस्तुओं का सेवन करना चाहिये

मांस—

रक्त के बढने या कुपित होने से यह भी बढता एवं कुपित होता है। मास खाने से विशेष बढता है। मास-भक्षण करनेवाले पशुओं व पक्षियो के मास से अत्यधिक बढता है। यह ध्यान रखिये कि मास का पाचन जरा कठिन होता है। भली-भाति न पचा हुआ मास महा हानिकारक होता है। गेहूँ, फल, मेवा आदि भी मांस को बढ़ाते हैं। दिन मे सोने से दूषित होता है। मांस एवं रक्तवर्धक आहारो के अभाव मे यह क्षीण होता है।

अर्बुद, गलगण्ड (घेंघा), कण्ठमाला, बवासीर, गलशुण्डिका (गले में घण्टी या कौवा) टान्सिल (गल शुण्डिका के दोनो ओर रहने वाली ग्रन्थियो) की वृद्धि आदि रोग मास वृद्धि या मास के दोष से होते हैं।

मेद—

यहा मेद, वसा और चर्बी एक ही धातु के नाम हैं। यह मास से बनती है। इसलिये मासवर्धक आहारो से बढती है। चर्बी, घृत, तेल आदि स्निग्ध पदार्थों से विशेष बढती है। दिवास्वप्न, निश्चिन्तता, मद्य, मेदस्वी पशुओ के मास से भी बढती है। रूक्ष अन्नपान का सेवन, चिन्ता, अनिद्रा, क्रोध, मैथुन, जीर्णरोग, वृद्धावस्था आदि से घटती है।

इससे होने वाले रोग ये हैं :—मास के दोष से होनेवाले सभी रोग इसके दोष से भी उत्पन्न होते हैं। मधुमेह, अतिस्थूलता और अति स्वेद भी इसी के कारण होते हैं।

अस्थि—

यह मेद धातु से बनती है। यह विशेष पार्थिव है। स्नेह एवं पार्थिव पदार्थों के अधिक सेवन से वृद्धि को प्राप्त होती है। इसके बढने पर स्नेह एवं पार्थिव (गेहूँ जौ पार्थिव हैं, चावल जलीय है) पदार्थों का सेवन बन्द कर देना चाहिये।

अतिव्यायाम, हड्डियो के अधिक क्षुभित होने (अंगो के अत्यधिक चंचल करने), उनमे परस्पर अधिक घर्षण एवं वातकारक पदार्थों के अधिक सेवन से इनमे दोष उत्पन्न होता है। इसके दोष अथवा क्षय से बोन्स टी० बी० या अस्थि-क्षय उत्पन्न होता है। अस्थिक्षय मे स्नेह एवं पार्थिव पदार्थों का अधिक सेवन करना चाहिये। सभी प्रकार के अस्थिक्षय मे मानव या कछुए की पीठ की हड्डी की भस्म बडी हितकारी होती है। गोदन्ती भस्म भी लाभदायी है। इसी से सुप्रसिद्ध 'पेरिस प्लास्टर' बनता है। दूध अण्डा, गाजर, शलजम, बन्दगोभी, मछली का तेल बडा लाभदायी होता है। सूर्य-प्रकाश का भी सेवन कुछ अधिक करना चाहिये।

अस्थि की वृद्धि, दांत या अस्थि मे टूटने-फटने की-सी पीडा, केश-लोम-नख (कुनख रस से होता है) और दाढी आदि के रोग अस्थि दोष से होते हैं।

मज्जा—

मज्जा अस्थि से बनती है। इसलिये यह भी स्नेह एवं अस्थिकारक पदार्थों का सेवन करने से बढती है। अस्थि के दूषित करने वाले कारणो से दूषित भी होती है। इसके दोष से मूर्छा, चक्कर आखो के सामने अंधेरा छाना होता है। कभी-कभी नेत्रो में ललाई (आखो का आना या अभिष्यन्द) भी इससे होता है। अस्थियो को यह पूर्ण भी रखती है। अतः इसके दोष से भी अस्थिक्षय होता है। इसके दोष से अस्थियो मे बडे फोड़े होते हैं। वहा चिकित्सा अस्थिक्षय के समान होनी चाहिये।

मज्जा के क्षय में स्नेह अधिक लाभ करता है। विशेषत. बडी अस्थियों के टुकडो को पानी मे पकाने से उनकी मज्जा पानी मे स्नेह के समान आ जाती है। उस पानी को जीरा-तेल आदि से संस्कृत कर लवण मिलाकर पिलाने से बडा लाभ होता है।

शुक्र या वीर्य—

शुक्र मज्जा से बनता है, यह कफ वर्गीय भी है। अत. कफ-कारक द्रव्यो यथा दूध, घी, अण्डा, फल आदि स्निग्ध मधुर द्रव्यो से बढता है। इनमे दूध तो तुरन्त शुक्र को बढाने वाला कहा गया है। गौरैय्या, हंस, मुर्गा, मोर का शुक्र पीने से शुक्र बहुत बढता है। पर इनका शुक्र प्राप्त करना कठिन है इसलिये इनके अण्डे का सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार बकरा, भैसा, मगर, कछुआ आदि का शुक्र सेवन करना चाहिये। इनके शुक्र के अभाव में इनका अण्ड या अण्डा (अण्डकोष नही) ग्रहण करना चाहिये। केकडे का मांस भी शुक्रवर्धक है।

बिना हर्ष के एवं अनुचित योनि मे गमन करने, मैथुन के वेग को अत्यन्त रोकने, शस्त्र, क्षार और अग्नि से शुक्र दूषित होता है।

अधिक चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, कटु-तीक्ष्ण, रुक्ष अन्नपान, उपवास, अतिमैथुन, लम्बी बीमारी आदि से यह क्षीण होता है। ऐसी अवस्था मे शुक्रवर्धक उपाय करना चाहिये।

इसके दोष से उत्पन्न होने वाले रोग ये हैं- नपुन्सकता अल्पायु, विकृत सन्तान, गर्भधारण कराने की असमर्थता, गर्भधारण हो जाने पर भी उसकी अस्थिरता, शुक्रमेह और शुक्र की पथरी।

आर्तव—

रक्तवर्धक कारणो से बढता है। रक्त और पित्त को कुपित या दूषित करने वाले कारणो से दूषित होता है। रक्त और पित्तदोष का शमन करनेवाले कारणो से यह ठीक होता है। इसके दोष से रक्तप्रदर, वन्ध्यात्व आदि रोग होते हैं।

रक्त को क्षीण करने वाले कारणो से क्षीण होता है।

ओज—

सभी धातुओ विशेषत. शुक्र के बढ़ने से यह बढता है। पर मानसिक कारण

यथा प्रसन्नता, त्याग, तपस्या, सत्य, निर्लोभ, अचौर्य, अद्रोह आदि से यह विशेष बढता है। मधुर, स्निग्ध, शीत, लघु और हृदय को बल देने वाले आहार इसके लिये विशेष हितकारी होते हैं।

धातुओ विशेषत. शुक्र को क्षीण करने वाले कारणो से यह क्षीण होता है। चोट, धातु क्षय, क्रोध, चिन्ता, शोक, भय, लोभ, चौर्य, द्रोह, परस्त्रीगमन, स्वार्थ परायणता आदि से यह घटता है। भूख प्यास और श्रम भी इसे घटाते है।

यह स्मरणीय है कि यह सभी धातुओ का परम तेज है। अतः सभी धातुओ की वृद्धि और क्षय का इस पर प्रभाव पडता है।

पुरीष—

पुरीष आहार का अन्तिम स्थूल परिणाम है। इसके निर्माण के समय वायु-दोष की वृद्धि होती है। अतः पुरीष वृद्धि मे आंतो मे कुछ शब्दो (गुडगुडाहट, बजबजाहट या अन्यान्य शब्द) के साथ आध्मान (पेट फूलना) और शूल होता है। शरीर में भारीपन भी प्रतीत होता है। पुरीष-वृद्धि मे विरेचन वस्ति या फलवर्त्ति (गुदा में मल निकालने के लिये प्रयुक्त वर्त्ती) का प्रयोग करना चाहिये। इसके क्षीण होने पर हृदय और पार्श्व मे पीडा होती है। उदर मे शब्दयुक्त वायु इधर-उधर घूमता है। पेट फूल जाता है, सीधा खडा होने या बैठने की क्षमता नहीं रह जाती।

पुरीष-क्षय मे उड़द, यव, शाक—तरकारी, चोकर, मुर्गी का अण्डा आदि मलवर्धक आहार सेवन करना चाहिये। अग्निमान्द्य प्रकरण मे तीक्ष्णाग्नि या भस्मक भी पढिये।

पुरीष स्रोतो के दुष्ट होने से अतिसार या कष्टयुक्त थोडा-थोडा मल निकलता है। अति गठीला या अतिद्रव अथवा बहुत अधिक मल निकलता है। मल निकलने में शब्द भी होता है।

मूत्र—

मूत्र की वृद्धि से बारम्बार मूत्र-वेग होता है, मात्रा मे भी वह अधिक निकलता है। मूत्राशय में सुई चुभने की-सी पीड़ा होती है। वह फूल जाता है। इसकी चिकित्सा प्रमेह-प्रकरण में देखिए।

इसके स्रोतों के दूषित होने से मूत्रोत्सर्जन के समय शूल और मूत्राल्पता होती है। मूत्र-वृद्धि के भी लक्षण मिलते हैं। मूत्र के वेगको रोकना मूत्र-वृद्धि, हाइड्रोसील के एक कारणो में है। रोगावस्था मे शरीर मे इसके रुकने से विषाक्तता के लक्षण यथा प्रलाप, आखो मे लालिमा आदि भी होते हैं। तब अधिक जल पिलाकर पेशाब निकालने से लाभ होता है। इसके रुकने से शोथ भी होता है। देखिए शोथाधिकार।

मूत्रक्षय होने से मूत्राशय में सूई चुभने-सी पीड़ा, अल्पमूत्रता, मूत्रोत्सर्जन में कष्ट, मूत्र-वर्ण मे परिवर्त्तन, प्यास और मुखशोष (मुंह का सूखना) होता है। इस अवस्था में ईख का रस, प्रातःकालीन ताजी ताड़ी, मण्ड, मधुर और द्रवप्रधान भोजन का सेवन करना चाहिये।

स्वेद—

चर्बी अधिक बढने से स्वेद भी अधिक बढता है। उष्णता, व्यायाम एवं उष्णता के दिनो मे अधिक जल पीने से भी यह बढता है। इसके दोष से खुजली, कुष्ठ, शून्यता, पामा आदि होते हैं।

अधिक निकलने या अत्यन्त अधिक ताप से यह क्षीण होता है।

यह स्मरणीय है कि इसके सामान्य मात्रा मे निकलने से शरीर की विषाक्तता नष्ट होती है। अधिक निकलने से रस का क्षय होता है।

स्तन्य (दूध)—

स्निग्ध, मधुर आदि पुष्टिकारक पदार्थो एवं निश्चिन्तता से बढता है। इसके दोष से विशेषत. दूध पीने वालेबालक को ज्वर, अतिसार, अजीर्ण, अग्निमान्द्य आंखो मे खुजली, यकृद्विकार हो जाते हैं। मा को भी ग्लानि और भारीपन आदि होते हैं।

धातुओ एवं मलो के वृद्धि और क्षय के लक्षण ये हैं :—

	वृद्धि के लक्षण	क्षय के लक्षण
धातु रस	जी मिचलाना, लाला (लार) का अधिक बहना, अग्निमान्द्य, आलस्य, शरीर मे भारीपन, शरीर में श्वेतता, शीतलता, शिथिलता, श्वास कास मे वृद्धि और अतिनिद्रा।	रूक्षता, बिना परिश्रम के थकावट, शरीर का सूखना, ग्लानि, शब्द सुनने मे असहिष्णुता, हृदय मे पीडा या कम्पन, धडकन, शरीर का खोखला प्रतीत होना और प्यास।
रक्त	आंखो एवं अंगो मे लालिमा, रक्त-वाही शिराओ की परिपूर्णता।	त्वचा में रूक्षता और उसका जगह-जगह फटना, उसमें मलिनता, रक्त-वाहिनियो में क्षीणता एवं शिथिलता, अम्ल और शीतल पदार्थों की आकाक्षा।
मास	स्फिक् (चूतड), गाल, ओठ, लिंग, जाघ, बाहु, पाव की पिण्डलियो में स्थूलता एवं शरीर मे भारीपन।	स्फिक् (चूतड, गाल) जाघ, छाती, पिण्डली, उदर, ग्रीवा में क्षीणता, शरीर में रूक्षता, सुई चुभने-सी पीडा, अंगो में सुस्ती तथा धमनियो मे सुस्ती, नाड़ी मे शिथिलता।

	वृद्धि के लक्षण	क्षय के लक्षण
धातु मेद	अगो मे स्निग्वता, उदर, चूतड, स्तनो मे विशेष वृद्धि, सारे शरीर मे स्थूलता, कास श्वास, अंगो मे दुर्गन्ध। (विशेषतः पसीना मे) अग्नि की वत्यन्त तीव्रता, आहार का पचकर स्वाहा हो जाना, तीव्र भूख-प्यास, शक्ति मे कमी, उत्साह हीनता।	प्लीहा (वरवट) मे वृद्धि, सन्धियो मे शून्यता, रुक्षता, स्नेह प्रधान द्रव्यों की आकाक्षा, थकावट, सन्धियों में टूटने की पीड़ा।
अस्थि	हड्डी का स्वाभाविक आकार से बढना, अस्थि का अर्बुद, दांतो के आकार एवं संख्या में वृद्धि, केश व नख में वृद्धि।	हड्डी मे सुई चुभने-सी पीडा, दांत, नख का टूटना, रुक्षता, केश लोम, मूंछ-दाढी का झडना, थकावट, सन्धियो में शिथिलता, हड्डियो की मृदुता जैसा रिकेट्स मे होता है, हड्डियो मे व्रण होना और उस व्रण से हड्डियोके टुकड़े टूटकर निकलना। ये व्रण १२-१३ वर्ष अथवा मृत्यु तक नहीं भरते।
मज्जा	सभी अंगो और नेत्रो मे भारीपन।	शुक्राल्पता, जोडो मे टूटने सी-पीडा, हड्डियो मे सुई चुभने-सी पीडा, अस्थियो मे खोखलापन, उनमे दुर्बलता या आकार में छोटापन।
शुक्र (वीर्य)	मैथुन में अधिक सामर्थ्यं, वीर्य की पथरी, सुन्दर और पुष्ट शरीर।	दुर्बलता, मैथुन में असामर्थ्यं, मुख का सूखना, पीलापन, सुस्ती, थकावट, नपुन्सकता, मैथुनोपरान्त शुक्र का न निकलना, लिंग में वेदना, होना, देर से निकलना, रक्त युक्त निकलना।
आर्त्तव या रज	अंगो में टूटने-सी, पीडा, अधिक निकलना, दुर्गन्ध।	समय पर न दिखायी पड़ना या कम दिखायी पडना, योनि में पीडा होना।

ओज	निर्भीकता, साहस, निश्चिन्तता, इन्द्रियों का ठीक कार्य करना, कान्ति, स्निग्धता, प्रसन्नता, ओजस्विता और उन्नति करना।	भय, दुर्बलता, चिन्ता, इन्द्रियो मे विकलता, कान्ति मे दूषण, रूक्षता, खिन्न मन और अवनति करना।
मल-पुरीष या टट्टी	पेट मे गुडगुडाहट, शूल, भारीपन, अफरा, (पेटफूलना।)	अंतडियो मे पीडा, हृदय मे पीडा, वायु का शब्द-युक्त होकर ऊपर जाना, उदर मे वायु का घूमना।
मूत्र	बारम्बार पेशाब आना, मूत्राशय मे सूई चुभने-सी पीडा और उसका फूलना।	मूत्र आने मे कष्ट, मूत्र मे कमी, उसके रंग मे परिवर्तन, प्यास, मुख का सूखना, मूत्राशय मे सूई चुभने-सी पीडा।
स्वेद	दुर्गन्धि, त्वचा मे खुजली।	त्वचा एवं नेत्र मे रूक्षता, रोमकूपो मे स्तब्धता। (जकडन) दाह और प्यास जैसा लू लगने से होता है।
स्तन्य (दूध)	स्तनो की अति पुष्टता, उनसे बारम्बार दूध निकलना, वहा सूई चुभने-सी पीडा।	दूध का अभाव या स्वल्पता व स्तनों का मुरझाना।

दोष के प्रकृतिस्थ या यथोचित मात्रा मे रहने से जो कार्य या लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन त्रिदोष प्रकरण मे हो चुका है। यहां धातु और मल के यथोचित मात्रा मे या स्वाभाविक स्थिति मे रहने से क्या लक्षण या कार्य उत्पन्न होता है इसका संक्षेप मे वर्णन होगा। यह भी समझ लेना आवश्यक है कि प्रत्येक रोग के स्थायीरूप से नष्ट हो जाने के जो लक्षण होते हैं वे उस रोग मे बढे या घटे हुए दोष धातु मल के घटकर या बढकर यथोचित मात्रा मे आ जाने के परिणाम स्वरूप ही उत्पन्न होते हैं।

धातु या मल के यथोचित मात्रा में होने के लक्षण—

दोषों, धातुओ और मलो के यथोचित मात्रा एवं यथोचित रूप मे रहने का परिणाम स्वास्थ्य है। शरीर की सभी क्रियायें समान रूप से यथानियम होती हैं। अग्नि सम रहती है। मलमूत्र की क्रियायें ठीक रूप से होती हैं। किसी प्रकार की पीडा या रोग नहीं होता। सबके मात्रा मे रहने का परिणाम ओजोवृद्धि है। जिससे प्रसन्नता, उत्साह, साहस, धैर्य और कान्ति आदि सद्गुण बढते हैं।

अपनी-अपनी विशेषता के कारण यथोचित मात्रा और यथोचित रूप मे रहने पर धातुओ एवं मलो के कार्य पृथक-पृथक ये है :—

रस—

इससे तुष्टि, प्रसन्नता और रक्त-पुष्टि होती है।

रक्त—

इससे वर्ण एवं इन्द्रिया निर्मल होती है। इन्द्रियां अपने विषयो को ठीक से ग्रहण मेकरती हैं। जठराग्नि ठीक कार्य करती है। तुष्टि और पुष्टि होती है। शरीर ललाई अधिक होती है।

मॉस—

इससे शरीर भरा हुआ रहता है। गाल, चूतड, सन्धियां सब भरे रहते हैं। क्षमा, धैर्य, अलोभ, बल, दीर्घायु, धन, विद्या, सरलता, आरोग्य और सुख प्राप्त करनेवाले यथोचित मात्रा मे मांस से युक्त होते है।

मेद या वसा या चर्बी—

इससे शरीर मे स्निग्धता, कष्ट सहिष्णुता, वृद्धि और कोमलता होती है। ऐश्वर्य, सुख, सरलता और धन आदि प्राप्त होते हैं।

अस्थि—

उत्तम अस्थियो वाले लोगो की एडी, गुल्फ (एडी के ऊपर दोनो ओर निकले हुए अस्थिप्रदेश को गुल्फ या गिट्टा कहते हैं) घुटना, दाढी, दांत, नख आदि स्थूल और दृढ होते हैं। उचित अस्थि वाले वडे उत्साही, क्रियाशील और क्लेश सहिष्णु होते हैं।

मज्जा—

उत्तम मज्जावाले लोग कोमल अंगवाले, वलवान, स्निग्ध वर्ण और स्वरवाले, गोल और सुडौल सन्धियो वाले, दीर्घायु, वलवान, शास्त्र-सम्पत्ति-सन्तान-सम्मान सौभाग्य से युक्त और अकृश होते हैं।

शुक्र—

उत्तम शुक्रवाले स्निग्ध और ठोस शरीर वाले होते है। उनका स्वभाव और दृष्टि वडी सौम्य होती है। नेत्र दूध के समान धवल और सुन्दर होते हैं। श्वेत, स्निग्ध, घन, पुष्ट, सम, दृढ तथा सुन्दर अस्थि नख और दन्त पंक्तियां होती है। मैथुन का वेग उन्हें वहुत होता है। स्त्रियो को तृप्त करने मे समर्थ होते हैं। वलवान, कान्तिमान, सुख-ऐश्वर्य-आरोग्य-सम्पति-सम्मान और सन्तान से युक्त होते हैं।

आर्त्तव या रज—

उत्तम आर्तव वाली स्त्री स्वस्थ, सुन्दर, प्रसन्न, और सन्तानवती होती है।

ओज—

यह तो धातुओं का तेज ही होता है। अत उत्तम ही होता है। इसकी वृद्धि ही श्रेयस्कर है। जिसके लक्षण ओजोवृद्धि मे कहे गये हैं।

पुरीष—

इसी के ठीक रहने से हम सीधे बैठ या खडे रह सकते है अन्यथा आगे की ओर झुकाव हो जाता है अर्थात् यह पेट मे रहकर शरीर को ताने रखता है। वायु और अग्नि को भी धारण करता है।

मूत्र—

इसके ठीक रहने से मूत्राशय उचित ढंग से रहता है। वह गीला तथा भरा रहता है। पसीना उचित परिमाण मे होता है।

इन धातुओ और मलो पर अलग-अलग दोषो का दुष्टिकारक प्रभाव पडने से कुछ विभिन्न लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। जिनपर शास्त्र मे स्थान-स्थान पर जैसे रक्त का रक्तपित्त, मास का विद्रधि, शुक्र का नपुन्सकता मे वर्णन किया गया है।

स्वेद—

स्वेद के उचित रूप मे रहने से शरीर का ताप शरीर के अनुकूल रहता है। उसकी विषाक्तता नष्ट होती रहती है। शरीर मृदु भी होता हे।

स्तन्य—

स्तन्य या दूध के उचितरूप मे रहने से नारी का स्वास्थ्य ठीक रहता है। वह प्रसन्न और कान्तियुक्त रहती है। स्तनो मे कोई विकार नहीं होता। उसके दूध को पीने वाला बालक भी स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। उसकी सभी धातुयें यथा-क्रम बढ़ती हैं। जिमसे उसके अंग-प्रत्यंग क्रम से पुष्ट होते है।

चिकित्सा की योजना—

रोग निर्णय करने के साथ ही उसके दोष (वात पित्त कफ) एवं दूष्य (रस, रक्त, मास, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य, मल, मूत्र, त्वचा) का भी निर्णय हो जाना चाहिये अर्थात् किस दोष ने कुपित होकर किस दूष्य को दूषित किया? जिससे रोग उत्पन्न हुआ। इसकी जानकारी हो जानी चाहिये। यदि रोग का नामकरण न कर सकें अर्थात् यह निर्णय न कर सकें कि कौन रोग है तो लज्जित नहीं होना चाहिये। क्योकि सभी रोगो का नामकरण हो ही नही सकता। वहाँ दोष, दूष्य, विकार के स्थान, विकार एवं रोगी की प्रकृति आदि पर विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये। यदि रोग, दोष और दूष्य इन तीनो का भी निर्णय न हो सके तो अनुचित होने पर भी रोग लक्षणो की ही चिकित्सा प्रारम्भ कर रोगो को आराम पहुँचाना चाहिये। रोगी को आराम पहुँचने से चिकित्सक को कुछ अवकाश मिल जायगा और तब स्थिरता से रोग आदि का निर्णय कर वास्तविक चिकित्सा हो जायगी। किसी भी दृष्टिकोण से क्रियमाण (की जाने वाली) चिकित्सा के तीन ही साधन हैं। (१) औषधि, (२) अन्न (पथ्य), (३) विहार। एक सच्चा वैद्य कुशल सेनापति के समान रोग पर चारो ओर से आक्रमण की बात सोचता है। वह औषधि का व्यवहार तो रोग नाशन के लिये करता ही है साथ ही रोगी के खाने, पीने, सोने की

व्यवस्था से भी रोगशमन करता है। और, सबमें रोग दोष-दूष्य आदि का विचार रखता है। जिस प्रकार रोग निर्णय करने के लिये निदान की जानकारी आवश्यक है उसी प्रकार रोग दूर करने के लिये औषधि, अन्न एवं विहार तीनों का गुणधर्म जानना आवश्यक है जो द्रव्य-गुण या निघण्टु का विषय है। विस्तारभय से उसे हम यहां यथावत् न दे सकेंगे। हां। इस विषय में चतुर्थ अध्याय में कुछ वर्णन होगा। परन्तु प्रत्येक आवश्यक स्थल पर यह निर्देश कर देंगे कि कौन औषधि अन्न और विहार वहा उपयोगी है। यथासम्भव वहां क्यों का उत्तर भी देने का प्रयत्न करेंगे।

औषधि की योजना

इसके लिये सर्वप्रथम मुख्य रोग एवं मुख्य दोष को पकड़ना चाहिये। मुख्य दूष्य को भी पकड लें तो सर्वोत्तम है। उसके बाद उसके समस्त लक्षणों पर विचार करना चाहिये। मुख्य रोग एवं मुख्य दोष और अधिकतम लक्षणों को नष्ट करने में जो औषधि समर्थ हो उसी का चुनाव करना चाहिये। शास्त्रों में विभिन्न रोगों के अधिकार में जो औषधियां लिखी गयी हैं वे रोग और दोष को शमन करने के दृष्टिकोण से ही लिखी गयी हैं। पर उनके गुणों में उन लक्षणों का भी समावेश कर दिया गया है जो उस रोग में सम्भव हो सकते हैं। जिस रोग की जो मुख्य औषधि उसके लक्षणों में से अधिकतम को नष्ट कर सके उसी को व्यवहार में लाना चाहिये। यों तो मुख्यरोग के शमन के साथ ही लक्षण भी नष्ट हो सकते हैं। पर औषधि निर्वाचन में लक्षणों का भी ध्यान रखा जाय तो उत्तम है। यहां औषधि का तात्पर्य केवल एक रसौषधि अथवा एक काष्ठौषधि से ही नहीं बल्कि मृत्युंजय, रामबाण, आनन्द-भैरव, दशमूल, त्रिफला आदि औषधि समूह से बने योग या गोदन्ती, अभ्रक, प्रवाल आदि एक स्वतन्त्र औषधि दोनों के लिये हैं जो उस रोगाधिकार में लिखी गयी है। यह भी विचार करना आवश्यक है कि औषधि इतनी तीक्ष्ण (तेज) तो नहीं है जो तीक्ष्णता से अन्य उपद्रव खडा कर दे। या इतनी मृदु वीर्य (कमजोर) तो नहीं है जिससे रोग पर प्रभाव ही न पड़े। यह विचार रोग और औषधि के बलाबल पर निर्भर है। साथ ही रोगी की प्रकृति (सुकुमार या बलवान) पर भी निर्भर है। यह भी देखना है कि रोगी बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, गर्भिणी में से कौन है? सामान्य युवा को दी जाने वाली औषधि बाल वृद्ध को नहीं दी जा सकती। गर्भिणी को तो तीक्ष्ण औषधि कभी नहीं दी जा सकती। बलवान को दी जाने वाली औषधि सुकुमार को नहीं दी जा सकती। इन सभी दृष्टिकोणों से अनुपयुक्त औषधि यदि देना अनिवार्य ही हो जाय तो उसकी मात्रा कम करनी होगी। अन्य मृदु औषधि जिससे उसका वीर्य (शक्ति) रोगनाशकता से नीचे न आने पाये, को मिलाने पर भी विचार करना चाहिये। यह ज्ञातव्य है कि कटु रस, उष्ण वीर्य एवं विष से युक्त औषधि तीक्ष्ण वीर्य होती हैं। पारद, ताम्र, अभ्र, लोह भी स्वतन्त्र रूप से तीक्ष्ण हैं। यौगिकरूप में अन्य औषधियों की तीक्ष्णता एवं मृदुता पर निर्भर हैं।

योग का मिश्रण—

जहां शास्त्र मे लिखित एक योग रामवाण, मृत्युंजय या एक औषधि आदि से काम न चले वहां कोई योग या औषधि मिलानी पडती है। वहां यह भी सोचना पडता है कि परस्पर वीर्य या गुण विरुद्ध दो औषधि तो नहीं मिल रही है। एक ही योग मे दस्त करानेवाली (रेचक) और ग्राही (दस्त रोकने वाली) औषधि सामान्यत. नहीं होनी चाहिये। कफ निस्सारक और कफनिरोधक औषधि एक जगह मिला देना दोनो को व्यर्थ करना होता है। एक ही दोष के विरुद्ध और अनुकूल औषधियां एक योग मे साधारणत. नही मिलानी चाहिये। हां, दो दोष होने पर दोनो को नाश करने वाली पर परस्पर अविरुद्ध औषधि मिलायी जा सकती है। सामान्यत मिले हुए रोगो मे उनकी पृथक-पृथक औषधियो को मिलाकर योग बनाये जाते हैं। जैसे ज्वरातिसार, मे ज्वर और अतिसार दोनो की परस्पर अविरुद्ध औषधियो को मिलाकर योग बनाये जाते हैं। कुल मिलाकर योग मे सभी औषधियां रोग, दोष, गुण, वीर्य आदि के दृष्टिकोण से एक दूसरे के विरुद्ध न होकर चारो ओर से रोग नाशन के लिये सर्वथा उपयोगी होनी चाहिये। हम पुस्तक मे इसी दृष्टिकोणो से योगो का वर्णन करेंगे। आप भी अभ्यास से ऐसा कर सकते है।

मात्रा—

प्रत्येक औषधि के साथ साधारणत. उसकी मात्रा लिखी रहती है। विशेष उल्लेख न होने पर यह समझना चाहिये कि वह मात्रा साधारण अवस्था के युवा के लिये है। प्राचीन गन्थो मे औषधियो की जो मात्रा लिखी गयी हैं। वह उस समय के युवा लोगो के लिये हैं। आजकल के युवको में वह शक्ति नहीं है, जिससे उतनी मात्रा की औषधि का तेज वे सह सकें। इसलिये आज के युग मे प्राचीन ग्रन्थो मे लिखी मात्रा मे कमी करनी पडेगी।

कही भी सामान्य मात्रा लिखी रहने पर वह प्रत्येक के लिये, प्रत्येक अवस्था मे अनुकूल नही पड सकती। इसलिए मात्रा का सर्वथा निश्चय सबके लिये नही किया जा सकता। अत मात्रा के लिये यह श्लोक स्मरणीय है —

मात्रायाः नास्त्यवस्थानं कालमग्निवयोबलम्।
प्रकृति दोष देशौ च वीक्ष्य मात्रा प्रयोजयेत्॥

अर्थात् मात्रा का कोई निश्चय नही है इसलिये काल, अग्नि, आयु, बल, रोग, रोगी की प्रकृति, द्रव्य की प्रकृति, दोष और देश पर विचार कर मात्रा निर्धारित करनी चाहिये।

बलवान दोष को नाश करने वाली मात्रा दुर्बल दोष मे अनर्थ कर देगी। इसी प्रकार अल्प या दुर्बल दोष की मात्रा बलवान या अधिक दोष के लिये व्यर्थ होगी। शीतदेश के दृष्टिकोण से निर्धारित मात्रा उष्ण देश मे कम करनी पडेगी। इसी प्रकार उष्ण देश की मात्रा शीत देश मे कम करनी पड़ेगी। उष्णकाल की मात्रा

और शीतकाल की मात्रा मे उष्णता और शीतलता के दृष्टिकोण से परिवर्तन करना पडेगा। तीक्ष्ण अग्निवाले की मात्रा मन्दाग्नि वाले को हानि पहुंचायेगी, इसी प्रकार मंदाग्नि वाले की मात्रा तीक्ष्णाग्नि के लिये व्यर्थ होगी। युवा की मात्रा बालक को हानि करेगी और बालक की मात्रा युवा के लिये व्यर्थ सिद्ध होगी। बलवान और दुर्वल की मात्रा मे भी इसी प्रकार अन्तर करना पडेगा। रोग की बलवत्ता और दुर्बलता से भी मात्रा मे अन्तर होता है। किसी रोगी की प्रकृति जरा भी अधिक मात्रा को नहीं सह सकती या उसकी प्रकृति किसी द्रव्यविशेप के प्रतिकूल पड़ती है। ऐसी स्थिति मे उसके लिये द्रव्य विशेप की मात्रा अत्यन्त न्यून करनी पडेगी। द्रव्य तीक्ष्ण-वीर्य है या मृदुवीर्य है, इससे भी मात्रा मे अन्तर पडेगा।

कुल मिलाकर यह देखना पड़ेगा कि सभी दृष्टिकोणो मे रोगी के लिये औषधि की मात्रा सर्वथा अनुकूल है या नहीं। प्रत्येक अवस्था मे सब मिलाकर मात्रा रोगी के हित मे होनी चाहिये। मात्रा का निर्धारण कुछ दिनो के अभ्यास से हो जाता है। इस पुस्तक मे जो मात्रा लिखी जायगी वह साधारण परिस्थिति के भारतीय युवा के लिये लिखी जायगी। उपर्युक्त दृष्टिकोणो से उसमे परिवर्तन करना चाहिये। बाल रोगाधिकार मे बालक की मात्रा ही लिखी गयी है। शेप रोगो मे युवा की मात्रा से अष्टवर्पीय बालक को मात्रा अधिकतम आधी और चार वर्प के बालक के लिये अधिकतम चतुर्थांश होनी चाहिये।

अनुपान

औपधि भक्षण के बाद जो कुछ पीया जाय उसे अनुपान कहते हैं। यह सामान्यतः द्रव या तरल (अर्द्ध द्रव) होता है। इसके दो भेद होते हैं :—

(१) सहपान

जो औपधि के साथ ही मिलाकर सेवन किया जाय। जैसे मधु घृत-आर्द्र का रस आदि। यह साधारणत. औपधि मिलाकर सेवन किया जाता है।

(२) अनुपान—

जो औपधि या सहपान युक्त औपधि के पश्चात् सेवन, किया जाता है। जैसे क्वाथ (काढा), हिम (रात मे द्रव्य के साथ रखा हुआ और प्रातः छान लिया गया जल), फाण्ट (खौलते हुए जल मे ५ मिनट तक शुष्क द्रव्य का चूर्ण रखकर मल देते हैं तत्पश्चात् छाने हुए जल का प्रयोग करते हैं जैसे चाय), स्वरस (गीले या हरे द्रव्य का रस या सूखे हुए द्रव्य को जल में पीसकर निकाला हुआ रस), दूध, मट्ठा, जल आदि।

शास्त्र एवं साधारण भाषा मे प्राय. सहपान एवं अनुपान दोनो के लिये एक ही शब्द "अनुपान" का प्रयोग होता है। इस पुस्तक मे भी यही होगा।

अनुपान से लाभ—

(१) औपधि निगलने में सुविधा होती है।

(२) कडुई-कसैली औषधि को मधु आदि मिलाकर स्वादिष्ट बनाना। सुकुमार प्रकृति और बालको मे इससे सरलता हो जाती है।

(३) औषधि की शक्ति को सारे शरीर या उसके निर्दिष्ट अंग यथा मूत्राशय, हृदय, अन्त्र आदि मे शीघ्र फैला देता है।

(४) दोष और रोग को अकेले शान्त करने की क्षमता रखता है। इसलिये औषधि की दोषनाशकता एवं रोग नाशकता मे सहायता देता है। औषधि के अभाव मे केवल रोग या औषधि का अनुपान (औषधियो व फलो का रस तक्र आदि, जल नही) ही प्रयुक्त हो सकता है।

(५) इसके बल पर औषधि का रोगी की प्रकृति, देश, दोष, अग्नि, आयु, बल, काल के दृष्टिकोण से अभीष्ट लाभ उठाया जा सकता है। जैसे अधिक उष्ण वीर्य वाली औषधि को खस या चन्दन के रस मे देने से वह कम उष्णता उत्पन्न कर रोगी के अनुकूल हो जायगी।

(६) औषधि की अपेक्षा अनुपान सरलता से प्राप्त होते हैं और उनकी कल्पनायें (क्वाथ, चटनी, रस आदि) सरलता से सब जगह हो जाती हैं। अत विकट परिस्थिति में ये ही सम्बल हो जाते हैं।

(७) भारतीय जनता या विश्व की जनता के ये अधिक परिचित हैं। अतः उसे प्रयोग करने में सुविधा होती है।

(८) औषधि के दोष को भी अनुपान शान्त करता है।

अनुपान के सम्बन्ध में विडम्बनायें—

वर्तमानकाल मे उचित यह है कि अनुपान की व्यवस्था वैद्य या औषधि विक्रेता स्वयं करें अथवा यथासम्भव सरल और सुलभ अनुपान बतायें। यह अनुचित है कि अपनी कमजोरी से लम्बे-लम्बे काढे लिखकर रोगी के घरवालो को परेशान किया जाय। या ऐसे अनुपानो को व्यवस्था की जाय जिन्हे कूटने-पीसने मे ही रोगी के घरवाले परेशान हो जायं। पर आज वैद्य की परिस्थितिया बडी जटिल हो गयी हैं। एक ओर उसकी दुर्बलतायें उसका नाश कर रही हैं तो दूसरी ओर साधनो का अभाव उसकी शिक्षा-दीक्षा एवं चिकित्सा-कौशल मे भयानक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर रहा है। तीसरी ओर प्रशासकीय कठिनाइया उसका गला दबा रही हैं। ऐसी भयानक परिस्थिति मे वह जो कुछ जनता की एवं विज्ञान की सेवा कर रहा है वही बहुत है। इसलिये रोगियो का भी कुछ कर्तव्य है। वैद्य यथासम्भव अनुपान की जटिलताओ को समाप्त करेगा। यदि वह समाप्त न कर सके तो आप स्वयं उन्हे बर्दाश्त कीजिये। बुरा न मानें, आपके घर ४ बार चाय बनती है। दिन-रात मे बनाव शृंगार मे, विलास मे न जाने कितना समय आपका निकल जाता है। जीवन के ऊटपटाग अनावश्यक संघर्षों मे आपका समय कम व्यर्थ नही जाता। तो फिर

जीवन की सुरक्षा के लिये आपही क्यो नहीं अनुपानो का झंझट वर्दाश्त कर लेते ? और, दूसरी पद्धतियो मे क्या कम झझट तथा आपत्तियाँ है ? सूची वेध और रक्त मोक्षण मे क्या कम कष्ट होता है ? क्या चिकित्सको के ऊटपटाग नखरे आपको कम परेशान करते हैं ? क्या एक रोगी के निदान एवं चिकित्सा के लिये विभिन्न पद्धति के चिकित्सको के यहा आपकी परेशानी और धन की बर्वादी कम होती है ? तो फिर अनुपानो ने क्या अपराध किया है ? जिनकी आप उपेक्षा करते हैं और उनसे दूर भागते हैं। क्षमा करें, आपकी मनोवृत्ति वदलने की आवश्यकता है। यदि आपकी मनोवृत्ति मे अनुपानो की उपयोगिता समा जाय तो इनकी सारी कठिनाइयाँ समाप्त ही हैं। उनका कोई-न-कोई प्रवन्ध, चाहे नौकर द्वारा ही, आप कर सकते हैं।

अन्तत. वैद्यो से हम हाथ जोडकर कह देना चाहते हैं कि अनुपान की व्यवस्था करना आपका ही कर्त्तव्य है। उसे पूरा करने का आप भरपूर प्रयत्न करें।

अनुपान की योजना—

अनुपान के लिये काष्ठौषधियो एवं आहार द्रव्योका प्रयोग किया जाता है। जिस दोष या रोग को नाश करना हो उसको नाश करनेवाली काष्ठौषधि या आहार द्रव्य का चुनाव कर लीजिये। उसका रस, क्वाथ, फाण्ट, हिम या मौलिक रूप मे से जो उचित हो प्रयोग करें। रस की मात्रा १ तोला से २ तोला तक, क्वाथ फाण्ट और हिम १ छटाक से २ छटाक तक प्रयोग करना चाहिये। कटुरस तीक्ष्ण एवं उष्ण द्रव्यो की मात्रा यथासम्भव इससे कम ही होनी चाहिये। आहार द्रव्य यथा दूध, मट्ठा, पानी २ छटाक लिये जाय। औषधि जिस समय देनी है उसी समय रस-क्वाथ फाण्ट का तुरन्त निर्माण किया जाय तो उत्तम है। पर यह कठिन काम है। इसलिये २४ घण्टे की मात्रा के लिये एक ही वार तैयार कर शीशो मे रख लिया जाय। यदि सम्भव हो तो क्वाथ और फाण्ट को प्रयोग करते समय उष्ण कर लिया जाय। १ या २ तोला गीले या हरे द्रव्य को पीसकर उनका रस निकाला जाता है। अथवा १ या २ तोला सूखे द्रव्य को आवश्यकतानुसार १ या २ तोला पानी मे पीसकर रस निकाला जाता है। वहुत से हरे या गीले द्रव्यो को विना पानी से पीसे रस नहीं निकलता। उन्हे १ या २ तोले को आवश्यकतानुसार १ या २ तोले पानी से पीसकर रस निकालना चाहिये। सामान्यत. २ तोला द्रव्य को कुछ दरदरा कूटकर आठगुने पानी मे पकाकर चौथाई पानी शेष रखकर क्वाथ या काढा तैयार किया जाता है। क्वाथ वनाते समय वर्तन ढकना नहीं चाहिये। १ या २ तोला द्रव्य के चूर्ण को खूब खौलते हुए १ छटाक पानी मे ५ मिनट रखकर मलकर छान लेने से फाण्ट तैयार होता है। एक या दो तोला द्रव्य को दरदराकूट कर एक छटाक या आधा पाव पानी में रातभर भिगो कर प्रातः मलकर छान लेने से हिम या शीत क्वाथ तैयार होता है। उपर्युक्त सभी मात्रायें एक मात्रा के लिये लिखी गई हैं। यहा शास्त्र पर पूरा ध्यान न देकर व्यवहार पर ध्यान दया गया

है। बच्चो और सुकुमार लोगों के लिये मधुर रस वाले या सौम्य आहार द्रव्य का अनुपान अच्छा होता है। जहां कोई अनुपान न लिखा हो वहां जल का ग्रहण करना चाहिये। मधु भी एक सामान्य अनुपान है जो प्रायः सभी बीमारियो मे प्रयुक्त होता है। मधु के अभाव मे पुराना गुड भी दिया जा सकता है। कफ ज्वर को छोडकर नये ज्वरो मे मधु का व्यवहार कम होता है। प्रत्येक रोग मे उसके अनुपान का उल्लेख हम करेगे। पर अगले अध्याय मे वर्णित द्रव्यगुण को पढ लेने से अनुपान का निर्धारण करने मे सरलता होगी।

औषधि भक्षण काल

ज्ञेय. पंचविध कालः भैषज्यग्रहणे नृणाम्।
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवस भोजने॥
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि॥

औषधि भक्षण के लिये ५ प्रकार का समय बताया गया है:—

(१) सूर्योदय के कुछ समय बाद (आधे घण्टे के भीतर)—

पित्त कफ के रोगो मे तथा विरेचन, वमन, लेखन के लिये प्रात काल औषधि देनी चाहिये। उसके बाद न्यूनतम आधे घण्टे के भीतर कुछ खाने को न दें। आधे घण्टे बाद हलका जलपान तत्पश्चात् न्यूनतम २ घण्टा बाद भोजन देना चाहिये।

(२) दिन के भोजन की परम्परा मे—

अपान वायु (गुदा प्रदेश स्थित वायु) के प्रतिलोम (नीचे की ओर न निकलकर ऊपर जाना) होने पर दिन मे भोजन के कुछ पूर्व और अरुचि मे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो मे मिलाकर स्वादिष्ट औषधि ग्रहण करनी चाहिये। समान वायु के प्रतिलोम होने और मन्दाग्नि मे भोजन के मध्य मे अग्नि दीपन औषधि देनी चाहिये। अपान वायु के प्रकोप मे भोजन के अन्त मे औषधि ग्रहण करनी चाहिये। हिचकी, आक्षेपक (एक वातव्याधि) और कम्पन रोग मे भोजन के पहले और बाद औषधि खानी चाहिये।

(३) सायंकालीन भोजन की परम्परा में—

स्वरभेद आदि रोग करने वाले उदान वायु के प्रकोप मे सायकालीन भोजन के ग्रास-ग्रास (प्रत्येक कवर) मे औषधि दें। प्राण वायु के प्रकोप मे सायंकालीन भोजन के अन्त मे औषधि देनी चाहिये।

(४) बारम्बार—

प्यास, वमन, हिचकी, श्वास रोग और विष मे भोजन के साथ बारम्बार औषधि देनी चाहिये। यहां भोजन का तात्पर्य लघु भोजन के अतिरिक्त भोजनवत् अनुपान शर्बत, दूध आदि से भी है। आवश्यकतानुसार समझकर देना चाहिये।

(५) रात—

जत्रु (वक्षस्थल मे सबसे ऊपर वाली हड्डी अक्षक या हसुली) के ऊपर के रोग (मुख, शिर, आंख, कान, नाक के रोगो) मे, लेखन और बृंहण कार्य के लिये, पाचन-शमन के लिये औषधि बिना अन्न के रात मे देना चाहिये ।

विशेष—

यहां औषधि-भक्षण का विशिष्ट काल बताया गया है। विशिष्ट परिस्थितियों के लिये यह है। साधारण परिस्थिति मे औषधि प्रात-सायं-दोपहर (भोजन के १ घण्टा पूर्व या बाद) और रात (रात को सोते समय) मे दी जाती है।

आसव-अरिष्ट तो भोजन के ५ मिनट बाद ही दोनो समय भोजनोपरान्त दिये जाते हैं। यदि रोगी भोजन न करता हो तो मुनक्का आदि भोजन और औषधि दोनो मे प्रयुक्त होने वाले द्रव्य को खाकर ही आसव अरिष्ट पीना चाहिये ।

पथ्यापथ्य—

'पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणै' अर्थात् पथ्य मे रहने पर रोगी को औषध सेवन से क्या, (औषधि सेवन की आवश्यकता नहीं है) । इस श्लोकांश को यों भी कहा जाता है— पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणै.' अर्थात् पथ्य से न रहने पर रोगी को औषधि सेवन से क्या लाभ ? (कुछ लाभ नहीं) । कहने का तात्पर्य यह है कि पथ्य रोगी के कल्याण के लिये औषधि से बढकर उपयोगी है। पथ्य से रहने पर बिना औषधि सेवन के भी व्याधि नष्ट होती है। इसके विपरीत अपथ्य से रहने पर सैकडो औषधियो से भी व्याधि नष्ट नहीं होगी। इसी कारण चिकित्सा के प्रमुख अंग के रूप मे उपशय के अन्तर्गत आहार और विहार की गणना की गयी है। इसलिये प्रत्येक चिकित्सक को चिकित्सा-व्यवस्था मे पथ्य (आहार-विहार) पर गम्भीर ध्यान देना चाहिये। इस विषय में रोगी एवं उसके पार्श्ववर्ती जनो से बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। नहीं तो जरा-सा भी अपथ्य सेवन कर रोगी अपना रोग तो बढा लेगा ही, वैद्य को भी अपयश मिलेगा। याद रखिये किसी भी कारण से रोग बढने पर चिकित्सक ही सर्वाधिक कलंकित होता है।

आहार के सम्बन्ध मे सर्वप्रमुख बात यह जान लेनी चाहिये कि वह सुपाच्य और यथासम्भव शक्ति को सुरक्षित रखनेवाला हो। यदि शक्ति को बढा सके तो उत्तम है। हलका और रोगी के मनोनुकूल पथ्य ही सुपाच्य होता है पर यदि व्याधि नाशन मे रोगी की मनोनुकूलता बाधक हो रही हो तो उसका परित्याग कर पथ्य व्यवस्था की जाती है। जैसे एक वैष्णव के लिये दूध या फल मनोनुकूल है पर यदि व्याधि नाशन के लिये दूध का निषेध है और प्याज का विधान है तो रोगी की मनोनुकूलता का त्याग कर प्याज देना ही पडेगा। चिकित्सक हठात् व्याधिनाशन के नाम पर वैष्णवो या अन्यान्य रोगियो की प्रकृति पर कुठाराघात न करें। एक रोग के लिये अनेको पथ्य हैं उनमें जो रोगी के मनोनुकूल हो वही पथ्य दें।

अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर व्याधिनाशन का दृष्टिकोण प्रमुख रहे। ऐसी अवस्था मे रोगी को पथ्य की जानकारी कराने की आवश्यकता नही। परिचारक से कह दें कि वह औषधि के नाम पर या अन्य बहाने से वास्तविक पथ्य देकर रोगी को मानसिक आघात से बचाने के साथ ही रोगनाशन करे। शास्त्र (चरक सहिता आदि) मे किस पथ्य को किसके बहाने देना चाहिये इसका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यह बात परिचारक की चतुरता पर भी निर्भर है। साधारणत सभी पथ्य शक्ति की सुरक्षा या वृद्धि करते है। पर स्थूलता, आमवात, श्लीपद आदि इने-गिने रोगो मे शक्ति को कम करनेवाले रूक्ष आहार (सावा कोदो आदि) दिये जाते है।

पथ्य के लिये ज्ञातव्य बातें—

आयुर्वेद मे पथ्य की सुपाच्यता और शक्ति सुरक्षकता पर तो ध्यान दिया ही गया है पर उसके द्वारा रोग भी नष्ट हो, इसका भी विचार किया गया है। यह आयुर्वेद की एक विशेषता है। किस रोग मे क्या पथ्य देना चाहिये इसका वर्णन हम प्रत्येक रोग के साथ करेंगे। यहाँ उसके सम्बन्ध मे प्रमुख ज्ञातव्य बातें लिखेंगे —

पथ्य व्यवस्था मे दोष, दूष्य, देश, काल, सात्म्य, सत्व, बल, वय (आयु), प्रकृति, औषधि, अग्नि और भोजन की अवश्य जानकारी करनी चाहिये और इनके दृष्टिकोण से पथ्य देना चाहिये।

दोष—

प्रत्येक दोष को कुपित या बढाने वाले और शमन करने वाले कारणो पर हम पहले त्रिदोष प्रकरण मे विचार कर चुके हैं। उसपर विचार कर लेने से पथ्य निर्णय मे सुविधा होगी। यहाँ प्रत्येक दोष का अलग-अलग पथ्यापथ्य बतायेगे।

वात रोगों मे पथ्य—

सभी मधुर, कटु, स्निग्ध, उष्ण पदार्थ, शालि, अरवा और साठी चावल, गेहूँ, उडद, मूंग, कुलथी, तिल्ली, खिचडी, माड, उष्ण जल, दूध, दही, मट्ठा (विशेषत निचला भाग) घी, सुरा, तैल, चर्बी, मज्जा, चीनी, मिश्री, लहसुन, परवल, नया भण्टा, सहिजन, बथुआ, आंवला, अनार, बेर, हर्रे, आम, आम्रातक (आमडा), मुनक्का, ताड का फल, ताम्बूल, रोहू-मद्गूर-वर्मी मछली, मगर, कछुआ, हंस, सारस, बगुला, मोर, तित्तिर, गौरैया, गोह, मेढक, साही, खरगोश, बकरा, तैल की मालिश, मर्दन, सुखपूर्वक सोना-बैठना, आराम, निश्चिन्तता, पाढल और मालती के फूल, भांति-भांति की वस्तियां (देखिये पंचकर्म)।

वात रोगों मे अपथ्य—

सभी कषाय रूक्ष और शीत पदार्थ, सांवा, कोदो, कगुनी आदि क्षुद्रधान्य, चना, मटर, मोथी, सभी दालें (मूंग और उडद कुछ कम अहितकर हैं), पत्र शाक (बथुआ को छोडकर), क्षार, रूक्ष-अत्यल्प-शीत-कडा भोजन, ठंढा

पानी, गधी का दूध, करैला, तेन (तिन्दुक), कमल की जड, नोपाटी, कशेरू, चिन्ता, जागरण, बकवाद, व्यायाम, यात्रा, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना, मैथुन, सवारी से या पैदल अधिक चलना और उपवास।

पित्त रोगों में पथ्य—

सभी मधुर, तिक्त और शीतल पदार्थ, शालि (अरवा) चावल, गेहूँ, यव, मूंग, मांड, दूध, घृत, नारियल का पानी, शीत जल, मधु का शर्बत चीनी, ककडी (गर्मी में होने वाली), केला, मुनक्का, खजूर, सन्तरा, अंगूर, अनार; आवला, सफेद कोहडा, लौका, परवल, गूलर, करैला[1], मरसा, रेगिस्तानी पशुओं का मासरस, चन्दन आदि का शीतल प्रलेप, स्नान, कमल-केला आदि पत्तों पर शयन, गीत-प्रिया का आलिंगन, मित्र का समागम, शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु, कमल गुलाब, मालती के फूल, श्वेत वस्त्र और विरेचन (देखिये पंचकर्म)।

पित्त रोगों में अपथ्य—

सभी कटु, अम्ल और उष्ण पदार्थ, ममूर, कुलथी, लहसुन, मदिरा, काजी, जम्मीरी नीबू, बेर, बडहर, आलू, क्षार, सरसो, इमली, सोंठ, आर्द्रक, मिर्च, मर्चा, दही, विरुद्ध भोजन, जैसे दूध-मछली, खिचडी-खूब आदि घाम, धूवा, आग, वेगों को रोकना, क्रोध एवं रंगीन वस्त्र।

कफ रोगों में पथ्य—

सभी कषाय-कटु-रूक्ष पदार्थ, पुराना अरवा (शालि) और साठी चावल, भूने हुये चावल का भात, धान का लावा, सांवा, कोदो, कुंगुनी, मकई, यव, चना, मटर, मूँग कुलथी, सरसो, राई, परवल, करैला, गूलर, भएटा, ककोडा, लहसुन, केले का फूल, सूरन, नीम, मूली, आदो, सोठ, मिर्च, पीपर, पोई, पान, उष्ण जल, मधु, सूर्योदय के समय की ताजी ताडी, पुरानी शराब, भांग, गोमूत्र, गरम घर, उपवास, वमन, अंजन, मैथुन, उबटन, स्वेदन, चिन्ता, व्यायाम, पैदल यात्रा, जागरण, परिश्रम, प्यास को रोकना, धूम्र पान, नस्य (छीक लाने वाले), लडाई, क्रोध, भय, सभी रूक्ष और उष्ण उपाय।

सूचना—

प्यास-वेग को रोकना प्राणघातक भी हो सकता है इसलिये यथासम्भव कम पानी से काम चलाना चाहिये। यों तो कफ रोगों में प्यास कम ही लगती है।

कफ रोगों में अपथ्य—

सभी मधुर (मधु को छोडकर), स्निग्ध, गुरुपदार्थ, नया चावल या सभी नये अन्न, उडद, मछली, मास, ईख, दूध, दूध से बनने वाले सभी पदार्थ (तक्र को छोडकर), कटहर, खजूर, नारियल का पानी, बरफ, अधिक तृप्ति, मालिश, अधिक सोना-बैठना, विरुद्ध भोजन।

१—करैला तिक्त रस और शीत वीर्य होने से पित्तशामक है पर किसी किसी को पित्तकारक होता है, ऐसे लोगों में अम्लपित्त करता है।

सूचना—

त्रिदोष प्रकरण मे लिखित प्रकोपक कारण तद्-तद् दोष मे अपथ्य एव शामक कारण पथ्य है। उन्हे अवश्य ध्यान मे रखिये।

दूष्य—

इसी अध्याय मे वर्णित दूष्यो को बढाने-घटाने एवं दूषित करनेवाले कारणो को ध्यान से पढिये। तदनुसार पथ्य एव अपथ्य का निर्णय कीजिये। आगे प्रत्येक दूष्य से सम्बद्ध रोग मे तदनुसार पथ्यापथ्य का विवेचन करेंगे।

देश—

उष्ण देश मे शीतल और मधुर पदार्थ दूध आदि विशेषतया पथ्य होते हैं। शीत देशमे उष्ण, कटु, अम्ल पदार्थ मांस, अण्डा, मिर्च, आदि विशेष पथ्य होते हैं। रोगोको छोडकर साधारण देश मे चावल, दाल, रोटी, दूध, आदि, जागल देश मे मांस आदि एवं आनूप (कीचड या जल प्रधान) देश मे लघु मांस और रूक्ष पदार्थ साधारण पथ्य होते हैं। इसके अतिरिक्त देश विशेष का अलग-अलग पथ्य यथा पंजाब मे गेहूँ, बगाल मे मछली, बिहार मे भात, उत्तर भारत के पहाडी प्रदेशो मे चाय, मद्रास मे इमली विशिष्ट पथ्य हैं। यहाँ ये वस्तुएँ कम हानिकारक होती हैं। मध्य प्रदेश मे कही कही खिचडी के साथ दूध साधारण खाद्य है जो अन्यत्र विरोधी पदार्थ है। गुजरात मे नमकीन पदार्थो यथा दाल तरकारी मे चीनी डाली जाती है। अन्यत्र ऐसा नही होता। बम्बई के लोग चाय, मद्रास के काफी और वाराणसी के लोग भांग तथा पान को अधिक पसन्द करते है। विभिन्न रोगो मे यद्यपि विभिन्न पथ्य होते है। फिर भी किसी देश का विशिष्ट पथ्य वहाँ के निवासी के आग्रह पर रोग के लिये हितकर बनाकर दिया जा सकता है।

काल—

उष्ण और शीतलकाल के पथ्यो मे विभिन्नता होती है। यहाँ हम किस ऋतु मे क्या पथ्यापथ्य है? इसका विवेचन करेंगे —

ग्रीष्म—

पुराना सफेद अरवा चावल, गेहूँ, पुराना जौ, मूंग, शर्बत, पन्ना, सत्तू, गाय-भैंस का दूध (चीनी डालकर) कटहर, परवल, करैला, लौकी, नेनुआ, केला, मुनक्का, सन्तरा, मौसम्बी, खजूर, जल मिश्रित मद्य, सूर्योदय के समय की ताजी ताडी (आधा सेर से अधिक नही), केवडा, खस आदि से सुवासित शीतल जल, स्नान, चन्दन, दोपहर मे भूगृह, रात मे धारा गृह या छत अथवा मैदान मे शयन, नदियो का तट, लताकुंज, उपवन, मोती-मालती जूही-बेला आदि की माला, श्वेत और महीन वस्त्र आदि ग्रीष्म ऋतु में पथ्य होते है। दिन मे सोना केवल इसी ऋतु मे पथ्य है। सभी मधुर और शीतल पदार्थ पथ्य होते है।

व्यायाम, मैथुन, घाम, उष्ण, कटु, अम्ल, रूक्ष पदार्थ अपथ्य होते है।

वर्षाऋतु—

गेहूँ जौ, अरवा चावल, मूंग, स्निग्ध, मधुर अम्ल, लवण, चटपटा, उष्ण पदार्थ, भिण्डी, नेनुआ, आलू, पुरानी शराब, आकाश या कूये का जल, महीन श्वेत वस्त्र (जरा भी गीले न हों), तेल मर्दन, स्नेहवस्ति (देखिये पंचकर्म), आदि पथ्य है।

शीतल, तीक्ष्ण, रूक्ष, पदार्थ, ओस, दिन मे सोना, नदी-जल, मैथुन, विना जूता या खडाऊं के चलना आदि अपथ्य है।

शरद ऋतु—

मधुर तिक्त और शीतल पदार्थ, सफेद अरवा चावल, गेहूँ, जौ, मूंग, दूध, घृत, हरिण या पक्षियो यथा वटेर-तीतर-कवूतर-गौरैया का मास, मधु, परवल, करैला, मुनक्का, खजूर, अजीर, आंवला, चीनी, ताल का जल, ठण्ढा जल, हंसोदक, (दिन मे सूर्य की एव रात्रि मे चन्द्रमा की किरणो मे रखा हुआ जल), चांदनी, पतले और श्वेतवस्त्र, सुगन्धित, पुष्प, मोती, नृत्य, गीत आदि पथ्य है।

दही, तेल, घाम, पूर्वी हवा, कूंये का जल, शराब, काजी, क्षार, चर्वी, उडद, भरपेट भोजन, भैस, सूअर, मेढक आदि का मास अपथ्य है।

हेमन्त और शिशिर ऋतु—

गेहूँ, उडद, दूध के पदार्थ, मधुर अम्ल, लवण, उष्ण, स्निग्ध पदार्थ, ग्रामीण पशुओ यथा वकरा, विल मे रहने वाले यथा साही, खरगोश एवं जल के जन्तुओ यथा मछली, केकड़ा आदि का मांस, उष्ण जल, गरम रूई या ऊन के वस्त्र, रूई की गद्देदार शैय्या, रंगीन वस्त्र, व्यायाम, मैथुन, घाम आदि पथ्य हैं।

पाला, तेज हवा, अल्प भोजन, कषाय-कटु-रूक्ष शीत पदार्थ अपथ्य हैं।

वसन्त ऋतु—

गेहूँ, चावल, जंगली पशुओ का मास, मदिरा, मधु, तालाव का जल, उष्ण जल, व्यायाम, अंगमर्दन, मैथुन, आदी, सोठ, कटु-तिक्त-कषाय रस वाले रूक्ष, उष्ण पदार्थ, वमन, उपवास, दक्षिणी वायु आदि पथ्य हैं।

मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, शीत, गुरु पदार्थ, दिन मे सोना आदि अपथ्य है।

सात्म्य—

आत्मा के अनुकूल द्रव्य को सात्म्य कहते हैं। सात्म्य के आगे दोष, दूष्य, देशकाल आदि का विचार कम काम करता है। किसी को प्याज-लहसुन मांस-मदिरा सात्म्य है तो किसी को असात्म्य। वहुत से ऐसे लोग हैं जिन्हे दूध, घी, हीग, करेला, चना आदि असात्म्य हैं। नशीली वस्तुयें सर्वदा सेवन करने वाले के लिये सात्म्य होती हैं। ब्राह्मण मधुर प्रिय और कायस्थ कटु और चटपटा पसन्द करते हैं। जिसके लिये जो सात्म्य है या जिसके विना अत्यन्त अधिक कष्ट होता है ऐसी वस्तु पथ्य मानकर

देनी ही पडेगी। उसे यथासम्भव रोग आदि के दृष्टिकोण से हितकर बना लेना चाहिये। अनात्म्य वस्तु देने का दुराग्रह नही करना चाहिये। यदि देना अनिवार्य हो तो छिपाकर बहाने से और यथासम्भव स्वादिष्ट तथा रोग के लिये हितकर बनाकर देनी चाहिये।

सत्व—

पराक्रम या शक्ति या साहस का विचार भी पथ्य-निर्णय मे आवश्यक है। किसी विशिष्ट वस्तु से विशिष्ट जन डरते है। जैसे दात के रोगी ठण्ढा जल से, मद्य न सेवन करनेवाले मद्य से। दूध का जला हुआ मट्ठाको फूक-फूक कर पीता है। अर्थात् उसका साहस स्वीकार नही करता कि मट्ठा मुंह नही जलायेगा। किसी अपरिचित चीज को खाने से सभी जन विशेषत. बालक डरते हैं। जिस वस्तु के खाने का साहस या हिम्मत रोगी मे न हो उसे खिलाने से हानि ही होगी। यदि खिलाना अनिवार्य हो तो उसकी अज्ञानता मे और हितकर बनाकर खिलाना चाहिये।

बल—

बलवान और दुर्बल के भोजन मे बडा अन्तर होता है। बलवान अधिक और गुरु भोजन सह सकता है, निर्बल नहीं। अगणित संस्कारो के कारण जाति विशेष मे अधिक या न्यून भोजन पचा सकने की क्षमता होती है, ग्वाल एवं ब्राह्मण बन्धु अधिक तथा कायस्थ बन्धु स्वभावत न्यून भोजन पचाने की क्षमता रखते हैं, इस आधार पर कुछ कहावतें भी बन गयी हैं।

वय या आयु—

बालक, युवा और वृद्ध के भोजन मे अन्तर होता है। युवा प्राय हर प्रकार का भोजन पचाने मे समर्थ होता है। बालक और वृद्ध ऐसा नही कर सकता। भोजन के दृष्टिकोण से बालक क्षीरपायी, क्षीरान्न भोजी और अन्न भोजी इस प्रकार तीन प्रकार के होते है। इसी दृष्टिकोण से उनका पथ्य भी होना चाहिये, प्राय वृद्धो के दांत दुर्बल होते हैं। उनका भोजन तरल होना चाहिये। रोटी इत्यादि कडे पदार्थ के साथ तरल दाल आदि की व्यवस्था होनी ही चाहिये।

प्रकृति—

प्रकृति या स्वभाव पर भी विचार करना ही पडता है। कुछ लोगो को कोई विशिष्ट वस्तु स्वभावत हितकारी होती है। शेष साधारण जनो को वही अहितकर होती है। किसी को कटहर, किसी को बडहर और किसी को कोहडा स्वभावत. हितकर है तो किसी को परवल, नेनुआ स्वभावत अहितकर है। इसलिये स्वभावत. हितकर वस्तु को रोग के लिये हितकर बनाकर देना चाहिये। स्वभावत अहितकर वस्तु के लिये दुराग्रह नही करना चाहिये। देना अनिवार्य हो तो उसे हितकर बनाइये।

पूर्वोक्त 'वात पित्त-कफ' की प्रकृतियो को भी दृष्टि मे रखना उत्तम होगा, त्रिदोष प्रकरण एवं पूर्वोक्त वात 'पित्त-कफ' के पथ्यापथ्य पर वहीं विचार करना होगा।

विशेष—

सात्म्य और प्रकृति मे समानता प्रतीत होती है पर उनमे यह अन्तर है कि सात्म्य का सम्बन्ध आत्मा से एवं प्रकृति का सम्बन्ध शरीर, अथच, मन से होता है। एक की परम्परा जन्मान्तर से, तो दूसरे की इसी जन्म से है।

औषधि—

ऐसा भी होता है कि अहितकर या अपाच्य पदार्थ को पचाने की क्षमता रोगी को दी गयी औषधि मे होती है। जैसे अतिसार या ग्रहणी विकार के रोगी को १५-२० सेर दूध पर्पटी के बलपर प्रतिदिन दिया जाता है और वह उसे पचा लेता है। इसी प्रकार आम, खरबूजा, मट्ठा भी दिया जाता है। क्षारयुक्त औषधियाँ भी भोजन को सुपाच्य बनाती हैं। यह सही है कि पथ्य सुपाच्य और रोगी के लिये हितकर होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो औषधि के बल पर उसे ऐसा कर देना चाहिये यथा सम्भव वह औषधि उसके रोग को नष्ट करनेवाली भी हो तो उत्तम है। सामान्यत सोठ, जीरा, अजवाइन, खाने वाला सोडा पाचक हैं।

यह भी देखना होगा कि पथ्य औषधि का विरोधी तो नही है। जैसे अहिफेन घटित औषधि प्राप्त करने वाले रोगी को हीग या आदी युक्त पदार्थ नही देना चाहिये। नही तो अफीम की अथच औषधि की शक्ति नष्ट हो जायगी। रेचक औषधि के साथ ग्राही पथ्य दही मट्ठा आदि नही देना चाहिये। मल को पचाने के लिये दी गयी औषधि को गरिष्ट भोजन नष्ट कर देगा।

अग्नि—

पथ्य देते समय यह भी विचारणीय है कि रोगी की अग्नि कैसी है? यदि मन्दाग्नि है तो लघु और सुपाच्य आहार देना चाहिये। तीक्ष्णाग्नि है तो गुरु और दुष्पाच्य आहार दिया जा सकता है। विषमाग्नि वाले की अग्नि जब जैसी हो तब तेसा भोजन देना चाहिये। अग्नियो का वर्णन रोगो के अन्तर्गत (बारहवें अध्याय मे) होगा।

भोजन—

भोजन के मूल द्रव्यो, संस्कार, भोजन बनाने की प्रणाली तथा उसमे मिलाये हुए द्रव्यो से पथ्य का क्या गुण होगा? इस पर भी विचार करना होगा। कौन भोजन किस क्रम से खाने से क्या काम करता है? इसपर भी विचार करना चाहिये। दूध-दही भोजन के अन्त मे अच्छे होते हैं। खिचडी के प्रत्येक ग्रास मे दही मिलाकर खाने से अच्छी होती है। अवशिष्ट मधुर पदार्थ को भोजन के आदि और अन्त मे खाना चाहिये। मट्ठा अन्त मे लिया जाता है। कांजी और आसव भोजन कर चुकने के बाद देना चाहिये। ताम्बूल सबके अन्त की वस्तु है।

आदी, हीग, जीरा आदि से संस्कृत हो जाने या इनके मिल जाने से भोजन लघु और सुपाच्य हो जाता है।

भोजन के पकाने के ढंग पर भी इसकी सुपाच्यता निर्भर रहती है। मूंग की दाल लघु और सुपाच्य होती है। पर उसकी पकौडी या उलटा गुरु होता है। सामान्यत: घृत और तेल युक्त पदार्थ गुरु और दुष्पाच्य होते हैं।

भोजन के विषय मे जनसाधारण भी कुछ-न-कुछ जानते हैं। इसलिये और विस्तार-भय से इस पर अधिक विचार करना सम्भव नही। विशिष्ट भोजनो पर हम तद्-तद् रोगों मे भी कुछ प्रकाश डालेंगे।

विशिष्ट ध्यान देने योग्य बातें—

पथ्य के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(१) प्रत्येक अवस्था मे वह रोगी के लिये हितकर हो।

(२) लगातार खाने मे यदि रोगी पसन्द नही करता पर देना अनिवार्य है तो उसका प्रकार बदल-बदल कर देना चाहिये। विशिष्ट हितकारी द्रव्य जीरा, आदी, नीवू आदि के योग से उसके स्वाद मे परिवर्तन करना चाहिये।

(३) पथ्य देने के समय मे ही पथ्य देना चाहिये। जव रोगी को कडी भूख लगे वही पथ्य का उपयुक्त समय है। पथ्यकाल के सम्बन्ध मे ज्वर रोग का लंघन प्रकरण पढिये। प्रारम्भ मे अत्यन्त कम मात्रा मे सुपाच्य पदार्थ देना चाहिये। तत्पश्चात् क्रमश. धीरे-धीरे रोगी की क्षमता वढने पर मात्रा और भोज्य द्रव्यो की संख्या भी क्रमश. धीरे-धीरे वढ़ानी चाहिये।

(४) भोजन के साथ या अन्त मे दुष्पाच्यता एवं दुर्गुणो को नष्ट करने के दृष्टिकोण से काजी, मट्ठा, दूध, पन्ना, आसवारिष्ट लिये जाते हैं। ये वस्तुएँ भी उपर्युक्त पथ्य सम्बन्धी सारी बातो को ध्यान मे रखकर प्रयोग करनी चाहिये। हिंग्वष्टक, लवणभास्कर एवं दाडिमाष्टक चूर्ण तथा अनारदाना, आलूबुखारा आदि की चटनी इत्यादि भी सेवन करने से भोजन को सुपाच्य बनाते हैं।

रोगी के लिये जल—

प्राणिमात्र के लिये जल प्राण के समान है। इसलिये अत्यन्त निषेध होने पर भी कभी जल वर्जित नहीं है। ग्रहणी विकार के पर्पटी कल्प में या जलोदर मे जहा जल का निषेध है वहा उसके स्थान पर दूध या अन्य हितकारी तरल द्रव्य देते हैं। बहुत से रोगों मे तत्तद् रोग नाशक औषधियो से सिद्ध जल भी दिया जाता है। विसूचिका मे रोग नाशक औषधियो से सिद्ध जल के अतिरिक्त सौफ-पुदीना का अर्क भी दिया जाता है। वहा हिम (वरफ) से भी काम चलाया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जल या उसका प्रतिनिधि रूप तरल द्रव्य देकर रोगी की प्यास या अन्य जल सम्बन्धी आवश्यकतायें पूर्ण की ही जाती हैं। यह स्मरणीय है कि एक बार अधिक मात्रा में पिलाया गया जल अग्निमान्द्य और अजीर्ण करता है। अत. वारम्वार थोड़ा-थोड़ा जल (लगभग एक छंटाक या आधा पाव एक वार मे) पिलाना श्रेयस्कर होता

है। विशेषत. विसूचिका एवं अग्निमान्द्य मे तो ऐसा करना अनिवार्य होता है। वहा पर २–२, ४–४ चम्मच की मात्रा एक वार दी जाती है।

उष्ण जल—

केवल खौला हुआ या खौलाकर अष्टमाश, चतुर्थांश अथवा अर्धांश शेष जल उष्णोदक माना जाता है। उष्ण जल (रोगी के सहने योग्य) वात और कफ के रोगो मे दिया जाता है। यह स्रोतो को शुद्ध करने वाला, पसीना लाने वाला, मूत्रल, रेचक, आम-नाशक, अग्निदीपक होता है। साधारणतः वात-ज्वर, कफ-ज्वर, आमातिसार, कास, श्वास, आमवात, आदि मे दिया जाता है। खूब खौलते हुए जल को रोगी के सहने योग्य वनाकर देना चाहिये। कच्चा जल मिलाकर ठण्ढा करना ठीक नहीं। यद्यपि उपर्युक्त रोगो मे उष्ण जल ही देना श्रेयस्कर है। परन्तु उष्ण करने के वाद रखा हुआ शीत जल भी दिया जा सकता है। यह अपेक्षाकृत कम लाभ करता है।

शीतल जल—

पित्त ज्वर, पित्त के अन्यान्य रोगो, मूर्छा, चक्कर, तीक्ष्णाग्नि, लू लगने आदि मे शीतल जल देना चाहिये। मिट्टी के घड़े मे रक्खा हुआ जल सामान्यत शीतल होता है। हिम या वरफ मिलाकर भी जल शीतल किया जाता है। शीतल जल विशेष मूत्रल, तृष्णा नाशक, दाह नाशक और हृद्य होता है।

औषधि-सिद्ध जल—

कभी-कभी रोगनाशक औषधि से सिद्ध जल भी दिया जाता है। इसके लिये लवंग, धनियाँ, पित्तपापडा, गदहपुरना (पुनर्नवा), चंदन, खस आदि अलग-अलग द्रव्यो या कई सम्मिलित द्रव्यो को जल मे पका देते हैं। जौकुट (दरदरा) किया हुआ द्रव्य १ तोला लेकर १ सेर पानी मे पका कर आधा शेष रहने पर जल प्रयोग मे लाया जाता है। यदि औषधि पाक से जल सर्वथा अपेय ही हो जाता हो तो औषधि की मात्रा कम की जा सकती है।

जहाँ पर पेया, यवागू, यूष, रस आदि को औषधि से पक्व कर देने की वात कही गयी है। वहाँ उपर्युक्त परिमाण मे या ग्रन्थोक्त उस पथ्य के अनुपात से औषधि और जल ग्रहण करना चाहिये। तत्पश्चात् सिद्ध जल मे चावल, दाल आदि डालकर यथाविधि पेया, यवागू, यूष आदि वनाना चाहिये।

पथ्य निर्माण—

गृह-देवियाँ सामान्यत. पथ्य वनाना जानती ही हैं। खिचडी, यूष, रस, सावूदाना, मण्ड आदि वे पका ही लेती हैं। भाव प्रकाश पूर्व खण्ड कृतान्न वर्ग मे विविध भोजनो का निर्माण प्रकार लिखा हुआ है। यहाँ पर विशिष्ट पथ्यो के निर्माण की शास्त्रीय पद्धति लिखी जा रही है :—

अन्न या भात—

पुराने अरवा चावल को पांच गुणे जल मे पकाकर मांड़ अलग कर लें। शेष भात रह जायगा। भात पकाते समय कुछ गीला कर लिया जाय तो अधिक सुपाच्य होता है। जितना अधिक पुराना चावल हो उत्तम है। पूर्वी विहार मे कई जगह भुजिया चावल भी पथ्यरूप मे व्यवहृत होता है। पर शास्त्र और विभिन्न दृष्टिकोणो से अरवा चावल ही हितकर है। इसी को शालि चावल भी कहते हैं। लाल शालि का भात आदि वर्ण से देखने मे भद्दा प्रतीत होता है पर पथ्य के दृष्टिकोण से वह अधिक श्रेष्ठ है। मूत्रल, कम, गरिष्ट कम वातकारक और शीतल होता है।

मण्ड—

चौदह गुणे जल मे अरवा चावल भलीभांति पकाकर कपडे से छान लिया जाय तो द्रव भाग मण्ड होगा। यदि पकाने के पूर्व चावल को कुछ पीस लिया जाय तो और उत्तम है। चावल के स्थान पर धान के लावा को चौदह गुणे जल मे पकाकर कपड़े से छान लिया जाय तो उसे लाज मण्ड कहते हैं। छिलके उतारे गये जौ को कुछ भूनकर चौदह गुणे जल मे पकाकर मण्ड छान लिया जाय तो वह यवमण्ड कहा जाता है। मण्ड मूत्राशय को शुद्ध करने वाला अर्थात् मूत्रल, भूख को जगाने वाला, अग्निदीपक, ज्वर, अतिसार को नष्ट करने वाला, दाहनाशक, वातनाशक, रक्तवर्धक और शक्तिकारक होता है। लाज मण्ड विशेषतः दाह-प्यास-पित्त नाशक और लघु है। मण्ड को हीग, जीरा, तेल से छौंककर नमक मिलाकर खाने से स्वादिष्ट और गुणकारक होता है।

यवागू—

आवश्यकतानुसार मूंग, उरद या तिल मे से किसी को चावल के साथ उससे कुछ कम परिमाण मे मिलाकर कर छगुणे जल मे सिद्ध किया जाय तो वह यवागू कहलायेगी। यह ग्राही, वलकारक, तर्पक, और वातनाशक है। इसके तीन भेद होते हैं :—मण्ड, पेया और विलेपी। मण्ड ऊपर लिखा जा चुका है।

पेया—

मोटे पिसे हुए चावल मे छ:गुणा जल डालकर सिद्ध कर लिया जाय तो सब मिलाकर पेया कही जायगी। शार्गधर संहिता मे चौदह गुणा जल डालकर पकाने को लिखा है। वह अधिक लघु होती है। पेया अत्यन्त लघु, ग्राही, पुष्टिकारक होती है।

विलेपी—

मोटे पिसे हुए चावल को चौगुणा जल मे पकाकर द्रवांश कम कर दें। बस यही विलेपी है। यह वृहंण, तर्पण, मधुर एवं पित्तनाशक है।

कृशरा या खिचड़ी—

४ भाग चावल, ५ भाग दाल मिलाकर चौदह गुणे जल मे सिद्ध कर लिया जाय। बस यही कृशरा या खिचडी कही जाती है। यह सुप्रसिद्ध पथ्य है। वल-वीर्य को

बढाने वाली, गुरु, कफ-पित्त कारक, मलमूत्रकारक, सुपाच्य है। इससे प्यास कुछ अधिक लगती है।

यूष—

मूंग, मसूर, मोथी, अरहर, परवल आदि मे से किसी एक को ८ तोला लेकर ६४ तोला जल डालकर पकाकर चतुर्थांश जल शेष रक्खें। फिर जल छान लें। यही छाना हुआ जल यूष या जूस है। इसमे पकाते समय आवश्यकतानुसार रोगनाशक किन्तु स्वादिष्ट औषधि का काल्क भी छोड़ सकते हैं। नमक-हल्दी भी आवश्यकतानुसार डालना चाहिये। साधारणत. मूंग और परवल का जूस अधिक प्रचलित है। जूस उपर्युक्त सभी पथ्यों से लघु है। यह सुपाच्य, ज्वर, अतिसार नाशक, और कुछ रेचक है।

मांस-रस—

बकरे के मास को भलीभाति कूट कर अस्थिरहित कर सोलह गुणे जल मे सिद्ध किया जाय। उसमे आवश्यकतानुसार नमक, हल्दी, लौंग, धनिया आदि सिद्ध होते समय पड़ा हो। सिद्ध होने के बाद रस छान लिया जाय। फिर रस को हींग, जीरा, तेल आदि से छौंक दिया जाय। बस यही मास-रस है। यह शक्तिवर्धक, धातुवर्धक है। यक्ष्मा के लिये विशेष हितकर है।

मांस और मास-रस के विविध विधान हैं। पर विस्तार-भय से यहाँ हम उनका वर्णन करने मे असमर्थ हैं;

दूध—

धारोष्ण दूध सर्वश्रेष्ठ होता है। कृशता या दुर्बलता को दूर करने के लिये इसका उपयोग होना चाहिये। किन्तु रोगो मे यह हानिकारक होता है। सर्वदा इसका मिलना भी कठिन ही है। इसलिये दूध को बराबर जल डालकर पकाना चाहिये। और, केवल दूध बच जाने पर देना चाहिये। यदि किसी औषधि विशेष से सिद्ध दूध देना हो तो उस कूटी हुई औषधि से आठ गुना दूध और दूध से चौगुना जल डाल कर सब एकत्र पकाना चाहिये। केवल दूध शेष रहने पर उसे छान लीजिये और केवल दूध का प्रयोग कीजिये। छानने के पहले मलाई अलग कर रोगी को अलग से खिला दें। यदि उसे गरिष्ट होने के कारण हानिकर हो तो फेंक दें। या दूसरे के लिये हानिकारक न हो तो उसे खिला दें। औषधि यदि अधिक कड़ुई या तीती हो तो उसकी मात्रा आवश्यकता नुसार कम कर सकते है। यह स्मरणीय है कि धारोष्ण के अतिरिक्त अन्य कच्चा दूध कभी भी रोगी को न देना चाहिये।

पथ्य-निर्माण मे ध्यान देने योग्य बातें—

(१) पथ्य निर्माण मे स्वच्छता और पवित्रता पर पूर्ण ध्यान दें।
(२) वह भलीभाति पक जाय।

(३) जीरा-हींग आदि द्वारा संस्कृत (छौक-बघार) कर स्वादिष्ट बना देना चाहिये।

(४) आदी, पीपर, जीरा, हींग आदि पाचक द्रव्य कुछ-न-कुछ उसमे पडा हो। नमक-हल्दी आदि भी आवश्यकतानुसार पडी हो।

(५) यदि रोग के लिये हानिकारक न हो तो नीबू का प्रयोग भी करना चाहिये।

(६) स्वादिष्ट हो तो उत्तम है। पर अस्वादु न हो। प्रत्येक अवस्था मे रोगी के लिये हितकर हो।

(७) स्वच्छ और यथोचित पात्र मे रक्खा हो।

(८) जिस रोग के लिये पथ्य दिया जाने वाला हो उसको नाश करने वाली पर स्वाद को न बिगाडने वाली औपधियो से उपर्युक्त परिभाषानुसार सिद्ध जल से पथ्य निर्माण किया जाय तो अत्युत्तम है। परिभाषा का तात्पर्य औषधि, द्रव्य, एवं जल इत्यादि के पूर्वोक्तमान से है।

चरक सूत्र स्थान अध्याय २५ के निम्नलिखित श्लोक को ध्यान मे रक्खें :—

पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।
यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्॥

अर्थात् शरीर रूपी मार्ग का जो अपकार करने वाला नहीं है और जो मन को प्रिय है वह पथ्य है। जो अपकार करने वाला और मन को अप्रिय है वह अपथ्य है। पथ्य और अपथ्य को सबके लिये निश्चित नही कहा जा सकता। पूर्वोक्त दूष्य दोप, सत्व, बल, वय, मात्रा, देश, काल आदि पर वह निर्भर है।

चतुर्थ अध्याय

द्रव्य गुण

द्रव्यो का गुण जाने विना चिकित्सा की योजना नही की जा सकती। अत इन्हें भली-भाति जानना चाहिये। इसके लिये भावप्रकाश का निघण्टु या द्रव्यगुण प्रकरण अच्छा है। किस द्रव्य मे कौन रस-गुण, वीर्य, आदि है इसका पूरा वर्णन कठिन है। यहां एक-एक रोग या एक-एक काम के लिये उपयोगी द्रव्यों का उल्लेख करेंगे। जिससे एक आवश्यकता के लिये उपयोगी द्रव्यो की जानकारी एक ही जगह हो जाय। इनमे जो द्रव्य मिलें उनका उपयोग करें। सबके भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना अनुचित है।

जीवनीय (जीवन को वढाने वाले)—

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुग्दपर्णी (मुगवन, या वनमूंग), माषपर्णी (माषवन या वनउर्दी), जीवन्ती और मुलहठी। ये दश द्रव्य जीवन शक्ति को वढाने वाले है। ये सामान्यत· मधुर और धातुवर्धक हैं। इन्हीं को मिलाकर जीवनीयगण कहते हैं। कहीं-कहीं इसमे ऋद्धि और वृद्धि मिलाकर जीवनीयगण कहा गया है। प्रथमोक्त जीवक आदि छ द्रव्यो मे ऋद्धि और वृद्धि मिला देने पर अष्टवर्ग कहा जाता है। भावप्रकाश मे लिखा है कि अष्टवर्ग राजाओ को भी दुर्लभ है। पर हमारा निवेदन है कि अच्छे व्यापारी के यहा से जो भी अष्टवर्ग मिलता है उसे लेकर काम चलाइये। शास्त्र मे अष्टवर्ग के स्थान पर उसका प्रतिनिधि द्रव्य इस प्रकार से लिखा है :—

जीवक ऋषभक का विदारी कन्द, मदोमहामेदा का शतावर, काकोली क्षीर काकोली का असगन्ध और ऋद्धि-वृद्धिका वाराहीकन्द। यत. दो का प्रतिनिधि एक द्रव्य है इसलिये दो के स्थान पर लेना हो तो प्रतिनिधि को दूना करना चाहिये। अलग-अलग एक के स्थान पर लेना हो तो मूल द्रव्य के समान मात्रा मे लेना चाहिये। वाजार मे उपलव्व द्रव्य और उसके प्रतिनिधि द्रव्य दोनो को ही मिलाकर उपयोग किया जाय तो संशय भी न रहेगा और लाभ भी उत्तम होगा। इनमे विदारीकन्द और वाराहीकन्द को चखकर लें। ये कडुये न हो। अन्यथा वडी हानि होगी।

वृंहण (शरीर को वढाने वाले)—

खिरनी, राजक्षवक (दूधिया) जो मधुररस वाली होती है, अम्लरस वाली अग्राह्य है) वरियरा, काकोली, क्षीर काकोली, श्वेत वला, पीतवला, वन कपास के वीज (विनौना), विदारीकन्द और विधारा ये वृंहण हैं। अर्थात् शरीर को वढाते या पुष्ट करते हैं। विदारीकन्द कडुआ न हो।

लेखन--

जो द्रव्य दोषो को आशयो से छीलकर निकालते हैं वे लेखन कहे जाते हैं।

नागरमोथा, कूठ (मीठा कूठ लें) हल्दी, दारुहल्दी, वालवच या मीठा वच, अतीस, कटुकी, चित्ता, करंज और सफेद वच ये लेखन हैं। कड़ुआ वच न लें क्योकि यह विष का काम करेगा।

भेदन, (मल की गांठों को तोडने वाले)—

निशोथ, मदार, एरण्ड, कलिहारी, (यह विष है), जमालगोटा, चित्ता, करंज, यवतिक्ता या कालमेघ, कटुकी, स्वर्णक्षीरी (भडभाड़ या सत्यानाशी या चोक) ये भेदन हैं।

सन्धानीय भग्न, टूटे-फूटे हुए (या कटे हुए) को जोड़ने वाले—

(मुलहठी), जलज मुलहठी या गुरुच, पिठिवन, पाठा, मोचरस, धाय, लोध, प्रियंगु और कायफल ये टूटे-फूटे या कटे हुए अंगो को जोडते हैं, प्राय. कषाय रस के होते हैं।

दीपन अग्नि को दीप्त करने वाले पर भोजन को न पचाने वाले—

पिप्पली, पिप्पलीमूल चव्य, चिता, सोठ, अम्लवेंत, मरिच, अजवाइन, भेलावें की गुठली (वैद्य से पूछे विना भिलावें का व्यवहार न करें) और हींग ये दीपन हैं। ये प्राय. कटु,-अम्ल-लवण रस वाले, उष्ण वीर्य और तीक्ष्ण होते हैं।

वल्य(शक्ति या वल को बढाने वाले),

कँवाच के वीज, मुलहठी, शतावर, विदारीकन्द या क्षीर काकोली, असगन्ध, शालपर्णी, जटामासी, वला, (वरियरा,) अतिवला और इन्द्रायण (यह रेचक हैं अत. इसे छोड़ सकते हैं) ये वल्य हैं। व ओज को बढाते हैं। सूखे केवाच की फली का छिलका जरा-सा भी स्पर्श होने से खुजली होती है। सारी देह मे घी पोतकर अत्यन्त सावधानी से वीज निकालें। बाजार में बीज अलग से बिकता है जो निरापद है।

वर्ण्य (वर्ण या शारीरिक रग को ठीक करने वाले)—

चन्दन, केशर, पद्मकाठ या कमल, खस, मुलहठी, मजीठ, सारिवा, विदारीकन्द, सफेद दूव और प्रियंगु। ये शरीर के वर्णं को ठीक रखते हैं और उसे निखारकर सुन्दर बनाते हैं।

कण्ठ्य (कण्ठ या स्वर को ठीक करने वाले)—

सारिवा, ईख की जड, मुलहठी, पिप्पली, मुनक्का, विदारीकन्द, कायफल, हंसराज, बडी कटेरी (वनभण्टा), छोटी कटेरी (भटकटैया) ये स्वर के लिये हितकारी हैं। सभी कफ नाशक हैं। इन्हे स्वर्यं (स्वर के लिये हितकारी) भी कहते हैं।

हृद्य (हृदय को बल प्रदान करने वाले)—

आम, आमड़ा, बडहर, करौंदा, पक्की इमली, अम्लवेंत, बड़ा बेर, बेर, अनार, बिजौरा नीबू ये हृदय को शक्ति देते हैं।

तृप्तिघ्न (भोजन से तृप्त प्रतीत होने वाले रोग तृप्ति को नष्ट करने वाले)—

सोंठ, चित्ता, चव्य, विडंग, मरोड़फली, गुरुच, बाल बच या मीठा बच, नागरमोथा, पिप्पली और पाढल ये तृप्तिघ्न हैं, ये प्रायः कफ को शमन करने वाले, कटु-तिक्त-कषाय रस वाले, उष्ण वीर्य एवं रूक्ष गुण वाले हैं।

अर्शोघ्न (बवासीर को नष्ट करने वाले—

कुडैय्या, बेल, चित्ता, सोंठ, अतीस, हरड, धमासा, दारुहल्दी, बालबच और चव्य ये बवासीर को नष्ट करते हैं।

कुष्टघ्न—

खैर, हरड, आवला, भिलावा, (वैद्य से पूछकर इसका व्यवहार करें), छितिवन, अमलतास, कनेर, विडंग और चमेली ये कुष्ट को नाश करने वाले हैं। कुष्ठ से तात्पर्य समस्त त्वक् विकार से है। ये द्रव्य रक्त-दोष एवं त्रिदोष को भी नष्ट करने वाले हैं।

कण्डूघ्न (खुजली नष्ट करने वाले)—

चन्दन, अमलतास, करंज, नीम, कुडैय्या, मुलहठी, दारुहल्दी, मोथा ये खुजली को नष्ट करने वाले हैं। ये कफ शामक और त्वचा के लिये हितकर हैं, यह ज्ञातव्य है कि बिना कफ के खुजली नही होती।

क्रिमिघ्न (क्रिमियो को नष्ट करने या मूर्च्छित करने या बाहर करने वाले)—

बकाइन, मिर्च, सेहुण्ड (उग्र रेचक), विडंग, म्योडी, अपामार्ग, गोखरू, और मूसाकर्णी ये क्रिमियो को नष्ट या मूर्च्छित या बाहर करते हैं।

विषघ्न—

हल्दी, मजीठ, हर्रसिंगार (पारिजाता) हंसपदी, छोटी इलायची, निर्मली, शिरीष, म्योडी, लिसोड़ा ये विष को नष्ट करने वाले हैं।

स्तन्य जनन (दूध उत्पन्न करने वाले)—

रम, शालि (अरवा चावल) साठी चावल, ईख, कुश और कास ये दूध उत्पन्न करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त शतावर मसूर से भी दूध उत्पन्न होता है। मसूर के अतिरिक्त ये द्रव्य जल प्रधान और कफ वर्धक हैं।

स्तन्य शोधन (दूध को शुद्ध करने वाले)—

पाढा, सोंठ, देवदारू, मोथा, मूर्वा, गुरुच, इन्द्र जौ, चिरायता, कटुकी और अनन्त मूल ये दूषित दूध को शुद्ध करने वाले हैं। रक्त-दोष नाशक एवं त्रिदोष नाशक हैं।

शुक्र जनन (वीर्य उत्पन्न करने वाले)—

जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, शतावर, श्वेत घुनुची ये वीर्य उत्पन्न करने वाले हैं, स्निग्ध मधुर और शीतल हैं।

शुक्रशोधन (वीर्य को शुद्ध करने वाले)—

मीठा कूठ, एलवालुआ, कायफल, समुद्रफेन, कदम्ब का गोद, ईख, कास, तालमखाना और खस ये दूषित वीर्य को शुद्ध करने वाले हैं।

स्नेहोपग (स्नेहन द्रव्यों की शक्ति बढाने वाले या उनके सहायक द्रव्य)—

मुनक्का, मुलहठी, गुरुच, मेदा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी ये स्नेहन द्रव्यों की शक्ति को बढाते हैं।

स्वेदोपग (स्वेदन द्रव्यों की सहायता करने वाले)—

सहिजन, एरण्ड, मदार, श्वेत पुनर्नवा (गदहपुरना), लाल पुनर्नवा, जौ, तिल्ली, कुलथी, उरद और बेर ये स्वेदन द्रव्यो की शक्ति बढाने वाले या उनके सहायक होते हैं।

वमनोपग (वामक द्रव्यों के सहायक)—

मधु, मुलहठी, लाल कचनार, सफेद कचनार, कदम्ब, जलवेंत, कुन्दरू, शणपुष्पी, मदार और अपामार्ग ये वामक द्रव्यो की शक्ति बढाते हैं और उनकी सहायता करते हैं।

विरेचनोपग (विरेचन द्रव्यों के सहायक)—

मुनक्का, गम्भारी, फालसा, हरड, बहेरा, आंवला, बडा बेर, बेर, झरबेर और पीलू ये विरेचन द्रव्यो के सहायक हैं।

आस्थापनोपग (निरूहण वस्ति के द्रव्यों के सहायक)—

निशोथ, बेल, पीपर, मीठा कूठ, सरसो, वालवच, इन्द्र जौ, सोया का बीज, मुलहठी, और मैनफल ये निरूहण द्रव्यो के सहायक हैं। उनकी शक्ति को बढाते हैं। निरूहण एक प्रकार से एनिमा को कहते हैं। इसके सम्बन्ध मे पंचकर्म प्रकरण पढिये।

अनुवासनोपग (स्नेह वस्ति के द्रव्यों के सहायक)—

रास्ना, देवदारु, बेल, मैनफल, सोआ का बीज, सफेद पुनर्नवा, गोखरू, लाल पुनर्नवा, अरणी और सोनापाठा ये अनुवासन या स्नेह वस्ति (देखिये पचकर्म) के द्रव्यो के सहायक हैं। उन्हे शक्ति प्रदान करते हैं।

शिरोविरेचनोपग (शिर का दोष नासामार्ग से निकालने वाले द्रव्यों के सहायक)—

मालकांगनी, नकछिकनी, मिर्च, पीपर, विडंग, सहिजन के बीज, सरसो, अपामार्ग के बीज और अपराजिता ये शिरोविरेचन या नस्य के द्रव्यो के सहायक हैं।

छर्दि निग्राहक (वमन रोकने वाले)—

जामुन, आम के पत्ते, बिजौरा नीबू, खट्टा बेर, अनारदाना, जौ, साठी चावल, खस, मिट्टी और लावा ये वमन को रोकने वाले हैं। ये मुख्यत. शीत और कषाय हैं।

तृष्णानिग्राहक (प्यास को रोकने वाले)—

सोठ, धमासा, मोथा, पित्तापापडा, चन्दन, चिरायता, गुरुच, सुगन्ध वाला, धनिया और परवल ये प्यास रोकने वाले हैं। ये वात पित्त शामक हैं।

हिक्का निग्राहक (हिचकी रोकने वाले)—

कचूर (यह विष है, रत्ती की मात्रा मे व्यवहार करें), पोहकर मूल, बेर की गुठली की मीगी, छोटी कटेरी (भटकटैया), बडी कटेरी (वनभण्टा), वृक्ष पर होने वाला बन्भा, हरड, पीपल, यवासा, और काकड़ासिगी ये हिचकी को रोकने वाले हैं। उष्ण वीर्य और कफ-वात नाशक हैं।

पुरीष संग्रहणीय (टट्टी को रोकने वाले)—

प्रियंगु, यवासा, आम की गुठली, सोनापाठा, लोध, मोचरस, मजीठ, धाय के फूल, भारंगी और कमल की केशर ये पुरीष (टट्टी) को रोकने वाले हैं। प्राय. कषाय रस शीतवीर्य और वातवर्धक होने से मल के द्रवांश का शोषणकर टट्टी को रोकते हैं। इसके विपरीत कटु-रस, उष्ण वीर्य, दीपन-पाचन और वातशामक द्रव्य अग्नि को दीप्त कर, आम को पचाकर मल को रोकते हैं और मल के द्रवांश का भी शोषण करते हैं। जैसे जायफल।

पुरीष विरजनीय (पुरीष के रङ्ग को ठीक करने वाले)—

जामुन, सलई की छाल, यवासा, महुआ, सेमर, राल, पकी हुई मिट्टी, खिरनी, नीला कमल और तिल ये पुरीष के रंग को ठीक करने वाले हैं। पित्त को शमन करने वाले हैं।

मूत्र संग्रहणीय (मूत्र को रोकने वाले)—

जामुन की गुठली, आम की गुठली, पकडी, बरगद, गूलर, पीपल (पिप्पली नहीं पीपल वृक्ष), भिलावा, लिसोडा, और खैर ये मूत्र को रोकने वाले हैं। इनमे भिलावा को छोडकर शेष कषाय रस होने के कारण वातवर्धक होने से मूत्र के द्रवांश को सुखाते हैं। भिलावा उष्ण वीर्य होने से मूत्र को घटाता है। पकडी से लेकर पीपल तक के द्रव्यो की छाल ग्रहण की जाती है। पर इनका फल भी काम करता है। भिलावा के सम्बन्ध मे वैद्य से राय लें।

मूत्र विरजनीय (मूत्र को रंगने वाले)—

सफेद कमल, नीला कमल, कमलिनी छोटी, कमलिनी बडी, अधिक सुगन्धित कमल, लाल कमल, बडा कमल, महुआ, प्रियंगु और धाय के फूल ये मूत्र के रंग को ठीक करते है। ये शीत वीर्य हैं। बड़े कमल तक के द्रव्य कमल के भेद ही हैं। उनमे जो मिलें उन्हीं से काम चलाना चाहिये।

मूत्र विरेचनीय (मूत्र को निकालने वाले)—

वृक्ष पर का बन्भा, गोखरू (छोटा उपयोगी होता है), अगस्त, हुरहुर, पाषाणभेद, दाभ (छोटा कुश) की जड, कुश की जड, कास की जड ये मूत्र को निकालने वाले हैं। सब शीत वीर्य है। इनके अतिरिक्त ईख की जड़, कलमी शोरा, पुनर्नवा, सरपत की जड भी मूत्र निकालने वाले हैं।

कासहर—

मुनक्का, हरड़, आँवला, पिप्पली, यवासा, काकड़ासिंगी, भटकटैया, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, भुई आँवला ये कास नाशक हैं। ये प्रायः मधुर, स्निग्ध और उष्ण से हैं। इनके अतिरिक्त मुलहठी, आर्द्रक, पान भी कास नाशक हैं।

श्वासहर—

कचूर (विष), पोहकर मूल, अम्लवेत, छोटी इलायची, हीग, अगर, तुलसी, भुंई-आँवला, जीवन्ती और चोर पुष्पी (चोरहुली) ये श्वास रोग को नष्ट करते हैं। उष्ण वीर्य और कफ-वात हर हैं।

शोथहर (दशमूल)—

पाढल, अरणी, वेल, सोनापाठा, गम्मारी, छोटी कटेरी (भटकटैया), बडी कटेरी, (वनभण्टा), सारिवन, पिठिवन और छोटा गोखरू ये शोथ या सूजन को नाश करते हैं। इनमे गम्भारी तक वृहत्पंचमूल और उसके वाद लघु पंचमूल है। दोनो मिलाकर दशमूल कहा जाता है। यह विशेषत वातनाशक है, पर त्रिदोष पर भी कुछ काम करता है। दोषज शोथ या सूजन मे वायु की प्रधानता के साथ शेष दोनो दोष भी कारण माने जाते हैं।

ज्वरहर—

सारिवा, गुरुच, पाढी, मंजीठ, मुनक्का, पीलू, फालसा, हरड, वहेर्रा और आँवला ये ज्वर नाशक हैं। इनमे से कुछ दाह नाशक, कुछ स्वेदकारक, कुछ आमनाशक और कुछ शीत है। ज्वर नाशन के लिये सभी की उपयोगिता है। इनके अतिरिक्त चिरायता, परवल, पित्त पापडा आदि भी ज्वरनाशक हैं।

श्रमहर (थकावट दूर करने वाले)—

मुनक्का, खजूर, चिरौंजी, वेर, अनार, गूलर, फालसा, ईख, जौ और साठी चावल-ये थकावट को दूर करने वाले हैं। स्निग्ध और मधुर होने से वायु को शान्त करते हैं जिससे थकावट दूर होती है। इनके अतिरिक्त तेल की मालिश और स्नान भी थकावट दूर करते हैं।

दाह प्रशमन (जलन को दूर करने वाले)—

धान का लावा, चन्दन, गम्भारी का फल, महुआ, शक्कर, नीला कमल, खस, अनन्तमूल, गुरुच, और सुगन्ध वाला ये दाह को शान्त करते हैं। शीतवीर्य, मधुर और पित्त नाशक हैं।

शीतप्रशमन (शीत दूर करने वाले)—

तगर, अगर, घनिया, सोठ, अजवाइन, वालबच, छोटी कटेरी (भटकटैया), अरणी, सोनापाठा और पिप्पली ये शीतलता को दूर करते हैं। उष्ण वीर्य और वात कफ को शान्त करने वाले हैं।

उदर्द प्रशमन (उदर्द अर्थात् चकत्तो को नष्ट करने वाले)—

तेन, चिरौंजी, वेर, खैर, छितिवन, सलई, अर्जुन ये उदर्द या चकत्तो को दूर करते है। वात कफनाशक पर पित्त का विरोध न करने वाले हैं।

अंगमर्द प्रशमन (अगों की पीडा को शान्त करने वाले) —

सारिवन, पिठिवन, वडी कटेरी (वनभण्टा), छोटी कटरी (भटकटैया), रेंट, काकोली, चन्दन, खस, छोटी इलायची और महुआ ये अंग की पीड़ा या पिटनियों आदि की ऐंठन को शान्त करते हैं। सब वात नाशक हैं।

शूल प्रशमन—

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्ता, सोठ, मरिच, अजवाइन, जंगली अजवाइन और जीरा ये शूल को शान्त करते हैं। उष्ण वीर्य और वायु को अनुलोभ या शमन करने वाले है।

शोणितास्थापन (रक्त को वढाने एवं वहते हुए रक्त को रोकने वाले)—

मधु, मुलहठी, केशर, मोचरस, मिट्टी का खपडा, लोध, गेरु, प्रियंगु, शक्कर और धान का लावा ये रक्त को वढाते एवं रक्त श्राव को रोकते है। शीत एवं कषाय द्रव्य रक्त श्राव को रोकते हैं जैसे फिटकरी, लोध आदि। उष्ण और तरल पर लोह युक्त द्रव्य रक्त को वढाते हैं जैसे रक्त। रस को वढाने वाले यथा फल रस आदि भी रस वढाकर रक्त को वढाते हैं।

वेदनास्थापन (पीडा को शान्त करने वाले)—

साल, कायफल, कदम्ब, पद्मकाठ, केशर, मोचरस, शिरीष जलवेंत, एलवालुआ और अशोक ये पीड़ा को शान्त करते हैं। ये प्राय. वायु को शमन करनेवाले और उष्णवीर्य हैं।

संज्ञास्थापन (होश लाने वाले)—

हींग, बकाइन, विट्खदिर (अनुत्तम खैर, वदले मे उत्तम खैर लें, यों तो विट्खदिर नाम से भी वाजार में विकता है), वालवच, चोरपुष्पी, ब्राह्मी, जटामांसी, गुग्गुल या छोटा गोखरू और कटुकी ये वेहोशी दूर करने वाले या संज्ञा लाने वाले हैं। इनमें उष्ण और शीत वीर्य दोनो प्रकार के द्रव्य हैं। इनके अतिरिक्त शंखपुष्पी भी संज्ञास्थापक है।

प्रजास्थापन (गर्भ स्थान की वाधा को दूर कर गर्भ धारण कराने वाले)-

ब्राह्मी, दूब, लक्ष्मणा, हरड, हल्दी, नागवला, सहदेवी और वाराहीकन्द ये गर्भ स्थापन की बाधा को दूरकर गर्भ धारण कराने वाले हैं।

वयःस्थापन (आयु वढानेवाले)—

गुरुच, हरड़, आंवला, रास्ना, अपराजिता, जीवन्ती, शतावर, मण्डूकपर्णी, सारिवन, और पुनर्नवा ये आयु को वढानेवाले एवं उसे स्थिर करने वाले (वुढापा को निकट न लाने वाले) हैं। वल, ओज और धातुओ को वढ़ाने वाले हैं।

द्रव्यगुण शास्त्र अनन्त है। इसके लिये अलग से निघण्टु से विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यहां तो काम चलाने के लिये एक ही स्थान पर एक काम करनेवाले द्रव्यो का उल्लेख किया गया है। त्रिदोप के दृष्टिकोण से द्रव्यो पर इस प्रकार विचार कीजिये :—

वात प्रकोप द्रव्य—

रूक्ष, लघु, शीत, खर, कठिन, कटु, तिक्त, कषाय रस वाले द्रव्य वात को कुपित करते हैं।

वात शामक द्रव्य—

स्निग्ध, गुरु, उष्ण, श्लक्ष्ण (अत्यन्त चिकना), मृदु, पिच्छिल (लसीले), मधुर अम्ल लवण रस वाले द्रव्य वात शामक होते हैं।

पित्त प्रकोपक द्रव्य—

उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल कटु लवण रसवाले द्रव्य पित्त को कुपित करते हैं।

पित्त शामक द्रव्य—

शीत, मृदु, मधुर, तिक्त, कषाय रस वाले द्रव्य पित्त को शमन करते हैं।

कफ प्रकोपक द्रव्य—

गुरु, शीत, मृदु स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर अम्ल लवण रस वाले द्रव्यो से कफ कुपित होता है।

कफ शामक द्रव्य—

लघु, उष्ण, खर, कटु, तिक्त, कषाय रस वाले द्रव्य कफ को शमन करते हैं।

मधुर रस का गुण—

मधुर रस रस आदि सातो धातुओ, ओज और दूध को बढाता है। चक्षु, केश, वर्ण और बल के लिये हितकारी है। क्षत और टूटे हुए अंग को जोडने मे सहायक होता है। रक्त और रस धातु को स्वच्छ करने वाला, प्यास, मूर्च्छा, दाह, पित्त, वात को शमन करनेवाला है। इन्द्रियो को पुष्ट करनेवाला एवं क्रिमिकफकारक है।

इसके अधिक सेवन से कास, श्वास, अलसक (एक प्रकार का अजीर्ण) वमन, स्वर-भेद, क्रिमि, गलगण्ड (घेंघा), अर्बुद, श्लीपद, और अभिष्यन्द (आंखो का लाल होना और दर्द करना) हो जाता है। मुख में मधुरता और गुदा मे लेप सा प्रतीत होता है।

अम्ल रस का गुण—

अम्ल रस भोजन को जलाने वाला, पाचन, वायु को नियन्त्रित करने वाला और उसे अनुलोम (स्वाभाविक गति मे होना) करने वाला है। कोष्ठ मे दाह व बाहर शीतल करने वाला, शरीर मे गीलापन बढानेवाला एव हृदय को प्रिय है।

इसके अधिक सेवन से दांत कोठ (दन्तहर्ष), रोमाच, नेत्रो का बन्द होना, जमे-कडे कफ का घुलना और शरीर की शिथिलता होती है। क्षत चोट, दग्ध, सर्पादि से दष्ट, टूटे हुए, सूजे हुए, विद्ध (किसी चीज़ का धँस जाना), पिसे हुए अंगो को उष्ण स्वभाव

होने के कारण पका देता है। विषैले जन्तुओ ने जिस अंग पर मूत दिया या स्पर्श कर दिया हो उसे भी पका देता है। कण्ठ, छाती और हृदय मे दाह उत्पन्न करता है। मुख मे अधिक लार बनाता है, जिससे वह स्वच्छ भी होता है। भोजन मे रुचि उत्पन्न करता है।

लवण रस का गुण—

यह कोष्ठ को शुद्ध करने वाला, पाचन, सटे आम या कफ को अंगो से अलग करने वाला, गीला करने वाला, शिथिलता उत्पन्न करनेवाला, उष्ण, सब रसो से भिन्न स्वभाव वाला, स्रोतो एवं मार्गो को शुद्ध करने वाला और शरीर को कोमल बनाने वाला है।

इसके अधिक सेवन करने से खुजली, चकत्ता, सूजन, विवर्णता (शरीर के वर्ण का असौन्दर्य नपुन्सकता और इन्द्रियो का घात होता है। मुख और आंखो मे पाक भी होता है। रक्तपित्त, वातरक्त और अम्लपित्त उत्पन्न करता है।

कटु रस—

यह अग्नि दीपन, पाचन, रुचिकारक, शोधन है तथा स्थूलता आलस्य कफ क्रिमि विष कुष्ठ खुजली को शमन करने वाला है। शरीर के जोडो को अलग करने वाला, दूध वीर्य एवं मेद (चर्बी) को नष्ट करनेवाला है। शरीर मे सुस्ती उत्पन्न करता है। उष्णवीर्य है। इसके अधिक सेवन करने से चक्कर, नशा, गला-तालु-ओठ का शोष (सूखना), अंगो मे ताप, बलहीनता, कम्प, सुई चुभने सी पीडा, हडफूटन होती है। हाथ पैर पसली और पीठ आदि मे वायुजन्य शूल उत्पन्न करता है।

तिक्त रस—

तिक्त रस रुचिकारक, अग्निदीपक, शोधन है। यह खुजली चकता प्यास मूर्छा ज्वर को शान्त करनेवाला, दूध को शुद्ध करनेवाला एवं मल-मूत्र-गीलापन-चर्वी-पूय को सुखानेवाला है। दाह, पित्त, ज्वर, रक्त दोष को विशेषतया शान्त करता है। शीत वीर्य है।

इसके अधिक सेवन से शरीर एवं मन्या (गर्दन के दोनो ओर की वातनाडी) जकड जाती है। यह आक्षेपक, अर्दित (देखिये वातव्याधि), शिरःशूल चक्कर, सूई चुभने सी पीडा, फटने एवं कटने सी पीडा और मुख मे फीकापन उत्पन्न करता है।

कषाय रस—

यह ग्राही (दोषो मलो धातुओ को रोकनेवाला), व्रण एवं कटे हुए को भरनेवाला, जकड़ने वाला, शोधन, चिपके दोषो एवं मलो को छीलकर निकालने वाला, शोषण, पीडन (दबाने वाला) और गीलेपन को सुखाने वाला है।

इसके अधिक सेवन से हृदय पीडा, मुखशोष, उदर रोग, पेट फूलना, वाणी की रुकावट, मन्या की जकडन अंगो मे फड़कन, चुनचुनाहट, अंगो में संकोच एवं आक्षेपण (हाथ पैरो को इधर उधर फेंकना) आदि उत्पन्न होता है।

रसों के विषय मे ज्ञातव्य —

मधुर रस का उदाहरण चीनी, अम्ल रस का उदाहरण नीबू, लवण रस का सेंधा नमक, कटु रस का उदाहरण आदी या मिर्च, तिक्त रस का उदाहरण नीम, कषाय रस का उदाहरण सोपाडी (कनैली)और फिटकिरी है। इनके अधिक सेवन करने का तात्पर्य केवल एक ही रस के अत्यधिक सेवन करने से है।

द्रव्य गुण के कुछ पारिभाषिक शब्द—

वृंहण—

धातुओं अथवा शरीर को बढाने वाले द्रव्य को वृंहण कहते है। जैसे दूध, घी, मास आदि। चिकित्सा के एक भेद वृंहण के दृष्टिकोण से किसी दोष को बढाने वाला द्रव्य उस दोष के लिये वृंहण है।

लेखन—

धातु या मल को छील कर जो बाहर निकाले उसे लेखन कहते है। जैसे मधु, उष्ण जल।

शोधन या सशोधन—

जो द्रव्य मल संचय को ऊपर या नीचे के मार्ग से निकाले उसे शोधन या सशोधन औषधि कहते हैं। जैसे वंदाल, मैनफल, जमालगोटा। वामक, विरेचक, नस्य आदि औषधियां इसी के अन्तर्गत आती हैं।

सशमन—

जो औषधि विषम दोषो को समान करती हैं उसे संशमन कहते हैं। जैसे गुरुच। संशमन समदोषो को नही छेडती। वल्कि वढे या कुपित दोष को शान्त करती है।

अनुलोमन—

जो औषधि मलो का पाक कर उनके वन्धन को तोड कर उन्हे नीचे के रास्ते से बाहर करती है उसे अनुलोमन कहते हैं। जैसे हर्रे।

स्रंसन, भेदन, रेचन के सम्बन्ध मे पंचकर्मोक्त विरेचन प्रकरण पढें। दीपन, जो आम को न पचाये पर अग्नि कारक हो उसे दीपन कहते हैं, जैसे सौंफ।

पाचन—

जो आम को पचाये पर अग्नि कारक न हो उसे पाचन कहते हैं। जैसे नागकेशर।

ग्राही—

जो दीपन पाचन होने के साथ ही उष्ण होने के कारण द्रव को सुखाये उसे ग्राही कहते हैं। जैसे सोठ।

स्तम्भ—

जो रूक्ष, शीत, कषाय रस और लघु पाक होने से वात करती है। उसे स्तम्भन कहते हैं। जैसे कुडैयया।

अभिष्यन्दी—

जो द्रव्य लसीला एवं भारी होने के कारण रस वाही सिराओ को रोक कर गुरुता उत्पन्न करता है। उसे अभिष्यन्दी कहते हैं। जैसे दही।

सूक्ष्म—

जो द्रव्य देह के सूक्ष्म छिद्रो मे घुस जाता हो उसे सूक्ष्म कहते है। जैसे सेंधा नमक।

व्यवायी—

जो पहले सारे शरीर मे व्याप्त होकर बाद मे पचे उसे व्यवायी कहते हैं, जैसे भांग, अफीम। आमाशय मे गया हुआ द्रव्य प्राणदा नाड़ी द्वारा तत्क्षण मस्तिष्क स्थित योनिस्थान मे प्राप्त होकर सारे शरीर मे व्याप्त हो जाता है। उग्रमद्य या विष मुख गत वातनाड़ियो द्वारा ही योनिस्थान मे प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ द्रव्य का तात्पर्य व्यवायी गुण की शक्ति से है।

रसायन—

जो वृद्धावस्था और रोग को नाश करता है उसे रसायन कहते हैं। या जो प्रशस्त रसादि धातुओ को उत्पन्न करे उसे रसायन कहते है। जैसे गुरुच व हरें।

वाजीकरण—

जिस द्रव्य से पुरुष स्त्रियो मे वाजी (घोडा) के समान अधिक मैथुन करने मे समर्थ होता है। उसे वाजीकरण कहते हैं। जैसे कँवाच के बीज।

आर्द्र और शुष्क द्रव्य का विचार—

यथासम्भव सभी द्रव्य ताजे और हरे ग्रहण करना चाहिये। परन्तु ताजे और हरे द्रव्यो के अभाव में शुष्क द्रव्य लिये जाते हैं। शास्त्र मे सर्वत्र औषधि का जो भी मान लिखा हुआ है। वह सूखे द्रव्य के लिये हैं। वह हरा मिलता है तो लिखित मान का दूना ग्रहण करना चाहिये। क्योकि हरे द्रव्य मे शुष्क की अपेक्षा कम शक्ति होती है। जैसे शुष्क मर्चा से हरी मिर्च मे कम शक्ति होती है। कुछ द्रव्य सूखे ग्रहण ही नहीं किये जाते हरे ही प्रयुक्त होते हैं। चूंकि वे सूखे लिये ही नहीं जाते इसलिये हरा लेने पर उनके दूना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अर्थात् उन्हे शास्त्रोक्तमान के बराबर ही लेना चाहिये। वे द्रव्य ये हैं—

अडूसा, नीम, परवल की पत्ती, केवडा, वरियरा, सफेद कोहडा, शतावर, पुनर्नवा, कुडैया, असगन्ध, गन्धप्रसारणी, गुरुच, माँस, नागवला (गुलसकरी) कटसरैय्या, गुग्गुल, हींग, आदी, गुड, मधु, पिप्पली और विडंग।

इनमे वरियरा, पुनर्नवा, कुडैया, असगन्ध, गन्ध प्रसारिणी, नागवला, कटसरैय्या, पिप्पली और विडंग बाजार में सूखे ही मिलते हैं। इन्हें सूखे लेकर ही काम चलाना पड़ता है। शास्त्र में जो मान लिखा है उसी मान से लेना चाहिये। शतावर भी सूखी मिलती है पर तोड़ने या कूटने पर उसमे स्निग्धता अवश्य रहती है। कूटने पर खड़क से टूटती नही चिपटी हो जाती है। ऐसा न हो तो वह व्यर्थ है।

अडूसा और परवल की पत्ती प्राय. हरी मिल ही जाती है। न मिलने पर सूखी से काम चलायें।

गुरुच हरी ही मिलती है। सूखी व्यर्थ है।

औषधियों के ग्राह्य अंग—

सामान्यत मोटी जड वाले वृक्षो यथा बरगद, गूलर, पीपल, पकडी आदि की छाल ग्रहण करनी चाहिये। इसके शुंग (टूंसा) और मूल का भी व्यवहार होता है। लताओ (शतावर को छोडकर) आदि जिनकी त्वचा अत्यन्त पतली हो, का सम्पूर्ण अंग लिया जाता है। छोटी वनस्पतियो या क्षुद्र क्षुपो का भी पंचाग ही ग्राह्य है। हरीतकी आदि का फल, तालीशादि का पत्र, धाय आदि का फूल तथा सेहुण्ड मदार का दूध और पत्ता ग्राह्य है। आम, जामुन, अमरूद, अनार का छिलका, पत्ता और फल ग्राह्य है। सूरण आदि का कन्द व्यवहारोपयोगी है। साधारणत. बाजार मे द्रव्यो के ग्रहणीय अंश ही बिकते हैं। यदि किसी अग विशेष का उल्लेख नही होगा तो व्यापारी सामान्यत. ग्राह्य अंग ही देगा। जो ग्राह्य अंग लिखा है उसी मे शक्ति अधिक रहती है। इसका विशेष उल्लेख सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय ४१ में है। सामान्यत. ग्राह्य अग के अतिरिक्त अग का उल्लेख किसी व्याधि विशेष मे हो तो उसे भी ग्रहण करना चाहिये। बबूल, सेमर कतीरा के निर्यास (गोंद) का भी व्यवहार होता है। नीम, खजूर या ताड के स्वरस या ताड़ी का भी व्यवहार होता है। इनका फूल भी ग्राह्य है।

द्रव्यों की कल्पनाएँ—

द्रव्यो का प्रयोग करने की विविध कल्पनायें हैं। जिनमे मुख्य पाच हैं। (१) स्वरस, (२) कल्क, (३) क्वाथ, (४) हिम, (५) फाण्ट। इनके अतिरिक्त द्रव्यो के चूर्ण, सत्व, वटी भी बनती है। द्रव्यो से सिद्ध अवलेह, तेल, घृत और पाक का भी प्रयोग होता है। उपर्युक्त ५ कल्पनाओ का नाम कषाय कल्पना है। ये क्रमश. उत्तरोत्तर लघु होती हैं। इनके निर्माण की विधि यह है.—

स्वरस—

हरे द्रव्य को कूट-पीसकर कपडे से निचोड़ा हुआ रस उसका स्वरस कहलाता है। इसकी सामान्य मात्रा २ तोला है।

यदि हरा द्रव्य न मिले तो सूखे कूटे हुए पाव भर द्रव्य को आध सेर जल मे २४ घण्टा भिगोकर मलकर पानी छान लें। यही पानी स्वरस का काम देगा। इसकी मात्रा ४ तोला है।

पुटपक्व रस

द्रव्यो को चटनी की तरह पीस कर रोगनाशक औषधियो के पत्ते के भीतर लपेट कर डोरा से बाध दें। उसके ऊपर १ अँगुल मोटी मिट्टी का लेप कर सुखा दें।

इस सूखे हुए गोले को आग मे रख दें। जब गोला कुछ लाल हो जाय तो उसे आग में से निकालकर कुछ ठण्डा होने के वाद फोड़ दे। तत्पश्चात् पत्ते के भीतर से सावधानी पूर्वक द्रव्य की चटनी निकालकर उसका रस निचोड़कर प्रयोग करें। इसकी मात्रा भी २ तोला है। पुटपाक के लिये हरा द्रव्य न मिले तो सूखे द्रव्य को ही पानी या रोग नाशक द्रव में पीसकर चटनी वनायें।

स्वरस मे यदि मिश्री, चीनी, मधु गुड, क्षार, जीरा, नमक, घी, तैल या चूर्ण छोडना हो तो ६ माशा डालकर सेवन करायें। सावधान। ये राई सदृश तीक्ष्ण या विषाक्त न हो।

तण्डुलोदक—

चावल के उदक या स्वरस के लिये ४ तो० चावल को दरदरा कर ३२ तो० जल मे २ घण्टा भिगोकर मलकर जल को छान लें। यही तण्डुलोदक है या चावल का पानी है।

हिम—

चार तोला द्रव्य को दरदरा कूटकर २४ तोला जल मे रात भर रहने दें (प्रात. मलकर पानी छान लें), यही हिम है। इसकी मात्रा ८ तो० है।

फाण्ट—

४ तो० द्रव्य को कूटकर उसमे १६ तो० भलीभाँति गरम जल छोड़ें। ५ मिनट वाद छाने हुए जल को फाण्ट कहते हैं। इसकी मात्रा ८ तो० है। इसमे यदि मधु, मिश्री, चीनी, गुड़ आदि डालना हो तो १ तो० छोडना चाहिये। फाण्ट को चूर्ण द्रव भी कहते हैं।

मन्थ—

मिट्टी के पात्र मे १६ तो० शीतल जल मे ४ तो० कूटा हुआ द्रव्य डालकर मथ कर छान लिया जाय तो उसे मन्थ कहते हैं। यह स्वरस के अन्तर्गत आता है। इसकी मात्रा ८ तो० है।

कल्क—

गीले द्रव्य को सिल या खरल मे पीस लें। यदि गीला द्रव्य न हो तो सूखे द्रव्य मे थोडा-सा जल डालकर पीस लें। इसी का नाम कल्क है। इसकी मात्रा १ तो० है। इससे मधु, घृत और तैल डालना हो तो द्विगुण मात्रा मे, चीनी, मिश्री, गुड, वरावर एवं द्रव देना हो तो चौगुनी मात्रा मे देना चाहिये।

क्वाथ—

४ तो० द्रव्य को दरदरा कूटकर मिट्टी के पात्र मे सोलह गुने जल मे डालकर पकायें। आठवा हिस्सा शेष रहने पर छान लें। इसी का नाम श्रृत, निर्यूह, क्वाथ

या काढ़ा है। इसका एक नाम कषाय भी है। कषाय कल्पना वाला कषाय शब्द पाचो कल्पनाओ को ग्रहण करता है। केवल कषाय शब्द से काढ़ा का ही ग्रहण होता है। इसकी मात्रा २ तो० से लेकर ४ तो० तक है। इसमे यदि जीरा, गुग्गुल, क्षार, लवण, शिलाजतु, हीग, त्रिकटु (सोठ मिर्च पीपल) छोडना हो तो ४ माशा छोडना चाहिये। दूध-घी, गुड तेल आदि द्रव, कल्क और चूर्ण आदि छोड़ना हो तो १ तो० छोड़ना चाहिये। मधु, कफ प्रधान व्याधि मे क्वाथ का चतुर्थांश, पित्तप्रधान व्याधि मे अष्टमांश और वात प्रधान व्याधि मे षोडशांश छोड़ना चाहिये। चीनी या मिश्री कफ प्रधान व्याधि मे षोडशांश, पित्त प्रधान मे अष्टमांश और वात प्रधान मे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये। क्वाथ पकाते समय पात्र ढकना नही चाहिये। ऐसा करने से वह शीघ्र नहीं पकता। कई वार के लिये पकाना हो तो कई वार की मात्रा एक ही वार पकाकर द्रव्य सहित रख लें। जब-जब देना हो तब-तब उसे गरमकर देयमात्रा मे ही छान लें। यह विधान उत्तम और सरल है। परिस्थितिवश एक ही वार पके और छाने हुए काढे को शीशी मे रखकर मात्रानुसार पीयें। यह २४ घण्टे के लिये ही होगा। इससे अधिक प्रयोग न करें। क्वाथ पीने के वाद २ घूंट जल ग्रहण कर पान या लाची, लवंग, सौफ आदि मुख शोधक पदार्थ खाना चाहिये।

चूर्णविधि—

अत्यन्त सूखे हुए द्रव्य को कूटकर कपडे या महीन चलनी से छान लें। चूर्ण तैयार है। इसकी अधिकतम मात्रा १ तोला है। इसमे गुड़ डालना हो तो वरावर और शक्कर डालना हो तो द्विगुण डालना चाहिये। हीग सर्वदा घी मे भूनकर ही छोडे। इतना छोडें जिससे उससे जी न मिचलाये। चूर्ण को चौगुने जल से मुख मे नीचे उतारना चाहिये।

इसमे नीवू के रस आदि द्रवो की भावना दी जाती है। जितने द्रव से चूर्ण भलीभाँति गीला हो जाय उतने ही द्रव मे चूर्ण भलीभांति डालकर उसे घोटकर सुखा देना चाहिये। यह एक भावना हुई। इस प्रकार आवश्यकता या लेखानुसार कई वार भावना दी जाती है।

चूर्ण को ही चीनी या गुड़ की चाशनी, शिलाजतु, गुग्गुल या मधु आदि किसी द्रव मे अच्छी तरह मिलाकर वटी, गुटिका, वटिका या गोली भी बना लेते हैं। इसमे चीनी या मिश्री चौगुनी, गुड़, दूना और गुग्गुल शिलाजीत मधु समान डाला जाता है। कोई द्रव द्रव्य गोली बनाने के लिये न लिखा हो तो जल से गोली वनानी चाहिये। घृत, तेल, आसव, अरिष्ट आदि का निर्माण विस्तारभय से यहाँ नहीं दिया जायगा।

विशेष—

कल्पनाओ की मात्रा के सम्बन्ध मे पूर्वलिखित मात्रा प्रकरण अवश्य पढें। यहाँ सामान्य मात्रा ही लिखी हुई है। इनमे छोडे जाने वाले द्रव्यो को प्रक्षेप या आवाप भी कहा जाता है। इनके मान का उल्लेख न होने पर इन्हे उपर्युक्त मान मे छोड़ें। उल्लेख होने पर उल्लेखानुसार ही छोडें।

पञ्चम अध्याय

पंचकर्म

दोषा. कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः ।
ये तु संशोधनैशुद्धा, न तेषा पुनरुद्भवः ॥

लंघन (उपवास) व पाचन आदि के द्वारा पराजित दोष कभी कुपित हो सकते है। परन्तु संशोधन द्वारा जो शुद्ध हो गये हैं उनका पुन. उत्पादन नहीं हो सकता ।

यह वाक्य दोषो को जड से उन्मूलन करने का उद्घोष कर रहा है। आज इसका ध्यान न कर अधिकाश चिकित्सक शामक औषधियो का प्रयोग कर रोगो के मूल कारण दोषो को दवा भर देते हैं। वही दोष वाद मे कुपित होकर अनेक रोगो को उत्पन्न कर जीवन को संकट मे डाल देता है। इसलिये संशोधन चिकित्सा की ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये । शामक चिकित्सा द्वारा तत्काल रोग शान्त कर उसके कारण भूत दोषो को वाहर निकालना ही श्रेयस्कर है। इसके लिये मनीषियो ने पंचकर्म विज्ञान को जनता के सम्मुख उपस्थित किया है। जो ये हैं :—

वमनं रेचनं नस्यं निरुहश्चानुवासनम् ।
एतानि पंचकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ॥

वमन, विरेचन, नस्य, निरुहण और अनुवासन ये ही पाच पंच-कर्म के नाम से मनीषियो द्वारा कहे गये है।

इनके पुर्व स्नेहन और स्वेदन नामक दो कर्म करना पडता है। विना इनके पंचकर्म ठीक से नही हो पायेगा। इसलिये संक्षेप मे इनका ज्ञान अभीष्ट है।

स्नेहन—

शरीर को भीतर और वाहर से घृत, तैल, वसा और मज्जा द्वारा स्निग्ध करने का नाम स्नेहन है। इनके विना भी यवागूष दुग्ध आदि के द्वारा यह क्रिया होती है पर इनमे भी घृत वसादि रहते हैं। घृतादि मे केवल एक का व्यवहार हो तो उसका नाम एकल स्नेह, दो का संयुक्त व्यवहार हो तो यमक, तीन का संयुक्त व्यवहार होने पर त्रिवृत एवं चारो का संयुक्त व्यवहार होने पर महान स्नेह की संज्ञा दी जाती है। घृत, वसा (चर्वी) और मज्जा ये जंगम स्नेह हैं। जिनमे घृत सर्वश्रेष्ठ है। तैल स्थावर स्नेह है इसमें तिल तैल सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि दोनो का शरीर के लिये वाहरी और भीतरी प्रयोग हो सकता है और होता भी है पर अधिकाश घृत का भीतरी एवं तेल का वाहरी प्रयोग होता है।

स्नेहपान मात्रा—

मात्रा के सम्बन्ध मे पूर्वोक्त मात्रा प्रकरण पर ध्यान देना चाहिये। स्नेहपान की सामान्य मात्रा यह है—दीप्ताग्नि वाले पुरुष के लिये ४ तोला, मध्यमाग्नि वाले को ३ तोला एवं मन्दाग्नि वाले को २ तोला स्नेह पिलाना चाहिये।

पचने के दृष्टिकोण से यह मात्रा भी बतायी गयी है—

२४ घण्टे मे पचने वाली महती मात्रा है जो कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार, (मृगी रोग में विशेष हितकारी है। १२ घण्टे मे पचने वाली मध्यमा मात्रा है जो स्नेहनी वलकारिणी एवं भ्रम (चक्कर) को नष्ट करने वाली है। ३ घण्टे मे पचने वाली अल्पा मात्रा है जो अग्निदीपनी एवं वात दोष नाशिनी है। ये मात्रायें सामान्यत. क्रमश. उपर्युक्त मान मे अर्थात् ४ तो०, ३ तो० और २ तोला ही दी जाती हैं।

मात्रा—समय और आहार—विहार का विना विचार किये स्नेह पान सूजन, अर्श (ववासीर), तन्द्रा (उंहाई), निद्रा और वेहोशी उत्पन्न कर देता है।

सहपान—

यदि घृत पिलाना हो तो पित्त प्रधान रोग मे स्वतन्त्र घृत, वातरोग मे सेंधा नमक (अभाव में सांभर) और कफरोग मे त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर) और क्षार मिलाकर पिलाना चाहिये।

अनुपान—

घृत पान के वाद उष्ण जल, तैल पान के वाद यूष एवं वसा, मज्जा के वाद मण्ड पीना चाहिये।

जो स्नेह से द्वेष करते हो या वृद्ध, सुकुमार, कृश और प्यासे हो उन्हे अथवा उष्ण काल हो तो भात के साथ घृतादिक पिलाना चाहिये। पर उनसे इसे वताने की आवश्यकता नही।

स्नेहपान का काल—

शीतकाल मे सामान्यत. १० वजे दिन और उष्णकाल मे १० वजे रात्रि मे स्नेह-पान करना उत्तम है। दोष के दृष्टिकोण से वात-पित्ताधिक्य में रात एवं वात श्लेमाधिक्य में दिन मे स्नेहपान करायें। आवश्यकतानुसार ३, ४, ५ या ६ दिन तक स्नेहपान कराना चाहिये। लगातार ७ दिन तक स्नेह पान करने से वह सात्म्य (आत्मा के अनुकूल) हो जाता है। अपना विशिष्ट गुण नहीं दिखा पाता।

स्नेहपान के योग्य—

जिन्हे स्वेदन या संशोधन कराना हो उन्हे अवश्य स्नेह कराना चाहिये। इनके अतिरिक्त मद्य, स्त्री, व्यायाम और चिन्ता का सेवन करने वाले एवं वृद्ध, वालक, कृश

रूक्ष, क्षीणवीर्य, क्षीणरक्त, वातपीडित तथा तिमिर रोग से पीडित लोगो को स्नेह पान कराना चाहिये।

घृतपान के योग्य—

रूक्ष, क्षत एवं विष से पीडित, वात पित्त के विकार से युक्त और स्मरण शक्ति-विहीन लोगो को घृत पिलाना चाहिये।

तैलपान के योग्य—

जिनके कोष्ठ (आमाशय, आग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, हृदय, बडी आंत का वाम भाग, फुफ्फुस) मे क्रिमि हो, सारे शरीर मे वायु व्याप्त हो, कफत्वमेद वढा हो तथा दीप्ताग्नि हो उन्हे तैल पिलाना चाहिये। पर प्रतिज्ञा यह है कि तैल उन्हे सात्म्य (अनुकूल) हो।

वसा (चर्बी)-पान के योग्य—

अधिक व्यायाम के कारण कृश, सूखे वीर्य और रक्त वाले, महती पीडा वाले व महान (वलवान) अग्नि, वायु और प्राण वाले लोग वसापान के योग्य होते हैं।

मज्जा पान के योग्य—

क्रूर आशय वाले, क्लेश सहिष्णु, वात से पीड़ित दीप्ताग्नि वाले लोग मज्जा पान करें।

विशेष—

यद्यपि अलग-अलग स्नेहपान के योग्य अलग-अलग मनुष्यो का उल्लेख हुआ है पर घी एक ऐसा स्नेह है जो सभी के लिये हितकारी है। इसलिये भीतरी प्रयोग या पीने के लिये इसी का प्रयोग साधारणत. होता है। और, यह गाय का सर्वोत्तम है। अभाव मे भैंस का भी ग्राह्य है। वहुत से सिद्ध तैलो को पिलाने का उल्लेख है। पर साधारणतः एरण्ड तैल कई दृष्टिकोणो से पिलाने मे उत्तम है। पीनेवाला एरण्ड तैल या (कैस्टर आयल) अलग मिलता है। उसी का प्रयोग करना चाहिये। जलाने वाला नहीं पीना चाहिये। यह अशुद्ध होता है। मज्जा अलग वाजार मे उपलव्ध नहीं होती। यह लम्बी हड्डियो के भीतर होती है। लम्बी हड्डियो को दरदरा कूटकर पानी मे पकाने से तैरने लगती है। उसे नितार कर पुन. आंच पर रखकर उसका जलीयांश जलाकर केवल मज्जा प्राप्त कर लें।।

विना स्नेह के स्नेहन—

स्वतन्त्र स्नेह पीने मे कभी-कभी कठिनाई होती है। इसलिये पहले वताया गया है कि ऐसी अवस्था मे भात के साथ स्नेह प्रयोग करना चाहिये। उसी प्रकार घृत युक्त यवागू (अधिक तिल्ली कूट कर पर्याप्त घी, थोड़े चावल और पानी डालकर पकावें। चावल भलीभांति पक जाने पर यवागू तैयार है। यवागू साधन परिभाषा पथ्यापथ्य प्रकरण मे दी जा चुकी है, गरम-गरम खाने से तुरन्त स्नेहन करती है।

शक्कर और उष्ण घृत युक्त पात्र मे गाय का दूध दूहे। उसे तुरन्त पीयें। तो वह धारोष्ण दुग्ध भी तुरन्त स्नेहन करता है।

स्नेह पान के अयोग्य—

अजीर्ण, उदर रोग, नवज्वर, अरुचि, मूर्च्छा, नशा, वमन, प्यास और थकावट से युक्त, दुर्बल, वस्ति एवं विरोचन लेने वाले लोग, अकाल प्रसवा (नौ मास के पूर्व प्रसव वाली) नारी स्नेहपान के अयोग्य है। दुर्दिन अर्थात् वदली-वर्षा के समय भी स्नेह नहीं पीना चाहिये।

अत्यन्त स्नेहपान से उपद्रव—

आवश्यकता से अधिक व गलत ढंग से प्रयुक्त स्नेह भोजन से द्वेष, मुख से लाला स्राव, गुदा में दाह, प्रवाहिका, तन्द्रा (उहाई), अतिसार और पाण्डु (पीलापन) कर देता है।

स्नेह के उपद्रव या अजीर्ण की शंका—

स्नेह उपद्रव करेगा या वह पचा नही, इसकी तनिक भी आशंका होने पर तुरन्त कुछ अधिक मात्रा मे उष्ण जल पिलाना चाहिये। इससे स्नेह पचेगा, उद्गार शुद्धि तथ भोजन मे रुचि होगी।

यदि स्नेह नहीं पचे अथवा विष्टम्भ (दोष व मल की रुकावट) करे तो उष्ण जल पिलाकर वमन करा दें।

कभी-कभी पित्त प्रकृति वालो की अग्नि स्नेहपान से अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती है। इससे उन्हे अत्यन्त प्यास लगती है। उन्हे शीतल जल पिला कर वमन करा देने से प्यास शान्त हो जाती है। यदि वमन न हो तो वाद में उष्ण जल मे नमक मिलाकर पिलाकर वमन कराना चाहिये।

रूक्षता और स्निग्धता का वपचार—

रूक्षता का उपचार स्नेहन से करें। अधिक स्निग्ध हो जाने वाले को चना, सावा, कोदो, सत्तू आदि से रूक्ष करें। यह स्निग्धता स्नेहपान जन्य उपद्रव से नहीं अपितु क्रमश. अधिक स्नेहन करने से हो जाती है।

स्नेहपान के गुण—

सम्यक् रीति से स्नेहपान करने से वायु का अनुलोमन, दीप्ताग्नि, ढीला और चिकना पुरीष, कोमल और चिकना अंग, लघुता, इन्द्रियो की विमलता हो जाती है। कोई उपद्रव नहीं होता।

स्नेह-सेवन करने वाले का कोष्ठ शुद्ध रहता है। धातुयें पुष्ट होती हैं। वह जितेन्द्रिय और बल-वर्ण से युक्त होता है। उसे शीघ्र वुढापा नही आता। यह वात नाशन के लिये वहुत ही उत्तम है।

स्नेहपान का सच्चा सुख तो स्वेदन के बाद प्रतीत होता है। इस लिये स्वेदन प्रकरण भी पढ लें।

स्नेहपान के पथ्य—

स्नेह पान के बाद एकदिन उष्ण जल, मूंग या परवल का यूप, मण्ड, सोंठ, और आदी का व्यवहार होना चाहिये।

स्नेहपान में वर्जित पदार्थ—

स्नेहपान करने वाले लोगो को व्यायाम, शीत, जागरण, दिन मे शयन अभिष्यन्दी (स्रोतो मे चिपकने वाला द्रव्य यथा दही) और रूक्ष अन्न का सेवन नहीं करना चाहिये। उसे मल, मूत्र, वायु आदि के वेगो को भी नही रोकना चाहिये।

साधारण स्नेहन—

रोगी को तिल्ली के तेल से खूब मालिश करें। पचनेभर घृतयुक्त पदार्थ खूब खिलायें। उर्द एवं तिल भी खिलाया जा सकता है। ऐसा तीन दिन करने से भी स्नेहन के लक्षण मिलने लगते हैं।

स्वेदन—

स्वेदन का अर्थ होता है, शरीर से पसीना निकालना। स्नेहन करने से दोषो की पिच्छिलता (लसीलापन) नष्ट होती है। पिच्छिल दोष स्रोतों मे चिपके रहते हैं। पिच्छिलता नष्ट होते ही वे शिथिल हो जाते हैं। स्नेहन के पश्चात् स्वेदन करने से वे पिघल कर द्रव हो जाते हैं। तब उनके बाहर निकलने मे बडी सुविधा होती है। इस अवस्था मे वमन विरेचन कराने से या बिना इसके वे बाहर निकलते हैं। त्वचा के अनन्त रोमकूपो से भी दोष बाहर निकलते हैं। स्नेहन-स्वेदन दोनो से शरीर अत्यन्त मृदु हो जाता है। सौन्दर्य निखर जाता है। वायु की पीडा नष्ट हो जाती है। लगातार सात दिन या आवश्यकतानुसार इससे कम दिन स्नेहन कराने के बाद स्वेदन करायें। हम तो सुविधा और समय की बचत के लिये लगातार ३ दिन स्नेहन कराकर एक दिन स्वेदन कराते हैं। फिर बारी-बारी से स्नेहन और स्वेदन दोनो कराते हैं। हा यह अवश्य स्मरणीय है कि अन्तिम स्वेदन के बाद ५ दिन स्नेहन न कराया जाय तो उत्तम है।

स्वेदन के भेद—

इसके दो भेद होते हैं :—

(१) साग्नि—इसमें अग्नि की सहायता लेनी पड़ती है।

(२) निरग्नि—इसमे अग्नि की तनिक भी सहायता नहीं ली जाती।

व्यायाम, भारी ओढ़ना, युद्ध, गरम घर, सूर्य की किरणें, मार्ग गमन और चिन्ता आदि से स्वेदन किया जाता है। सामान्यत वात-कफ के रोगियो और बलवानो को साग्नि तथा पित्त की प्रधानता मे एवं सुकुमारो को निरग्नि स्वेदन कराया जाता है।

रूक्षता के दृष्टिकोण मे इसके तीन भेद होते हैं .—

(१) रूक्ष—इसके द्रव्य सब रूक्ष ही रहेंगे। यथा बालू। कफ के प्रकोप में इसका प्रयोग होता है।

(२) स्निग्ध—इसमे स्निग्ध द्रव्यो यथा उर्द, एरण्ड और माम आदि का उष्ण लेप आदि के रूप मे प्रयोग करते हैं। वात प्रकोप में इनका व्यवहार होता है।

(३) रूक्ष स्निग्ध—इसमे दोनो प्रकार के द्रव्यो का उपयोग होता है। कफ और वायु के मिश्रित प्रकोप मे इनका प्रयोग होता है। पर इसमे उचित यह है कि पहले रूक्ष स्वेद तत्पश्चात् स्निग्ध स्वेद का प्रयोग हो।

स्वेद विधियों के भेद—

ये सामान्यतः ४ प्रकार की होती है .—

(१) ताप स्वेद—यह स्वेद बालू, वस्त्र, हाथ, खपड़ा, गेंद (कपडे की) और अंगार से किया जाता है। अंगार तो अग्नि है ही। बालू, वस्त्र, खपडा, हाथ, गेंद को भी अग्नि से तप्तकर किसी रोग नाशक द्रव मे बिना बुझाये शरीर या अंग विशेष को तपाने के लिए प्रयोग करते हैं। इन द्रव्यो मे जैसी शक्ति होती है वैसा स्वेदन होता है। स्वेदन की आवश्यकतानुसार इन्हे तपाया या गरम किया जाता है। चोट लगने व हाथ पैर मुरक जाने आदि मे पीडा दूर करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं।

(२) ऊष्म स्वेद—इसकी तीन विधियां हैं .—

(क) किसी अम्ल (विशेषत काजी) मे भिगोये हुए कपड़े या कम्बल को शरीर या अंग-विशेष मे लपेट कर उसके ऊपर उसी अम्ल या कांजी मे बुझे हुए प्रतप्त लौह पिण्ड वा ईंट से सेंकते हैं।

(ख) वातनाशक द्रव्यो के उष्ण क्वाथ से घट को भर कर उसे सर्वथा बन्द कर देना चाहिये। बन्द घड़े के बगल मे छिद्र कर उसमे धातु, बास या काठ की नलिका फिट कर देनी चाहिये। फिर रोगी को भारी कपडा ओढा कर उसके भीतर नलिका का दूसरा मुख लेजाकर क्वाथ की वाष्प से स्वेदन किया जाता है। यह स्मरणीय है कि क्वाथ वाले घडे के नीचे पूरे स्वेदन काल तक आच दी जाती रहेगी जिससे वाष्प बनती रहे।

(ग) रोगी के विस्तार के बराबर गड्ढा खोद कर उसमे खैर या अन्य रोग-नाशक वृक्ष की लकडी जला कर उसे दूध, अम्ल विशेषत. कांजी, जल या रोगनाशक क्वाथ से बुझाकर वातनाशक पत्तो से ढक देना चाहिये। उसपर रोगी को सुलाने से स्वेदन होता है।

अधकच्चे उबले हुए उडद को वातनाशक लकडी के अंगार से तपी हुई पृथ्वी पर बिछा कर उसपर वातनाशक पत्तों को बिछा देते है। उसपर रोगी को सुलाने मे भी स्वेदन होता है। रोगी को भारी कपडा या कम्बल से अवश्य ढक देना चाहिये।

ऊष्म स्वेद विशेषत वात और कफ की व्याधियों मे किया जाता है।

उपनाह्—

वातनाशक औषधियो को वातनाशक द्रवो से पीस कर उसमे स्नेह और लवण मिला कर गरमा लेते हैं। फिर जब शरीर पर सहने योग्य हो जाता है तब उसका लेप कर स्वेदन करते हैं। इसी का नाम पुल्टिस है।

प्रसिद्ध महाशाल्वण स्वेद इसी के अन्तर्गत है। जिसमे ग्रामीण (मुर्गा बकरा भेंड) व जलीय (बत्तक, चकवा, मछली आदि) मांस, जीवनीय गण (द्रव्यगुणोक्त जीवनीय) दही, कांजी, क्षार, वीरतर्वादि गण (देखिये, सुश्रुत का द्रव्यगुण) कुलथी, उडद, गेहू, तीसी, तिल्ली, सरसो, सौंफ, देवदारु, स्यौडी, जीरा, रेड की जड और बीज, रास्ना, मूली, सहिजन, पीपर, बनतुलसी, पाचो नमक, अनारदाना, गन्ध प्रसारणी, असगन्ध, बरियरा दशमूल (द्रव्यगुण देखें), गुरुच व केंवाच के बीज इन औषधियो को यथा लाभ अधिकतम लेकर कूट कर तपा कर कपडे की पोटली मे बाध देते हैं। फिर उस पोटली से अंग विशेष को सेंकते हैं। यह एक स्थानीय वात रोगो के लिए उत्तम है।

द्रव स्वेद्—

३६ अंगुल गहरे और ६०[1] अंगुल लम्बे पात्र मे रोगी को अच्छी तरह बैठा कर उसकी नाभि तक वातनाशक द्रव्यो का उष्ण (सहने योग्य) क्वाथ भर दें। तत्पश्चात् उसके कन्धो पर अलग से लिये हुए (जिस क्वाथ मे रोगी बैठा है, उससे नहीं) उसी उष्ण क्वाथ की धारा डालें। यह कार्य तबतक करना चाहिये जबतक कि शरीर से पसीना न निकलने लगे।

इसी प्रकार क्वाथ के स्थान पर उष्ण (सहने योग्य) तेल, दुग्ध या घृत का भी व्यवहार होता है। इनसे स्वेदन के साथ स्नेहन भी होता है। (इसका तात्पर्य यह नही कि स्वेदन के पूर्व वाला स्नेहन रोगी को न कराया जाय, वह तो कराना ही पडेगा)

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ मे जल देने से वह बढता है उसी प्रकार स्नेह मे अवगाहन (अंगो को डुबाने) से शिराओ के मुख, रोमकूपो एवं धमनियो से गये हुए स्नेह से तृप्त धातुयें बढती है। यह वात-नाशन मे उत्तम स्वेद है।

---

[1] शास्त्र में ३६ अंगुल का भी यहाँ उल्लेख है। पर आप ६० अंगुल ही लम्बा पात्र लें।

चरक संहिता मे स्वेद की अन्य विधिया भी लिखी है।

विस्तार-भय से उनका विवरण लिखना यहा ठीक न होगा।

स्वेदन की अवधि—

शीत, शूल, जकडन और भारीपन दूर हो जायें, अग्नि दीप्त हो जाय तथा शरीर मृदु हो जाय तो स्वेदन क्रिया बन्द कर देनी चाहिए। एक ही बार के स्वेदन मे ये लक्षण कुछ-कुछ मिलने लगते हैं, पर इन लक्षणो के स्थायी होने तक स्वेदन करना चाहिये।

स्वेदन का पश्चात क्रम—

अच्छी तरह से स्विन्न पुरुष को तौलिया या किसी कपडा से भलीभाति पोछकर गरम जल से स्नान करा देना चाहिए। अभिष्यन्दी भोजन नही कराना चाहिए। लघु भोजन ही देना चाहिये। व्यायाम नही करना चाहिये। भारी एवं लसीले होने के कारण अन्नरस को वहन करने वाली नलिकाओ को रोक कर स्रोतो मे चिपक जाने वाले दही आदि द्रव्य को अभिष्यन्दी कहते हैं।

यह याद रखिये कि स्वेदन के बाद तत्काल ही हवा युक्त स्थान मे न जायं। २०–२५ मिनट के बाद जा सकते हैं। तेज हवा से वचिए।

साधारण स्वेदन—

पूर्वोक्त स्नेहन प्रकरण मे उल्लिखित साधारण स्नेहन तीन दिन कराने के बाद रोगी को प्रातः १० बजे के लगभग सुतरी से बीनी हुई चारपाई पर सुला दें। रोगी के शरीर पर लंगोट या जाघिया के अतिरिक्त कोई वस्त्र नही रहना चाहिये। चारपाई पर भी कोई कपडा न बिछा रहे। तकिया अवश्य लगा दीजिये। फिर गला के ऊपर का हिस्सा छोड़कर शेष सारा शरीर कम्बल या भारी कपडे से ढक दीजिये। यह कपडा चारपाई के नीचे चारो ओर जमीन तक लटकता रहे। जिससे चारपाई के नीचे किया हुआ धूंआ वाहर न जाकर रोगी के शरीर पर ही लगे। किसी छिद्र से धुंआ निकलने की सम्भावना हो तो उसे रोकें। तत्पश्चात् धूम्र-रहित आग पर गुग्गुल ५ तो० अजवाइन ३ तो० एवं गुड २ तोला डालकर चारपाई के नीचे बीच मे रख दें। यह ध्यान रखें कि आग बुझ न जाय और धुंवा बराबर निकलता रहे। यदि एक ही स्थान पर आग रक्खी रहने से रोगी को तकलीफ हो तो उसे चारपाई के नीचे ही इधर-उधर हटाते रहे।। पसीना होने पर एक कपडे से उसे रोगी भीतर ही भीतर पोछता रहे। जब पसीना सम्यक् रूप मे निकल जाय तो वस्त्र आदि हटाकर स्वेदन के पश्चात् वाला कर्म करें।

पहले स्वेदन के योग्य—

जिन्हे नस्य, वस्ति, वमन, विरेचन कराना है उन्हे इनके पहले ही स्वेदन कराना चाहिए। बवासीर, पथरी और भगन्दर रोग मे शस्त्र-कर्म (आपरेशन) कराना हो तो पहले ही स्वेदन करना चाहिये।

पश्चात् स्वेदन के योग्य—

मूढ गर्भ (अटका हुआ गर्भ) मे शस्त्र कर्म कराकर गर्भ निकालने के पश्चात् स्वेदन कराना चाहिये। पूर्ण काल अथवा अपूर्ण काल मे प्रसव हो तो भी उसके वाद स्वेदन कराना चाहिये। प्रत्येक आपरेशन के वाद स्वेदन हितकर होता है।

स्वेदन के योग्य—

पहले और वाद मे जिन्हे स्वेदन कराया जाता है वे सभी स्वेदन के योग्य हैं। इनके अतिरिक्त वातव्याधि, आमवात, उदरशूल, कण्टकवेध आदि से युक्त रोगी स्वेदन के योग्य है।

दृष्टि, अण्डकोष एव हृदय पर स्वेदन करना हो तो अल्प स्वेदन करना चाहिये। सर्वांग मे पसीना निकालना हो तो इन स्थानो पर कमल या केला का पत्ता अथवा गीला कपडा रख देने से घवडाहट आदि नही होती।

स्वेदन के अयोग्य—

अजीर्ण, प्रमेह, उरःक्षत, अतिसार, रक्त-पित्त, पाण्डु, उदर, मद और गर्भ से युक्त लोगो और दुर्वल तथा प्यासे को स्वेदन नही कराना चाहिये। यदि इन्हे स्वेदन करना अनिवार्य ही हो तो मृदु स्वेद कराना चाहिये।

अति स्वेदन के उपद्रव—

अत्यधिक स्वेदन करने से दाह, प्यास, सुस्ती, चक्कर, रक्तपित्त, फुन्सिया एवं संधियो मे पीडा होने लगती है। तव शीतोपचार द्वारा इन उपद्रवो को शान्त करना चाहिये।

स्वेदन के योग्य देश और काल—

स्वेदन सर्वदा निर्वात स्थान में करना चाहिये। निर्वात का तात्पर्य यह है कि रोगी को सीधी और तेज हवा न लगे। उसको श्वास प्रश्वास लेने योग्य वायु मिलती रहे। भोजन पच जाने पर ही स्वेदन होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से प्रातः ९-१० वजे का समय उत्तम है। इसके पूर्व अनिवार्य हो तो हलका जलपान ७ वजे करा देना चाहिये।

वमन—

स्नेहन, स्वेदन कराने के पश्चात् पञ्चकर्म कराना चाहिए। जिसका पहला कर्म है, वमन अर्थात् कय या उलटी कराना। इसमें आमाशय और वक्ष (छाती) प्रदेश के दोष वाहर निकलते हैं। कफ दोष को जीतने के लिए यह अत्युत्तम उपाय है। इसलिए कफ के रोगों मे इसका प्रयोग करना चाहिये। यह स्मरणीय है कि पंचकर्म जीर्ण रोगो तथा रसायन एवं कायाकल्प के लिए अधिक उपयोगी है। नये रोगो की साधारण परिस्थिति में कभी-कभी ही इसके एक-एक कर्म का प्रयोग होता है, सो भी लघु रूप मे। अन्यथा इनके विना भी काम चलाया जाता है। जैसे वमन का मुख्य उद्देश्य है, मुंह

के मार्ग से कफ को निकालना। सामान्य खासी मे बिना वमन के भी कफ निकाल कर रोग मुक्त किया जाता है। उत्कट तथा जीर्ण खासी मे वमन ही श्रेयस्कर होता है। यदि सम्भव हो और काल प्रतीक्षा के कारण कोई आपत्ति न हो तो वमन का श्रेष्ठ काल वसन्त ऋतु है। क्योकि इस समय कफ के स्वाभाविक प्रकोप होने से उसके निकलने मे बडी सरलता होती है। शरद् एवं प्रावृट् (वर्षा) ऋतु मे आवश्यकता पडने पर वमन कराया जा सकता है। यह सर्वदा ध्यान रखिये कि पंच-कर्म के लिए दुर्दिन (वर्षा, बदली) आदि अहितकर है, इन्हे बचा कर ही पंचकर्म करना चाहिये। यदि अनिवार्य आवश्यकता हो तो दुर्दिन मे भी इन्हे कराना पडता है। परन्तु ऐसी व्यवस्था की जाती है कि दुर्दिन हानि न कर सके। जैसे कमरा गर्म रखना, रोगी को गरम वस्त्र पहनाना, औषधि व अन्न से उष्णता की रक्षा करना एवं रोगी को कमरे के बाहर न निकलने देना आदि। विष से युक्त या तुरन्त भोजन करने से उत्पन्न ज्वर के रोगी को वमन कराना हो तो तुरन्त वमन कराना चाहिये।

वमन के योग्य—

विष आदि अनिवार्य परिस्थिति को छोड़ कर जिसे वमन सात्म्य (आत्मा के अनुकूल) हो सके, जो धीर चित्त हो, बलवान और कफ से व्याप्त हो उसी को वमन कराना चाहिये। उसे उत्क्लेश (जी मचलाना) होना आवश्यक है क्योंकि इसके हो जाने पर वमन सरलता से होती है। बिना इसके कठिनाई से वमन होती है। वमन के पूर्व यह प्राय. स्वाभावत. होती है। निम्नलिखित रोगो मे वमन कराना चाहिये।

विष दोष (दाहक तेजाब आदि पीने वाले को वमन न करायें), स्त्री को दुग्ध दोष मे और नवको मन्दाग्नि, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, वीसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, चक्कर, विदारिका, अपची, कास, श्वास, पीनस, वृद्धि (अन्त्रवृद्धि आदि) (अपस्मार मृगी) ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासिका तालु ओष्ठ का पाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतीसार, मेदा रोग, अरुचि और पित्त श्लेष्मरोग।

इन रोगो का परिचय एवं इनकी किस अवस्था मे वमन कराना चाहिये, यह विषय आगे रोग प्रकरण मे यथास्थान मिलेगा।

वमन के अयोग्य—

तिमिर (नेत्ररोग), गुल्म, उदर, उर क्षत, मद, उदावर्त्त, ऊर्ध्वग रक्तपित, पाण्डु-रोग, क्रिमिरोग, पढने से उत्पन्न स्वर भेद के रोगी, गर्भिणी, अत्यन्त कृश, वृद्ध एव कफ से व्याप्त हो तो वमन कराना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी अवस्था मे वामक द्रव्यो मे मुलहठी का संयोग कर दिया जाय तो उत्तम है।

वमन कराने का विधान—

स्नेहन-स्वेदन करने के बाद रोगी को भरपेट यवागू (देखिये पथ्या-पथ्य) दूध, दही, तक्र मे से कोई एक खिलावें या अन्य कफकारक असात्म्य (घृणोत्पादक) भोजन

करायें। इससे दोष उत्क्लिष्ट (ऊपर की ओर उछलना) होता है, तत्पश्चात् वामक औषधि पिलाना चाहिये। फिर रोगी को जानु के बराबर ऊँचे आसन (कुर्सी) आदि पर बैठा कर उसके गले मे भीतर की ओर एरण्ड के नाल (पत्ते के डण्ठल) या नखकटी अंगुली से तबतक स्पर्श करे जबतक वमन न होने लगे। मुंह मे हाथ डाल कर अंगुली से जिह्वा के मूल मे गुदगुदाने जैसी क्रिया दृढतापूर्वक करिये। एकाध मिनट करने से रोगी घबडा जाय और वमन प्रवृत्त न हो तो हाथ बाहर निकाल कर पुन वही क्रिया करें। अब वमन होने लगेगी। इस समय रोगी के ललाट, पसवाडो, को सुहराते रहे, पंखा भी झलते रहे। वमन हो जाने के पश्चात् उष्ण जल से कुल्ला कराकर मुंह धुला कर उसे ताम्बूल आदि मुख शोधक पदार्थ खिला दें। यथासम्भव जर्दा-सुर्ती न खिलायें। न काम चलने पर उत्तम कोटि का हृद्य पदार्थो तथा स्वर्णपत्र आदि से युक्त जर्दा खिलायें। अब उसे आराम करने के लिए लिटायें। पर्याप्त समय तक अर्थात् जबतक वह सुस्थिर न हो जाय तबतक लेटा रहने दें। उत्तम उत्क्लेश कारक उपाय करने एवं विधान का सही ढंग से पालन करने से प्रायः एक ही वमन के अन्त मे हरा या पीला पित्त निकलने लगता है। यही उत्तम वमन का विशिष्ट लक्षण है।† यदि एक वमन मे ऐसा न हो तो एक या दो दिन रुक कर पूरे विधान से पुनः वमन करायें। दूसरी या तीसरी वमन मे तो निश्चित ही पित्त निकलता है। यह स्मरणीय है कि वमन के लिए अधिकतम वीभत्स (घृणोत्पादक) द्रव्यो एवं उपायो का अवलम्बन करना चाहिये।

वमन कराने के लिए सामान्य औषधि—

सामान्यत. मैनफल के भीतर की मीगी (बीज) का काढा सेंधा नमक व मधु मिला कर पिलाने से वमन होता है। पर विभिन्न दोषो या रोगो मे तत्तद्रोगनाशक वामक औषधि का प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। हम तो प्रत्येक रोग एवं प्रत्येक दोष मे मैनफल क्वाथ का ही आश्रय लेते हैं। पर कफ रोगो मे सेंधा नमक और मधु मिला देते हैं। पित्त-रोगो मे परवल की पत्ती, अडूसा की पत्ती या निम्ब की छाल में से किसी एक अथवा तीनो के काढा मे मैनफल की मींगी पका कर पुन. काढ़ा करते हैं। श्लेष्मयुक्त वात में गाय के दूध मे ही मैनफल की मीगी का क्वाढा कर देते हैं। यथासम्भव स्वतंत्र वातरोग मे वमन नही कराते।

औषधि तैयार करने की विधि—

मनफल की कुटी हुई मीगी आधा पाव सवा सेर जल मे डाल कर मिट्टी के बडे पात्र मे काढ़ा कर आधा जल बचा लें। फिर जल छान कर एक तोला सेंधा नमक,

† यह विशेष लक्षण निर्विवाद है। जहा तक वेगों का प्रश्न है वहा एक वार के औषधि पान स ८ वार वमन होने से उत्तम वेग ६ वार होने से मध्यम वेग एव ४ वार होने से हीन वेग कहा जाता है। साधारणत विशिष्ट लक्षण पर ही ध्यान दे। वेगों का चक्कर पचकर्म विशेषज्ञो के लिए है।

एक तोला मधु, एक तोला मुलहठी मिलाकर भलीभांति मथ देना चाहिये। बस औषधि तैयार है। इसमे से यथेच्छ पिला दीजिये। प्राय अधिकतम आधा सेर या तीन पाव पर्याप्त होता है। यह याद रखिये कि पिलाते समय कुछ उष्ण अवश्य रहना चाहिये। काढ़ा करते समय मैनफल से बहुत अधिक झाग निकलता है। अत पात्र बडा होना श्रेयस्कर है। आंच भी मन्द ही होनी चाहिये। यदि दूध मे पाक करना है तो भी जल के ही परिमाण से उसे ग्रहण करें। परवल, निम्ब, अडूसा आदि का व्यवहार करना हो तो पहले क्वाथ साधन परिभाषा से काढ़ा बनायें। यह भी स्मरणीय है कि वामक औषधि बचने पर भले ही फेंक दी जाय परन्तु पिलाते समय कम न पडे। वामक औषधि पीते समय ही अधिकतर लोगो को वमन का वेग आने लगता है, अत. जहां तक हो शीघ्रता मे मात्रा के अन्तर्गत अधिकतम औषधि पिला देनी चाहिये। यदि उसमे बच जाय तो उसे फेंके नही बल्कि वेग से जरा भी अवकाश मिले तो पुन जो कुछ पी सके पिला दें, सेंधा नमक, मधु व मुलहठी के स्थान पर अन्य कल्क या चूर्ण भी मिलाना हो तो वह ४ तोला से अधिक न होना चाहिए। पित्त के रोग मे शीतल वामक औषधि पीने का विधान है पर कई दृष्टियो से वहां भी वह कुछ उष्ण हो तो उत्तम है।

उत्तम वमन के लक्षण—

हृदय, कण्ठ और शिर की शुद्धि, दीप्ताग्नि, लघुता और कफपित्त का विनाश ये उत्तम वमन के लक्षण हैं। रोगी को तंद्रा (उंहाई) निद्रा, संग्रहणी एवं विष रोग पीडित नहीं करते।

कम वमन के लक्षण—

कम वमन होने से मुंह से लार गिरना, हृदय की जकडन, शरीर मे खुजली और चकते हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे पुन. यथाविधि वमन करायें।

अति वमन के लक्षण—

अत्यन्त वमन होने से तृष्णा, हिचकी व डकार होने लगते है। रोगी की जिह्वा बाहर निकल जाती है, आंखें खुली रह जाती हैं, जबडे जकड जाते हैं, रक्त की वमन होने लगती है तथा कण्ठ मे पीडा होती है।

दो चार डकार से घबडाये नही। अधिक आये तो मृदु विरेचन करा दें। लवंग चूर्ण हिचकी और डकार दोनो को कम करता है। इसकी एक मात्रा २ या चार रत्ती है। प्यास अधिक लगती हो तो लाल चन्दन पानी मे घिस कर पिलायें। रक्त निकलने पर आगे वर्णित रक्त पित्त के विधान का पालन करें। जबडा जकडने पर वात व्याधि मे वर्णित हनुस्तम्भ की चिकित्सा करें। आख खुली रहने पर घी से धीरे-धीरे पलको को मल कर उन्हे आंख बन्द होने की दिशा मे लायें, जिहवा बाहर निकली हो तो उसमे तिल्लो और मुनक्का का कल्क लगा कर भीतर की ओर करें। यदि वह भीतर प्रविष्ट हो गयी हो तो अम्ल, नमकीन और कुछ स्निग्ध वस्तुओ की चटनी या

मृदु गोली चुभलाने को दें। अन्य व्यक्ति उसके सामने किसी बहाने उसको आकृष्ट कर खट्टे पदार्थ खायें।

यह स्मरणीय है कि अधिक वमन के उपद्रव यदि शान्त न होते हो तो विरेचन अवश्य करायें। पंचकर्मों मे वमन कुछ अधिक क्लेश दायक होता है। क्योंकि यह कर्म एक प्रकार से विपरीत कर्म होता है। पर सम्यक् स्नेहन, स्वेदन, उत्क्लेश एवं विधान होने पर न्यूनतम कष्ट होता है।

सम्यक् वमन होने के पश्चात्—

अपराह्न मे अग्नि प्रदीप्त होने अर्थात् भूख लगने पर हृदय को प्रसन्न करने वाले सुसंस्कृत मूंग का यूष और पुराने अरवा या साठी चावल का भात खिलायें। मांस का भक्षण करने वाले जंगली पशुओ यथा हरिण का मांस भक्षण करें। भूख न लगने पर भूख जगाने का प्रवन्ध कर पथ्य दें।

यह स्मरणीय है कि वमन कराने का सामान्य काल प्रात. १० वजे के भीतर है।

वमन के वाद अपथ्य-अजीर्ण, ठण्डा जल, व्यायाम, मैथुन, स्नेह की मालिश या अधिक घृत आदि का सेवन (पथ्य के सस्कार के लिए थोडे घृत का प्रयोग होगा) एवं क्रोध, इन सवका प्रयोग एक दिन अथवा दुर्वलता रहने तक न करें।

विरेचन

विरेचन शब्द शरीर से वाहर करने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इसलिए नासिका द्वारा शिर का दोष वाहर निकालने के कारण नस्य को शिरोविरेचन, वमन को ऊर्ध्व विरेचन और मूत्र अधिक निकालने को मूत्र विरेचन कहते हैं। परन्तु यह शब्द गुदा द्वारा पुरीष. (मल) निकालने के लिए अधिक प्रयुक्त होता है। और, इसी अर्थ मे रूढि भी हो गया है। सामान्य परिस्थितियों मे विना स्नेहन, स्वेदन एवं वमन कराये विरेचन कराया जाता है। परन्तु वहुत उत्तम है कि कुछ न कुछ स्नेहन, स्वेदन करने के वाद ही विरेचन कराया जाये। पंचकर्म के दृष्टिकोण से तो विना स्नेहन, स्वेदन एवं वमन कराये विरेचन नहीं ही कराना चाहिए। स्नेहन—स्वेदन से मल पिघल कर शिथिल होता है। और, अत्यन्त सरलता से निरापद रूप मे वाहर आ जाता है। वमन विना कराये विरेचन कराने से अमाशय की श्लेष्मा नीचे आकर ग्रहणी और अन्त्र को आच्छादित कर देती है। जिससे मन्दाग्नि या प्रवाहिका (आंव पडना या पेचिस) हो जाती है। तव उस रोग की अलग से चिकित्सा करनी पडती है या पाचन औषधियो से कफ का पाचन करना पडता है।

विरेचन के योग्य—

जीर्णज्वर, गरविष, वातरक्त, भगन्दर, अर्श, (ववासीर) पाण्डुरोग, उदर रोग, ग्रन्थि, हृद्रोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, प्लीह-वृद्धि, व्रण, नासा शिर मुंह-गुदा-लिंग

के रोगी, अन्त्र वृद्धि, शोथ, नेत्ररोग, क्रिमिरोग, वातव्याधि शूल, मूत्राघात से पीडित लोग विरेचन कराने के योग्य हैं। अधिक क्षार सेवन से हुए उपद्रव मे भी विरेचन हितकारी होता है। पित्त के रोगो (नवज्वर को छोडकर) मे विरेचन सर्वश्रेष्ठ उपाय बताया गया है। एक दृष्टिकोण से सभी रोगो का कारण पेट की अशुद्धि या शौच का शुद्ध न होना बताया गया है। इसलिए विरेचन के अयोग्य जनो एवं परिस्थितियो को छोडकर सभी रोगो मे विरेचन द्वारा उदर शुद्धि पर ध्यान देना चाहिये। इसके शुद्ध रहने पर सर्वांग निर्विकार रहेगा।

विरेचन के अयोग्य—

वालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, अतिस्थूल, उर क्षत, क्षीणता, भय, प्यास, थकावट, गर्भ नवज्वर, मन्दाग्नि, मदात्यय और शल्य से पीडित को विरेचन नही कराना चाहिये। नवप्रसूता स्त्री एव रूक्ष को भी विरेचन नही देना चाहिए। इन लोगो में विरेचन अनिवार्य होने पर भी मृदु विरेचन दिया जाता है पर अपेक्षाकृत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। अनिवार्यता का तात्पर्य उस परिस्थिति से है जिसमे विरेचन के अतिरिक्त अन्य उपाय सम्भव नही है।

कोष्ठ का विचार—

कोष्ठ का तात्पर्य यहा केवल उदर से है। इसका विचार करना विरेचन के लिए अत्यावश्यक है। विरेचन के दृष्टिकोण से कोष्ठ तीन प्रकार का होता है —

(१) मृदु कोष्ठ—पित्त प्रधान लोगो का कोष्ठ मृदु या कोमल होता है। इन्हें मुनक्का, दूध, श्वेत निशोथ या ऐरण्ड तैल आदि मृदु द्रव्य से विरेचन हो जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि सामान्यत वालक का कोष्ठ मृदु होता है।

(२) मध्यकोष्ठ—कफ प्रधान लोगो का कोष्ठ मध्य श्रेणी का होता है इन्हे काली निशोथ, कुटकी, अमलतास की गुद्दी, त्रिफला क्वाथ या गोमूत्र आदि मध्यम श्रेणी के विरेचक द्रव्यो से विरेचन हो जाता है। इस कोष्ठ की विरेचक औषधियो मे सोठ, मिर्च और पीपर डाल देना उत्तम होता है।

(३) क्रूर कोष्ठ—वात प्रधान लोगो का कोष्ठ क्रूर होता है। ये दुर्विरेच्य होते हैं। इनमें तीक्ष्ण द्रव्यो यथा शुद्ध जयपाल (जमालगोटा का वीज), सेहुण्ड का दूध या स्वर्ण क्षीरी (भडभाड) के दूध से विरेचन होता है। इन्हे अपेक्षाकृत अधिक स्नेहन और स्वेदन की आवश्यकता होती है। तीक्ष्ण द्रव्यो मे जमालगोटा का प्रयोग अधिक होता है। यदि सुविचारित और सुव्यवस्थित ढंग से इसका प्रयोग किया जाय तो इसका प्रयोग निष्फल नहीं होता।

मात्रा—

मात्रा के सम्बन्ध मे हम बहुत पहले विचार कर चुके है। ऊपर कोष्ठ और मृद्वादि द्रव्यों को बात वता चुके हैं। कुल मिलाकर औषधि की मात्रा ऐसी होनी

चाहिए जिससे सम्यग् विरेचन हो जाय। मध्यम श्रेणी के विरेचक द्रव्यों के क्वाथ साधन परिभाषा के विधान मे सिद्ध क्वाथ की मात्रा मृदु कोष्ठ के लिए दो तोला, मध्यम कोष्ठ के लिए चार तोला एवं क्रूर कोष्ठ के लिए ८ तोला बतायी गया है। यदि इन औषधियो का कल्क, गुटिका या चूर्ण देना हो तो मृद्वादि कोष्ठो के लिए क्रमश एक तोला, दो तोला और चार तोला होना चाहिए। इनका महपान मधु और घी है। इन मात्राओ का नाम क्रमश. मृदु मात्रा, मध्यमा मात्रा और श्रेष्ठा मात्रा है। यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त मात्रा आजकल देने योग्य नहीं है। आजकल के दृष्टिकोण से उनका आधा ही प्रयोग कीजिये।

तीक्ष्ण द्रव्यो की मात्रा रत्तियो मे होती है। शुद्ध जमालगोटे की मात्रा हमारे विचार से अधिकतम २ रत्ती, सेहुण्ड दुग्ध की मात्रा ४ रत्ती है।

मृदु द्रव्यो मे मुनक्का २०, उष्ण दुग्ध एक सेर, सफेद निशोथ ६ माशा, ऐरण्ड तैल २ तोला, गुलकन्द २ तोला पर्याप्त है, क्रूर कोष्ठ के लिए ऐरण्ड तैल एक-एक छटाक या आध-आध पाव तक भी दिया जाता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से कोष्ठ और मात्रा का सुव्यवस्थित निर्णय आप एक रोगी मे एक बार में ही कर सकेंगे। ठीक विचार करने पर सामान्यत पहली ही बार का आपका निर्णय ठीक होगा। यदि वह ठीक न हुआ तो विशेष हानि होने की सभावना नहीं। इस प्रकरण के पूरा पढ लेने पर आप हानि होने पर सम्भाल भी सकेंगे और दूसरी बार उसी रोगी के लिए कौन सी मात्रा दी जाय, इसका निर्णय करने मे आपको सुविधा होगी।

वेगो के दृष्टिकोण से एक बार औषधि पान से तीस बार दस्त होने से उत्तमा मात्रा, बीस बार दस्त होने से मध्यमा मात्रा एवं दस बार दस्त होने से हीनामात्रा कही गयी है। आज-कल सामान्यत. १० बार, या वेग, से ही पर्याप्त मल निकल जाता है।

आप वेगो के चक्कर को अलग रख दें। केवल इतना ही देखें कि दस्त के अन्त मे कफ निकल रहा है कि नहीं। यदि कफ निकलने लगे तो आप समझिये कि अब कोष्ठ मे मल नहीं रहा। क्योकि यह कफ आमाशय (अन्त्र के ऊपरी भाग से यह जुडा रहता है) से आता है। जिस रोग मे आम (आव) पहले से ही निकल रहा है उसमे पहले जो आँव निकलता है वह कच्चा कफ है। उसके निकल जाने पर मल निकलता है। तत्पश्चात् आमाशय वाला कफ निकलता है। इसलिए ऐसी अवस्था में पहले ही आव या कफ निकलता समझ कोष्ठ शुद्धि समझने का भ्रम न करें।

मल की अवस्था से औषधि भेद

स्रंसन—

जो औषधि पकने योग्य व अन्त्र मे सटे हुए मल को बिना पकाये नीचे की ओर ले जाती है उसे स्रंसन कहते हैं, जैसे अमलतास की गुद्दी।

भेदन—

दोषो द्वारा बघे हुए अथवा बिना बघे हुए मल को जो औषधि तोड कर गुदा से बाहर करती है उसे भेदन औषधि कहते हैं, जैसे कुटकी।

रेचन—विपक्व अथवा अपक्व मल को जो औषधि द्रव कर गुदा से बाहर निकालती है उसे रेचन औषधि कहते है, जैसे निशोथ।

कुल मिला कर मल की उपर्युक्त अवस्थाओ पर विचार कर औषधि देने से अधिक लाभ होता है। जहा मल सटा हो वहा स्रसन औषधि, जहा मल की गाठे बंध गयी हो वहा भेदन औषधि एवं जहा अपक्व या पक्व या गाठदार किसी भी मल को निकालना हो वहां रेचन औषधि का प्रयोग करना उत्तम होता है।

विरेचन औषधि ग्रहण करने पर सावधानी—

यह ध्यान रखिये की वामक औषधि घृणोत्पादक ही लाभ करती है। परन्तु विरेचक औषधि ठीक इसके विपरीत होनी चाहिये। अर्थात् उससे घृणा न उत्पन्न और न जी मचलाये। उससे वमन न हो जाये अन्यथा लाभ के बदले हानि होगी। जहा उन्माद आदि मे वमन और विरेचन दोनो अभीष्ट हो वहा भी विरेचक औषधि देने से वमन विरेचन दोनो होना उचित नही, पर उससे विशेष हानि नही होती। जहा केवल विरेचन ही अभीष्ट है, वहा औषधि अनुपान एव समस्त परिस्थितियो का घृणा रहित होना आवश्यक है। गुलकन्द, मुनक्का, दूध, निशोथ त्रिफला आदि औषधिया ऐसी हैं कि जिनके सेवन करने पर सामान्यत : जी नही मिचलाता। अत उन्हे ग्रहण करने पर वमन नही होती। पर शुद्ध जमालगोटा, सेहुण्ड का दूध, कुटकी, एरण्ड तैल आदि औषधिया अस्वादु होती हैं। इनसे वमन होने की आशंका है। अत इनके अनुपान मे नीम्बु-रस युक्त चीनी का उष्ण या शीत शर्बत बहुत उत्ताम होता है। शेष के लिये उष्ण जल, उष्ण दूध या उष्ण क्वाथ उत्तम होता है। प्रत्येक विरेचन औषधि और अनुपान ग्रहण करने पर ताम्बूल, लवंग, इलायची आदि मुखशोधक पदार्थ अवश्य खाना चाहिये।

यह स्मरणीय है कि जमालगोटा या उससे युक्त औषधि विरेचनार्थ ग्रहण करने पर ठण्ढा जल या ठण्ढा अनुपान पीने मे विरेचन सम्यक् होता है। उष्ण जल या उष्ण अनुपान पीने से विरेचन मे बाधा होती है।

विरेचन औषधि ग्रहण करने पर निर्वात स्थान (जहा श्वास ग्रहण योग्य सम्यक् वायु हो पर तेज या शरीर पर सीधे हवा न लगती हो) में रहना चाहिये। लेटिये, आराम करिये पर निन्द्रा न आने पाये अन्यथा वेग कम हो जायेगा। आये हुये वेग (हाजत) को नहीं रोकना चाहिये। तुरन्त मलत्याग करना चाहिये। जमालगोटा को छोड कर शेष औषधियों में ठण्डा जल नही पीना चाहिये। बारम्बार उष्ण जल पोना चाहिए। जब तक दस्त के वेग लगते रहें तब तक भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिये।

विरेचन के बाद उष्ण जल से हाथ मुंह धोकर यूष, पतली खिचडी या उचित पथ्य ग्रहण करें। याद रखें, पथ्य मे घृत, तैल आदि स्निग्ध पदार्थ न पड़ा हो अन्यथा अग्नि-

मान्द्य हो जायेगा। हां संस्कार (छौंकना, बघारना) के लिये न्यूनतम घृत या तैल का व्यवहार हो सकता है। पथ्य ग्रहण करने के बाद मुख शोधक पदार्थ ग्रहण कर आराम करें। परिश्रम, चिन्ता, मैथुन व्यायाम तैल की मालिश अजीर्ण, शीतल जल का सेवन न करें। तबतक जबतक कि शरीर स्वाभाविक स्थिति मे न आवे। स्वाभाविक स्थिति में आने मे लगभग दो-तीन दिन लग जाता है। बहुधा विरेचन होने के दूसरे दिन मल नहीं निकलता या अल्प निकलता है। उससे घबडाना नहीं चाहिये। वह स्वयं दो दिन मे यथाक्रम भोजन करने से ठीक हो जाता है। यथाक्रम भोजन का तात्पर्य उचित भोजन दाल-भात रोटी, तरकारी आदि से है। पर ये गरिष्ठ न हो व भली-भांति पच जाय, इस पर ध्यान रखें। भात अरवा या साठी चावल का, दाल या यूष मूंग, मसूर अथवा अरहर का होना चाहिये।

उत्तम विरेचन का लक्षण—

शरीर मे लघुता, मन की प्रसन्नता, वायु का अनुलोमन यह सब लक्षण सम्यग् विरेचन होने पर तत्काल प्राप्त होते हैं। बाद मे इन्द्रियो मे बल, बुद्धि मे प्रसन्नता, अग्नि दीप्ति, धातुओं और वय की स्थिरता (बुढापे के लक्षण का शीघ्र न आना) होती है।

न्यून विरेचन होने पर (यथोचित मात्रा से कम दस्त होने से) नाभि मे अकड़न, उदर में शूल, मल और वायु का निरोध, खुजली, चकत्ता, भारीपन, जलन, चक्कर, अरुचि और आध्मान (पेट फूलना) हो जाता है।

ऐसी अवस्था मे अमलतास की गुद्दी, सोंठ आदि खिला कर मल का पाचन करें। तत्पश्चात् स्नेहन कर विरेचन करें। इससे सब उपद्रव शान्त हो जायेंगे। अग्नि दीप्ति और लघुता होगी।

अधिक विरेचन होने पर (यथोचित मात्रा से अधिक दस्त होने पर) मूर्छा, गुदभ्रंश (कांच निकलना), शूल, आमाशय की कफ का अधिक निकलना होता है। मल मांस धोवन, मेदा (चर्बी), जल, के समान निकलता है। रक्त भी कभी-कभी किसी रोगी मे निकलने लगता है।

ऐसी अवस्था में दस्त को रोकने का प्रयत्न करें। अतिसाराधिकार मे लिखित मल ग्राही उपायो यथा सिद्ध गान्धार आदिका प्रयोग करें। नाभि पर गाय की दही या कांजी मे पिसी आम की छाल का लेप करें। मसूर की दाल या यूप से अरवा या साठी चावल का भात खिलायें, अथवा दही से खिचडी या भात खिलायें।

दस्त किसी प्रकार न रुक रहा हो तो अनार का उष्ण या पुटपक्व रस पिलायें, फिर भी बन्द न हो, तो चावल के धोवन के अनुपान से मधु मिश्रित मृदु वामक औषधि पिला कर वमन करा दें।

यह पुन याद रखें कि अत्यधिक वमन होने पर विरेचन करा देने से दोषो की गति नीचे हो जाती है और वमन बन्द हो जाता है। ठीक उसके विपरीत अधिक दस्त होने से वमन करा देने पर दोषो की गति ऊपर हो जाती है और दस्त बन्द हो जाते हैं।

कुछ विरेचक औषधियां—

हम साधारणतया मृदु या मध्यम विरेचन के लिये ऐरण्ड तैल का व्यवहार करते हैं। इस तैल के सम्बन्ध मे आमवात अधिकार भी देखें। तीक्ष्ण विरेचन के लिये शार्ङ्गधर संहिता का नाराच रस प्रयोग करते हैं। अधिक काम करने के लिये नाराच को नीबू के शीतल शर्बत के अनुपान से देने के पश्चात् मुनक्का का ठण्डा क्वाथ या मुनक्का पका कुछ उष्ण दूध पिला देते हैं। कुछ उष्ण इस लिए कि शीतल दूध पीना उचित नहीं।

सभी ऋतुओं के लिये त्रिफला चूर्ण उत्तम विरेचन है। इसे कभी-कभी लेने से बहुत लाभ होता है। इसका सामान्य अनुपान उष्ण जल है। त्रिफला का तात्पर्य बड़ी हरड, बहेरी, आंवला के चूर्ण से है। इनकी गुठली निकालने के बाद बचे हुए फल के हिस्से का चूर्ण समान होना चाहिये।

ऋतुओं के अनुसार विरेचन—

प्रत्येक ऋतु के लिए अलग-अलग विरेचन औषधि इस प्रकार हैं।

वर्षा ऋतु (सावन-भादो) में विरेचनार्थ निशोथ, सफेद इन्द्र जौ, पीपर और सोठ के समभाग चूर्ण को मधु मे मिला कर मुनक्का के क्वाथ से सेवन करें। साधारण मात्रा ६ माशा।

शरद ऋतु में—

शरद ऋतु (क्वार-कातिक) में विरेचनार्थ सफेद निशोथ, यवासा, नागर मोथा, शक्कर, सफेद चन्दन और मुलहटी का समभाग चूर्ण मुनक्का क्वाथ से सेवन करें। सामान्य मात्रा ६ माशा।

हेमन्त ऋतु—

हेमन्त ऋतु (अगहन-पूस) मे विरेचनार्थ सफेद निशोथ, चिता, पाठा, जीरा, वालबच और स्वर्णक्षीरी (भडभाड) की जड के छिलके का समभाग चूर्ण उष्ण जल से पीयें। मात्रा ३ माशा से ६ माशा।

शिशिर और वसन्त ऋतु—

शिशिर (माघ-फागुन) और वसन्त ऋतु (चैत-वैसाख) में पीपर सोठ, सेंधा नमक, और काली निशोथ का समभाग चूर्ण मधु के साथ चाटकर उष्ण जल पीयें। मात्रा ६ माशा।

ग्रीष्म ऋतु—

ग्रीष्म-ऋतु (जेठ-आषाढ) मे विरेचनार्थ सफेद निशोथ और शक्कर का समभाग चूर्ण उष्ण जल से पीयें। मात्रा ६ माशा।

वात दोष के लिये विरेचन—

वात दोष मे स्निग्ध, उष्ण एवं नमकीन पदार्थों से विरेचन देना चाहिये।

पित्त दोष के लिये विरेचन--

पित्त दोष मे कषाय एवं मधुर पदार्थो से विरेचन कराना चाहिये।

कफ दोष के लिये विरेचन--

कफ दोष मे कटु पदार्थों से विरेचन करायें।

वस्ति

वस्ति मूत्राशय को कहते हैं। यत: प्राचीन काल मे इस कर्म के लिए पशुओ का मूत्राशय प्रमुख साधन था। इसलिये इसका नाम वस्तिकर्म पड गया, जो आज तक प्रचलित है। नवीन चिकित्सा[1] प्रणाली मे एनिमा, कैथिटर या विभिन्न यन्त्रों के द्वारा गुदा, मूत्राशय, योनि, सिरा आदि में द्रव्यो का जो प्रवेश कराया जाता है वह सब वस्ति कर्म के ही अन्तर्गत है।

यह स्वास्थ्य रक्षा एव आरोग्य लाभ के लिये अत्यन्त उपयोगी कर्म है। अधिकाश रोग वात मे सम्बद्ध होते हैं। वात के लिये यह सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए केवल इसे चरक संहिता मे समस्त चिकित्सा का आधा कहा गया है। इसका अनुभव कर लाभ उठाना जनता एवं चिकित्सको का कर्त्तव्य है।

वस्ति के भेद—

गुदा में प्रयुक्त होने वाली दो वस्तिया हैं।

१—निरूहण या आस्थापन वस्ति—

कषाय क्षार और तेल द्वारा जो वस्ति दी जाती है उसे निरूहण या आस्थापन वस्ति कहते हैं। इसका प्रमुख कार्य मल को बाहर कर दोषो को यथास्थान स्थापित करना है। इसलिए इसका नाम आस्थापन पडा। इसके भेदो पर हम आगे प्रकाश डालेंगे।

आजकल एनिमा का प्रयोग इसी के स्थान पर होता है। क्षार के स्थान पर क्षीर शब्द भी मिलता है। इसलिये कि इसमें कभी-कभी क्षीर का प्रयोग भी होता है पर क्षार का प्रयोग बहुधा होता है।

२—अनुवासन या स्नेह वस्ति—

केवल स्नेह के द्वारा जो वस्ति दी जाती है उसे अनुवासन या स्नेह वस्ति कहते हैं। इसका प्रमुख कार्य शरीर को स्नेह द्वारा वासित करना है। यह मल को भी कुछ निकालती है पर स्नेह द्वारा शरीर को वासित कर शक्ति बढाने का काम अधिक करती है। इसका एक भेद मात्रा वस्ति भी है।

---

१ पचकर्म के श्लोक में विरेचन के बाद नस्य लिखा है। पर यहा विरेचन के बाद वस्तियों का वर्णन अधिक उचित है। इसलिए कि इनका मुख्य उददेश्य भी कोष्ठ शुद्धि ही है।

नस्य तो शिरोविरेचन है। इसका वर्णन पचकर्म के अन्त में होगा।

मूत्रवाही एवं प्रजनन संस्थान के लिए प्रयुक्त होने वाली एक वस्ति है, जिसका नाम उत्तर वस्ति है। इसके द्वारा मूत्रमार्ग, योनिमार्ग, मूत्राशय एवं गर्भाशय का प्रक्षालन होता है तथा इनमे औषधि का प्रवेश कराया जाता है। व्रण शोधन एवं उसमे औषधि प्रवेश कराने के लिए भी एक वस्ति प्रयुक्त होती है। जिसका नाम व्रणवस्ति है।

शिर पर औषधि दान के लिए एक वस्ति का प्रयोग होता है जिसे शिरो वस्ति कहते हैं। इसके साधन मे मूत्राशय का प्रयोग नही होता, चमडे का प्रयोग होता है।

इस प्रकार कुल मिला कर वस्ति के निरूहण वस्ति, अनुवासन वस्ति, उत्तर वस्ति, व्रण वस्ति और शिरो वस्ति ये पांच भेद होते हैं। पर विभिन्न कार्यों एवं सिर आदि विभिन्न अगो पर प्रयुक्त होने के दृष्टिकोण से बहुत से भेद होते हैं। इस पुस्तक मे हम निरूहण, अनुवासन, उत्तर एवं शिरो वस्ति का ही वर्णन करेंगे।

वस्ति यन्त्र—

वस्ति यन्त्र के दो भाग होते हैं–

एक वस्ति कोष या थैली और दूसरा नेत्र या नलिका। वस्ति या कोष हरिण, बकरा, सूअर, बैल, या भैंस के मूत्राशय का बनता है। इनमे हरिण, बकरा और सूअर का मूत्राशय छोटा होता है, इसलिये उसे उत्तर वस्ति के लिए अथवा अनुवासन वस्ति आदि जहा थोडा द्रव्य प्रविष्ट कराने की आवश्यकता हो, ग्रहण करना चाहिए। निरूहण वस्ति या अधिक द्रव्य के लिए बैल या भैंसे का मूत्राशय ग्रहण करना चाहिए। मूत्राशय के अभाव मे उत्तम कोटि का चमडा लेकर उसकी थैली या कोष बनवाना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि मूत्राशय या चमडा कषाय रग से रगा कोमल, चिकना और मजबूत होना चाहिये। चमडे का काम करने वालो से उसे उत्तम बनवाना चाहिये। मूत्राशय को उलट कर उसके भीतरी भाग को भी स्वच्छ कर लेना चाहिये।

नेत्र या नलिका स्वर्ण आदि धातु, लकडी, बास, नरकट, हाथी दात, सींग या मणि आदि मे से किसी का अत्यन्त चिकना बना हो। ६ वर्ष तक, ८ वर्ष तक और ८ वर्ष के ऊपर के लोगो के लिए नेत्र या नलिका क्रमश ६ अगुल, ८ अगुल और १२ अगुल लम्बा होना चाहिए। यह गोपुच्छ के समान थैली की ओर मोटा एवं दूसरी ओर क्रमश पतला होना चाहिये। थैली की ओर का भाग मूल एव दूसरी ओर का भाग अग्र भाग कहा जाता है। मूल रोगी के अगूठे के बराबर मोटा एव अग्र भाग रोगी की कनिष्ठा (कानी) अगुली के बराबर मोटा होना चाहिये। अग्रभाग गुटिकाकार हो नोकीला न हो। ऐसा होने से वह भीतर क्षत न कर सकेगा। अग्रभाग के भीतर का छिद्र उपर्युक्त आयु वालो के लिए क्रमश मूग, मटर और झरबेरी की गुठली निकलने योग्य होना चाहिये। नेत्र के चौथे भाग मे मूल की ओर दो कर्णिका बनानी चाहिये।

द्रव्य को थैली मे भर कर कर्णिका को थैली मे डालकर थैली को बाहर से कर्णिका के ऊपर और नीचे कस कर बाध देना चाहिये। ऐसा करने से वस्ति देते समय नेत्र सरक कर थैली के बाहर न जा सकेगा। बस यन्त्र तैयार है।

व्रण वस्ति का नेत्र चिकना ८ अंगुल लम्बा और गिद्ध पक्षी के पक्ष नलिका के समान मोटा होना चाहिये।

शिरो वस्ति के लिए मूत्राशय या थैली या नेत्र की आवश्यकता नहीं। बस एक आठ अंगुल चौड़ा उत्तम चमड़ा शिर के चारों ओर लपेटने से डेढ़ा लम्बा होना चाहिए। उसके ऊपर बांधने के लिए मजबूत सूत होना चाहिए। नीचे वाली सन्धियों को बन्द करने के लिये उरद की पीठी चाहिए। बस शिरो वस्ति का यन्त्र तैयार है। चमड़े को शिर पर लपेट कर नीचे बाहर की ओर से सूत से कस कर बांध दें। भीतर की ओर (चमड़ा और सिर के बीच में) उरद की पीठी इस प्रकार भली-भांति लगा दें जिससे सिर पर डाला हुआ तेल चूकर बाहर न निकल सके। उचित यह है कि सिर पर चारों ओर जहा चमड़े को बांधने के लिये सूत बांधा जाता है वहां पहले से उरद लगा दिया जाय। तब चमड़ा लगा कर बांध दिया जाय। ऐसा करने से तेल चूने की सम्भावना नहीं रहती।

वस्तियों में मूत्राशय या चमड़े के स्थान पर रबड़, सेल्यूलाईड, प्लास्टिक आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। नेत्र के लिये भी गेटापार्चा या रबड़ आदि का उपयोग हो सकता है।

कुल मिला कर उपर्युक्त वस्ति यन्त्र प्राचीन है, इसमें थैली को दबा कर द्रव्य को शरीर के भीतर प्रवेश कराते हैं। प्राचीन वस्ति यन्त्र को हमने वस्ति का रहस्य प्रगट करने एवं जानकारी के दृष्टिकोण से लिखा है और यह आधुनिक वस्ति यन्त्रों से कई दृष्टिकोणों से अधिक उपयोगी भी है। परन्तु इसका निर्माण झंझट एवं कई आपत्तियों को उत्पन्न करने वाला है, इसलिये विशेषज्ञ ही इसका उपयोग करें। साधारणजन एनिमा पात्र का प्रयोग करें।

आज कल एनिमा पात्र का प्रयोग मूत्राशय या चमड़े के स्थान पर होता है। नलिका या नेत्र के स्थान पर सामान्यतः रबर नलिका और गेटापार्चा का नोजल या नेत्र होता है। नेत्र से द्रव्य को चालू करने या रोकने के लिये पेंच जैसा अलग से रहता है। जो एक ओर रबर ट्यूब और दूसरी ओर नेत्र में फीट रहता है। गुदा और योनि के लिये पृथक्-पृथक् नेत्र होता है। मूत्रमार्ग के लिये कैथिटर का प्रयोग नेत्र के स्थान पर होता है। एनिमा-पात्र एवं नेत्र के स्थान पर पिचकारी का प्रयोग भी होता है।

विभिन्न प्रयोजनों एवं उपयोगिता के दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार के यन्त्र आज-कल व्यवहृत होते हैं। उन सबका वर्णन यहां समीचीन न होगा। सामान्य अवस्थाओं में सामान्य दृष्टिकोण से उपर्युक्त एनिमा-पात्र या ग्लीसिरिन की पिचकारी वाला यन्त्र अत्यन्त उपयोगी है। इसलिये उसी से काम चलायें।

बम्बई आदि के बाजारों में एक रबर के गोल पहिया जैसी थैली बिकती है, जिसमें नेत्र (नलिका) फिट रहता है। थैली में भरने के लिये विरेचनोपयोगी क्षार भी साथ ही मिलता है। क्षार को पानी में घोल कर थैली में नेत्र से भर देते हैं, फिर रोगी स्वयं स्निग्ध नेत्र को अपनी गुदा में घुसाता हुआ थैली पर बैठ जाता है। रोगी के दबाव से

सारा द्रव्य गुदा से भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इसमें का एक जे० बी० यल० का एनिमा के नाम से भी विकता है।

वस्ति देने का विधान—

पंचकर्म कराना हो तो विरेचन के सात दिन बाद शक्ति उत्पन्न हो जाने पर किसी दिन रात मे यथोचित साधारण सात्विक (या रोग के दृष्टिकोण से किया गया) भोजन करने के बाद रोगी थोडा भ्रमण करे। प्रात'काल मलमूत्र और अधोवायु आदि का परित्याग कर दतुअन-कुल्ला, स्नान आदि से निवृत्त होकर इष्टदेव का पूजन या सन्ध्या आदि अपने सम्प्रदायानुसार कर ले। तत्पश्चात् लगभग १२ बजे दिन वस्ति ग्रहण करे।[1] आपत्तिकाल में जब आवश्यकता पडे तभी वस्ति ग्रहण की जाती है। उसमे काल या उपयुक्त व्यवस्था का कोई प्रश्न नहीं उठता। यह स्मरणीय है कि वस्ति ग्रहण के पूर्व वस्ति द्रव्य यथोचित मात्रा मे तैयार रखें। वस्ति यन्त्र स्वच्छ और सुव्यवस्थित रहे। उसका अन्य उपकरण (गुदा और वस्ति नेत्र मे लगाने के लिए स्नेह आदि) भी प्रस्तुत रहे। अब एक ऐसे कमरे मे, जिसमे सीधी हवा रोगी के शरीर पर न लगे, जमीन या चौकी पर रवड क्लाथ या मोमजामा या अन्य चादर पर रोगी को बायें करवट सुला दें। उसका बाया पैर फैला एवं दाहिना पैर संकुचित रहे। एनिमा पात्र मे यथोचित मात्रा मे उष्ण वस्ति देने के लिए तैयार किया कुछ द्रव्य या स्नेह डाल दें। रहित रोगी की वाल से गुदा एवं वस्ति नेत्र मे घी, ऐरण्ड तैल, वेसलीन, तिल्ली वा सरसो के तेल मे से कोई चिकना द्रव्य लगा दें। वस्ति नेत्र पर के पेंच को घुमा कर जरा सा वस्ति द्रव्य को गिरा दें। तत्पश्चात पेंच बन्द कर वस्ति नेत्र को धीरे से गुदा में सीधे प्रवेश करा कर पेंच को खोल दें, जिसमे द्रव्य गुदा के भीतर प्रविष्ट हो सके। अब एनिमा पात्र को किसी ऊचे स्थान पर स्थापित करदें, खूटी मे टांग दें या ऊंचाई पर हाथ मे लिए रहे। वस्ति द्रव्य गुदा के भीतर प्रवेश करने लगेगा, रोगी को अनुभव होगा कि गुदा के भीतर कुछ प्रविष्ट हो रहा है। अब एनिमा पात्र पर ध्यान दें। यह स्मरणीय है कि उसमे द्रव्य पूर्णतया न निकल कर कुछ अवशिष्ट अवश्य रहे, अन्यथा द्रव्य पूर्णतया चले जाने पर खाली नलिका से रोगी के पेट मे वायु प्रविष्ट होकर दुखदायी होगा। इसके लिए एनिमा पात्र के छिद्र तक द्रव्य पहुँचने के पहले ही नेत्र की पेंच बन्द कर देनी होगी। नेत्र को गुदा से निकाल कर रोगी को चित्त सुला दें। उसका हाथ-पैर तीन-चार वार संकुचित और प्रसारित कर फैला दें। कमर भी तीन वार उठा कर छोड दें। रोगी को ऐसा करने मे तकलीफ न होने पाये। अब उसे आराम करने के लिए छोड दें, उसे जब मल त्यागने की इच्छा हो तो वह तुरन्त मलत्याग करे। वेग रोकना नही चाहिये।

---

१ यह सामान्य काल निरूहण वस्ति का है अनुवासन वस्ति का काल उसके प्रकरण में पढ विरेचन के वाद अनुवासन वस्ति ही देनी चाहिये।

प्राचीन काल के यन्त्र मे वस्ति देना हो तो नेत्र को गुदा में प्रविष्ट कर थैली को दबा कर द्रव्य भीतर कराना होगा। शेष विधान आधुनिक यन्त्र के समान ही है। यद्यपि इसमे लाभ अपेक्षाकृत अधिक होते है, पर जन साधारण को इसके चक्कर मे फंसने की आवश्यकता नहीं।

सावधानी—

(१) गुदा में प्रविष्ट होते समय द्रव्य या अन्यान्य स्नेह कुछ उष्ण अवश्य हो। अधिक उष्ण या शीतल हानिकारक होगा।

(२) द्रव्य अधिक धीमी या तीव्र गति से गुदा मे प्रविष्ट न होकर मध्यम गति से जाना चाहिये। सामान्यत: सात-आठ फीट ऊंचा रखने पर ऐसा होता है। प्राचीन यन्त्र की थैली पर या ग्लीसरीन की पिचकारी पर मध्यम श्रेणी का दबाव[1] डालने से ऐसा होता है।

(३) कभी अधूरा द्रव्य या स्नेह के प्रविष्ट होते ही रोगी को मलत्याग करने का तीव्र वेग होता है, तब मल त्याग करा कर पुन यथाविधि अवशिष्ट द्रव्य प्रविष्ट करायें।

(४) नेत्र भीतर सीधे प्रविष्ट कराना चाहिये।

(५) कभी-कभी मल की गाँठें द्रव्य या स्नेह को भीतर जाने मे रोक देती है। विरेचन के बाद वस्ति देने से ऐसा नहीं होता। प्राय. जीर्ण रोग मे कभी-कभी ऐसा होता है। वहां कुटकी क्वाथ से विरेचन कराने के बाद वस्ति देनी चाहिये। बवासीर के रोगी मे भी कभी-कभी द्रव्य या स्नेह प्रविष्ट कराने मे बाधा पड़ती है, वहां अर्श अधिकार मे लिखी ओषधि द्वारा बवासीर के मस्सों को सुखाकर या मृदु कर वस्ति देनी चाहिये।

(६) वस्ति देने के बाद यन्त्र को उष्ण जल और साबुन से विधिवत् धोकर, सुखाकर सुरक्षित रक्खें।

(७) निरूहण, अनुवासन, उत्तर वस्ति एवं शिरो वस्ति के विधान को अलग-अलग पूर्णतया पढ़कर प्रयोग करें। व्रण वस्ति का प्रयोग साधारण जन न करें। इसीलिए इसका विधान यहा नही लिखा जायेगा।

अनुवासन वस्ति

अनुवासन के योग्य—

रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि एवं वात से पीडित लोग अनुवासन के योग्य होते हैं। यहाँ रूक्ष से तात्पर्य रोग या स्वभाव से उत्पन्न रूक्षता से है क्योंकि स्नेहन, स्वेदन तो रोगी का विरेचन के पहले होगा ही, उस स्नेहन से रोगी को स्निग्ध समझ कर अनुवासन के

[1] इस दबाव के सम्बन्ध में अनुवासन वस्ति वाला प्रकरण पढ़ें।

अयोग्य समझना ठीक नही, और फिर विरेचन के ७ दिन बाद अनुवासन वस्ति देनी होती है। जिससे पहले की स्निग्धता कम हो गयी रहती है।

अनुवासन के अयोग्य—

कुष्ठ, प्रमेह, उदर रोग, अजीर्ण, उन्माद, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, श्वास, कास, क्षय, शोक और भय से युक्त लोगो को अनुवासन वस्ति नहीं देनी चाहिए। अत्यन्त स्निग्ध भोजन के बाद भी अनुवासन वस्ति नही देनी चाहिये। नही तो मद, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, एवं ग्रहणी विकार होने की सम्भावना है। अत्यन्त रूक्ष भोजन के बाद भी अनुवासन वस्ति देने से बलवर्ण की हानि होती है।

अनुवासन का समय—

यदि वसन्त ऋतु मे अनुवासन करना हो तो अपरान्ह मे, ग्रीष्म, वर्षा, शरद मे रात्रि मे एवं हेमन्त शिशर मे मध्याह्न में अनुवासन वस्ति देनी चाहिये।

अनुवासन वस्ति के द्रव्य का मात्रा—

अत्यन्त रूक्ष और अत्यन्त तीक्ष्णाग्नि वाले रोगी के लिए उत्तम मात्रा देनी चाहिये। यह मात्रा २४ तोला की है। मध्यम श्रेणी के रूक्ष और अग्नि के रोगी के लिए मध्यमा मात्रा १२ तोला की है। कम रूक्ष एव दुर्बल अग्नि (अत्यन्त मन्दाग्नि वाले रोगी को अनुवासन का निषेध है) के लिए ६ तोला की हीन मात्रा है।

इन मात्राओ मे यदि स्नेह में सौंफ, शतावर या सेंधा नमक का चूर्ण छोडना हो तो उत्तम मात्रा के लिए ६ माशा, मध्यम मात्रा के लिए ४ माशा एवं हीन मात्रा के लिए २ माशा छोडना चाहिये। सौंफ या शतावर मिलाने से स्नेह की शक्ति अधिक होती है। सेंधा नमक मिलाने से उसका चिरविपाचन नष्ट होता है, साथ ही उससे वात नाशन मे सहायता मिलती है।

यह स्मरणीय है कि ८ वर्ष तक के बालक के लिए उतम मात्रा ६ तोला होगी। युवा या वृद्ध के लिए सामान्य मात्रा उपयुक्त मध्यमा मात्रा अर्थात् १२ तोला ही ठीक है।

इस प्रकार एक दिन का अन्तर देकर कम से कम ९ वस्ति अवश्य देनी चाहिए। इसके बाद पुनः ९ अनुवासन वस्ति दे दी जाय तो अत्यन्त लाभकारी होगा।

हीन मात्रा मे वस्ति द्रव्य होने से सम्यक् कार्य नही होता। अधिक मात्रा में देने से आनाह,[1] सुस्ती और अतिसार हो जाता है।

अनुवासन वस्ति के द्रव्य—

यह पहले ही लिख चुके है कि अनुवासन वस्ति स्नेह से दी जाती है। कोई वात नाशन तैल, जैसे नारायण तैल, दशमूल तैल, महामाष तैल या प्रसारिणी तैल उत्तम है।

---

१. अंतड़ियों की गति बंध जाने या रुक जाने को आनाह कहते हैं। इसमें मल और अधो वायु का निकलना बन्द हो जाता है, बहुत कष्ट होता है।

किसी विशिष्ट रोग के लिए वस्ति देनी है तो उस रोग की नाशक औषधियों से सिद्ध तैल का व्यवहार करें।

उत्तम अनुवासन वस्ति के लक्षण—

अधोवायु के साथ मल और वस्ति के द्वारा प्रविष्ट कराया हुआ स्नेह, बिना किसी उपद्रव के बाहर आ जाय तो समझना चाहिए कि अनुवासन वस्ति उत्तम रीति से लग गई है। यदि यह लक्षण न मिले और कोई उपद्रव भी न हो तो घबड़ाना नहीं चाहिये, क्योंकि ऐसा रूक्षता के कारण होता है। उपद्रव हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। वस्ति से होने वाली विपत्तियों की चिकित्सा चरक एवं सुश्रुत में लिखी हुई है। सामान्यतः अनुवासन वस्ति मे कभी-कभी एक उपद्रव यह होता है कि स्नेह और मल दोनो बाहर नहीं लौटते। परिणाम—स्वरूप शिथिलता, आध्मान (पेट फूलना), उदर शूल, श्वास, कष्ट, पक्वाशय (बड़ी आंत) में भारीपन हो जाता है। ऐसी अवस्था मे तुरन्त वायु को अनुलोम एवं मल तथा स्नेह को बाहर निकालने का प्रयत्न होना चाहिए। इसके लिए तीक्ष्ण द्रव्यों से निरूहण वस्ति देनी चाहिये। यह तत्काल सम्भव न हो तो तीक्ष्ण द्रव्यो से बनी फलवर्ती (देखिये प्रकरण का अन्तिम अंश) का प्रयोग करना चाहिये। इन दोनो उपायो से सिद्धि न मिलने पर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये। इन सबसे हारने पर छींक लाने के लिये नस्य का प्रयोग कीजिए। स्यात् (शायद) डूबते को तिनके का सहारा हो जाय।

यह स्मरणीय है कि अनुवासन वस्ति के लौटने की प्रतीक्षा अधिकतम २४ घण्टा करनी चाहिये। इस समय के बीतने पर भी यदि वह न लौटे तो चाहे कोई उपद्रव हो या न हो तो भी उसे क्रमश. निरूहण, फलवर्ती और विरेचन द्वारा निकालना चाहिए। किसी उपाय से उसके बाहर निकल जाने पर दूसरा उपाय करने की आवश्यकता नहीं। एक अनुवासन वस्ति के स्नेह के बिना लौटे दूसरा स्नेह किसी भी मार्ग से प्रवेश नहीं करना चाहिये।

यदि अनुवासन वस्ति देते ही तत्काल केवल स्नेह ही बाहर लौट आये तो तुरन्त दूसरी अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। क्योंकि कुछ काल तक बिना रुके स्नेह कोई लाभ नहीं करता।

पथ्यापथ्य—स्नेह मल के साथ निकल आये और दीप्ताग्नि हो तो हलका भोजन इच्छानुसार देना चाहिये। भोजन के पश्चात् उष्ण जल पिलाना चाहिये। भोजन के पूर्व भी आवश्यकता पड़ने पर उष्ण जल ही पिलाना चाहिये। जल के साथ-साथ सोंठ और धनिया का काढा भी उचित मात्रा में ३-४ बार सेवन कर लिया जाय तो बड़ा उत्तम है। यह स्नेह की विपत्तियो को नष्ट करता है।

शेष पथ्यापथ्य स्नेह पान (देखिये पूर्वोक्त स्नेहन प्रकरण) के समान है।

अनुवासन वस्ति से लाभ—

अनुवासन वस्ति से पुष्टि, वल, वर्ण, और आरोग्य की प्राप्ति होती है। यह वात रोगी के लिये सर्वश्रेष्ठ है। पहली वस्ति समस्त शरीर को स्निग्ध करती है। दूसरी वस्ति शिरोगत वायु को जीतती है। तीसरी वस्ति वलवर्ण को वढाती है। चतुर्थ और पंचम वस्ति रस-रक्त, छठवी मास, सातवीं मेदोधातु, एवं आठवीं व नौवी वस्ति मज्जा के दोषों को नष्ट करती है। इसका दूना अर्थात् १८ वस्ति लग जाने पर वीर्य तक की सभी धातुओ के दोष नष्ट हो जाते हैं। यदि ३६ वस्ति यथाविधि दे दी जाय तो हाथी घोडे के समान वल और देवता के समान वुद्धि की प्राप्ति होती है।

पिचकारी—

आजकल ग्लीसरीन [1] की पिचकारी द्वारा भी ग्लीसरीन (एक प्रकार का स्नेह) का प्रवेश कराने से मल स्निग्ध होकर वाहर निकलता है। इससे केवल इतनी ही सिद्धि हो सकती है, इससे अधिक नहीं। ग्लीसरीन के स्थान पर ऐरण्ड तैल की वस्ति मल निकालने के साथ वायु जीतने के लिये अन्य काम भी करती है।

फलवर्ती—

ग्लीसरीन के अभाव मे या ग्लीसरीन की वत्ती लगा कर भी काम निकालते हैं। यह प्रत्येक अंग्रेजी दवा की दूकानो पर विकती है। खरीदते समय रोगी को आयु वता देनी चाहिये। उसी दृष्टिकोण से विक्रेता वर्ती देगा। इसे रखना हो तो शीशे के पात्र मे विधिवत् ढक्कन लगा कर रखिये। नहीं तो गल जायेगी। इसके स्थान पर महुआ के बीज को वत्ती या सावुन की वत्ती भी लगायी जाती है। केवल तलाव-हींग की डली गुदा मे रखने से भी वायु का अनुलोमन होता है। सेंधा नमक-हींग एवं मधु वरावर पका कर वर्ती वना लें, यह भी अच्छा काम करती है। वच्चो को दस्त कराने के लिए अधिकतर फलवर्ती का प्रयोग होता है।

फलवर्ती का प्रयोग मूत्र-मार्ग एवं योनि-मार्ग मे भी होता है, इसके सम्वन्ध मे उत्तर वस्ति एवं स्त्री रोग में वर्णन होगा।

---

१ ग्लीसरीन लगाने की पिचकारी वाजार में मिलती है। इससे मध्यम दवाव से स्नेह प्रविष्ट कराना चाहिये। इसके एवं प्राचीन वस्ति के पात्र के दवाव के लिए ३० मात्रा का समय काफी है। ३० मात्रा के समय में लगभग १॥ मिनट होता है।

एक मात्रा शार्ङ्गधर संहिता में इस प्रकार वतायी गयी है —

जानु मण्डलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकया युतम्।
एका मात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष निश्चय ॥

अर्थात् दाहिने हाथ से एक वार दाहिना जानु [घुटना] घुमाकर चुटकी वजाने में एक मात्रा होती है।

निरूहण वस्ति

वस्ति प्रकरण मे इसके लक्षण, यन्त्र, विधान एवं समय आदि पर प्रकाश डाला गया है। यहा अवशिष्ट बातें लिखी जायेगी। यह जान लीजिये कि आज कल इस वस्ति का प्रचार सर्वाधिक है। प्रायः सभी सचिकित्सक तात्कालिक कार्यो एव स्थायी लाभ के लिये इसका प्रयोग कराते है। एनिमा शब्द का प्रयोग इसी के लिए होता है। साधारण पंचकर्म के दृष्टिकोण के अनुवासन वस्ति के बीच मे क्रमानुसार इसका देते है। कुछ विशिष्ट रोगो यथा उपनाह, उदावर्त, शूल और अम्लपित्त आदि मे इसका स्वतन्त्र व्यवहार होता है। शल्य क्रिया (आपरेशन) के पूर्व मल शोधन के लिए भी सामान्यतया इसका प्रयोग होता है। यह स्मरणीय है कि मल शोधन के दृष्टिकोण से यह सर्वाधिक सरल, निरापद और उपयोगी है। विभिन्न कार्यो एवं द्रव्यो के दृष्टिकोण से इसके बहुत से भेद हैं। जिनमे कुछ ये हैं--उत्क्लेशन, दोष हर, शोधन, दोष शमन, लेखन, बृंहण, पिच्छिल, मधु तैलिक, युक्त रथ, दीपन और सिद्ध वस्ति। इन्हे आप शार्ङ्गधर संहिता पढ कर अच्छी तरह समझ सकते है। यहा तो अत्यन्त आवश्यक बातें ही बतायी जायंगी।

निरूहण वस्ति के योग्य—

वात व्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषम ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदर रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी), बढा हुआ रक्त प्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्ल पित्त और हृद्रोग से पीडित लोग निरूहण वस्ति के योग्य होते है।

निरूहण वस्ति के अयोग्य—

अतिस्निग्धता, उर. क्षत, कृशता, आध्मान, वमन, हिक्का, अर्श, कास, श्वास, अतिसार, विसूचिका, कुष्ठ, मधुमेह, जलोदर से पीडित लोगो को निरूहण वस्ति नहीं करानी चाहिए। जिनके दोष ऊपर के मार्ग अर्थात् मुख आदि से निकलने को उद्यत हो और जिनकी गुदा मे शोथ (सूजन) हो उन्हे भी निरूहण वस्ति नहीं देनी चाहिये।

निरूहण वस्ति के द्रव्य—

सामान्यत डेढ सेर जल मे दो तोला कार बोलिक साबुन को कलईदार, एनामल अथवा मिट्टी के पात्र मे खौला लेते हैं। साबुन के जल मे भली-भाति घुल जाने पर जल में ऐरण्ड का तेल[४] २ तोला डालकर, मथकर, सबको भली-भाति हिलाकर एनिमा

---

४. कभी कभी तेल-जल के ऊपर आ जाने से जल के पूर्णतया भीतर न प्रवृष्ट होने के कारण गुदा में प्रविष्ट नहीं हो पाता है। इसलिए एनिमा पात्र में पहले ऐरण्ड का तेल डाल कर यथासम्भव अधिकतम उसकी रबड नलिका में प्रवेश करा कर ऊपर से साबुन घुला जल छोड़ कर पात्र को भर लें। अब वस्ति देने से तेल गुदा में प्रविष्ट हो गया। जो कुछ जल के ऊपर आ जायेगा वह भी जल के साथ गुदा के भीतर प्रविष्ट हो जायेगा। पात्र भर जाने पर अवशिष्ट जल को फेंके नहीं आवश्यकता पडने पर उसे तुरन्त दुबारा प्रविष्ट करा सकते हैं। आवश्यकता न रहने पर यदि तेल उसमें नहीं मिला है तो उससे पात्र धोये, तेल मिला हो फेंक द।

पात्र मे कुछ गरम (सहने योग्य) भर देते हैं। बस, इसी को वस्ति प्रकरण मे कहे विधान से गुदा में प्रविष्ट करा देते हैं।

यही द्रव्य साधारणत प्रयुक्त होता है। जल के स्थान पर त्रिफला (हर्रा, बहेरा और आंवला) का क्वाथ[1] प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है।

केवल साबुन युक्त जल या निम्बू स्वरस युक्त जल का भी व्यवहार होता है। अधिक या उपयोगी शोधन के लिए उपर्युक्त ऐरण्ड तैल युक्त घोल उत्तम है।

प्रत्येक अवस्था मे गुदा मे प्रवेश के समय द्रव्य का सहने योग्य उष्ण होना आवश्यक है। सामान्यत गुदा के भीतर एक सेर द्रव्य प्रविष्ट हो जाना उत्तम है। यह मात्रा युवा और वृद्ध के लिए है।

मात्रा भेद—

गुदा के भीतर प्रविष्ट होने वाले द्रव्य की उत्तम मात्रा एक सेर, मध्यम मात्रा ३ पाव और हीन मात्रा आधा सेर है। यह व्यवहारोपयोगी मात्रा है। शास्त्र से कुछ ही उपेक्षणीय अन्तर है।

निरूहण वस्ति लेने के बाद—

विधिपूर्वक निरूहण वस्ति ग्रहण करने के बाद रोगी मल त्याग के आसन से बैठे। तुरन्त मल वस्ति के द्रव्य के सहित बाहर आ जावेगा। यदि अधिकतम एक घण्टा के भीतर ऐसा न हो तो पुन जल या क्वाथ मे यथोचित मात्रा में क्षार, गोमूत्र, नीबू का रस और सेंधा नमक[2] मिलाकर यथाविधि वस्ति दें। इसके देने पर मल और द्रव्य बाहर आ जाता है।

उत्तम निरूहण के लक्षण—

निरूहण वस्ति देने के बाद क्रमश पुरीष (मल), पित्त, कफ और वायु बाहर निकले, शरीर मे लघुता एवं मन प्रसन्न हो, व्याधि नष्ट हो तो समझना चाहिए कि

---

१. यहाँ क्वाथ साधन परिभाषा का उपयोग न कर आधा पाव त्रिफला के दरदरा चूर्ण का ३ सेर जल में कलईदार या एनामल या मिट्टी के पात्र में काढा कर डेढ सेर जल बचा कर छान लें। यह बचा हुआ जल क्वाथ का काम देगा।

२ इनमें जो मिले उनका प्रयोग करे। पर कोई क्षार अवश्य होना चाहिये। क्षार के लिए यवक्षार या नवसादर या साबुन में से एक ग्रहण करें। यहाँ यवक्षार सर्वाधिक उपयोगी है, उससे कम उपयोगी नवसादर और सबसे कम उपयोगी साबुन होता है। साबुन की मात्रा बताई जा चुकी है। यवक्षार या नवसादर ३ माशा तक डाला जा सकता है। यदि क्षार से आंतों में रुक्षता उत्पन्न होने से कुछ कष्ट हो तो एक अनुवासन वस्ति से यह ठीक हो जायेगा। इसबगोल की भूसी ६ माशा जल में भिगो कर चीनी मिलाकर खाने से भी रुक्षता तथा अन्य उपद्रव ठीक होता है।

निरूहण वस्ति उत्तम हुई। निरूहण और अनुवासन दोनो उत्तम हो जाते हैं तो उपर्युक्त लाभ के अतिरिक्त शरीर मे कोमलता, चिकनाई, बल, एवं सौन्दर्य की वृद्धि भी होती है।

त्रिदोष के दृष्टिकोण मे निरूहण--

वात के रोगो मे स्नेह युक्त एक, दो, तीन या चार, पित्त के रोगो मे दूध के साथ दो और कफ के रोगो मे कषाय कटु रुक्ष आदि द्रव्यो से तीन निरूहण वस्ति, एक-एक दिन का अन्तर देकर लगातार देना चाहिए। सबके अन्त में एक अनुवासन वस्ति अवश्य देनी चाहिये।

यह स्मरणीय है कि सुकुमार, वृद्ध और बालको के लिए मृदु वस्ति हितकारी होती है। तीक्ष्ण वस्ति उनके बल और वर्ण को नष्ट कर देगी। उपर्युक्त साबुन जल, (या त्रिफला क्वाथ) एवं ऐरण्ड तैल वाली वस्ति मृदु है। नीबू भी मृदु है। गोमूत्र, यवक्षार, नवसादर और कटु द्रव्य तीक्ष्ण होते है।

पथ्या पथ्य--

सम्यक निरूहण के बाद उष्ण जल से स्नान कर लघु अन्न ग्रहण करना चाहिये। अनुवासन वाला पथ्यापथ्य करना चाहिये। दिन मे शयन और अजीर्ण न होने पाये। विशेष--वस्ति के लाभ तो निरूहण में सब मिलेगें ही किन्तु जहा मल रुकने के कारण शूल होने से रोगी तडप रहा हो वहा यह निरूहण वाली वस्ति तत्क्षण लाभ करती है।

उत्तर वस्ति

उत्तर वस्ति मूत्र मार्ग एवं योनि मार्ग मे दी जाती है। प्राचीन काल मे इसका प्रयोग स्नेह के द्वारा विशेष होता था। आज कल तो इसका प्रयोग सामान्यत योनि प्रक्षालन के लिये स्नेहातिरिक्त द्रव्य द्वारा होता है। स्नेह द्वारा उत्तर वस्ति का प्रयोग करने से मूत्र संस्थान[1] एव प्रजनन संस्थान के वात विकार नष्ट होते हैं। पुरुष मे वीर्य के दोष एवं स्त्री में आर्त्तवदोष नष्ट होते है। गर्भ धारण की अधिक क्षमता आ जाती है। नपुंसकता एवं वन्ध्यात्व दोष नष्ट होते हैं। प्रक्षालन से प्रदर, पूयमेह (सूजाक) एवं उपदंश (गर्मी) मे अत्यन्त लाभ होता है। प्रमेह मे इसका निषेध है। यह अच्छी तरह लग गयी, इसका लक्षण केवल इतना ही है कि इसका द्रव्य तुरन्त बाहर लौट आये। इसके भीतर रुकने से मूत्राशय या गर्भाशय फूल जाता है। उसमे पीडा भी होती है। यदि स्नेह का उपयोग हुआ है तो उपद्रव, उनकी चिकित्सा एवं पथ्यापथ्य स्नेह वस्ति के समान ही होगा। प्रक्षालन में प्रयुक्त वस्ति का वर्णन रोगानुसार होगा।

---

१ मूत्र संस्थान के अन्तर्गत शिश्न (लिंग स्त्रियों में मूत्रमार्ग) मूत्राशय, वृक्क या गुर्दा गवीनी (गुर्दा से मूत्राशय में मूत्र लाने वाली दो नलिकायें) गिनी जाती हैं। प्रजनन संस्थान के अन्तर्गत शिश्न (पौरुष प्रोस्टेट) ग्रन्थि शुक्र-प्रणाली, शुक्राशय एवं अण्ड कोष की गणना होती है। स्त्रियों में योनिमार्ग गर्भाशय डिम्ब ग्रन्थि एवं डिम्ब प्रणाली हैं।

स्नेह या द्रव्य बाहर नहीं आता तो हे शोधन या मूत्रल[1] द्रव्यो द्वारा पुन: वस्ति या फलवर्ती देनी चाहिये। यदि वस्ति देने से मूत्रसंस्थान या प्रजनन संस्थान मे दाह होता है तो क्षीरी वृक्ष[2] (वरगद, गूलर, पीपल, पकडी, पारिस पीपल या सिरिस) की छाल के काढे अथवा शीतल दूध से वस्ति दें।

किसी कल्क को कपडे पर दोनो ओर लेप कर फिर उसे लपेट कर या ऐंठ कर सूत्र से उसके चारो ओर वाव देते हैं, यही फलवर्ती है। शोधन द्रव्यो मे इन्द्रायण की जड प्रमुख है। यह बन्द मासिक-धर्म को भी खोलती है।

गुदा मे विरेचनार्थ लगाने के लिए भी ग्लीसरीन, कोइना (मधूक बीज), हींग, साबुन मे से किसी एक की वर्ती प्रयुक्त होती है। इसे भी फलवर्ती कहते हैं।

यन्त्र :—

इस वास्ते की थैली या पात्र तो अनुवासन वस्ति के समान होता है। नेत्र कर्णिका आदि भी सब वही होते हैं। केवल उसके नेत्र मे अन्तर होता है। इसको लम्बाई, मोटाई एवं छिद्र का परिमाण इस प्रकार है।

पुरुषो के लिये :—

नेत्र १२ अंगुल लम्बा, मालती के फूल के डण्ठल के समान मोटा एवं उसका छिद्र बड़ी सरसो के निकलने योग्य होना चाहिये। (बाजार मे पुरुषो के उत्तर वस्ति के लिए शीशे की पिचकारी[3] मिलती है। इसमे रबर का कैथिटर[4] लगा कर भी काम लेते हैं।)

स्त्रियो के लिये :—

१० अंगुल लम्बा, उनकी कानी (कनिष्ठा) अगुली के समान मोटा एवं मूंग निकलने योग्य छिद्र वाला स्त्रियो के योनि मार्ग के लिये होता है। इसे चार अंगुल प्रविष्ट कराना चाहिये।

आजकल योनिमार्ग प्रक्षालन के लिये अलग नेत्र (नोजल) मिलता है जो साधारणत: एनिमा पात्र के साथ मिलता है।

---

१ मूत्रल द्रव्य कलमी शोरा यवक्षार, नवसादर गोखरु पुनर्नवा तृणपंच मूल (कुश कास, सरपत, छोटा कुश, ईख की जड़ आदि हैं।

२ इनकी छाल को पंच वल्कल कहते हैं। इनके दूध, फल और अकुर (टूसा) का भी व्यवहार होता है।

३ यह कान धोने की शीशे की पिचकारी के नाम से मिलेगी।

४ रबर कैथिटर एक रबर की नलिका होती है। जिसके दोनों ओर छिद्र होते हैं। सामान्यत युवा के लिये ७ या ८ नम्बर का उपयोगी होना है।

मूत्र निकालने के लिये भी इसका उपयोग होता है। वहा एक या दो अगुल छोड कर सब भीतर प्रविष्ट कराया जाता है।

टेस्ट ट्यूब—

विज्ञानशाला मे प्रयुक्त होने वाली शीशे की परन्तु नलिका मे ही मैदी की ओर ५–७ छिद्र से युक्त पिचकारी एक रुपया में बिकती है। इस काम के लिए यह बड़ी उपयोगी होती है।

स्त्रियो के मूत्र मार्ग व पुरुषो के मूत्र मार्ग के लिए उपयोगी नेत्र का ही प्रयोग किया जाता है पर उसका प्रवेश दो अंगुल ही कराना चाहिये।

वालकों के लिये —

३ या ४ नम्बर का कैथिटर प्रयोग करते हैं। इसका प्रवेश १ या २ अंगुल होना चाहिये।

वस्ति द्रव्य की मात्रा—

सामान्यत योनिमार्ग के लिए २ छटाक द्रव्य (स्नेह नहीं अन्य तरल) पर्याप्त होता है। पुरुषो एवं स्त्रियों के मूत्रमार्ग के लिए डेढ छटाक पर्याप्त होता है। बच्चों के मूत्रमार्ग के लिए दो तोला पर्याप्त होता है।

यदि स्नेह का प्रयोग करना हो तो मूत्रमार्ग में पचीस वर्ष तक की आयु के लिए दो तोला इसके उपर चार तोला तक पर्याप्त है। योनिमार्ग मे १६ वर्ष के ऊपर एक छटाक पर्याप्त है।

विधान—

यन्त्र की तैयारी तो सामान्यत वस्ति कर्म के समान ही करें। नेत्र मे स्नेह भी लगा दें। रोगी को निरूहण वस्ति से शुद्ध कर स्नान भोजन आदि कराकर जानु तक ऊंचे आसन (कुर्सी) पर बैठा दें। उसके लिंग मे स्नेह से चिकना नेत्र धीरे-धीरे ६ अंगुल प्रविष्ट कराकर थैली को दवा कर द्रव्य प्रविष्ट करायें। यदि एनिमा पात्र हो तो उसे ऊंचे रख कर द्रव्य प्रविष्ट करायें। रोगी को सुला कर भी उत्तर वस्ति दी जाती है। पर वह उचित नहीं।

योनिमार्ग में उत्तर वस्ति देनी हो तो रोगिणी को चित्त सुला कर ही देना चाहिये।

उत्तर वस्ति के द्रव्यो के सम्बन्ध मे प्रमेह, पूय-मेह आदि रोगों के स्थलो पर लिखेंगे।

शिरोवस्ति

इससे शिर के दुर्जय वात जन्य रोग नष्ट होते हैं। शिर कम्प मे यह भी लाभ-दायी होती है। इसे प्रात काल विना भोजन कराये रोगी को धारण करना चाहिये।

यन्त्र और विधान—

१२ अंगुल चौडी रोगी के शिर पर एकदम फिट बैठने वाली उत्तम चमडे की विना छत की टोपी ही इसका यन्त्र है। कुर्सी या किसी सुखदायक आसन पर बैठे हुए रोगी के सिर पर टोपी को भलीभाति बैठा कर उरद की पीठी से सिर और उसकी सधि,

जहा से तेल चूकर नीचे गिर सकता है, पर सन्धि-लेप कर देना चाहिये। अब कुछ उष्ण रोग नाशक तेल ऊपर से भर दे। यह तैल तब तक रोगी सिर पर धारण करे जब तक कि उसकी नाक-मुंख या नेत्र से पानी का स्राव न होने लगे। अथवा, वेदना की शान्ति न हो जाय या १००० मात्रा (लगभग १ घण्टा) न बीत जाय। तत्पश्चात् तैल एक पात्र मे गिरा कर गरम जल से सिरे को भलीभाति धो डालना चाहिये। इसी तैल से अथवा यथोचित अन्य तेल मे दूसरे दिन पुन. शिरोवस्ति धारण करायें। इस प्रकार ५ या ७ दिन लगातार कराना पर्याप्त है।

विशेष—

यन्त्र को रबड, सेल्यूलाइड, प्लास्टिक आदि मे से सुविधाजनक किसी वस्तु का बना सकते हैं। तात्पर्य उसमे तेल धारण कराने से है।

इसके द्रव्यो को हम शिरो रोग मे निवेदन करेंगे।

नस्य

नाक द्वारा ग्रहण की गयी औषधि को नस्य या नावन कहते हैं। इस कर्म को नस्य कर्म कहते हैं। यह तीक्ष्ण (विष या उपविष न हो) द्रव्यो से सिद्ध स्नेह, कल्क क्वाथ या स्वरस मे दिया जाता है। जत्रु, अशक या हसली के ऊपर के रोगो यथा कफज स्वर भेद, अरुचि, प्रतिश्याय शिर शूल, दुष्ट प्रतिश्याय, सूजन, मृगी और कुष्ठ मे प्रयुक्त होता है। इसके दो भेद होते हैं।

(१)—रेचन :—यह आठ वर्ष के बालक से लेकर अस्सी वर्ष के वृद्ध तक मे प्रयुक्त होता है। जिन्हें अभ्यास होता है, वे मृत्यु तक लेते हैं। दोषो का कर्षण करने के कारण इसे कर्षण नस्य भी कहते है। इसके दो भेद होते हैं, एक अवपीड नस्य जो तीक्ष्ण द्रव्यो के कल्क को पीडित कर निकाले गये रस से दिया जाता है। दूसरा प्रधमन नस्य जो छ अंगुल लम्बी दोनो ओर मुख वाली नलिका से २-४ माशा [२] तीक्ष्ण द्रव्यो का चूर्ण मुख की वायु मे प्रधमित (फूंक) कर नाक मे दिया जाता है। इसमे हींग मिलाना हो तो एक रत्ती और सेंधा नमक मिलाना हो तो चार रत्ती मिलाना चाहिये।

(२)—स्नेहन .—इसे मधुर या सौम्य द्रव्यो से नस्य से डरने वालो, स्त्रियो, कृशो, (दुर्बलो) और बालको में प्रयोग करते है। यह घटे हुये दोष विशेषत कफ को बढाने के कारण बृंहण नस्य भी कहा जाता है। स्नेह या मधुर द्रव्यो से दिया जाता है। शिरनासा, आख के रोग[३], सूर्यावर्त्त, अधकपारी, दन्त रोग, दौर्बल्य, मन्या-बाहु-

---

१ इसकी मुख्य, मध्य एव अन्त्य (हीन) मात्रा नाक के दोनों छिद्रों में मिला कर क्रमश ८ ६ और ४ बूंद है। यह गले के रोग सन्निपात निद्राधिक्य, विषम ज्वर, मनोविकार एव नासागत किसी भी रोग में व्यवहृत होता है।

२ शार्ङ्गधर संहिता में इसकी मात्रा ८ माशा भी लिखी है, जो अत्यधिक है। यह नस्य अत्यन्त उत्कटदोष और बेहोशी में दिया जाता है

३ देखिये शिरो रोग।

कन्धे के रोग, मुख शोष (मुख का सूखना), कर्णनाद (कान मे शब्द की प्रतीति होना), वात पित्त के रोग व असमय मे बालो के पकने या गिरने मे प्रयुक्त होता है। वायु विकार मे वसा (चर्बी) एरण्ड तेल, नारायण तैल व माषादि तैल मे से किसी एक का व्यवहार किया जाता है, कफ विकार मे कफ नाशक द्रव्यो से सिद्ध तैल एवं पित्त रोग मे पित्त नाशक घी या मज्जा का प्रयोग होता है। इसके दो भेद होते हैं। —

एक मर्श नस्य जो सामान्यत रोगावस्था मे प्रयुक्त होता है। इसकी मुख्य, मध्यमा व हीन मात्रा नासा के प्रत्येक छिद्र मे ३२ शाण, १६ शाण एवं ४ शाण की[1] है। इसे दोष के बलाबल के अनुसार १, २, ३, ५ या ७ दिन अन्तर देकर प्रयुक्त करना चाहिये।

दूसरा प्रति मर्श नस्य है जो सामान्यत' स्वस्थावस्था मे प्रयुक्त होता है। इसकी सामान्य मात्रा प्रत्येक नासा छिद्र मे दो दो बूंद [2] की है। इसके लेने का १४ समय इस प्रकार कहा है। प्रात', दतुअन करने के बाद, घर से निकलते समय, व्यायाम, मार्ग गमन, मैथुन, मलोत्सर्ग, मूत्रोत्सर्ग, अंजन, कवल[3], भोजन, दिवाशयन, वमन के अन्त में तथा सायंकाल।

यद्यपि प्रतिमर्श नस्य का व्यवहार स्वस्थावस्था मे किया जाता है पर यह क्षीणता प्यास, शोष[4], जत्रु (अक्षक या हंसली) के ऊपर के रोग, मुह की झुरियों, बालो के पकने एवं बालक वृद्ध मे प्रयुक्त होता है। इस दृष्टिकोण से मर्श एवं प्रतिमर्श नस्य में इतना ही अन्तर देकर दिया जाता है और प्रतिमर्श नस्य दिन रात मे उचित होने पर कम से कम १४ बार दिया जा सकता है। इससे अधिक बार भी दिया जा सकता है।

नस्य का निषेध—

भोजन के अन्त [5] दुर्दिन, बदली, वर्षा और उपवास मे नस्य नही करना चाहिये। नया प्रतिश्याय (जुकाम), अजीर्ण, प्यास, क्रोध, शोक, गरविष [6] गर्मी से

---

१ तर्जनी अंगुली के दो पर्वों (गाठों) को स्नेह में डुबा कर निकालने पर जो एक बूद गिरता है उसी का नाम बूद है। ऐसे ८ बूद का एक शाण मर्श एवं प्रतिमर्श नस्य में होता है। मर्श की हीन मात्रा आजकल पर्याप्त मात्रा मानी जाती है।

बाजार में २ ४ पैसे का ड्रापर मिलता है जिससे एक एक बूद सरलता से निकलती है।

२ कुछ सुरकने से जब स्नेह मुख मे चला जाय तो प्रतिमर्श नस्य की तृप्त करनेवाली मात्रा समझनी चाहिये। कोई नस्य मुख में चला जाने पर घोटना नहीं चाहिये थूक देना चाहिये।

३ देखिये मुख रोग।

४ देखिये यक्ष्मा रोग।

५ प्रतिमर्श नस्य को छोड़ कर।

६ अन्न इत्यादि में प्रयुक्त वह विष जो धीरे धीरे अपना प्रभाव उत्पन्न करता है गरविष कहा जाता है।

दुक्त लोग नस्य के अयोग्य है। जो स्नेह जल-आसव पीये हो, स्नान कर चुके हो या स्नान करने की इच्छा रखते हो, मल मूत्रादि के वेग रोकते हों, वृद्ध या बालक हो, वस्ति ग्रहण किये हो, वे नस्य न ग्रहण करें।

नस्य का समय—

प्रतिमर्श नस्य के अतिरिक्त नस्यो के ग्रहण करने का सामान्य समय यह है—
कफ नष्ट करने के लिए—दिन के प्रथम प्रहर[1] (६ से १० बजे के बीच)
पित्त नष्ट करने के लिये—दिन के मध्य प्रहर (१० से २ बजे के बीच)
वात नष्ट करने के लिए—दिन के अन्तिम प्रहर (२ से ६ बजे के बीच)

यदि बीमारी उत्कट हो और तत्क्षण नस्य के बिना काम न चले तो किसी भी समय, यहा तक कि रात मे भी, नस्य दिया जा सकता है।

रेचन नस्य द्वारा उत्तम शुद्धि—

शरीर मे लघुता, मन की निर्मलता, मुख, नाक आदि स्रोतो की शुद्धि, शिरोरोगादि का नाश और इद्रियो की प्रसन्नता ये नस्य द्वारा उत्पन्न उतम शुद्धि के लक्षण हैं। ऐसी अवस्था मे एक बार गोघृत का नस्य ले लेना चाहिये।

रेचन नस्य से हीन शुद्धि—

खुजली, नाक, मुंह आदि स्रोतो में भारीपन और कफ या मुंह, नाक से स्राव ये शिर की हीन शुद्धि के लक्षण हैं ऐसी अवस्था मे कफ नाशक चिकित्सा अर्थात् वमन और रेचन नस्य करना चाहिये।

रेचन नस्य से अति शुद्धि—

मस्तुलुंग (मस्तिक के भीतर का कफ) का आगमन, वायु की वृद्धि, इंद्रियों की विकलता और शिर की शून्यता मे शिर की अति शुद्धि के लक्षण हैं। ऐसी अवस्था मे वात नाशक या बृंहण चिकित्सा करनी चाहिए।

यह चिकित्सा अन्यान्य उपायो के साथ ही स्नेहन नस्य द्वारा भी होनी चाहिये।

विशेष—

कुल मिला कर हीन शुद्धि मे दोषो के अति बढने के लक्षण मिलने से वहा शोधन एव और शुद्धि मे दोषों के अतिशय हीन होने के लक्षण मिलने से वहा बृंहण चिकित्सा करनी पड़ती है।

स्नेहन नस्य से अति स्निग्धता:—

स्नेहन नस्य द्वारा अति स्निग्धता हो जाने से नाक मुंह से कफ का स्राव, शिर का भारी पन, और इन्द्रियो की विकलता होती है। ऐसी अवस्था मे विशेषत. रूक्ष नस्य का प्रयोग होना चाहिये।

---

[1] यहा प्रहरों का निर्धारण दोषों के दृष्टिकोण से किया गया है अन्यथा प्रहर ३ घण्टे का होता है।

स्नेहन नस्य की विधि—

रोगी मुख और दांत की शुद्धि करने के बाद धूम्रपान के द्वारा मस्तिष्क और गले को स्विन्न कर दे। अर्थात् कुछ सेक लें। तत्पश्चात् इसको प्रवात (तेज हवा) और धूलि से रहित स्थान में उतान सुलाकर उसका सिर तकिया से पीछे की ओर लटका दें, हाथ-पैर फैला दें, आंखों को ढंक देना चाहिये। फिर वैद्य अपने बायें हाथ से उसके नासाग्र को कुछ उठा सोना चांदी आदि की सुतही से[1] अथवा रूई या सूती वस्त्र के स्वच्छ फाहे से कुछ उष्ण स्नेहन नस्य का द्रव्य बिनाधार टूटे रोगी की नासिका मे डाले।

नस्य लेते समय रोगी सिर न कपाये। क्रोध, भाषण और हास्य न करे। नस्य को बाहर छिनके भी नहीं। क्योंकि यह सब करने से स्नेह भीतर प्रविष्ट न होगा और खासी, श्वास कष्ट, शिरोरोग और नेत्र रोग हो जायेंगे।

नस्य लेकर नाक के भीतर शृंगाटक—नाक, आख और ललाट का मध्य प्रदेश या नाक पर जहा चश्मा अधिकतर टिकता है। मर्म पर पाच सात या दश मात्रा तक स्नेह धारण करें।[2] तत्पश्चात् बैठ कर मुख और नाक मे गये द्रव्य को अपने बाये दाहिने (सामने नही) थूक या छिनक दे।

नस्य कर्म मे त्याज्य—

नस्य क्रिया के बाद मानसिक सन्ताप, क्रोध और धूलि का सर्वथा त्याग करे। उतान १०० तक की गणना के समय तक सोयें। पर निद्राग्रस्त न हों। तत्पश्चात् यथा समय अनभिष्यन्दी[3] भोजन करें।

नस्य के द्रव्य—

सन्निपात ज्वर, मूर्च्छा, शिरोरोग और और नाना रोग मे विभिन्न प्रकार के नस्यों के द्रव्य लिखेंगे।

पंचकर्म का क्रम

शास्त्रीय विधान के अनुसार पंचकर्म में अत्यन्त अधिक काल लगता है। जो सामान्य परिस्थिति मे साध्य नहीं है। इस लिये निम्नलिखित क्रम के अनुसार कार्य करने से अपेक्षाकृत सरलता से काम हो जायगा। पंचकर्म के दृष्टिकोण से इससे पूर्व कहे हुए क्रम की अपेक्षा यह क्रम अधिक व्यावहारिक मानें।

---

१ एक पात्र जिससे ग्रामीण मातायें बच्चों को दूध पिलाती हैं बहुधा उसे पीठ की ओर रगड़ कर छेद कर आम इत्यादि का छिलका उतारती हैं।

२ एक मात्रा में लगभग ३ सेकेण्ड लगते हैं। इस प्रकार दश मात्रा भी कम है। न्यूनतम १० मिनट तो लगना ही चाहिये।

३ भारी और लसीला होने के कारण स्रोतों को ढकने वाले द्रव्य अभिष्यन्दी कहे जाते हैं, जैसे दही। इस गुण से रहित पदार्थ अनभिष्यन्दी कहलाते हैं।

सर्व प्रथम तीन दिन लगातार स्नेहन, तत्पश्चात् लगातार ३ दिन स्वेदन करना चाहिये। स्वेदन की समाप्ति के दूसरे दिन ही वमन देना चाहिये। वमन के दूसरे दिन ही पूर्वान्ह मे स्नेहन तत्पश्चात् स्वेदन करना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन पूर्वान्ह में स्नेहन तत्पश्चात् स्वेदन करते हुए वमन के दिन के बाद तीन दिन व्यतीत करें। इन तीन दिनो के बाद चौथे दिन पुन दूसरा वमन करायें। वमन के दूसरे दिन मे पूर्वोक्त क्रम से ही तीन दिन स्नेहन स्वेदन करें। फिर चौथे दिन तीसरा वमन कराये। अब वमन की आवश्यकता नही। इसके बाद ३ दिन साधारण लघु आहार विहार करे। फिर तीन दिन पूर्वोक्त क्रम से स्नेहन स्वेदन करें। चौथे दिन प्रथम विरेचन दें। इसके दूसरे दिन से तीन दिन तक स्नेहन स्वेदन करायें। फिर चोथे दिन तीसरा विरेचन दें। अब विरेचन की आवश्यकता नही।

इसके बाद ६ दिन तक साधारण लघु आहार विहार करें। फिर सातवें दिन प्रथम अनुवासन वस्ति दें। इस अनुवासन के दूसरे दिन मे लगातार तीन दिन तक निरूहण वस्ति दें। फिर चौथे दिन दूसरा अनुवासन दें तत्पश्चात् दूसरे दिन से लगातार तीन दिन निरूहण कर तीसरी अनुवासन वस्ति दें।

इस प्रकार वात व्याधि मे ९ या ११
पित्तज व्याधि मे ५ या ७
कफज व्याधि मे ४ अनुवासन वस्ति दें।

तत्पश्चात् दूसरे दिन से लगातार तीन दिन सूर्योदय के पूर्व तक नस्य दें।

उदाहरण के रूप मे आप क्रम को यों समझें

दिनाक १ २, ३ अक्टूबर	स्नेहन
,, ४, ५, ६ अक्टूबर	स्वेदन
,, ७ अक्टूबर	प्रथम वमन
,, ८-९-१० अक्टूबर	स्नेहन व स्वेदन
,, ११ अक्टूबर	द्वितीय वमन
,, १२-१३-१४ अक्टूबर	स्नेहन व स्वेदन
,, १५ अक्टूबर	तृतीय वमन
,, १६-१७-१८ अक्टूबर	साधारण लघु आहार विहार
दिनाक १९-२०-२१ अक्टूबर	स्नेहन व स्वेदन
,, २२ अक्टूबर	प्रथम विरेचन
,, २३-२४-२५ ,,	स्नेहन व स्वेदन
,, २६ अक्टूबर	द्वितीय विरेचन
,, २७-२८-२९ ,,	स्नेहन व स्वेदन
,, ३० ,,	तृतीय विरेचन
,, ३१ अक्टूबर १-२-३-४-५ नवम्बर	साधारण लघु आहार विहार।
,, ६ नवम्बर	प्रथम अनुवासन

दिनाक ७-८-६	नवम्बर	प्रतिदिन निरूहण
,, १०	नवम्बर	द्वितीय अनुवासन
,, ११-१२-१३	नवम्बर	प्रति दिन निरूहण
,, १४	नवम्बर	तृतीय अनुवासन
,, १५-१६-१७	नवम्बर	प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व नस्य

यह सामान्यतर परिस्थिति का क्रम है जिस दोष मे ७-६-२० आदि अनुवासन या निरूहण देना हो तो उसमे इसी क्रम से दें। पर इनकी सख्या की समाप्ति होने पर ही नस्य देना चाहिये।

यह ध्यान रखिये कि काल या ऋतु के अनुसार दिनाक एव मास बदल सकता है। पर दिनो की संख्या का क्रम यही होगा।

ज्वर की सम्प्राप्ति

(१) आमाशय में आश्रित दोष (२) कोष्ठ अर्थात् आमाशय, पक्वाशय, फुफ्फुस, हृदय और ग्रन्थ्याशय आदि की पक्ति को बाहर निकाल कर (३) रस धातु के अनुगामी होकर ज्वर उत्पन्न करते हैं।
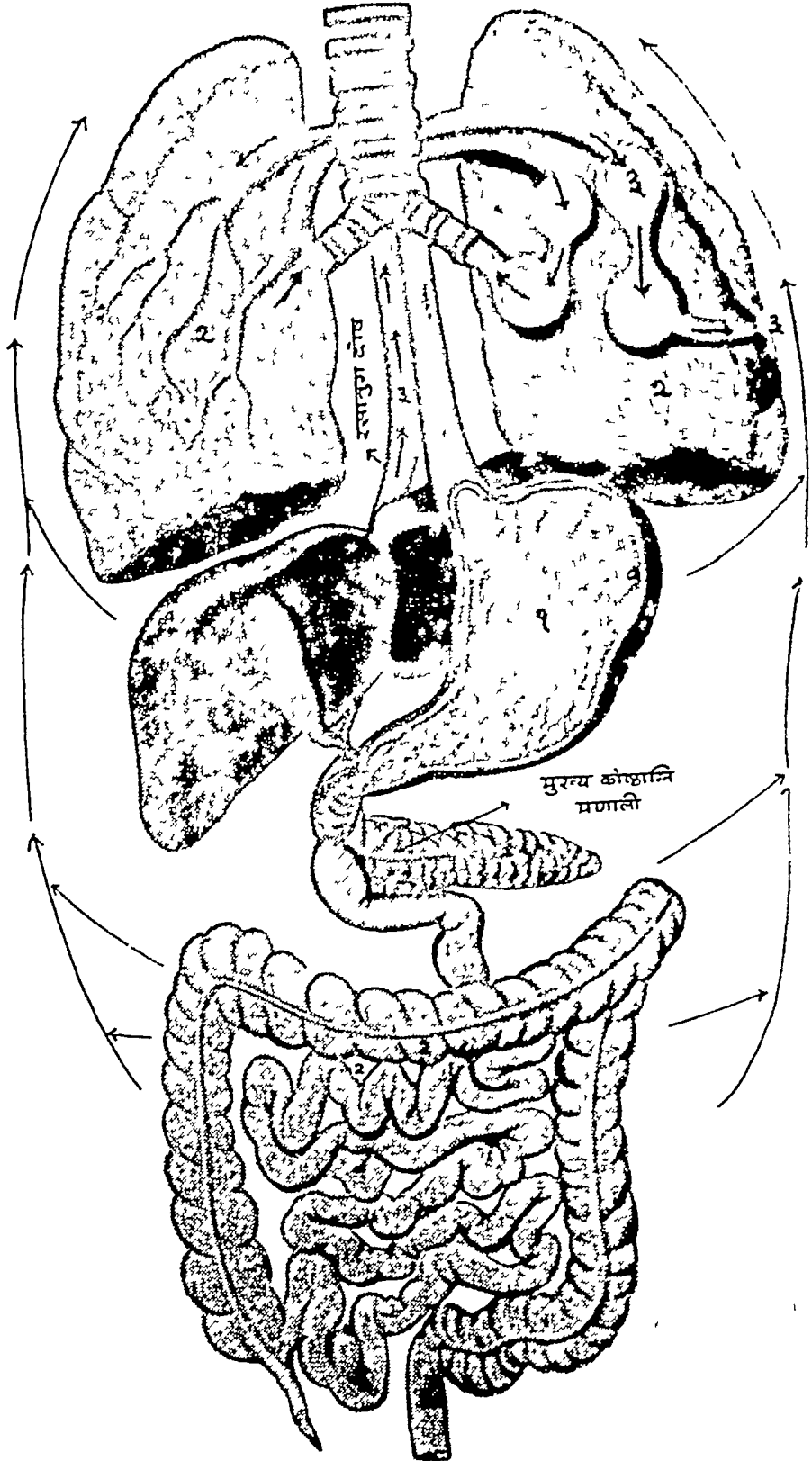
षष्ठ अध्याय

अष्ट विध ज्वर

जिस रोग मे सन्ताप हो उसे ज्वर कहते हैं। ज्वर शब्द का अर्थ होता है, सन्ताप या ज्वाला करना। इसका लक्षण सामान्यत' यों बताया गया है :—स्वेद अर्थात् पसीने की रुकावट, सन्ताप [1] और सर्वाङ्ग में पीडा, ये लक्षण जिस व्याधि में साथ ही दिखायी पड़ें, उसे ज्वर कहते है।

इसकी पौराणिक उत्पत्ति बडे रोचक ढंग से यो बतायी गयी है :—

दक्ष के अपमान से क्रुद्ध रुद्र के निश्वास से उत्पन्न ज्वर आठ प्रकार का होता है। इस उत्पत्ति के सम्बन्ध में शास्त्रो मे लिखित (दक्षो वै प्रजापति) 'यः प्रजापति तन्मन', "ईश्वरो (रुद्रो) वै अग्नि", "रुद्रो रोष", "रोषात् (क्रोधात्) पित्तम्" आदि वाक्यों पर ध्यान दें तो यह तात्पर्य हुआ :—

मन के अपराध [2] से क्रुद्ध अग्नि के निश्वास से उत्पन्न ज्वर आठ प्रकार का होता है। यह अर्थ प्रत्यक्ष और शास्त्र सिद्ध है। रुद्र का नाम रोष या क्रोध होने से स्पष्टत. क्रोध से पित्त के कुपित होने का निर्देश है। ज्वर मे पित्त प्रधान होता ही है। चरक मे "ज्वरस्तु खलु महेश्वर प्रकोप प्रभव.' कहा गया है। महाईश्वर अर्थात् महा-अग्नि का तात्पर्य शरीरस्थ समस्त अग्नियो के नियामक मस्तिष्क स्थित ताप नियामक केन्द्र से है। जिसका नियन्त्रण विकृत होने पर ही ज्वर होता है।

ज्वर की सम्प्राप्ति यों बतायी गयी है—

मिथ्या आहार-विहार से आमाशय मे आश्रित दोष कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर रसानुग हो ज्वर कारक होता है। इसी सम्प्राप्ति के कारण ज्वर मे रसानुग आम दोष का पाचन कराने के लिए ही लंघन आदि उपायो का आश्रय लेना पडता है। सम्प्राप्ति का चित्र ध्यान से देखिये। सारी बात समझ मे आजायेगी।

---

१. देह इन्द्रिय और मन का ताप यहां अर्थ लगाइए। देह का ताप तो स्पर्श से पता चलता है। इन्द्रियों की विकृति ही उनके ताप का एक चित न लगना, बेचैनी और अप्रसन्नता ये मनस्ताप के लक्षण हैं।

२. यहां मन के अपराध को बुद्धि या प्रज्ञा का अपराध समझें।

ज्वर का पूर्व रूप यह है :—

थकावट, बेचैनी, विवर्णता (बदरंगी) मुंह का फीकापन, नेत्रो का पानी मे डब-डबा जाना, शीत-वात-घाम आदि मे बारम्बार इच्छा और द्वेष होना, जम्भाई, अंगो मे मर्दन की सी पीड़ा, भारीपन, रोमाञ्च अरुचि, आंखो के सामने अन्धकार छा जाना, अप्रसन्नता और कुछ शीत लगना ।

इसी अवस्था से सतर्क हो उपचार प्रारम्भ कर दें तो सरलता होगी । लंघन और गरम जल का व्यवहार करें ।

ज्वर के ८ भेद ये है :— १—वातज्वर, २—पित्तज्वर, ३—कफज्वर, ४—वातपित्तज्वर, ५—वात कफ ज्वर, ६—पित्तकफ ज्वर, ७—सन्निपात ज्वर ८—आगन्तुक ज्वर ।

इनमे मुख्य दोष पित्त एवं गौण दोष वात व कफ होता है । मुख्य दूष्य रस है परन्तु आगे बढने पर क्रमश रक्त, मास, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र भी दूष्य[1] हो जाते है । इसलिए समस्त निदान और चिकित्सा सामान्यतया मुख्य दोष पित्त एवं मुख्य दूष्य रस पर आश्रित है । गौण दोषो एवं दूष्यो के रहने पर भी मुख्य दोष एवं दूष्य की उपेक्षा नही की जाती ।

इसका सामान्य चिकित्सा क्रम एक श्लोक मे इस प्रकार कहा गया है —

ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं, ज्वरमध्ये तु पाचनम् ।
ज्वरान्ते शमन दद्यात्, ज्वर मुक्तौ विरेचनम् ।।

अर्थात् ज्वर के प्रारम्भ मे लंघन (उपवास), मध्य मे पाचन, अन्तमे शमन एवं छोड देने पर विरेचन करना चाहिये । इस सामान्य चिकित्सा क्रम या चिकित्सा सूत्र का पालन करने से ज्वर मे कोई आपत्ति खडी नही होती । और, वह सरलता से छोड देता है । इसके विपरीत चल कर आज कल बहुत से चिकित्सक रोगी का जीवन संकट मे डाल रहे हैं । जैसे ज्वरादि एवं ज्वर मध्य मे शामक औषधि देकर ज्वर को दवा भर दिया जाता है । परिणामत अग्नि को पूर्णतया न बुझा कर राख से ढक देने की स्थिति हो जाती है । दवा हुआ दोष रोगी को भीतर ही भीतर जला कर जीर्ण ज्वर शोष (क्षय), पाण्डु, हृद्रोग, यकृद्वृद्धि, प्लीह वृद्धि आदि का शिकार बना देता है । ज्वर मुक्ति मे विरेचन न कराने से अवशिष्ट दोष सामान्यत अग्निमान्द्य, प्रवाहिका, आमातिसार और उदर रोग उत्पन्न कर देता है । इसलिये सच्चे हृदय से रोगी का कल्याण चाहने वाले चिकित्सक को उक्त चिकित्सा क्रम का पालन करना ही चाहिये ।

---

१ ये रस रक्त, मांस, मेदा, अस्थि मज्जा, शुक्र ज्वर के सात आश्रय भी कहे जाते हैं ।

२ विशेष चिकित्सा क्रम में वात ज्वर में लघन का निषेध है । सब जगह के लिए यह बात समझ लीजिए कि सामान्य बहुव्यापी (अधिक स्थान पर लागू) और विशेष अल्प व्यापी, (अल्प स्थान पर लागू) होता है ।

ज्वर आदि, मध्य एवं अन्त निश्चित काल मर्यादा मे बताना सम्भव नही। और यद्यपि ज्वरो की काल-मर्यादा बतायी गयी है, पर परिस्थितियो के कारण उसमे बहुधा परिवर्तन होता रहता है। इस लिए परिस्थितियां पर ही विचार कर इसका निर्णय करना चाहिये। आप इसकी गम्भीरता मे न जाकर इतना ही जान लीजिये कि ज्वर की सामावस्था ज्वरादि पच्यमानावस्था ज्वर का मध्य, निरामावस्था ज्वर का अन्त है। ज्वर मुक्ति का स्पष्ट वर्णन अन्त मे लिखा जायेगा।

यह ज्ञातव्य है कि ज्वरादि एवं ज्वर मध्य दोनो अवस्थाओ मे चिकित्सक का लक्ष्य आम पाचन ही है। इस लिये ज्वरादि मे केवल लंघन का विधान एवं औषधि का निषेध होने पर भी लंघन के साथ ही पाचन औषधि दी जाती है और पाचन क्रम भी किया जाता है। ज्वर प्रारम्भ होते ही औषधि न देने का तात्पर्य शामक औषधि न देने से है।

सामज्वर :—साम ज्वर, तरुण ज्वर, ज्वरादि या नवज्वर की काल मर्यादा अधिकतम ज्वर प्रारम्भ से लेकर सात दिनो तक मनीषियो ने बतायी है। परन्तु उसके निम्नलिखित लक्षण भी बताये गये है।

१—मुख से लार गिरना, २—जी मचलाना, ३—हृदय की अशुद्धि, ४—अरुचि, ५—उंहाई, ६—आलस्य, ७—भोजन का न पचना, ८—मुख मे फीकापन, शरीर का भारीपन, क्षुधा का नाश, बहुमूत्रता, जकडन और ज्वर का बलवान वेग।

इसमे अंकित ८ लक्षणो के अतिरिक्त शेष लक्षण अवश्य मिलते हैं जब तक ये लक्षण मिलें तब तक सामज्वर माना जायेगा। भले ही सात दिन से अधिक बीत जायं। अंकित लक्षण विशिष्ट ज्वरो मे भी मिलते हैं। इस ज्वर मे दिन मे सोना, स्नान, मालिश, भोजन, मैथुन, क्रोध, तेज हवा, व्यायाम और कषाय रस की औषधि का सेवन निषिद्ध है। वमन[१] विरेचन आदि शरीर का किसी प्रकार का शोधन एवं शामक औषधि का प्रयोग भी निषिद्ध है। कारण यह है कि इस ज्वर मे दोष साम होने के कारण शरीर में जकडे हुए रहते हैं। निकालने से वे निकलेंगे भी नहीं और शरीर को प्राणान्त कष्ट होगा। यहा तो उन्हे पचाना ही श्रेयस्कर है।

पाचन के लिये उपवास (लंघन) पसीना, समय, यवागू और तिक्त रस ये नवज्वर मे अपक्व दोषो के लिए पाचक बताये गये हैं। इनमे यवागू का प्रयोग तो सम्यक् लंघन के लक्षण मिलने पर ही करना चाहिये। उष्ण जलपान या भारी और गरम वस्त्र से रोगी को ढक कर स्वेदन कराये। यदि रोगी को भोजन नही मिलता तो नवज्वर में सात या अधिक जितने दिन लगते हैं उतने दिनो मे स्वयं दोष का पाचन होता है। यही काल या समय द्वारा पाचन हुआ। तिक्तरस का व्यवहार औषधियो या अनुपान के रूप मे किया जाता है। जिनका नामोल्लेख इसी प्रकरण मे यथा स्थान (पित्तज्वर में) होगा।

१, भोजन करने के बाद तुरन्त उत्पन्न ज्वर, सन्तर्पण [पेट भर भोजन] से उत्पन्न एवम् कफ प्रधान ज्वर में रोगी यदि वमन के योग्य हो तो उसे वमन कराने का विधान है।

पाचन के लिए सामान्यत. लंघन, काल और स्वेदन का व्यवहार होता है। वात ज्वर के अतिरिक्त अन्य ज्वरो मे लंघन[1] की उपेक्षा कभी न कीजिये।

पच्यमान ज्वर—पच्यमाम ज्वर या ज्वर मध्य की सामान्य मर्यादा साम ज्वर की मर्यादा को लेकर १२ दिन तक कही गयी है। पर इसके निम्नलिखित लक्षण भी बताये गये हैं।

ज्वर का अधिक वेग, प्यास, प्रलाप, श्वास की सख्या मे आधिक्य या श्वास लेने में कष्ट, चक्कर,[2] जी मचलाना और मल-मूत्रादि की प्रवृत्ति।

इसमे चिकित्सा और अपथ्य या निषेध साम ज्वर के समान ही है। प्यास यदि पित्तज्वर मे हो तो वहा का विधान कीजिये, अन्यथा उष्ण जल ठीक है।

निराम ज्वर—

यह ज्वरान्त या पक्व दोष की अवस्था है। पच्यमान ज्वर के बाद आठ दिन की मर्यादा इसके लिए बतायी गयी है। परन्तु निम्नलिखित लक्षण भी बताये हैं—

भूख लगना, शरीर का हलकापन, ज्वर की मृदुता, डकार, अधोवायु और कफ के रूप मे दोषो के बाहर निकलने की प्रवृत्ति।

इन लक्षणो का तात्पर्य है साम दोष नष्ट होना। अब शामक औषधियो का व्यवहार होगा। जिनका उल्लेख इसी प्रकरण मे आगे होगा।

इस अवस्था मे सुलंघित के लक्षण मिलने पर अत्यन्त हलका पथ्य देने पर विचार करें।

लघन

लंघन का तात्पर्य भोजन न करने या उपवास करने से है। पर जहा पर लंघन की आवश्यकता होने पर परिस्थितियो वश लंघन का निषेध किया गया है वहा इसका तात्पर्य अत्यन्त लघु भोजन मे भी है। ज्वर मे इसका सर्वाधिक महत्व है। निस्सन्देह इसकी उपेक्षा कर कोई ज्वर की पूर्ण सफल चिकित्सा नही कर सकता। इसका मुख्य कारण ज्वर की सम्प्राप्ति है। जिसके दृष्टिकोण से चक्रदत्त मे लिखा है कि आमाशय मे स्थित साम दोष रस का अनुगामी होकर कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर या अग्नि को मन्द कर मार्गों को ढकता हुआ ज्वर उत्पन्न करता है। इसलिए लंघन करना चाहिये। इसके निम्नलिखित लाभ हैं:—

१—आमाशय मे दूसरा भोजन न जाने से आमाशय व अन्य पाचन स्थानो की पूरी शक्ति साम दोष को पचाने मे लगती है। और वे अधिक श्रम से बच कर अपनी शक्ति को बढाते हैं।

२—अग्नि की पूरी शक्ति साम दोष को पचाने मे लगती है। उस पर नया भार न पडने से वह दीप्त भी होती है।

३—इससे कोष्ठगत आम तो पचता ही है, रस धातुगत आम भी पचता है।

४—आम के दोष नष्ट हो जाने से स्रोत और सभी मार्ग जो पहले उससे ढके थे, खुल जाते हैं।

---

१ लघन के सम्बन्ध मे इसी प्रकरण में पढ़िए।

२ यह लक्षण विशिष्ट ज्वरों में मिलता है।

५—ज्वर नष्ट होता है।

६—भोजन की इच्छा और रुचि बढती है।

७—शरीर मे लघुता होती है।

सुलंघत के लक्षण :—

वायु मूत्र, पुरीष का निकलना शरीर की लघुता, हृदय डकार कण्ठ-मुख की शुद्धि, जंहाई और सुस्ती का नाश, पसीना निकलना, भोजन मे रुचि, भूख-प्यास का साथ लगना, अन्तरात्मा का व्यथा रहित होना ये लक्षण रोगी मे उपलब्ध हो तो समझना चाहिये कि लघन ठीक ठीक हुआ है। ये भी लंघन के लाभ ही हैं।

अति लघन—

अति लघन से अपार संकट आ जाता है। इस लिये अति लंघन से बचने के लिए सतर्क रहना चाहिये। निम्नलिखित लक्षण मिलने पर अति लंघन समझना चाहिये —

सन्धियो (विशेषत पैर की) मे टूटने जैसी पीडा, अंगो मे मर्दन जैसी पीडा, खांसी, मुख का सूखना, भूख का नाश, भोजन मे अरुचि, प्यास आख-कान मे दुर्बलता, मन की चंचलता, वायु का ऊर्ध्वगामी होना, हृदय मे अन्धकार छा जाना, देह-अग्नि-बल की हानि।

कुल मिला कर अत्यन्त अधिक भूख लगने से जो लक्षण मिलते हैं वे सभी अति-लंघन के भी हैं। इनके मिलते ही तुरन्त हलका पथ्य देना चाहिये।

हीन लघन के लक्षण—

आम का न पचना, ज्वर वेग बना रहना या पुनः उभर आना, आलस्य, बेचैनी, मल-मूत्र-वायु का सम्यक् न निकलना, शरीर मे भारीपन, भोजन मे अरुचि और चित्त की अप्रसन्नता ये हीन लंघन के लक्षण हैं।

रोगी की मिथ्या क्षुधा या मोह के कारण ही हीन लंघन (लंघन की आवश्यकता रहने पर भी भोजन) हो जाता है और यह महा हानिकारक है। ज्वर बना रहे तो वात ज्वर के अतिरिक्त अन्य ज्वरो मे लंघन मत तोडिये। ज्वर बना रहने मे नाडी स्पष्टत भरी हुई सी चलती है।

लघन का निषेध—

वायु[1], क्षय, भय, क्रोध, काम, शोक, श्रम से उत्पन्न ज्वर[2], भूख प्यास लगने पर, मुख-शोष मे और चक्कर आने पर लघन नही करना चाहिये। बालक, वृद्ध, गर्भिणी और दुर्बल को भी लंघन नही कराना चाहिये।

---

१ इन्हें आगे के प्रकरण में देखें।

१ पित्त ज्वर में अपेक्षाकृत अधिक और कफ ज्वर में सर्वाधिक लंघन कराना चाहिये। क्योंकि ये दोनों दोष द्रव धातुयें होने के कारण अधिक लंघन सहने की क्षमता रखते हैं।

२ आगन्तुक ज्वर का वर्णन सन्निपात ज्वर के बाद देखें। क्षय के बाद वाले भयादि ज्वर आगन्तुक ज्वर हैं।

इनके लिए लंघन का निषेध होने पर धान का लावा और मुनक्का दें। इनसे काम न चले तो परवल का यूष दें। यदि रोगी बालक है तो माँ का दूध या पिप्पली मोठ मे से किसी एक से पका हुआ गाय का दूध दें। यह स्मरणीय है कि नवज्वर और कफवात ज्वर में दूध विष का काम करता है। इसके अतिरिक्त अवस्था मे अनिवार्य होने पर पिप्पली, सोंठ या अन्य उपयोगी औषधि से सिद्ध दूध अल्प मात्रा मे दिया जा सकता है। यथाशक्ति अन्न न दिया जाय। यह ज्ञातव्य है कि लंघन निषिद्ध होने पर जो कुछ पथ्य का विधान है वह केवल प्राणधारण के उद्देश्य से है। इसलिये प्राण-धारण करने मात्र पथ्य से काम चलायें।

वातज्वर

यह शीत या उष्णता, अधिक परिश्रम, अधिक मार्ग-गमन, रात्रि जागरण और आहार की अनियमितता, पंचकर्मो का अतियोग आदि कारणो से होता है। कम्पन, ज्वर का विषम वेग (घटना-बढ़ना) कण्ठ–ओष्ठ सूखना, निद्रानाश, छींक की रुकावट, शरीर मे रूक्षता, सिर और हृदय आदि अंगो मे पीडा, मुंह का फीकापन, मल मे गाठे पड जाना, उदर मे शूल आध्मान (पेट का फूलना) और जम्हाई ये ज्वर के लक्षण हैं।

ज्वर का वेग साधारणत १०० से १०४ डिगरी फा० के बीच घटता बढता रहता है। जो एक दिन भी लगातार एक सा न रह कर घटता बढता रहता है। वह सिर और अन्य अंगो मे पीडा तथा निद्रा नाश[1] तो अवश्य होता है। यह ज्वर सामान्य अवस्था मे एक सप्ताह से अधिक चलने वाला नहीं होता। प्राय वर्षा ऋतु मे अधिक होता है। ग्रीष्म ऋतु मे भी यह कुछ लोगो मे हो जाता है। रोगी की नाडी वैद्य की तर्जनी अंगुली के नीचे अधिक स्पष्ट होती है।

चिकित्सा—

यह स्मरणीय है कि इसमे लंघन का निषेध है पर आम पाचन के लिए दो या तीन दिन तक लंघन कराना पड़ता है। यदि यह भी सह्य न हो तो धान का लावा, कुटू[2] का लावा, रामदाना का लड्डू खोई (वेर्रा या कमलिनी के बीज का लावा या उसकी मिठाई) दी जा सकती है।

सहने योग्य अत्यन्त उष्ण जल पर्याप्त मात्रा में पिलाइये, इसमे पसीना और मूत्र खूब निकलेगा। स्रोत शुद्ध होंगे और वायु की पीड़ा भी शान्त होगी। स्वेद लाने के लिये गरम या उष्ण वालुका पोटली का प्रयोग करें।

आध्मान या मलबद्धता की अवस्था मे—

पेट पर ऐरण्ड के तेल की मालिश और अनुवासन या वस्ति के प्रकरण मे लिखित फलवर्ती का प्रयोग करें, लाभ न होने पर ग्लीसरीन की पिचकारी का प्रयोग करें।

---

१ अधिक निद्रानाश से प्रलाप भी हो जाता है।

२ यह दोनं बाजारों में बराबर बिकते हैं। बहुत कम चीनी या गुड़ डाल कर बनाये जाते हैं।

बिना आम पचे किसी विरेचक औषधि का मुख मार्ग से प्रयोग न करे। आम पच जाने पर कुटकी, अंगीर या मुनक्का में से किसी के क्वाथ का एतन्निमित्त प्रयोग करें। ये द्रव्य क्रमश कम रेचक और कम आपत्तिकारक हैं। इनसे काम न होने पर सुप्रसिद्ध अश्वकंचुकी रस एक रत्ती की मात्रा मे पिप्पली चूर्ण मधु से दे सकते हैं।

शिरः शूल में—

ललाट पर लवंग दालचीनी और सफेद गुंजा[1] (घुघुची) को सममात्रा में लेकर पानी मे पीस कर कुछ उष्ण लेप करें। जो द्रव्य न मिले उसके लिए परेशान न हों। पुराना घी (कम से कम १० बरस का) सर पर मलने से नींद आती है। सिरदर्द भी नष्ट होता है।

शुष्क कास में—

बहेरे के फल का छिलका चूसे या पान के बीडा मे पिप्पली के छोटे टुकडे डाल कर चूसें। लवंग या लवंगादि वटी भी चूसी जा सकती है।

कुल मिला कर रोगी को नींद लाने का प्रयत्न करें। इससे वात ज्वर के सभी लक्षण घट जाते हैं। और, रोगी को बडा आराम मिलता है। इसके लिए रोगी को विश्राम और शान्ति मिलना आवश्यक है। सिर पर पुराने घी की मालिश से भी नींद आती है। यथासम्भव मुख से मदयुक्त निद्रा कारक औषधियों के प्रयोग से बचे। सर्पगन्धा चूर्ण को ४ रत्ती से १ माशा तक की मात्रा दी जा सकती है। बकरी के दूध मे पिसी भाग का पैर के तलुओं पर लेप करने से भी नींद आती है। वातज्वर की सामान्य औषधियाँ ये हैं —

औषधि व मात्रा	सहपान या अनुपान	विशेष
कल्पतरु रस एक रत्ती	आर्द्रक स्वरस	इसके चूर्ण का नस्य भी दें।
मृत्युन्जय रस एक रत्ती	तुलसी-रस, मधु	*
त्रिपुर भैरव रस आधी र०	आर्द्रक स्वरस	ताम्र भस्म पडने से उग्र है चार चावल की मात्रा से प्रारम्भ करें।
त्रिभुवन कीर्ति यो० र० एक र०	आर्द्रक स्वरस	*

---

[1] यह छेद युक्त तख्ती से फसा कर पत्थर पर पानी से रगड़ी जाती है तब चन्दन के समान इससे निकला हुआ घृष्ट प्रयुक्त होता है फिर यह सम मात्रा न होकर चार तक भी काम दे जायेगी। ऐसा सम्भव न होने पर पानी में जरा से उबाल कर भी प्रयोग करें।

महाज्वरांकुश एक र०	आर्द्रक स्वरस	स्टार
रत्नगिरी रस एक र०	पिप्पली युक्त धनिया क्वाथ	१०२ डिग्री के नीचे ही प्रयोग करें।
संजीवनी वटी एक र०	आर्द्रक स्वरस	मलवद्धता मे न दें।
हिंगुलेश्वर एक र०	मधु	*
ज्वर धूम्रकेतु एक र०	आर्द्रक स्वरस मधु	*
त्रैलोक्य ताप हर एक र०	आर्द्रक स्वरस	रेचक है।

उपर्युक्त औषधियो मे से किसी एक का प्रयोग प्रात., दोपहर, सायं, रात करें। बृहत्पंच मूल या दशमूल क्वाथ, किरातादि क्वाथ (भै० र०) और द्राक्षादि क्वाथ (भै० र०) में से किसी एक का प्रयोग विना उपर्युक्त रस के ही या उनके अनुपान के रूप में प्रात. सायं करें।

हमारे विचार में निम्नलिखित क्वाथ वात ज्वर के लिए सर्वश्रेष्ठ हैं।
पीपरा मूल, पित्त पापडा, अडूसा की पत्ती, भारंगी, सोठ, और नीम को गुरुच का क्वाथ प्रात , दोपहर, सायं और रात उपर्युक्त किसी औपधि के अनुपान स्वरूप या स्वतन्त्र रूप से दें। इसके साथ अन्य कोई क्वाथ न दें।

परिश्रम या मार्गगमन जन्य वात ज्वर में उपर्युक्त किसी एक औपधि के सहपान रूप में या स्वतन्त्र रूप से शतावर का रस ६ माशा, नीम की गुरुच का रस ६ माशा, गुड ३ माशा सेवन करें। वडा लाभ होगा, चाहे तो इस पर किसी क्वाथ को अनुपान रूप मे ले सकते है। इसे भी प्रात , दोपहर, सायं और रात मे ग्रहण करें।

पथ्य :—

ऊपर हम पर्याप्त पथ्य वता चुके हैं जो आवश्यकतानुसार सज्वरावस्था या विगतज्वरावस्था मे दिया जा सकता है। इसके वाद ज्वर मुक्त हो जाने पर जब भोजन की आवश्यकता पडे तो मूंग का यूष दें, वाद मे अजवाईन गेहूँ के आटा में सान कर उसका फुलका २-३ दें। क्रमश भोजन की मात्रा आदि में वृद्धि[1] करें।

---

१ त्रिदोष प्रकरण में वात का पथ्या पथ्य भी पढ लें।

ज्वर मुक्त हो जाने के बाद शक्ति आ जाने पर अश्वकंचुकी का प्रयोग कर विरेचन करायें। ज्वरमुरारि आधा रत्ती या एक रत्ती का भी प्रयोग हो सकता है।

पित्तज्वर

कारण और लक्षण :—

कटु, अम्ल, उष्ण, और विदाही पदार्थों का अधिक सेवन, अजीर्ण, अतिघाम या आग का सेवन, अधिक श्रम एवं अति न्यून या अत्यधिक भोजन से पित्त कुपित होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है।

इसमे ज्वर का तीक्ष्ण वेग (१०४ डिगरी के ऊपर) अतिसार, निद्राल्पता, वमन, कण्ठ-ओष्ठ-मुख-नासिका मे पाक, स्वेद, प्रलाप, मुंह का कटुतापन, मूर्च्छा, दाह, मद, प्यास, पीला पुरीष मूत्र—नेत्र—त्वचा और चक्कर ये लक्षण होते हैं। नाडी वैद्य की मध्यमा अंगुली पर उछलती हुई अधिक स्पष्ट चलती है।

यह सामान्यतः शरद ऋतु, मध्य रात्रि या दोपहर मे प्रकुपित होता है। ज्वर की तीव्रता के कारण कभी-कभी शरीर मे लाल (अरुण) दाने पड जाते है। अन्य ज्वरो मे सामान्यतः अतिसार होने पर ज्वर कम हो जाता है। पर इस रोग मे अतिसार होने पर भी ज्वर का वेग प्रबल रहता है। सब ज्वरो मे स्वेदावरोध होता है। और, स्वेद आने से ज्वर मुक्ति होती है। पर पितज्वर मे पसीना अधिक आने पर भी ज्वर मुक्ति नही होती। मुख पाक भी ज्वर मुक्ति का एक लक्षण है, पर यहा नही। यह ज्वर सामान्यत १५ दिन से २० दिन तक रहता है। ध्यान देने पर शरीर से एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध भी निकलती है। यदि वमन होती है तो उसमे पीला हरा और उष्ण पदार्थ (पित्त) निकलता है।

पित्त ज्वर एवं ज्वरातिसार मे इस प्रकार अन्तर है —

पित्त ज्वर	ज्वरातिसार
ज्वर का वेग तीक्ष्ण	ज्वर का वेग साधारण
शरीर पर लाल दाने	लालदानो का अभाव
मुखपाक	अन्तिम अवस्थामे गुदापाक
स्वेद	स्वेदाभाव
नाडी में उछाल अधिक	नाडी मे अपेक्षाकृत शिथिलता
प्रलाप	प्रलाप का अभाव
नेत्रो मे पीलापन या लालिमा	नेत्रो मे स्वाभाविक रग
पित्त ज्वर के लिये पाचन और मारक औषधि हितकर होती है।	अतिसार के लिये पाचन और ग्राही औषधि हितकर होती है।

लाल दानो से कभी कभी प्रारम्भिक शीतला (माता) का भ्रम होता है। पर उसमे स्वेद नहीं होता। और, आगे बढने पर शीतला अधिक स्पष्ट हो जाती है। आगे पित्तोल्वण सन्निपात भी देखें।

चिकित्सा :—पित्त ज्वर मे पित्त के प्रधान रहने से अत्यधिक दाह व तृष्णा होती है। इसी दृष्टिकोण मे चिकित्सा करने से सिद्धि मिलती है। ज्वर, दाह और तृष्णा तो पित्तनाशक उपायो से शान्त होते ही हैं। अतिसार एवं अन्यान्य उपद्रव भी शान्त होते हैं। अतिसार यदि अधिक उग्र न हो तो उसे रोकने की चेष्टा न करनी चाहिये। क्योकि इसके द्वारा पित्त बाहर निकल रहा है। परवल की पत्ती, मुनक्का, आदि मृदु रेचक हैं फिर भी ये दिये जाते हैं। इसलिये कि ये पित्त नाशक है। अत्यन्त उग्र अतिसार होने पर तिक्त रस प्रधान सामान्य पाचन औषधि यथा इन्द्रयव आदि से पाचन करना चाहिये। यह पित्त ज्वर को नष्ट करने के साथ ही पित्तज अतिसार को भी नष्ट करता है।

ज्वर का वेग अत्यधिक १०५ या १०६ या इसके ऊपर होने पर सिर पर हिमवर्ति (वर्फ की थैली या आईस वैग) रखना चाहिये। सौ वार का धोया हुआ गोघृत (अभाव मे भैंस का घृत) कपूर मिलाकर ललाट और सिर पर लेप करने से भी ज्वर का वेग कम होता है। ये उपाय पित्त के कारण हुए प्रलाप एवं शिर:शूल को भी शान्त करते हैं और नींद लाते हैं।

उदर मे (नाभि प्रदेश पर) कासे आदि का गहरा पात्र कटोरा या थाली रखकर उसमे शीतल जल की धारा गिराने से उदर या सर्वांग के दाह के साथ ही ज्वर का वेग भी घटता है। अथवा महीन कपडा नाभि प्रदेश और पेडू पर रखकर उस पर गीली पीली मिट्टी रखने मे भी दाह एवं ज्वर का वेग घटता है।

यह स्मरणीय है कि १०२ डिगरी से कम ज्वर होने पर ज्वर वेग या दाह घटाने वाले बाह्य उपाय बन्द कर देना चाहिये। सामान्य पित्त-ज्वर की औषधिया देते रहे।

पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, परवल की पत्ती, और नीम की गुरुच ये पित्त ज्वर को नष्ट करने मे उपयोगी काष्ठौषधियां हैं। इनका सम्मिलित प्रयोग अथवा एक-एक का प्रयोग भी किया जाता है। ये किसी रसौषधि के अनुपान स्वरूप या स्वतन्त्र व्यवहार किये जा सकते हैं। इन से दाह और प्यास आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

षडंग पानीय —

नागर मोथा, पित्तपापड़ा खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ इन सबका जौकूट चूर्ण बराबर लेकर कुल १ तोला लें। एक सेर पानी मे पका कर आधा सेर जल बच जाने पर छान कर शीतल कर लें। इसी का नाम षडंग पानीय है। यह पानी पिलाने से प्यास और ज्वर दोनो को शान्त करता है। यदि रक्त-पित्त, (मुख) गुदा, मूत्रमार्ग या सर्वांग से विदग्ध रक्त निकलता हो तो सोंठ नहीं मिलाना चाहिये।

अन्य जल देना हो तो खस या केवडा से वासित या सादा ही शीतल जल देना चाहिये।

मिश्री चार तोला, स्वच्छ (हो सके तो परिश्रुत या डिस्टिल्ड) जल आधा सेर डालकर हिलाकर भली भाँति मिला दें, तत्पश्चात् उसमे गन्धक का हलका तेजाब ३ माशा डालकर पुन हिलाकर मिला कर रख दे। जल शीतल हो जाने पर २ तोला की मात्रा से दिन मे ३ बार पिलाने से पित्त ज्वर अपने समस्त लक्षण या उपद्रवो समेत शीघ्र नष्ट होता है।

पित्त ज्वर की वमन मे पित्तापापडा एवं नागरमोथा का क्वाथ भी अधिक काम करता है।

वातावरण खस की टट्टी और केले का पत्ता, आदि से शीतल रखना चाहिये।

औषधि व मात्रा	अनुपान	विशेष
चन्द्रकला रस (यो० र०) २ रत्ती	परवल की हरी पत्ती का रस ३ माशा, मधु या पित्तापापड़ा हिम ६ माशा मधु	
गदमुरारि	,,	
ज्वरघ्नी गुटिका १ रत्ती	नीम की गुरुच का रस	शरद ऋतु के ज्वर मे विशेष हितकारी
मेघनाद रस आधा रत्ती	सोंठ, अतीस, नागर मोथा, चिरायता, गुरुच और कुड़ैया छाल का क्वाथ।	
दन्ती प्रवाल[1] योग ४ र०	अनार का रस १ तो० या पित्तपापड़ा का हिम २ तोला मधुसहित,	
सूत शेखर रस[2] यो० र० १ रत्ती	शर्बत अनार	मुखपाक प्रलापादि
एलादि चूर्ण (यो० र०)[3]	मधु	वमन, तृष्णा मे विशेष हितकर।

इन औषधियो के साथ या अलग मे मुक्तापिष्टी ½ रत्ती अभाव में प्रवाल भस्म २ रत्ती प्रयोग करने से दाह तृष्णा आदि पित्तोपद्रव तुरन्त शान्त होते हैं। उपर्युक्त औषधियो मे से सामान्य अवस्था मे कोई एक या विशिष्ट अवस्था मे कही गयी

---

१ गोदन्ती भस्म और प्रवाल भस्म एक एक मासा एवं गुडूची सत्व २ भाग मिला देने से यह योग बनता है। श्री राजेश्वर दत्त शास्त्रि कृत चिकित्सादर्श प्रथम भाग।

२ इसमें प्रवाल पिष्टी एक रत्ती गुरुच का सत्व २ रत्ती सितोपलादि चूर्ण एक माशा मिलाकर देने से अपूर्व लाभ होता है। यह रस यादव जी कृत रसामृत में कुछ परिवर्तित पर उत्तम रूप में है।

३, छ माशा मधु में मिला कर रख दे बारम्बार चटाना चाहिये।

औषधि उस विशेष उल्लिखित अवस्था मे प्रयोग करे । औषधि सेवन का सामान्य काल प्रातः, दोपहर, साय और रात है ।

इसमे लंघन सामान्यत १० दिन तक चल सकता है । अर्थात् इतने दिनो मे साधारणत आम पच जाता है । तत्पश्चात् परवल का यूष, मूंग का यूष, करैला की तरकारी, साबूदाना आदि का पथ्य दिया जाना चाहिये । मुनक्का, खजूर, अन्जीर अनार, मौसम्वी, सन्तरा, फालसा आदि फल आवश्यकतानुसार ज्वरावस्था या ज्वर मुक्ति के बाद दिया जाता है ।

क्रोध, घाम, उष्णता, आदि पित्त वर्धक उपाय भयानक अपथ्य हैं । ज्वर मुक्ति के बाद उचित पथ्य दे चुकने पर जब कुछ शक्ति आ जाय तो मुनक्का, अमल तास या निशोथ आदि मधुर-तिक्त, और मृदु-सारक औषधियो से रेचन करा दें ।

— कफ ज्वर —

कारण और लक्षण—

ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओ मे दिन मे सोना, स्निग्ध, गुरु, शीतल लसीले पदार्थों के अधिक सेवन, शीत, ओस, अभ्यास या आदत के विपरीत समय मे प्रात कालीन जलपान, जल मे भीगना, आदि कारणो से यह ज्वर होता है । इसमे मन्द ज्वर, स्तैमित्य (शरीर का गीले कपडे से ढका प्रतीत होना या शरीर मे गीला पन), आलस्य, मुख में मीठापन, शरीर में जकडन, न खाने पर भी पेट का भरा प्रतीत होना, भारीपन, शीतलता, जी मचलना, रोमाच, अतिनींद, जुकाम, अरुचि, खासी, आखो मे सफेदी, मूत्र-पुरीष, त्वचा मे सफेदी ये लक्षण होते हैं । नाडी की गति मन्द, सो भी अनामिका अंगुली पर अधिक प्रतीत होती है ।

यह ज्वर इतना मन्द होता है कि कहने लायक नही । १०१ डिग्री से ऊपर नहीं जाता । गति भी इसकी अत्यन्त मंद होती है। यहा तक कि ९९ डिग्री ज्वर महीनो चलता है ।[1] बल घटता जाता है, आलस्य आदि बढते जाते हैं, पर तापक्रम नहीं के बराबर रहता है । चिकित्सा भी इस पर शीघ्र काम नहीं करती । कारण यह है कि कफ बडी मन्थर गति से चलने वाला दोष है । भूख-प्यास बन्द हो जाती है । अत्यन्त अल्प आहार खाते हुए रोगी छ महीने तक पीडित रहता है ।

चिकित्सा—

रोगी को अधिक से अधिक लंघन कराना चाहिये । १२ दिन से लेकर २१ दिन का लघन तो साधारण बात है । जल पीने के लिये सहने योग्य अत्यन्त उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिये, सो भी मात्रा में अधिक और वारम्बार । यदि सम्भव हो तो जल को पीपर या सोंठ आदि मे पका कर देना चाहिये ।

---

1 किसी किसी रोगी में ९७ या ९८ डिगरी ज्वर भी महीनों या कुछ दिनो तक देखा जाता है।

वातावरण और वस्त्र आदि सामान्यत. उष्ण रखिये ।[1]

कफ ज्वर की औषधियाँ प्राय. उष्ण, कटु, तीक्ष्ण वीर्य एवं रुक्ष होती हैं। ये दोषो का पाचन करने मे बड़ी तेज होती हैं। सो भी बहुत दिनो तक सेवन की जाती हैं। एकदम पूर्ण स्वस्थ होने के पहले औषधि और पथ्य बन्द न कीजिये। क्योकि कभी-कभी दोष नष्ट हुआ सा प्रतीत होने पर भी चोर की तरह छिपा रहता है। समय और सुविधा पाकर पुन उभर आता है इसलिये अत्यन्त धैर्य रखकर चिकित्सा करते रहे।

ज्वर के साथ-साथ प्रतिश्याय (जुकाम) हो तो आगे वर्णित इसके प्रकरण को ध्यान मे रखकर चिकित्सा करें। (देखिये नासिका रोग)

औषधि व मात्रा	अनुपान	विशेष
कल्प-तरु—१ रत्ती	आर्द्रक रस डेढ माशा पान रस डेढ माशा मधु छ माशा	यह वात ज्वर मे भी उपादेय है।
त्रिभुवन कीर्ति रस (यो र०)—एक रत्ती	आर्द्रक रस, मधु	
मृत्युञ्जय—एक रत्ती	,, ,,	
आनन्द भैरव—एक रत्ती	,, ,,	
शीतभञ्जी रस (भै० र०)—एक रत्ती	,, ,,	
ज्वर केशरी—१।२ रत्ती	आर्द्रक रस, मधु	इसमे सखिया है। यह रेचक भी है।
रत्नगिरी—एक रत्ती	पिप्पलीचूर्ण, मधु	
संजीवनी वटी—एक रत्ती	आर्द्रक, पान का रस, मधु	कोष्ठबद्धता मे न दें।
महाज्वरांकुश—एक रत्ती	आर्द्रक रस	यह अल्प रेचक है।
कफ केतु[2] एक रत्ती	,, ,,	

इनमे से किसी एक औषधि का प्रयोग प्रात., दोपहर, साय, रात धैर्यपूर्वक करते रहे। यदि पसलियो मे दर्द हो तो मृग-शृंग भस्म २ रत्ती की मात्रा औषधि मे मिला दें। पुरातन गो-घृत की मालिश से भी यह दर्द नष्ट होता है। शुष्क खाँसी हो तो शार्ङ्गधर सहिता मे उल्लिखित व्योषादि वटी चूसने को दें। दिन-रात मे साधारणत. ८-१० गोली से अधिक न चूसने दें।

---

१ ग्रीष्म ऋतु में यदि यह ज्वर हो तो उष्ण वातावरण या उष्णवस्त्र नहीं धारण किया जा सकता पर अति शीतलभा, बर्फ खस की टट्टी आदि से बचना ही चाहिये। वसन्त और हेमन्त में यह ज्वर हो तब तो उनके अनुसार उष्णता का प्रयोग करे। शीतलता से बचे।

२ इसमें प्रत्येक औषधि के समान वत्सनाम है। इसके बाद भैषज्य रत्नावली में दूसरा कफ केतु है जिसमें सम्मिलित सब औषधियो के बराबर वत्सनाम है सन्निपाताधिकार में दूसरे कफ केतु का ही व्यवहार करना चाहिये।

बाल-चतुर्भद्रावलेहिका (च० द०)—

कायफल, पोहकर मूल, काकडा सिंगी और पिप्पली का सम-भाग चूर्ण बना लें। दिन-रात क लिये ४ माशा चूर्ण लेकर चौगुने मधु में मिला कर रख दें। इसे बराबर चाटने से श्वास, काम एवं पार्श्वशूल मे बड़ा लाभदायी होता है। बालकों के लिये विशेष हितकारी होने से इसका नाम सार्थक है। पर उन्हे ८ वर्ष के नीचे वालों को २ माशा से अधिक न दिया जाय। ४ वर्ष तक के बालक को १ माशा ही दें।

याद रखिये, किसी रोग मे औपधि बारम्बार चाटने को दिये जाने पर प्रात., सायं दोपहर, रात मे दी जाने वाली औपधि बन्द नही होती।

गुरुच, देवदारु, कचूर, चिरायता, पीपर, पोहकर मूल, वनभण्टा क्वाथ सावन परिभाषा से सिद्ध क्वाथ या पटोलादि क्वाथ (परवल की पत्ती, आंवला, हर्रा, बहेर्रा, कुटकी, कचूर, अडूसा की पत्ती, गुरुच का क्वाथ) के अनुपान से उपर्युक्त अवलेहिका को प्रात , साय दें तो अधिक लाभ होगा। सामान्य मात्रा ४ रत्ती होगी।

याद रखिये, इस ज्वर की औपधिया बडी उष्ण होती है। अत. अधिक उष्णता का अनुभव रोगी को हो तो इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

पथ्य—

सामान्यत. १२ दिन तक लंघन (उपवास) चलता है।[1] इसके बाद दोप पच जाने पर मूँग का यूप या परवल का यूप और भात देना चाहिये। दूध मत दीजिये। पर जो ज्वर महीनो चलता है उसमे बकरी के दूध का प्रयोग किया जा सकता है।

शीतल जल मत दीजिये, हमेशा उष्ण जल ही पीना चाहिये।

ज्वर मुक्त हो जाने पर तथा शक्ति आ जाने पर अश्व कञ्चुकी रस एक रत्ती का आर्द्रक रस के साथ प्रयोग कर विरेचन करा दें।

गोदन्ती भस्म

इस ग्रन्थ में एक-एक औपधि के विपय मे विवेचन सम्भव नहीं, परन्तु इस भस्म का ज्वरो मे विशेप स्थान है। इसलिये इसका विवेचन यहा अनुचित न होगा।

बाजार मे यह गोदन्ती हरताल के नाम से मिलती है। कभी-कभी इसके भीतर मिट्टी फँसी हुई रहती है। जो टुकड़े करते समय निकल जाती है। इसके शोधन और भस्म के विविध विधान हैं, पर यहां पर अत्यन्त साधारण विधि ही लिखेगें।

---

१ यदि बारह दिन तक भी दोप का न पाक हो तो इससे अधिक यहां तक कि महीनों लघन चल सकता है। यह याद रखिये कि कफ और पित्त ये द्रव धातुये हैं। इनमें आम दोप का अधिक समावेश सम्भव हैं। इसलिए इनके ज्वर में अधिक लघन सह्य होता है। परन्तु वात रूक्ष धातु है इसमें आम का समावेश कम ही रहता है। साधारणतया तनिक ही आम रहता है उसे तनिक आम के नष्ट हो जाने पर इसके ज्वर में क्षण भर का लंघन सह्य नहीं है। लंघन संबंधी पूर्वोक्त प्रकरण भी पढ लें तो उत्तम हो।

गोदन्ती हरताल के टुकडे (साधारणत आधा अंगुल बडे) कर ले। एक मिट्टी के कसोरे मे (अधिक होने पर हडिया मे) नीचे नीम की हरी पत्ती की एक तह (साधारणत. १०-१५ पत्ती के बराबर मोटी) रख दें। उस पर गोदन्ती की अधिकतम १, २ अंगुल मोटी तह बिछा दें। इस तह पर पुन नीम की पत्ती की पूर्वोक्त मोटी तह बिछा दे। इस प्रकार गोदन्ती एवं नीम की पत्ती की कई तहें बिछायें। सबसे ऊपर नीम की पत्ती की तह रहनी चाहिये। अब पात्र को उसके मुँह के बराबर कसोरे या मिट्टी के पात्र से ढक कर गाढी चिकनी पीली मिट्टी से सने हुये कपडे से सन्धि लेप कर दें। तत्पश्चात् पूरे पात्र और पूरे ढक्कन को चारो ओर से उपर्युक्त प्रकार की मिट्टी से सने कपडे की तीन तहो से लपेट दें। इसी का नाम सम्पुट या पुट है। इसे सुखा लें, तत्पश्चात् वनोपल (जंगल मे चरनेवाली गायो के सूखे हुये गोबर) या गोहरी को[1] सवा हाथ गहरे, सवा हाथ लम्बे एव सवा हाथ चौडे गढे के २।३ हिस्से मे भर कर ऊपर सपुट रखकर उसके तीन ओर विना लपट की आग रख उसे प्रज्वलित कर दें। पर आग अच्छी तरह जी जाने पर ज्वाला बुझा दे। तात्पर्य यह है कि ज्वाला-रहित आग तैयार रहे। ज्वाला निकलने से अतिशीघ्र गोहरी जल कर बेकार हो जायेगी। गढे के शेष १/३ हिस्से को भी वनोपल[2] या गोहरी से ढक दें। अब गड्ढे को ऊपर से धुआ निकलने का स्थान छोड कर कुम्हार के आवा के समान ढक दें। दूसरे दिन आवा अपने आप ठण्डा हो जायेगा अब पुट को निकाल कर सावधानी से उसका सन्धि लेप हटा कर खोल कर एक पात्र मे गोदन्ती एवं नीम की पत्ती की राख को रख दें। साधारण हवा से पत्ती की राख उडा दे। गोदन्ती[3] पीस कर कपडे से छान लें। गोदन्ती भस्म तैयार है। यह विधान अधिकतम एक सेर गोदन्ती के लिये है। अधिक के लिये अधिक विस्तारवाले गड्ढे एवं अधिक गोहरी की आवश्यकता है।

कम व्यवहार के लिये गोदन्ती हरताल १ या २ इञ्च लम्बे टुकडे को रसोई बनाते समय लकडी के कोयले या लकडी की आच मे रख दें। रसोई बनाने के बाद जब अपने आप चूल्हा ठण्डा हो जाये तो गोदन्ती के टुकडो को सावधानी से उठा कर, पीस कर, कपड छान कर व्यवहार किया जा सकता है। पर यह काम चलाऊ है, पूर्वोक्त पुट वाली भस्म से तनिक कम लाभकारी होती है। उससे इसकी मात्रा सवाई या डेढी होनी चाहिये।

---

१ अत्यन्त हलकी गोहरी ठीक नही है। चिपरी या गोहरा ठीक हैं यह याद रखिये, गोहरी में पत्थर के कोयला का चूरा न मिला हो।

२, थोडा खरपात रखकर ऊपर से मिट्टी के कीचड की आधा इञ्च मोटी तह कर देने से आंवा ढक जाता है। इसके अभाव मे साधारण टिन आदि किसी चीज से ढक सकते हैं। यह याद रखें कारण आग से ये ढक्कन खराब हो जाता है।

३, गोदन्ती और नीमपत्र की राख को साथ ही पीस कर प्रयोग करें तो कुछ अधिक लाभ होगा। सब भस्म का रंग बिगड जाता है।

गुण—गोदन्ती भस्म का प्रयोग किसी भी साधारण ज्वर में (शीतागवाले मे नहीं) निरापद रूप मे किया जा सकता है। यह मृदुवीर्य है, इसलिए पृथक् पृथक् दोषोवाले ज्वरो मे काम करती है। सन्निपात या उपद्रवोवाले ज्वरो में कोई विशेष लाभ नही करती। पर ज्वर की किसी भी अवस्था मे अपने विशिष्ट गुणो के लिये औषधि के साथ मिला देने से या स्वतंत्र रूप से व्यवहार करने पर हानि नही कर सकती। कुछ-कुछ लाभ ही होगा। ज्वरो मे दाह, प्यास, शिर शूल और सर्वांग शूल में अत्युपयोगी है। पसीना लाना भी इसका एक साधारण गुण है।

ज्वरो के अतिरिक्त श्वास, शुष्क कास, प्रदर, शिर शूल, प्रतिश्याय (जुकाम) इन्फ्लूएंजा मे लाभ करती है। बालको की मुखएडी, अजीर्ण, वमन, कोष्ठवद्धता मे भी कुछ लोग इसका प्रयोग करते है।

इसकी साधारण मात्रा २ रत्ती से १ माशा तक है। साधारण अनुपान नीम की गरुच[1] का रस या उष्ण जल है।

अलग-अलग व्याधियो मे इसकी यह प्रयोग विधि है —

साधारण ज्वरो या व्याधियो मे उनके अनुपानो से व्यवहार करना चाहिए।

विषम ज्वर—मलेरिया मे ३ रत्ती गोदन्ती भस्म, २ रत्ती फिटकरी भस्म, तुलसी पत्र के रस मे मिला कर पिला दें। तत्पश्चात् सुदर्शन चूर्ण का फाण्ट या काढा[1] छटाक मिला दें। ज्वर वेग के समय एवं प्रात., दोपहर, सायं, व रात मे ऐसी मात्रा दें।

यदि आप वैद्य हैं तो ६ रत्ती इसकी भस्म मे १/८ रत्ती संखिया भस्म मिला कर प्रात., सायं उपयुक्त अनुपान से ही प्रयोग करें। विषम ज्वर उतरने पर विषम ज्वर शामक औषधि[2] एक मात्रा दे दें।

शिर:शूल में—एक माशा की मात्रा खिला कर उष्ण जल या उष्ण दूध पिलादें। शूल के समय एवं प्रात., दोपहर, सायं और रात को व्यवहृत करें।

इसी मे बराबर मिश्री एवं एक तोला उष्ण गोघृत मिला दें तो अधिक लाभ होगा। अधकपारी और सूर्यावर्त्त मे सूर्योदय से एक घण्टा पूर्व एक मात्रा अवश्य प्रयोग करें।

याद रखिये श्लेष्मज (कफज और प्रतिश्यायज) शिर शूल मे दूध या घृत का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

प्रदर मे १ माशा गोदन्ती भस्म कच्चे गूलर फल के २ तोले रस मे प्रात, दोपहर, सायं और रात मे दें।

इसमे यदि १ रत्ती त्रिवंग या वंग भस्म मिला कर दें तो अत्युत्तम होगा। अनुपान यदि शर्वत बनफसा कर दें तो और अधिक लाभ होगा।

१, गुरुच नीम की ही और हरी उपयोगी है बिना पानी मे पीसे इसका रस नहीं निकलता है। प्रमेह मे लिए बरगद, गूलर पीपर पर की गुरुच या उसका सत्व लिया जा सकता है।

२. देखिये विषम ज्वर प्रकरण।

साथ ही साथ रक्त प्रदर मे दोनो समय के भोजनोपरान्त १ तोला अशोकारिष्ट या पत्रागासव पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

बच्चो की सुखण्डी मे ४ रत्ती गोदन्ती भस्म, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती मिलाकर मधु या स्वस्थ माता के दूध मे प्रातः, दोपहर, सायं, रात दें।

प्रतिश्याय या इन्फ्लूएंजा मे— ४ रत्ती की मात्रा उष्ण जल या आर्द्रक स्वरस मे प्रात, दोपहर, साय, रात दें। इसी मे नारदीय लक्ष्मी विलास १ रत्ती मिला दें तो अत्युतम है।

द्वन्द्वज ज्वर

'न रोगोप्येक दोपज.' के अनुसार कोई भी रोग केवल एक दोप से उत्पन्न नहीं होता। किन्तु रोग मे जो दोप अधिक कारण होता है या जिसके अधिक लक्षण मिलते हैं, उसी दोप के दृष्टिकोण मे उस रोग का निदान एवं चिकित्सा की जाती है। कम कारण एवं कम लक्षण वाले दोष की यद्यपि सर्वदा उपेक्षा नहीं की जाती तथापि निदान एवं चिकित्सा मे उसकी प्रमुखता नहीं रहती। जिस प्रकार वात ज्वर मे अधिक कारण एवं अधिक लक्षण वात के ही हैं, कारण और लक्षण मे पित्त कमजोर है इसलिए नाम वातज्वर हुआ। चिकित्सा भी इसी दृष्टिकोण से होगी। यहा पर पित्त की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। परन्तु उसे उतनी प्रमुखता भी नहीं मिल सकती, जिससे रोग के नाम के साथ वह जुड सके।

कारण एवं लक्षण के दृष्टिकोण से एक दोष के साथ दूसरे दोष का भी अपेक्षणीय महत्व हो तो उससे युक्त रोग को द्वन्द्वज अर्थात् (दो दोपों से उत्पन्न) संज्ञा दी जाती है। चिकित्सा भी इसी दृष्टिकोण से होगी। इस प्रकार सभी रोग द्वन्द्वज भी होते हैं। उनमें कोई दो दोप कारण मे महत्वपूर्ण स्थान रखेगें। लक्षण भी अधिकतम दोनो दोपो के मिलेगें। चिकित्सा भी दोनो दोपो को मिला कर होगी। सावधानी इतनी वर्तनी होगी कि दोनो दोपो की चिकित्सा परस्पर विरोधी न हो। इसका ध्यान रखते हुए ऐसी औपधि, अनुपान, क्रम और पथ्य का व्यवहार करते हैं जो दोनो दोषो को नष्ट करने या कम करने वाला हो। शास्त्र मे मनन करने से ऐसी औषधियो की कमी नही है।[1] पर यदि ऐसी औपधि या अनुपान आदि ध्यान में न आते हो तो दोनो दोषो की अलग-अलग कही गयी औपधि आदि मिलाकर संयुक्त रूप से व्यवहार करना चाहिये, जो परस्पर विरोधी न हों।

प्रत्येक व्याधि द्वन्द्व दोष के दृष्टिकोण से तीन प्रकार की होती है—वात-पित्तज, वात-कफज और पित्त-कफज ये ही तीन द्वन्द्वज ज्वर होते हैं। इनका वर्णन हम संक्षेप मे ही कर सकेगें।

१, औपधियों अनुपानों एवं पथ्यों के गुण में लिखा रहता है कि अमुक पदार्थ अमुक अमुक दोप को नष्ट करतो हैं। वस वही से अभीष्ट दोप की औपधियों आदि की पकड़ होगी। यदि आप द्रव्य के गुण, रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव आदि को जानते हैं तब तो आप स्वत निर्णय करने में समर्थ होंगे।

वात-पित्त ज्वर

लक्षण —

वात ज्वर एवं पित्त ज्वर दोनो के लक्षण संयुक्त रूप से मिलते है। जो ये हैं—

प्यास, बेहोशी, चक्कर, दाह, निद्रानाश, शिर शूल, मुख और कण्ठ का सूखना, वमन, रोमाञ्च, अरुचि, आंखो के सामने अंधकार, सन्धियो मे पीडा और जम्हाई।

ज्वर का वेग १०० से १०४ डिगरी फा० के बीच घटता-बढता रहता है। साधारणत मध्य-रात्रि एवं मध्याह्न मे बढता है।

चिकित्सा—

साधारणत तिक्त और मधुर रस प्रधान औषधिया दी जाती है। मुनक्का, अजीर, निशोथ, अमलतास आदि भी मृदु रेचक होने के नाते मिला दिया जाता है।

वात-पित्तान्तक रस एक या दो रत्ती की मात्रा, मधु तीन माशा, मिश्री तीन माशा और गुरुच का रस छ माशा के साथ प्रातः, दोपहर, सायं एवं रात दें।

या

वैद्यनाथ वटी (र०सा०सं० उदावर्तविकार) एक रत्ती की मात्रा से उष्ण जल से उपर्युक्त समय मे दें।

पंचभद्र क्वाथ —

गुरुच, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता सोठ[1] स्वतन्त्र रूप से या अनुपान स्वरूप प्रातः सायं व्यवहार करने से भी अत्यन्त लाभ होता है। इसमे मुनक्का भी रेचनार्थ मिलाया जा सकता है।

इनके अभाव मे वातज्वर और पित्तज्वर की एक या आवश्यकतानुसार दो-दो औषधियां विचारपूर्वक मिलाकर दें। अनुपान और पथ्य की भी यही स्थिति करें।

पथ्य —

मूंग और आवले का यूष, अनार, मुनक्का और गंभार का फल दें। औटा कर शीतल जल पीने को दें।

अपथ्य —

केवल मूंग का यूष, करैला आदि अपथ्य है।

वात-कफ ज्वर

इसमें वात ज्वर एवं कफ ज्वर के सम्मिलित लक्षण भी मिलते हैं। परन्तु उनके

---

1. सब द्रव्य सम भाग लेकर कुल २ तोले ल आध सेर पानी मे पकाकर एक छटांक पानी बचाये यह एक मात्रा है।

अतिरिक्त कतिपय विभिन्न[1] लक्षण भी मिलते हैं। कुल मिला कर इस ज्वर के निम्नलिखित लक्षण हैं—

शरीर मे गीलापन, सन्धियो मे टूटने सी पीडा, निद्रा, भारीपन, शिर की जकडन, जुकाम, कास, पसीना का आधिक्य[2], सन्ताप[3] और ज्वर का मध्य वेग १०० डि० से १०२ डि० तक) यह ज्वर साधारणत प्रात, सायं, रात मे रहता है।

इनमे साधारणत कटु और तिक्त रस की औषधिया, अनुपान या स्वतन्त्र रूप से दी जाती है। पहले सम्भव हो तो वालुका स्वेद से पसीना निकाल दें। सुप्रसिद्ध पंचकोल या आरोग्य-पंचक (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्ता, सोठ प्रत्येक समभाग) का चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक की मात्रा मे मधु के साथ प्रात, सायं व रात देने से वडा लाभ होता है।

या पीपर, नागरमोथा, सोठ और चिरायता का क्वाथ, स्वतन्त्र या किसी वात-कफ ज्वर नाशक औषधि के अनुपान स्वरूप दें।

या क्षुद्रादि गण (भटकटैया, गुरुच, सोठ और पोहकरमूल) का क्वाथ प्रात, दोपहर, सायं और रात को देने से वड़ा लाभ होगा। इसे भी स्वतन्त्र या अनुपान रूप से प्रयुक्त कर सकते हैं।

या आरग्वधादि गण (अमलताश का गुदा, कुटकी, हर्रा, पीपरामूल, नागरमोथा) का क्वाथ स्वतन्त्र या अनुपान रूप से प्रात., दोपहर, सायं और रात को देना चाहिए। इसे गिरिमाला पंचक या गिरिमाला-आरोग्य-पंचक भी कहते हैं। यह रेचन भी है। या दशमूल का क्वाथ पिप्पली चूर्ण डालकर पिलायें।

प्रारम्भ मे मृत्युञ्जय रस एक रत्ती आर्द्रक रस और मधु के साथ दें। यदि पसीना निकाल कर ज्वर कम करना हो तो रत्नगिरी (भा० प्र०) १ रत्ती का प्रयोग पिप्पली चूर्ण मधु से दे। पहले यह अधिक गर्मी करता है। इससे घवडाना नही चाहिये। चार-पाच घण्टे मे खूब पसीना निकलता है। जिससे ज्वर कम होता है। पसीना निकल रहा हो तो इसे न दें। सूर्य शेखर रस (भा० प्र० या रसप्रदीप) मात्रा एक रत्ती सी उष्ण जल के अनुपान से इस ज्वर मे बडा लाभ करता है इसमे जमालगोटा होने से रेचक है।

इनके अतिरिक्त गोदन्ती भस्म, शृङ्ग भस्म, त्रिभुवन कीर्ति, त्रैलोक्य चिन्तामणि भी उत्तम कार्य करते हैं।

१, द्वन्द्वज रोगों में सम्मिलित दोनों दोषों के जो लक्षण मिलते हैं वे प्रकृति सम समवाय कारण से उत्पन्न होते हैं। जैसे इस ज्वर में गीलापन, पीड़ा, निद्रा आदि में वात एवं कफ के ही लक्षण हैं।

२-३ परन्तु दोनो दोषों से सर्वथा भिन्न जो लक्षण मिलते हैं वे विकृति विषम समवाय के कारण उत्पन्न होते हैं—जैसे इसी ज्वर में पसीना का आधिक्य एवं सन्ताप जो वात और कफ में से किसी का लक्षण नही है। दोनों के मेल से एक तीसरी वस्तु उत्पन्न हुई।

प्रकृति सम समवाय का लोक में एक उत्तम उदाहरण है श्वेत सूत्र से श्वेत वस्त्र का निर्माण।

विकृत विषम समवाय का उत्तम उदाहरण है हल्दी पीली और चूना सफेद से एक पृथक रंग लाल का निर्माण।

उपर्युक्त औपधियो या क्वाथो मे से किसी के साथ नरसार (नवसादर) एक रत्ती की मात्रा से मिला दें तो लाभ बढ जाता है।

कोष्ठबद्धता की स्थिति मे ज्वर केसरी वटी एक रत्ती या अश्वकञ्चुकी एक रत्ती का प्रयोग करें। अनुपान आर्द्रक रस होगा।

पसीना अधिक निकलने पर कुलथी का सत्तू उष्ण राखी, चूल्हे की मिट्टी, कायफल चूर्ण मे से किसी एक का मर्दन करें।

पथ्य —

साधरणत ७ दिन तक लंघन चलाइये, तत्पश्चात् यदि दोष पच गया हो तो बृहत्पंचमूल (बेल, अरणी, सोनापाठा, गम्भार, पाढल) या छोटी मूली से सिद्ध मूंग का यूप दें। जलपानार्थ खूब खौलाया हुआ जल ठण्डा करके दें।

पित्त-कफ ज्वर

इसमे पित्त ज्वर एवं कफ ज्वर दोनो के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं। जो ये हैं—

मुंह मे लेप सा एवं तीता[1] प्रतीत होना, उंहाई, बदहोशी, कास, अरुचि, प्यास वारम्वार दाह और वारम्वार शीतलता का प्रतीत होना।

यह प्राय. प्रात या दोपहर को बढता है। पित्त प्रबल होने पर ज्वर १०४ डिगरी के ऊपर और दाह होता है। कफ प्रबल होने पर ९९ डिगरी या इससे नीचे तथा शीतलता होती है। ये दोनो लक्षण दोप के अपने काल मे अवश्य मिलते हैं। कभी कभी दाह और शीतलता या ज्वरवेगाधिक्य या न्यूनता थोडी-थोडी देर पर होती है। जिससे रोगी और अल्पज्ञ चिकित्सक घबडा जाते हैं। पर सावधानीपूर्वक चिकित्सा करने से कोई हानि नहीं होने पाती।

इसमें तिक्त और कटु रस की औपधियां दी जाती हैं। अमृताष्टक गण (गुरुच, नीम की छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्र जौ, सोठ, परवल की पत्ती और लाल चन्दन का बुरादा) का काढा पीपर का चूर्ण ४ रत्ती मिला कर प्रात सायं पिलाने से अत्यन्त लाभकारी होता है। यह रेचक है। दाह, ज्वर और तृष्णा नाशक है। इसे स्वतन्त्र या अनुपान स्वरूप व्यवहार करें।

या चिरायता, सोठ, नागरमोथा और गुरुच का क्वाथ प्रातः, दोपहर, सायं पिलायें।

या अडूसे की पत्ती का स्वरस मिश्री और मधु मिला कर पिलायें। यह मृदुवीर्य है। सुप्रसिद्ध सुदर्शनचूर्ण भी दिया जा सकता है।

या चन्द्रशेखर रस एक रत्ती आर्द्रक स्वरस और मधु मे प्रात., सायं तथा रात देने से बडा लाभ होता है। इस पर ठण्डा जल पीना चाहिये।

---

१ कडुआ नहीं तिक्त

या सुप्रसिद्ध सौभाग्य वटी २ रत्ती गुरुच और आर्द्रक स्वरस मे दें।

या मृत्युञ्जय रस एक रत्ती और गुरुच का सत्व २ रत्ती की मात्रा से प्रात, दोपहर, सायं तथा रात वेल की पत्ती के रस ३ माशा और तीन माशा मधु से दें।

पथ्य—

साधारणतया १० दिन के बाद दोष पच जाने पर परवल और धनिया के क्वाथ से सिद्ध मूंग का यूप दें या परवल का सिद्धरस दें।

—: सन्निपात ज्वर या त्रिदोष ज्वर :—

वात, पित्त, कफ इन तीनो दोषो के सम्यक् निपात (भलीभांति एक स्थान पर एक रोगी में गिरने) को सन्निपात कहते हैं। इसमे तीनो दोषो के लक्षण मिलते हैं। प्राय वसन्त, शरद और वर्षा ऋतु मे यह ज्वर होता है। तीनो दोषो को कुपित करने वाले कारण इसके भी कारण होते हैं। यद्यपि त्रिदोषज या सन्निपातज प्रत्येक रोग होता है परन्तु केवल सन्निपात शब्द से वैद्य एव जनता इसी ज्वर का बोध करती है। एक प्रकार से सन्निपात शब्द इसी मे रूढि हो गया है। इसी को सरे-शाम भी कहते हैं। विषम ज्वर सर्वत्र मलेरिया को कहा जाता है। पर मध्य-प्रदेश मे कहीं-कहीं विषम शब्द से इसी का बोध होता है। वहा विषम शब्द मलेरिया या सन्निपात किस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, इसे जान कर ही चिकित्सा करनी चाहिये। काश्यप संहिता मे भी समज्वर साधारण ज्वर को और विषम ज्वर असाधारण ज्वर को कहा गया है। वहा विषम ज्वर के लक्षण भी सन्निपात ज्वर (त्रिदोष ज्वर) के समान ही कहे गये हैं।[1] अतिसार, ग्रहणी, कास इत्यादि कोई भी रोग सन्निपात या त्रिदोप जन्य हो तो स्पष्टत सन्निपात या त्रिदोप शब्द के साथ उस रोग का नाम[2] अवश्य लेना चाहिये, नही तो केवल सन्निपात या त्रिदोष शब्द कह देने से सन्निपात ज्वर का ही बोध होगा। यह बडा भयानक और कष्टदायक होता है। साधारणत इसके ये लक्षण होते हैं :—

क्षण मे दाह, क्षण में शीत, अस्थि सन्धियो एवं शिर मे पीडा, नेत्रो का स्रावयुक्त-मलिन-लाल-टेढा होना, कानो का शब्द युक्त व पीडा युक्त होना, गले का भूसी से आवृत्त होना, ऊँहाई, वेहोशी, प्रलाप, कास, श्वास, अरुचि, चक्कर, जिह्वा का जली हुई सी खरदरी और शिथिल होना, कफ मिश्रित रक्तपित्त का थूक में आना, सिर का इधर-उधर घुमाना, प्यास, निद्रा नाश, हृदय मे पीडा स्वेद, मूत्र पुरीष का देर में और थोडा दिखाई देना, अंगो मे अतिकृशता का अभाव, बरावर कण्ठ मे कूजन की सी (कहरने की सी) आवाज, सावले-लाल विभिन्न आकार के या गोल चकत्तो का दिखायी पडना, मूकता (न बोलना), नाक, कान, मुँह आदि मे पाक, उदर मे भारीपन और दापो का देर मे पाक होना।

---

१. देखिये आगामी विषम ज्वर

२. जैसे सन्निपातज ग्रहणी, सन्निपातज अतिसार आदि।

यह स्मरणीय है कि ये तीनों दोषों के लक्षण हैं। जो दोष उल्वण (अत्यन्त कुपित) होगा उसके लक्षण अधिक मिलेंगे। जैसे मूकता और प्रलाप दोनों विरोधी लक्षण हैं। कफ की उल्वणता से मूकता और वात की उल्वणता से प्रलाप होगा। कहाई कफाधिक्य एवं निद्रानाश वाताधिक्य से होगा। दाह पित्ताधिक्य एवं शीत कफाधिक्य से होगा। इस प्रकार दोष की उल्वणता के अनुसार लक्षण मिलेंगे। सब साथ ही नहीं मिलेंगे।[1] सन्निपात का एक-एक लक्षण बड़ा कष्टदायक और भयानक होता है।

यहाँ सन्निपात ज्वर की सामान्य चिकित्सा लिखने के बाद भेदानुसार चिकित्सा लिखेंगे।

सामान्य चिकित्सा —

सन्निपात ज्वर में कौन दोष अत्यन्त कुपित है, उससे कम कौन और उससे कम कौन कुपित है, यह निर्णय कर लेना आवश्यक है। इसका वर्णन इसी प्रकरण में हम आगे करेंगे। अधिक बढ़े हुये दोष को घटाना सर्वोपरि कर्तव्य है। पर यह ध्यान देना चाहिये कि दूसरा दोष बढ़ कर हानिकारक न होने पावे। इसलिये बढ़े हुये दोष को इतना ही घटाते हैं जितने से वह सामान्य अवस्था में आ जाय। यदि वह सामान्य अवस्था से कम होगा तो निस्सन्देह दूसरा दोष बढ़ जायेगा। दोष की सामान्य अवस्था का तात्पर्य उन लक्षणों के उत्पन्न होने से है जो एक निर्बल साधारण एवं स्वस्थ पुरुष में होते हैं। जैसे प्रलाप का होना वात प्रकोप का लक्षण है, वह नष्ट हो जाये और रोगी ठीक से होश रखकर सबसे बातचीत कर सके तो वह सामान्य अवस्था होगी। निस्सन्देह यह सामान्य स्वस्थावस्था का लक्षण है पर निर्बलता तो रहेगी ही। जब इसके बाद भी वातनाशक क्रम पूर्ववत चलता रहा तो वात क्षीण हो जाने के परिणाम-स्वरूप कफ का प्रकोप हो जायेगा। जिसका लक्षण श्वास-कष्ट, (श्वास बढ़ जाना, घुरघुराहट या श्वास लेने में कष्ट) कास और शीतागता आदि हैं। इसलिये त्रिदोष ज्वर में तीनों दोषों का सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है इसके लिये यह अनिवार्य है कि बढ़ा हुआ दोष उतना ही घटाया जाय जितने में उसके उपद्रव कम हो जाय। उपद्रव के कम होते ही उसके उपचार को कम करने के साथ ही गौण दोषों की चिकित्सा भी उनके प्रकोप की मात्रा के अनुसार करनी चाहिये।

सन्निपात ज्वर में एक बात स्पष्ट है कि चाहे कोई दोष कुपित हो पर उसमें सामता[2] अवश्य रहेगी। सामता कफ की सहधर्मिणी है और ज्वर का मुख्य स्थान आमाशय कफ का स्थान है। इसलिये सर्वप्रथम कर्तव्य सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में आम और कफ का नाश करना है। इनके नष्ट होने पर पित्त और वायु का शमन करना चाहिये।

---

१ किसी भी व्याधि के लक्षणों की सम्पूर्णता उसकी असाध्यता की परिचायिका होती है। अधिकांश लक्षणों से व्याधि का निर्णय होता है

२. आम का साथ रहना। इसके संबंध में देखिये द्वितीय अध्याय का अन्तिम प्रकरण दोषों की सामता।

चिकित्सा –

लघन वालुका स्वेद नस्य, निष्ठीवन अवलेह और अञ्जन।

लघन —

इसका विवेचन हम ज्वर प्रकरण मे कर चुके हैं। यह समझ लीजिये कि सामान्यत इसे वातोल्वरण सन्निपात मे तीन दिन, पित्तोल्वरण[1] मे सात दिन और कफोल्वरण मे दस दिन करना चाहिये। इतने दिनो मे भी यदि दोष न पचने के लक्षण मिलें तो आरोग्यदर्शन [2] तक लंघन कराना चाहिये। इसके लिये कभी-कभी ४० दिन तक लघन कराया जाता है। जबतक दोष न पचे तबतक लंघन करने मे चाहे कितना दिन ही क्यो न लगे, घबडाना नहीं चाहिये। क्योकि साम दोषो की शक्ति रोगी को अत्यधिक लघन-सहिष्णु बना देती है। साम दोषो के नष्ट हो जाने पर कोई लंघन[3] आदि सह नही सकता। लंघन सन्निपात ज्वर मे किसी भी दोष की उल्वणता में कराया जाता है।

वालुका स्वेद—

एक खपडे मे प्रतप्त वालू रख दें। उसपर बेंत से बिनी कुर्सी या छिद्रयुक्त कोई आसन या चारपाई रख दें। रोगी को उस आसन पर बैठा या सुला दें। गले के नीचे से कोई मोटा कपडा रोगी को आसन समेत इस प्रकार ओढा दें कि कपडा जमीन तक सहरता रहे। अब प्रतप्त वालू पर बारम्बार काजी छिडकिये। परिणामस्वरूप वाष्प रोगी के शरीर पर लगकर पसीना उत्पन्न करेगी। यदि अधिक देर तक स्वेदन करना हो तो लकडी के जलते कोयले के दमचूल्हे पर खपडे मे प्रतप्त वालू रखा रहे। स्वेदन वात और कफ के प्रयोग मे करना चाहिये। पित्त प्रकोप में नही, नेत्रो की लालिमा, प्रलाप, वमन और शिर-कम्प में भी नही करना चाहिये।

स्वेदन (पसीना) द्वारा दोष निकाल कर तुरन्त उत्तम कार्य करता है। परन्तु साधारणतया चिकित्सक इसे नही करते। रोगी होश मे हो तभी यह सम्भव है। अगो की पीडा को तो यह तुरन्त कम कर देता है।

स्वेदन प्रकरण हम पंचकर्म के पूर्व लिख चुके है।

नस्य —

रोगी को होश मे लाने के लिये रेचन नस्य का प्रयोग करते हैं। इससे छीक आकर तन्द्रा और बेहोशी दूर हो जाती है। प्रलाप कम हो जाता है। शिर शूल नष्ट होता है। नींद आती है। साधारणतया कायफल का चूर्ण या नकछिकनी के चूर्ण का प्रयोग किया जाता है।[4] गीला चूना और नौसादर मिलाकर शीशी मे बन्द कर लें इसमे अमोनिया

---

१. कही कही पांच दिन ही लिखा है।

२. आरोग्य दर्शन का तात्पर्य यहां सामदोषों के पचने तक से है।

३. आदि से यहां तात्पर्य पाचन क्रम से है।

४. रोगी यदि नस्य सूघने में असमर्थ है या नासिका में लगाने पर उसका प्रभाव न पड़े तो नस्य के चूर्ण को कागज या किसी नलिका में रख कर उसे नाक में लगाकर धीरे से फूंक दें। इससे चूर्ण नासिका में प्रविष्ट हो जायेगा।

गैस तत्क्षण तैयार होगी। इसको सुंघाने से भी लाभ होता है। कुलवधूरस, जयमंगल रस और नस्य भैरव रस भी नस्य में वडे हितकारी होते हैं। इनमे से किसी एक का प्रयोग करें

गन्धक का धूवाँ भी यदि नासिका मे प्रविष्ट हो सके तो होश मे लाने मे अधिक सहायता मिलेगी।[1]

नस्य प्रकरण भी पंचकर्म मे लिखा जा चुका है।

निष्ठीवन —

मुख, गला, हृदय, छाती और सिर की श्लेष्मा या कफ इससे निकलती है। निष्ठीवन का अर्थ थूकना होता है। वारम्वार थूकने से दोष वाहर निकलता है। इसमे ऐसी औषधि का प्रयोग करना चाहिये जो मुंह के भीतर जाने पर हानि न करे, आर्द्रक (आदी) का रस सेंधा नमक और काली मिर्च[2] मिला कर रोगी के मुंह मे धारण करने के लिये देना चाहिये। इससे थूक वारम्वार वनेगा। उसे रोगी थूकता जाय। काफी थूक निकल जाने पर निष्ठीवन वन्द कर दें। नहीं तो मुंह मे शुष्कता वढेगी। शुष्कता वढने पर मुंह में मधु का लेप कर दें।

कोई भी कटु पदार्थ यथा कायफल, पीपर आदि मे सेंधा नमक मिला कर भी निष्ठीवन के लिये प्रयुक्त हो सकता है।

रोगी यदि एकदम वेहोश हो तो निष्ठीवन का प्रयोग न करें। प्रलाप की अवस्था मे रोगी की जिह्वा पर निष्ठीवन द्रव्य का लेप कर दें।

निष्ठीवन का प्रयोग भी चिकित्सक कम ही करते हैं। इसके विना भी काम चल जाता है।

अवलेह —

कफोल्वण सन्निपात में इसका विशेष प्रयोग होता है। वारम्वार द्रव्य चाटने के लिये देते हैं। जिससे कफ निकले। कायफल, पोहकर मूल, काकडा सिंगी और पीपल का सम भाग चूर्ण[3] लेकर मधु में मिला कर रख दें। इसे वारम्वार चटाने मे वडा लाभ होता है।

---

१. एक गोरैया (वनारस में तम्वाखू पीने वाले मिट्टी के वने हुए एक प्रकार के हुक्के का प्रयोग करते हैं जिसे गोरैया कहते हैं) के पानी भरने वाले भाग को सन्धि से फोड़ दें उसके निचले टुकड़े में कोयले की आग पर थोड़ी सी अशुद्ध या शुद्ध गन्धक रख कर दूसरे टुकड़े से ढक दे। इसकी एक नलिका वन्द कर दूसरी नलिका द्वारा गन्धक का धूवा रोगी की नासिका में प्रविष्ठ करायें। इस प्रकार का नलिका युक्त अन्य साधन भी प्रयुक्त हो सकता है।

२ आदी का रस चवन्नी भर सेंधा नमक दो आना भर और मिर्च एक आना भर ले। यह सामान्य मात्रा है।

३ कुल मिलाकर छ माशा दिन रात मे प्रयुक्त हो सकता है मधु दो तोला तक हो सकता है।

अथवा तालीसादि चूर्ण छ माशा, टंकण या नवसादर एक माशा, मधु या मिश्री की चासनी में मिला कर दिन भर चाटने के लिए प्रयुक्त होता है। अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर इसका दुगुना तक दिन रात मे प्रयुक्त हो सकता है।

अञ्जन —

प्रलाप, तन्द्रा, बेहोशी मे नेत्रो मे अञ्जन का प्रयोग किया जाता है। सन्निपात मे नेत्रो में लालिमा, टेढ़ापन, दृष्टिहीनता भी आ जाती है। उस अवस्था मे भी अञ्जन प्रयुक्त होता है।

साधारणत तीक्ष्ण एवं कटु द्रव्यो से अन्जन करते हैं। इसलिये कि आसू आये और दोष बाहर निकल जाय। दोष निकल जाने से उपर्युक्त विकार ठीक हो जाते हैं। यदि एक बार के अन्जन से आँसू न आये तो दुबारा तिबारा लगायें। इस पर भी आसू न आये तो अवस्था अत्यन्त भयानक समझिये।

सुप्रसिद्ध लेखनी चन्द्रोदयावर्ती को पानी मे घिस कर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

या लहसुन, मैनसिल और बालवच, गोमूत्र मे पीस कर अंजन करें। यदि इसी मे शिरीष बीज, पीपर काली मिर्च और सेंधा नमक भी, मिला दें तो अत्यधिक लाभदायी होगा।

या मैनसिल, सेंधा नमक, काली मिर्च और मधु का अन्जन भी अतीव लाभदायक है।

या अन्जन भैरव रस—पानी मे घिस कर लगाये। या केवल कपूर पानी मे घिस कर अन्जन लगाने से भी लाभ होता है। कुलवधू रस, जयमंगल रस मिलाकर दोनो अथवा किसी एक का प्रयोग भी हितकर होता है।

यह सब सन्निपात ज्वरो मे साधारण उपक्रम बताये गये हैं। जिनका प्रयोग आवश्यकतानुसार करने से बड़ा लाभ होता है। जिस परिस्थिति मे जो उपाय लिखा गया है उसी परिस्थिति का ध्यान रख कर उसे करने से बड़ा लाभ होगा।

सन्निपात ज्वर मे प्रमुख उपद्रव को तत्काल शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये हम आगे उपाय बतायेंगे। यहाँ एक-एक दोष की उल्बणता के लक्षण एवं चिकित्सा बतायेंगे, बहुत से उपद्रवो की चिकित्सा भी इसी के अन्तर्गत वर्णित हो जायेगी।

वातोल्बण सन्निपात

इसमे मुख्यत निद्रानाश, प्रलाप, बेहोशी, अंगो मे पीड़ा, शिर शूल, जम्हाई, आदि के साथ ज्वर रहता है। उन्मत्त की भाति रोगी कभी-कभी उठ-उठ कर भागता है अपने या समीपवर्ती जनो के वस्त्र फाड़ डालता है। अपने अंगो या समीपस्थ जनो के अंग काट लेता है। निद्रानाश सर्वोपरि लक्षण है। इसी के कारण प्रलाप एव आखो मे लालिमा होती है।

सर्वोपरि प्रयत्न शिर से दोष निकालने के लिए करना चाहिए। इससे नींद भी आयेगी और प्रलापादि भी शान्त होगें। छीक लाने के लिए नस्य एवं आसू बहाने के लिए अञ्जन का अवश्य प्रयोग करें।

सिर पर पुराने[1] घी की मालिश तत्क्षण प्रलाप बन्द कर देती है। नीद भी आती है। इसके अभाव मे सिरका, भंगरैय्या का रस, अण्डे का पीला भाग और तिल तैल या गुलरोगन मिला कर भी सिर पर लेप किया जाता है। सब मिल जाय तो ठीक ही है अन्यथा गुलरोगन और अण्डे के बिना भी काम चलाया जाता है। उरद की अधपकी गरम रोटी सिरपर बांधने से शिरस्थ वायु प्रकोप नष्ट होता है। प्रलाप कम हो जाता है। पुरातन घृत का अभ्यंग करके बांधने से अधिक लाभ होता है। पुरातन घृत के न मिलने पर भी इसका प्रयोग करना चाहिए।

सिर पर बरफ का प्रयोग न करें।

भाग को बकरी के दूध मे पीस कर पैरो मे लेप करने से भी नीद आती है।

नीद के लिए खाने को निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का प्रयोग करें।

सर्पगन्धा चूर्ण एक रत्ती की मात्रा से, दोपहर से आधी रात के बीच तीन-तीन घण्टे पर उष्ण जल से दें या ४ रत्ती की एक ही मात्रा दे सकते हैं।

समस्त उपायो से हार जाने पर निद्रोदय रस १ माशा की मात्रा से उष्ण जल के साथ व्यवहार करें।

या घी मे भुनी भाग का चूर्ण २ रत्ती मधु के साथ रात मे सोने के समय खिलायें।

— वातोल्वण सन्निपात की सामान्य औषधियाँ ये हैं —

नाम औषधि	अनुपान	विशेष
संजीवनी वटी एक रत्ती से चार रत्ती तक	आर्द्रक स्वरस	
वृहद्वात चिन्तामणि रस एक रत्ती	आर्द्रक ब्राह्मी स्वरस	
कस्तूरी भैरव रस[2] एक रत्ती	,, ,,	
कस्तूर्यादि वटी एक रत्ती	दरियायी नारियल और	अहिफेन युक्त[3]

१ दस वर्ष से कम समय का घृत कम काम करता है। जितना ही पुराना घी होगा उतना ही शीघ्र और अधिक लाभ होगा। दस वर्ष से भी कम पुराना मिले तो उसमें भी यथा शक्य जितना पुराना मिले प्रयोग करें साल दो साल का पुराना घी काम नहीं करता।

२, मध्यम मृत वग खर्पर च कस्तूरी स्वर्णतारके" पाठ वाला। सुप्रसिद्ध वृहत्कस्तूरी भैरव रस (र० सा० स०) का प्रयोग भी एक रत्ती की मात्रा से किया जा सकता है। मन्द नाड़ी शीतांग में इनका प्रयोग अधिक हितकर है। इन दोनों के अभाव में केवल कस्तूरी का प्रयोग चौथाई रत्ती करें।

३ अहिफेन का मारक आर्द्रक या सोंठ है इसलिये अहिफेन घटित औषधि के साथ आर्द्रक का प्रयोग न करें।

	सफेद घुंघची का घृष्ट	निद्रा जनक
वैताल १ रत्ती	आर्द्रक रस	मस्तिष्क पोषक है।
वातेभकेशरी रस एक रत्ती	ब्राह्मी पान रस	
गोदन्ती भस्म ८ रत्ती	वातोल्वण सन्निपात का कोई अनुपान	
सूतराज एक रत्ती	आर्द्रक, ब्राह्मी स्वरस	

इनमे से किसी एक या आवश्यकतानुसार २ या ३ का व्यवहार करें। मिश्रण मे हर एक की मात्रा कुछ कम रखनी चाहिये। इनके अतिरिक्त लघु पंच मूल क्वाथ का स्वतन्त्र या अनुपान स्वरूप व्यवहार करें।

दरियायी नारियल एक माशा सफेद घुंघची[1] एक का पानी मे चन्दन के समान घिस कर दो या तीन मात्रा तक देने से लाभ होता है।

हम निम्नलिखित अनुपान का व्यवहार करते हैं:—

ब्राह्मी की २० पत्ती, पान सफेद मध्यम आकार के दो का रस निकाल कर उसी में घुंघची और दरियायी नारियल उपर्युक्त मात्रा मे घिस देते है। उपलब्ध होने पर उसी मे अशुद्ध स्वर्ण माक्षिक[2] एक रत्ती या दो रत्ती और रूद्राक्ष ४ रत्ती घिस देते हैं, बस अनुपान तैयार है। यदि कुछ पतला तरल बनाना हो तो कुछ उष्ण जल या लघु पंच मूल क्वाथ या पीपरामूल क्वाथ, जो सरलता से उपलब्ध हो, मिला देते हैं। यह अनुपान अतीव लाभदायक है। यह स्वतन्त्र रूप से भी लाभ करता है।

संजीवनी वटी—	४ रत्ती
वृहद्वात चिन्तामणि—	२ रत्ती
स्वर्णमाक्षिक भस्म—	४ रत्ती
पिप्पली मूल चूर्ण—	८ रत्ती
मिश्र	चार मात्रा।

अनुपान उपर्युक्त ब्राह्मी पान आदि का रस। प्रात, दोपहर, सायं, रात या रोग उग्र होने पर प्रति २ या ३ घण्टे पर दें। चार मात्रा का व्यवहार प्रति २-३ घण्टे के हिसाब से कर लेने पर कम से कम ५ घण्टा अन्य मृदु औषधि का व्यवहार करें।

साथ में नस्य अंजन एवं सिर पर पुरातन घृत की मालिश का प्रयोग करें।

रात मे सोने के समय[3] सर्पगन्धा का चूर्ण ८ रत्ती उष्ण जल से दे देने से अत्यधिक लाभ होगा।

---

१ घुंघची को छेद युक्त तालो में फसा कर घिसिये बिना किसी चीज में फसाये हाथ की पकड में नहीं आती। इसे पानी में उबाल कर सिर पर लेप करने से नींद आती।

२, अशुद्धि से घबडाइये नही।

३ कोई अन्य औषधि इसके समय में ही दी जाने वाली हो तो उसे एक घण्टा पूर्व दे द।

पित्तोल्वण सन्निपात

पित्तोल्वण सन्निपात में पित्त ज्वर के ही लक्षण उग्र रूप मे मिलते हैं। कभी-कभी शरीर पर लाल दाने भी निकलते हैं। मसूरिका से इसके लक्षण मिलते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि मसूरिका के दानो में पाक भी होता है। इसके दानो मे नही। वह उग्र संक्रामक है। इसका संक्रमण नही के वरावर होता है। वह एक समय और एक स्थान मे शीतला के कोप के साथ ही अधिक जनो को होता है। यह स्वतन्त्र एक या दो व्यक्ति को एक परिवार मे होता है। पूरे एक स्थान मे एक समय व्याप्त नही होता।

चिकित्सा—

चिकित्सा, अनुपान, पथ्य आदि सव पित्त ज्वर के समान ही है। विशेषता यह है कि यहा वारम्वार दो-दो, तीन-तीन घण्टे पर औषधि देकर अतिशीघ्र पित्त की उग्रता को नष्ट करने की आवश्यकता है।

इस सन्निपात मे मुक्ता पिष्टी, या मुक्ता भस्म या प्रवाल भस्म को कभी न भूलना चाहिये। प्रत्येक औषधि या योग मे इनमे से दोनो अथवा मुक्ता या प्रवाल का अवश्य व्यवहार करना चाहिए। सूत शेखर रस अकेले या किसी औषधि के साथ देने से पित्त को अत्यन्त शीघ्र शमन कर देता है। हम तो निम्नलिखित योग अधिकतर व्यवहार करते हैं :—

सौभाग्य वटी—	८	रत्ती
मुक्तापिष्टी—	३	,,
प्रवाल भस्म—	६	,,
सूत शेखर रस—	८	,,
योग	८	मात्रा

प्रति तीन घण्टे पर लाल चन्दन के घृष्ट[1] मधु भुनी हुई वडी इलायची के चूर्ण के अनुपान मे देते हैं।

पीने के लिये पित्त पापडा का अर्क या इससे सिद्ध जल देते हैं। १०४ डिगरी से अधिक वेग होने पर सिर पर चन्दन के पतले घृष्ट या उसके अभाव मे ठण्डे जल से गीले कपडे की पट्टी रखते हैं। वर्फ या गुलाब जल की पट्टी भी रख सकते हैं। आवश्यकता पडने पर पित्तज्वरोक्त जलधारा का भी प्रयोग हो सकता है।

— कफोल्वण सन्निपात —

इसमें कफ ज्वर के लक्षण अधिक उग्रता मे प्राप्त होते है। कभी कभी श्वास और खांसी के कष्ट के कारण नींद नहीं आती। ज्वर १०४ या १०५ डिगरी भी हो जाता है। इसे कुछ लोग इन्फ्लूएन्जा एवं कुछ न्यूमोनिया मानते है। इन्फ्लूएन्जा मे

---

१. चन्दन को पानी मे घिस देने से घृष्ट तैयार होता है।

श्वास मे कष्ट कम होता है, न्यूमोनिया मे यह कष्ट अधिक होता है। पसलियो में भी दर्द होता है। कभी कभी छाती एवं गले मे बाहर सफेद दाने निकल आते हैं।

चिकित्सा साधारणत कफ ज्वर के समान ही होती है। कफ केतु चौथाई रत्ती या आधा रत्ती का व्यवहार करें। श्लेष्मकालानल एक रत्ती वृहत्कस्तूरी भैरव एक रत्ती का प्रयोग कफ ज्वर की औषधियो के साथ या स्वतन्त्र रूप से करें।

कास एवं श्वास के लिये इनके प्रकरण पढे। यदि पसलियो मे शूल हो तो शृंग भस्म २ रत्ती प्रति मात्रा अवश्य औषधि मे मिला दें या स्वतन्त्र रूप से इसका व्यवहार करें। पुरातन घृत की मालिश भी पर्शुका शूल को नष्ट करती है।

इस सन्निपात मे सौभाग्य वटी, रस सिन्दूर या स्वर्ण घटित मकरध्वज, और टकण भस्म को न भूले। किसी औषधि के साथ इसका व्यवहार अवश्य करें। हम निम्नलिखित योग व्यहार करते हैं--

रस सिन्दूर	५ रत्ती
शुद्ध टंकण[1]	५ रत्ती
वृहत्कस्तूरी भैरव (भै० र०)	५ रत्ती
कफ केतु (भै० र०)	२ रत्ती
सौभग्य वटी (भै० र०)	५ रत्ती
प्रवाल भस्म	६ रत्ती
योग	६ मात्रा

प्रति तीन या चार घण्टे पर आदी के रस और मधु के अनुपान मे देते हैं। कास वेग या न्यूमोनिया के लक्षण मिलने पर तालीशादि चूर्ण वाला योग[2] (आगे कासाधिकार में वर्णित) को बारम्बार चटाते हैं। छाती पर (वही उल्लिखित) पुरातन घृत इत्यादि की मालिश करते हैं।

— सन्निपात ज्वर के भेद —

यो तो पूर्वोक्त उल्वण दोष का ध्यान रखते हुए सन्निपात ज्वर मे चिकित्सा करने से रोगी का कल्याण होता है। फिर भी किसी किसी सन्निपात ज्वर मे अपनी निजी विशेषतायें होती हैं। उनका ध्यान करने से अधिक लाभ पहुँचता है। इन विशेषताओ की लाक्षणिक या स्थानीय चिकित्सा उल्वण दोष की चिकित्सा के साथ करनी चाहिये। इसलिये विशेषताओ का वर्णन करने के लिये भावप्रकाश मे ये १३ सन्निपात बतलाये गये हैं —

---

१ चौकिया सोहागा का लावा ही शुद्ध टकण या टकण भस्म है इसे बनाना प्राय. सभी माताय जानती है।

२. यह योग संक्षेप में यह है - तालीशादि चूर्ण ६ माशा मधुयष्ठी ३ माशा. टकण एक माशा सबको एक तोला शर्बत लिमोड़ा एव एक तोला शर्बत अडूसा में मिला कर रस द दास वेग एव श्वास कष्ट में बारम्बार चटायें।

१– शीताग—इसमे कफ वृद्ध, वात मध्य, पित्त हीन होता है। काल मर्यादा पन्द्रह दिन की है। यह असाध्य है। लक्षण ये हैं:– शरीर बर्फ के समान शीतल, श्वास, कास, हिचकी, मोह (बदहोशी), कम्पन, सुस्ती, दाह, वमन अंगो मे पीडा और मन्द स्वर।

असाध्य की चिकित्सा नही ही करनी चाहिये,[१] परन्तु सान्त्वना के लिये या कष्ट कम करने के लिये कुछ करना ही पडता है। इस लिये प्रत्याख्यान (जवाब देकर) कर हृदय लगा कर निम्नलिखित चिकित्सा करें—

बृहत्कस्तूरी भैरव एक रत्ती, प्रवाल भस्म एक रत्ती, शुद्ध टंकण एक रत्ती, सौभाग्य वटी एक रत्ती रस सिन्दूर एक रत्ती[२] को अर्कादि क्वाथ से आवश्यकतानुसार २–३ घण्टे पर दें। सावधान, देह गरम हो जाने पर बृहत्कस्तूरी भैरव अवश्य बन्द कर दें। शीतागता नष्ट करने के लिये शरीर मे गरम राख, सोठ चूर्ण, कायफल चूर्ण मे से किसी का घूरा करें।

अर्कादि क्वाथ —

मदार की जड, जीरा, काली मिर्च, पीपर, भारगी, सोठ, पोहकर मूल प्रत्येक तीन माशा ले कर काढा बनायें। यह एक मात्रा है, इसमे यदि काकडा सिगी भी तीन माशा प्रति मात्रा के हिसाब से मिला दें तो उत्तम है।

यदि इस अनुपान का व्यवहार न कर सकें तो आर्द्रक स्वरस अभाव मे पान का स्वरस का व्यवहार अवश्य करें।

२– तन्द्रिक सन्निपात—इसमे वात वृद्ध, कफ मध्यम एवं पित्त हीन रहता है। काल मर्यादा २५ दिन की है। कष्ट साध्य होता है। शेष लक्षण ये हैं. अत्यधिक तन्द्रा (ऊँहाई), प्यास, अतिसार, श्वास, कास, अधिक शारीरिक ताप, गले मे सूजन, खुजली और कफ[३] का हो जाना, जिह्वा काली, सुस्ती, कम सुनना, दाह।

चिकित्सा—

शरीर पर घूरा छोड कर शीताग की औषधियो को ही इसमे भी दें। अनुपान मे आर्द्रक, वालवच और ब्राह्मी का योग अवश्य करें। भटकटैया, गुरुच, पोहकर मूल, सोठ और हर्रा का क्वाथ अनुपान मे या स्वतन्त्र रूप से दिन मे ४ बार दें तो अतीव लाभदायी है। किसी भी स्थिति में वालवच को न भूलें। काल मर्यादा के अन्दर तन्द्रा न नष्ट हो तो घवडायें नही। वालवच संज्ञा प्रबोधक है।

१, केवल शीतागता से असाध्य नही समझना चाहिये इसके साथ हिचकी और वेहोशी हो तो असाध्य समझना चाहिये।

२ यह सब सम्मिलित एक मात्रा है। शीतरस भी आधी रत्ती की मात्रा से आदी पान के रस में ३–३ घण्टे पर देनें से शीत दूर करता है।

३ इस कारण घरघराहट की आवाज गले मे निकलती है।

नस्य पर विशेष ध्यान दें। रेचन नस्य (कायफल चूर्ण), नकछिकनी, सुंघनी, नवसादर मिश्रित चूना आदि में से किसी एक का व्यवहार करें। छीक आ जाय तो उत्तम है। छीक आ जाने पर नस्य के लिये अधिक परेशान न करें। तब किसी किसी समय पर ही रेचन नस्य दें। पर यह याद रक्खें कि इसमे दोष इतने बंधे रहते हैं कि शीघ्र छींक नहीं आती। रेचन नस्य के बीच बीच में सञ्ज्ञा प्रबोधक नस्य यथा बालवच केवल या कूट इन्द्रायण को मिला कर बकरे के मूत्र मे पीस कर देते है।

चन्द्रोदया वर्ती आदि पूर्वोक्त अंजन में से किसी का प्रयोग भी कई बार करना चाहिये।

३— प्रलापक – इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्य और कफ हीन रहता है। यह असाध्य है। काल मर्यादा १४ दिन की है। शेष लक्षण ये हैं. सहसा प्रलाप, कम्प, उठ कर भागना, गिरना, व्यथा, दाह और वेहोशी।

वातोल्वण सन्निपात या वात ज्वर मे क्रमश वात का प्रकोप हो कर प्रलापादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसमे दोष प्रकोप क्रमश न हो कर सहसा होता है जिससे सहसा प्रलापादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा —

सन्निपात ज्वर मे पूर्वोक्त नस्य एव अजन का व्यवहार करें। पित्तोल्वण सन्निपात की औषधियो मे प्रति मात्रा वृहद्वात चिन्तामणि एक रत्ती अवश्य मिला दें। या वातोल्वण सन्निपात की औषधि मे प्रति मात्रा मुक्ता पिष्टी एक रत्ती मिला कर व्यवहार करें। वात्य प्रयोग न करें। शीतल जल न पिला कर उष्ण ही पिलायें। सिर पर पुरातन घृत की मालिश अवश्य करें। नीद लाने के उपक्रम करें। वातोल्वण सन्निपातोक्त हमारे द्वारा प्रयोग मे लाये जाने वाला अनुपान काम मे लायें।

सुविधा हो तो निम्नलिखित क्वाथ प्रयोग करें —

तगर, पित्त पापडा, अमलतास का गूदा, नागर मोथा, कुटकी, खस, असगन्ध, ब्राह्मी, मुनक्का, लाल चन्दन, दशमूल, शंख पुष्पी। इन द्रव्यो को सम भाग ले कर क्वाथ बना लें।[1] दशमूल का प्रत्येक द्रव्य अलग अलग अन्य द्रव्यो मे से प्रत्येक बराबर रहे।

४— रक्तष्ठीवी—इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्यम एव कफ हीन रहता है। काल मर्यादा १० दिन है। असाध्य है। शेष लक्षण ये हैं —

थूक मे रक्त का आना, शरीर पर लाल या काले चकते पडना, नेत्रो का लाल होना, प्यास, अरुचि, वमन, श्वास, अतिसार, चक्कर, पेट फूलना, वेहोशी, बैठने, खडे होने

---

१. इस क्वाथ के प्रत्येक द्रव्य को ५-५ माशा लेकर सबको दरदरा कूट कर एक सेर पानी में काढ़ा कर अष्टमांश अर्थात् १० तोला शेष रख कर शीशी मे बन्द कर दें इसी मे चार मात्रा करें। प्रात दोपहर, सायं और रात को स्वतन्त्र रूप से या किसी उपर्युक्त औषधि के अनुपान के रूप मे प्रयोग करें।

या उठने मे असमर्थता के कारण बारम्बार गिर पड़ना, हिचकी और शरीर में अत्यधिक पीड़ा।

चिकित्सा —

पित्तोल्वण सन्निपात की चिकित्सा करें। उष्ण जल पिलायें। यदि सुविधा हो तो पद्म काठ, लाल चन्दन का बुरादा, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चमेली, सुगन्ध बाला, मुलहटी और नीम की छाल का काढा[१] प्रात, दोपहर, सायं, व रात को स्वतन्त्र रूप से या किसी औषधि के अनुपान स्वरूप व्यवहार करें। बड़ा लाभदायी है।

५- भुग्ननेत्र —इसमें पित्त वृद्ध, वात मध्य और कफ हीन होता है। असाध्य है। काल मर्यादा ८ दिन की है। शेष लक्षण ये हैं —

नेत्रो मे टेढा पन, श्वास, कास, तन्द्रा, अत्यधिक प्रलाप, नशा, कम्पन, वाधिर्य और बेहोशी।

चिकित्सा —

पित्तोल्वण सन्निपात की औषधियो मे वृहद्वात चिन्तामणि एक रत्ती की मात्रा के हिसाब से मिला दीजिये। दाह नाशक बाह्य प्रयोग न करे। पुरातन घी की मालिश सिर पर करें। उष्ण जल पिलायें।

यदि सुविधा हो तो दारुहल्दी, परवल की पत्ती, नीम की छाल, कुटकी, हल्दी, नागरमोथा और गुरुच का क्वाथ प्रात, दोपहर, सायं, व रात को किसी औषधि के अनुपान या स्वतन्त्र रूप से व्यवहार करें।

नस्य —

असगन्ध, सेंधा नमक, बालवच, मिर्च, पीपर, सोठ, लहसुन और महुये का बीज सबको बकरे के मूत्र मे पीस कर नस्य दें। आंसू बहाने के लिये लेखनी चन्द्रोदया बर्ती आंख मे लगवायें।

६—अभिन्यास सन्निपात

इसमे वात वृद्ध, कफ मध्यम एवं पित्त हीन रहता है। काल मर्यादा १६ दिन की है, असाध्य है। शेष लक्षण ये हैं :—

बेहोशी, चेष्टाहीनता, बेचैनी, श्वास, मूकता, दाह, मुंह पर चिकनाई, अग्निमान्द्य, बल क्षय, शिर का इधर उधर घुमाना।

चिकित्सा—

शिर पर पुरातन घृत की मालिश, छींक लाने वाले नस्य एवं आसू बहाने वाले अन्जनो का प्रयोग करें। शिर पर वातोल्वण सन्निपातोक्त उरद की रोटी का प्रयोग भी करें।

---

[१] प्रत्येक द्रव्य १ तोला लेकर (केवल चन्दन २ तोला लेना चाहिये) दरदरा कूट कर आठ गुने पानी में काढ़ा कर अष्टमांश शेष रख कर ४ मात्रा बनायें।

निम्नलिखित योग बडा लाभकारी है :—

बृहत्कस्तूरी भैरव	४ रत्ती
रस सिन्दूर	४ ,,
सौभाग्य वटी	४ ,,
शुद्ध टंकरण	४ ,,
बृहद्वात चिन्तामणि	४ ,,
मिश्र	८ मात्रा

ब्राह्मी और आर्द्रक स्वरस मे मधु मिला कर प्रति तीन या चार घण्टे पर दें। यदि स्वरस मे रुद्राक्ष लगभग ४ रत्ती घिस दे तो बहुत लाभ होगा। इसी प्रकार मिश्र योग मे यदि कृष्ण चतुर्मुख रस २ रत्ती मिला दें तो लाभ की मात्रा बढ जायेगी।

७—जिह्वक सन्निपात

इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्य एवं कफ हीन होता है। कष्ट साध्य है। काल मर्यादा, १६ दिन की है, शेष लक्षण ये हैं—

जिह्वा का कठोर काटो मे व्याप्त होना, अत्यन्त मूकता, बहरापन, बलक्षय, श्वास, कास, अत्यन्त सन्ताप।

चिकित्सा—

जिह्वा पर आर्द्रक स्वरस, सेंधा नमक और नीबू के रस का लेप ५-७ बार[1] करे। रक्तष्ठीवी सन्निपात की चिकित्सा करें। उष्ण जल पिलायें। गुरुच, नीम की छाल, ब्राह्मी, परवल की पत्ती, जवासा, सुगन्धबाला, भटकटैया, बालबच और कुटकी का क्वाथ विशेष हितकारी है।

८—सन्धिक सन्निपात

इसमे वात वृद्ध, कफ मध्यम, पित्त हीन होता है। काल मर्यादा ७ दिन की है। साध्य है, शेष लक्षण ये हैं—

सन्धियो मे शोथ युक्त अत्यन्त पीडा, मुख से बहुत कफ आना, निद्रानाश व कास। यह आमवात गठिया के सदृश प्रतीत होता है। अन्तर जानने के लिये आमवात प्रकरण पढ लें।

चिकित्सा—सन्धियो पर बालू की गरम पोटली से सेंक करें। यदि सन्निपात की ज्वर की सामान्य चिकित्सा मे लिखे गये बालुका स्वेद का प्रयोग कर सकें तो शीघ्र लाभ होगा।

सुप्रसिद्ध महा योगराज गुग्गुल २ रत्ती या सिंहनाद गुग्गुल ४ रत्ती या केवल शुद्ध गुग्गुल १ माशा को रास्ना, गुरुच, अमलतास की गुद्दी, देवदारु का बुरादा, गोखरु, रेंड

१ बीच-बीच में मुनक्का के कल्क में घी मधु मिला कर लेप करते है।

की जड, गदहपुरना[1] के सोठ चूर्ण युक्त क्वाथ के अनुपान स प्रातः, दोपहर, सायं और रात सेवन करें तो वडा लाभ हो। अत्यन्त पीडा मे वृहत वात चिन्तामणि एक रत्ती को मात्रा उपर्युक्त औषधि मे मिला देने से अधिक लाभ होगा।

रेचन पर भी ध्यान दें। यदि उपर्युक्त क्वाथ से २-४ वार मल त्याग न हों तो उसमे त्रिफला आठ आना भर या कुटकी चार आना भर प्रति मात्रा मे मिला दे।

६—अन्तक सन्निपात

इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्यम और कफ हीन रहता है। असाध्य है। काल मर्यादा १० दिन की है, शेष लक्षण ये हैं—

वरावर शिर को हिलाना, शरीर मे अत्यन्त पीडा, हिचकी, श्वास, कास, दाह, मोह, प्रलाप, वेचैनी एवं अत्यन्त सन्ताप।

चिकित्सा—इष्टदेव का चिन्तन कीजिये। गंगा जल और तुलसी का प्रयोग कीजिये। इसलिये कि रोगी के वचने की रञ्च मात्र भी आशा नहीं होती।

१०—रुग्दाह सन्निपात

इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्यम और कफ हीन होता है। अत्यन्त कष्ट साध्य है। काल मर्यादा २० दिन की है। शेष लक्षण ये है—

अत्यन्त दाह, प्यास, श्वास, प्रलाप, अरुचि, चक्कर, वेहोशी, पीड़ा, मन्या नाड़ी (गले के दोनों ओर इस नामकी नाडी होती है, इसमे विकार आ जाने से गले के दोनो ओर विकार हो जाता है), गला, ठुड्डो एवं कण्ठ में दर्द और थकावट।

चिकित्सा—पित्तोल्वण सन्निपात के समान इसकी चिकित्सा करें।[2] निम्नलिखित द्रव्यो का क्वाथ प्रातः, दोपहर, साय और रात में पीने से वडा लाभ होता है। कुटकी, देवदारु, हरड, पित्तपापडा, अमलतास की गुद्दी, मुनक्का और नागरमोथा।

कुटी हुई धनिया का मिश्री मिश्रित हिम भी प्रात.काल पीने से अत्यन्त लाभ होता है।

११—चित्त विभ्रम सन्निपात

इसमे वात वृद्ध, पित्त मध्यम और कफ हीन होता है। कष्ट साध्य है। काल मर्यादा २४ दिन मतान्तर से १७ दिन वताई गई है। शेष लक्षण ये हैं.—इसमे रोगी अनवसर गाता, नाचता, हँसता और प्रलाप करता है। विकृत ढंग से देखता है। दाह, व्यथा और भय से पीडित रहता है। वेहोश भी होता है।

---

१. इस क्वाथ का नाम सुप्रसिद्ध रास्ना सप्तक क्वाथ है।
२. परन्तु शीतल जल न पिला कर उष्ण जल ही पिलावे।

चिकित्सा —

वातोल्वण सन्निपात की चिकित्सा करें। भावप्रकाशोक्त प्रचेतना वटी का अन्जन विशेष लाभदायी है।

११—कर्णक सन्निपात

इसमे पित्त वृद्ध, कफ मध्यम और वात हीन होता है। कष्ट साध्य है। काल मर्यादा एक मास (कुछ लोगो के मत से तीन मास) है। शेष लक्षण ये हैं .—

कान की जड मे तीनो दोषो के प्रकोप से उत्पन्न अत्यन्त पीडा युक्त शोथ, कण्ठ मे रुकावट, वधिरता, प्रलाप, श्वास, वेहोशी, दाह और पसीना।

यह कर्ण मूल मे होने वाला शोथ ज्वर के आदि मे होने पर असाध्य, मध्य मे होने पर कष्ट साध्य और अन्त मे होने पर साध्य होता है।

चिकित्सा--

कर्ण मूल शोथ पर अधिक ध्यान दें। यदि सम्भव हो तो शीघ्र जोक लगवा कर वहा से अशुद्ध रक्त निकाल दें। तत्पश्चात् और यदि रक्त मोक्षण न हुआ हो तो भी प्रारम्भ में ही निम्नलिखित लेप मे से किसी एक को उष्ण कर लगायें--

१—नागफनी (काटा हटा दें) और आमा हल्दी समभाग का कल्क लगायें। या नागफनी को गरमा कर बीच से चीर कर दो भाग कर लें, चीरे हुए हिस्से की ओर का भाग गरम-गरम सहाता हुआ शोथ पर रख बांध दें।

२—कुलथी, काला जीरा, कायफल और सोठ को जल मे पीस कर गरमा कर दिन रात मे २-२ घण्टे पर लेप करें।

३—इन्द्रायण की जड, हीग, हल्दी, दारु हल्दी, देवदारु का बुरादा, कूठ और सेंधा नमक को मदार के दूध मे पीस कर गरम-गरम सहाता हुआ लेप करें। इसमे हीग चौथाई भाग शेष औषधिया एक-एक भाग लें।

४—नालुका[1] में हल्दी मिला कर उष्ण लेप भी लाभकारी है।

नस्य—

गरम पानी मे सेंधा नमक एवं पीपर पीस कर द्रव रूप मे ही नाक मे प्रात. एव सायंकाल छोडने से लाभ होता है। वेहोशी मे इससे लाभ होता है।

१, यह दालचीनी की जाति के वृक्ष की छाल है। वैसी ही गंध भी इसमें निकलती है। कही मोटा तज कह कर बिकता है। पर सावधान, लम्बे छड़ों के समान जो मोटा तज होता है वह छाला डाल देता है। आम की छाल के समान मोटी चिपटा अच्छा होता है। हम तो रामभरोस माता प्रसाद, गोला दीनानाथ, वाराणसी से मंगाते हैं। व्रण शोथ या चोट वाले शोथ पर बहुत लाभदायी है। इस उष्ण ही लेप करें।

यदि शोथ मे पाक[1] हो जावे, तो उसे चीरकर व्रण के समान शोधन व रोपण चिकित्सा करें।

निम्नलिखित क्वाथो मे से किसी एक को स्वतन्त्र रूप से या औषधि के अनुपान स्वरूप प्रातः, दोपहर सायं और रात पिलावें।

दशमूल,[2] कुटकी, पीपर हर्रा, वहेर्रा, आवला, सोठ चिरायता और काला मिर्च।

या

अरणी, पोहकर मूल, भटकटैया, सोठ, मिर्च, पीपर, बालवच, नागरमोथा, गुरुच, काकडासिंगी, कुटकी और रास्ना।

निम्नलिखित योग भी खाने को दे सकें तो उत्तम है —

संजीवनी वटी	१ रत्ती
वृहद्वात चिन्तामणि	३ ,,
वृहत्कस्तूरी भैरव	३ ,,
सौभाग्य वटी	६ ,,
टकण भस्म	६ ,,
मिश्र	६ माशा

प्रति ५ घण्टे पर दें और अनुपान स्वरूप आर्द्रक, ब्राह्मी, पान के स्वरस मे दरियायी नारियल, घुंघची और रुद्राक्ष घिस कर व्यवहार करें।[3] प्रात, दोपहर, सायं और रात में उपर्युक्त किसी क्वाथ के अनुपान से भी दे सकते हैं।

१३—कण्ठ कुब्ज सन्निपात—

इसमे पित्त वृद्ध, वात मध्यम और कफ हीन होता है। कष्ट साध्य है। काल मर्यादा १३ दिन की है। शेष लक्षण ये हैं—

कण्ठ मे भीतर धान के टूंसे के समान वाले कांटो का व्याप्त होना,[4] श्वास, प्रलाप, अरुचि, दाह, देह मे पीडा, प्यास, शिर मे पीड़ा, वेहोशी, कम्पन और कभी-कभी हनुस्तम्भ (जवड़ो का जकड जाना)।

चिकित्सा —

हर्रा, वहेर्रा, आंवला, सोठ, मिर्च पीपल, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्र जौ, अड्रूसा की पत्ती और हल्दी का क्वाथ प्रात, दोपहर, सायं और रात पिलाने से वडा लाभ होता

---

१. यदि शोथ नही वैठता है तो उसे पकाने की क्रिया करे। तीसी की पोल्टिस में साबुन और कबूतर का वीट यदि मिल जाय तो मिला कर गरम गरम लेप करने से व्रण शोथ पक कर फट जाता है। स्वयं न फटे तो चीरा लगा दे। व्रण पक जाने पर चीरा लगा देना ही अच्छा है। पूय अच्छी तरह निकाल दे। घाव भरने के लिए कासे की थाली में १०० वार पानी से धोया हुआ गोघृत एक छटांक में सिन्दूर ३ माशा और उत्तम खैर १ तोला भलीभांति फेंट कर मलहम तैयार कर लें। पूय निकल जाने पर प्रत्येक फोड़े में यह अच्छा काम करता है।

२ दशमूल का प्रत्येक द्रव्य कुटकी आदि एक-एक द्रव्य के वरावर ले।

३ इस अनुपान के सम्बन्ध में वातोल्वण सन्निपात पढ ले।

४, इसे रोगी वताता है। न वता सके तो गला देखे।

है। इसी क्वाथ को मुह मे गले पर्यन्त कुछ देर धारण कराकर खूब गलगला कर कुल्ला करायें। इस क्रिया को कवल कहते हैं।

सिर पर पुरातन घृत की मालिश होगी और उरद की अधपकी रोटी गरम गरम बांधी जायेगी।

नस्य और अन्जन का प्रयोग भी होता रहेगा।

निम्नलिखित योग उपर्युक्त क्वाथ से दें तो बहुत लाभ होगा।

मृत शेखर	४ रत्ती
बृहद्वात चिन्तामणि	४ ,,
मुक्ता भस्म	२ ,,
सौभाग्य वटी	४ ,,
टंकण भस्म	४ ,,
मिश्र	४ मात्रा

हनुस्तम्भ हो जाने पर जबडे की सन्धियो मे वात व्याधि अधिकार का महानारायण तैल या सरसो का तेल उष्ण कर मलें। वहा बालुका की उष्ण पोटली से सेंक भी करें। जबड़ा खुला हो तो धीरे-धीरे बन्द करने का अभ्यास करें। यदि बन्द हो तो धीरे-धीरे खोलने का अभ्यास करने को रोगी से कहें। रोगी स्वयं न कर सके तो स्वयं या परिचारक द्वारा यह उपाय करायें। इस सम्बन्ध मे वात व्याधि कथित हनुस्तम्भ प्रकरण भी पढ लें तो उत्तम है।

विशेष —

चरक संहिता मे दोषो के दृष्टिकोण से तेरह भेद इस प्रकार बताए गए हैं —

१—वातोल्वण, २—पित्तोल्वण, ३—कफोल्वण, ४-वात पित्तोल्वण, ५—वात कफोल्वण, ६—कफ पित्तोल्वण, ७—वात वृद्ध, पित्त मध्य, कफ हीन ८—वात मध्य, पित्त वृद्ध, कफ हीन ९—वात हीन, पित्त वृद्ध, कफ मध्य १०—वात वृद्ध, पित्त हीन, कफ मध्य, ११—वात मध्य, पित्त हीन, कफ वृद्ध, १ —वात हीन, पित्त मध्य, कफ वृद्ध १३—त्रिदोषोल्वण। इनके सम्बन्ध मे अधिक न कह कर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनमे दोष वृद्धता आदि के अनुसार ही लक्षण होगे और तदनुसार ही चिकित्सा भी होगी।

अन्यत्र ये १३ सन्निपात बताए गए हैं —

१- वातोल्वण विस्फारक, २- पित्तोल्वण आशुकारी, ३- कफोल्वण कम्पन, ४- वात पित्तोल्वण बभ्र या बभ्रू,[1] ५- वात कफोल्वण शीघ्रकारी, ६- पित्त कफोल्वण भल्लु, ७- त्रिदोषोल्वण कूटपाकल, ८- वात पित्त कफोल्वण सम्मोहक, ९- पित्तवात कफोल्वण पाकल, १०- पित्त कफ वातोल्वण याम्य, ११- वात कफ पित्तोल्वण क्रकच, १२- कफ वात पित्तोल्वण कर्कटक, १३- कफ पित्त वातोल्वण वैदारिक।

१, यहां से अधिक प्रकुपित दोष का नाम पहले लिखा गया है।

इनके विषय मे इससे अधिक इस पुस्तक में लिखने की आवश्यकता नही। जिनका वर्णन ऊपर विस्तार से किया गया है, वे ही अधिक उपलब्ध होते हैं। ककच एवं पाकल सन्निपात का वर्णन हम आगे करेंगे।

सन्निपात ज्वर के तेरह भेदो के तुलनात्मक अध्ययन के लिए निम्नलिखित कोष्ठक पर ध्यान दें :—

सन्निपात भेद	दोषक्रम[1] व मुख्य-आक्रान्त अंग	काल मर्यादा	असाध्यता-साध्यता	मुख्य चिकित्सा या औषधि[2]
१	२	३	४	५
१– शीताग	कफ, वात, पित्त। मस्तिष्क व तत्रस्थताप नियामक केन्द्र	१५ दिन	असाध्य	उष्णता उत्पन्न करना। वृहत्कस्तूरी भैरव[3]
२– तन्द्रिक	वात, कफ, पित्त। मस्तिष्क।	२५ दिन	कष्ट-साध्य	नस्य, अन्जन। शीतागवत
३– प्रलापक	पित्त, वात, कफ। मस्तिष्क।	१४ दिन	असाध्य	नीद लाना, नस्य अंजन
४– रक्तष्ठीवी	पित्त, वात, कफ। रक्तवाही संस्थान।	१० दिन	असाध्य	
५– भुग्न नेत्र	पित्त, वात, कफ। नेत्र।	८ दिन	असाध्य	पित्त,वात शमन। सूत-शेखर, वृहद्वात चिन्ता-मणि मिश्रित।
६– अभिन्यास	वात, कफ, पित्त। मस्तिष्क।	१६ दिन[4]	असाध्य	वात, कफ शमन। वृह-द्वात चिन्तामणि व वृहत्कस्तूरी भैरव मिश्र
७– जिह्वक	पित्त, वात, कफ। जिह्वा।	१६ दिन	कष्ट साध्य	जिह्वा मे मृदुकरण। सूतशेखर
८– सन्धिक	पित्त, वात, कफ। सन्धियाँ	७ दिन	साध्य	सन्धियो से आमहरण
९– अन्तक	पित्त, वात, कफ। मस्तिष्क	१० दिन	असाध्य	इष्टदेव चिन्तन। तुलसी, गंगा-जल

१. वृद्ध, मध्यम और हीन दोष को क्रमश: लिखा गया है।

२ इस कोष्ठ मे खड़ी पाई के बाद औषधि लिखी गयी है।

३. वृहत्कस्तूरी भैरव के अभाव में कस्तूरी १/४ रत्ती या रस सिन्दूर एक रत्ती देना चाहिये। या दोनों यथोचित मात्रा में मिलाकर दें।

४ योग रत्नाकर में १५ दिन लिखा है।

१०–	रक्तदाह	पित्त, वात, कफ। ताप नियामक केन्द्र।	२० दिन	कष्ट साध्य	दाह नाशन। सूतशेखर
११–	चित्त विभ्रम	वात, पित्त, कफ। मस्तिष्क।	२४ दिन	कष्ट साध्य	प्रलापकवात
१२–	कर्णक	पित्त, कफ, वात। कर्णमूल।	३० दिन[१]	कष्ट साध्य	कर्णमूल शोथनाशन। बैठाने के लिये नागफनी या नालुका। पकाने के लिये तीसी की पुल्टिस।
१३–	कण्ठ कुब्ज	पित्त, वात, कफ। कण्ठ।	१३ दिन	कष्ट साध्य	कण्ठ मे उत्पन्न काटो का शमन। कषाय व कटु रस प्रधान क्वाथ

विशेष —

सन्निपात के उपर्युक्त भेदों का विवेचन इस कोष्ठक के पूर्व दिया हुआ है उसे ध्यान से पढ लें। चिकित्सकीय जीवन में बडे काम के सिद्ध होगे। काल मर्यादा का तात्पर्य उसके भीतर रोग मुक्ति अथवा मृत्यु से है। कम से कम मर्यादा काल मे अत्यन्त सतर्क रहे। इतने दिनो में आम दोष पकता है अत. विना अनिवार्य आवश्यकता के लंघन न तोडें। अनिवार्य आवश्यकता का तात्पर्य अन्न विना प्राण जाने की सम्भावना से है। ऐसी अवस्था में अन्न या दूध न दें। क्रमशः मुनक्का, परवल, धान के लावे का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।

सन्निपात चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें

१—वृद्ध दोष एवं वृद्ध लक्षण को अविलम्ब शान्त करें।

२—मस्तिष्क और हृदय की सुरक्षा करें। ये विकृत हों तो शीघ्र ठीक करें।

३—शीतल जल किसी भी अवस्था में न पिलायें और न अधिक बाह्य शीतोपचार[१] ही करें। नही तो अनर्थ हो जायेगा। दाह या उष्णता को कम करने के लिए खाने योग्य औषधियां लिखी गई हैं, उन्हीं से काम चलायें। मुक्ता, प्रवाल, सूत शेखर पित्त को शमन कर दाहादि को शान्त करते हैं। इन्हें दिया जा सकता है। पीने के लिये उष्ण जल ही दें।

४—जो सन्निपात असाध्य कहे गये हैं उनकी असाध्यता मे मतभेद हैं। पर अन्त तक, भुग्ननेत्र तो निश्चय असाध्य है। शेष कष्ट साध्य या साध्य जो भी कहे गये हैं ठीक ही कहे गये हैं। असाध्यो मे सम्पूर्ण लक्षण मिलें तो निश्चय असाध्य समझे। एक या दो लक्षण मिलने से असाध्य समझते हुए भी जवाब देकर चिकित्सा करिये।

१, योगरत्नाकर मे इसकी मर्यादा तीन मास लिखी हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ३० दिन से आगे भी यह दो मास तक चल सकता हैं। ऐसा देखा भी जाता है।

५—आम और कफ नष्ट करने पर अधिक वल दें।

६—अत्यन्त सावधानी से खूब सोच विचार कर चिकित्सा करें। जरा सी भूल भी अनर्थ कर देगी।

७—आगे लिखित धातु पाक एव मल पाक के लक्षण पढ ले।

८—किसी तरह वेहोशी या तन्द्रा दूर न होती हो तो सिर पर थोडे क्षेत्र का वाल वनायें। वहा स्वच्छ चाकू से एक हल्का सा चीरा आधा इंच लगा दे। सूचिका भरण रस[2] से लिपटी एक सुई का १।३ हिस्सा[3] उस चीरे में से एक कोने से दूसरे कोने तक पार कर निकाल लें। तत्पश्चात् चीरे को स्वच्छ अगुली से मल ले। एक वार में रोगी होश मे आ जायेगा। न होश मे आए तो दुवारा यही प्रयोग करें। अब भी होश मे न आये तो वचना कठिन है।

९—रोगी के मुंह दात, जिह्वा, आंख एवं नाक की स्वच्छता पर ध्यान रखें। गरम पानी मे भीगे कपडे से इन्हें पोछते रहे, सारे शरीर को भी प्रतिदिन या २-३ दिन पर इसी प्रकार पोछते रहे।

१०—रोगी को एकान्त मे कभी न छोड़ें।

११—मल-मूत्र निकलने पर ध्यान देते रहे। मल निकालने के लिए जल्दी न करें। दोष पाक हो जाने पर इसकी आवश्यकता होती है। मल निकलने के लिए टंकण, मुनक्का, अजीर, अमलतास आदि से काम चलाना चाहिये। इनसे काम न चलने पर फल-वर्तियो या पिचकारियो का प्रयोग गुदा मे करें। फिर भी काम न चलने पर अश्वकञ्चुकी आदि हलके रेचन का प्रयोग करें। अधिक रेचक न दे। कोष्ठबद्धता अधिक हो और मल निकालने की आवश्यकता (दोषपाक के वाद) हो तो सँजीवनी वटी न दें। मूत्र निकालने के लिये वारम्वार उष्ण जल पिलाते रहे। प्रतिदिन मलमूत्र के सम्बन्ध मे जानकारी रखें।

१२—किसी भी सन्निपात मे पथ्य की आवश्यकता पडने पर भी दूध न दें। जरा सा दोष रहने पर भी दूध हानिकारक होता है। रोगी ज्वर मुक्त हो जाय, मल-मूत्र अच्छी तरह निकलने लगे, कफ और आम का प्रकोप न हो तो दूध दिया जा सकता है। सो भी वरावर पानी एवं सोठ या पीपर पका कर जल नष्ट होने पर मलाई उतार दी जायेगी।

१३— नाडी एव अन्य उपायो से दोष की सामता, उल्वणता एवं हृदय की दुर्वलता आदि की परीक्षा करते रहें। प्रलाप एव वेहोशी के न्यूनाधिक्य से मस्तिष्क की अच्छाई और वुराई समझते रहे।

१, आगे १६ वीं वात भी पढ़ले।

२ इसी हिस्से मे सूचिका भरण रस लगा रहेगा।

१४– सभी ज्वरो के अन्त मे (अतिसार के पूर्व) कथित ज्वर-मुक्ति के लक्षण मिलने पर ही रोगी को अच्छा समझें, नही तो धोखा हो सकता है। ज्वर के साध्यासाध्य लक्षण, उपद्रव, पथ्यापथ्य यहाँ भी लागू होते हैं। ये सब भी वहीं बताये जायेंगे।

१५– यदि सन्निपात के भेद का निर्णय न कर सकें तो निराश न हो। बढे हुए लक्षण को शान्त करने मे तत्पर रहे।

१६-- वातोल्वण मे सिर पर पुरातन घृत की मालिश एवं बृहद्वात चिन्तामणि को न भूलें। पित्तोल्वण मे १०४ डिगरी ज्वर के बाद सिर पर शतधौत घृत या बर्फ या गुलाब जल रख सकते हैं। इससे कम ज्वर मे नहीं। इसमे सूतशेखर रस व मुक्ता या अभाव मे प्रवाल को न भूले। कफोल्वण मे बृहत्कस्तूरो भैरव को न भूलें। हिचकी मयूरपुच्छ भस्म १-१ रत्ती या ताम्र भस्म आधी-आधी रत्ती, या साप की अस्थियो की भस्म ४-४ रत्ती बारम्बार देने से शान्त होती है।

जो उपद्रव शान्त न हो उनके सम्बन्ध मे उस रोग के अधिकार मे लिखो औषधि से भी काम चलता है।

धातु पाक

अनिद्रा, हृदय की जकडन, मल का कठिन अवरोध, शरीर मे भारीपन, बेचैनी, अरुचि और बलहानि ये धातु पाक के लक्षण हैं। इसमे हृदय एवं नाभि के बीच मे दबाने से रोगी को पीडा का अनुभव होता है। वहा दबाने से वह चिहुकता या कँहरता है। ये लक्षण धातु पाक के हैं। इनके रहने पर बीमारी को अच्छा न समझ कर सारो सावधानो बरतते है। इनके अतिरिक्त कई ग्रन्थो मे अतिसार, मद, प्यास और वृद्ध श्वास भी धातु पाक के लक्षण बताये गये हैं।

मल पाक या दोष पाक

कुपित दोषो के लक्षणो मे परिवर्तन अर्थात् कमी होना एवं ज्वर का वेग कम होना, शरीर मे हलकापन, इन्द्रियो की विमलता (उनका ठीक से काम करना) और अग्नि-दीप्ति ये मल पाक के लक्षण हैं, जो रोगी के लिए शुभ है।

सामान्य असाध्य लक्षण

अलग सन्निपात भेदो की साध्यासाध्यता यथास्थान बतायी गयी है, यहाँ सामान्य असाध्य लक्षण बताया जा रहा है :—

दोषो का अधिक बढना (या बध जाना), अग्नि का नष्ट होना और सभी लक्षणो की पूर्णता ये असाध्य सन्निपात के सामान्य लक्षण हैं। इनके न रहने पर कष्ट साध्य सन्निपात समझें।

सामान्य काल मर्यादा

वातोल्वण सन्निपात सातवें दिन, पित्तोल्वण सन्निपात दसवे दिन एवं कफोल्वण सन्निपात बारहवे दिन भयंकर होकर शान्त हो जाता है या रोगी को मार डालता है।

और भी लिखा है —१४ दिन या १८ दिन या २२ दिन त्रिदोष ज्वर की काल मर्यादा है। इतने दिनो मे चाहे रोगी मर जाय या बच जाय। विशेष काल मर्यादा का ध्यान रखते हुए इन दिनो मे भी सतर्क रहना है।

सावधान! काल मर्यादाओ का यह तात्पर्य नहीं कि निराश हो कर रोगी को छोड दें। बल्कि तात्पर्य यह है कि इन दिनो मे अत्यन्त सावधान और सतर्क[1] रहें। सभी मर्यादायें सामान्य अवस्था मे हैं। विशेष मर्यादायें तो साम दोष के पाक होने एवं वृद्ध दोष के शमन होने पर निर्भर है। दोषों एवं चिकित्सा की विशेष स्थिति सामान्य मर्यादा को तोडने की क्षमता रखती है। सामान्य एवं विशेष मर्यादा के अन्तिम दिन विशेष सावधान रहें। इस दिन रोगी के पास सर्वदा हृदय को बल देने वाली औषधि (स्वर्ण मुक्ताघटित) रखी रहे जो जरा से भी प्राण संकट मे दे दी जाय। अनुपान भी तैयार रहे।

आगन्तुक ज्वर

बाहर से आने वाले कारणो से उत्पन्न ज्वर को आगन्तुक या आगन्तुज ज्वर कहते हैं[2]। दोषज या निज ज्वर एव इसमें यह अन्तर[3] है —

दोषज या निज ज्वर	आगन्तुक ज्वर
१– इसमे शरीर के भीतरी व बाहरी दोनो कारणो से दोष का प्रकोप होता है।	इसमे केवल बाहरी कारणो (चोट, श्रम, क्रोध आदि) से ज्वर उत्पन्न होता है।
२– मिथ्या आहार भी कारण होता है।	मिथ्या आहार का कारण होना आवश्यक नहीं। परन्तु विषयुक्त आहार आगन्तुक कारण हो जाता है।
३– दोष प्रकोप[4] पहले, व्यथा बाद मे होती है।	व्यथा पहले, दोष प्रकोप बाद मे होता है।
४– दोष का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहता है।	दोष का सम्बन्ध बाद मे होता है।
५– दोष की चिकित्सा प्रमुख, कारणो की गौण, परन्तु चिकित्सा दोनो की होगी।	कारणो की चिकित्सा मुख्य, दोषो की चिकित्सा गौण होती है। परन्तु चिकित्सा दोनो की होती है।

१, और कम से कम इतने दिनों के लिये प्रत्याख्यान (जवाब) देकर चिकित्सा करे।

२, विषम ज्वरों में आगन्तुक कारणों, भूतादि, जीवाणु और स्वभाव को कारण मानने से कुछ लोग इसे भी विषम ज्वर कहते हैं।

३, दोष सम्बन्धी स्थूल दृष्टि से लिखा गया है। सूक्ष्म दृष्ट्या तो सूक्ष्मवायु से भय, शोक, काम आदि सूक्ष्म पित्त से क्रोध ईर्ष्या एव सूक्ष्म कफ से लोभ मोह आदि उत्पन्न होते हैं।

४, नम्बर ३ एव ४ का अन्तर स्थूल दृष्ट्या बताया गया है।

७— दोष प्रकोपक कारणों के परिवर्जन से भी काम चल जाता है।	दोष प्रकोपक कारणों के परिवर्जन के साथ ही उनकी चिकित्सा भी करनी होगी।
८— लंघन चलता है।	लंघन की आवश्यकता नही।
९— युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा की प्रमुख, दैवबलिव्यपाश्रय की मध्यम और सत्वावजय चिकित्सा[1] की हीन आवश्यकता होती है।	सत्वावजय की प्रमुख, दैवबलिव्यपाश्रय की मध्यम एवं युक्ति व्यपाश्रय की हीन आवश्यकता है। कही कही युक्तिव्यपाश्रय की मध्यम और दैवबलिव्यपाश्रय की हीन आवश्यकता होती है।

प्रमुख कारण —

आगन्तुक ज्वरो के विविध कारण होते है। परन्तु उन्हे चार वर्गो मे इस प्रकार बाँटा गया है —

अभिघात —

चोट अर्थात् किसी अस्त्र, शस्त्र, यन्त्र, उपयन्त्र, (तलवार, लाठी, पत्थर) आदि से चोट लगना एवं विष।

अभिचार —

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण या विपरीत मन्त्र।

अभिषग —

काम, शोक, भय, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मद, मोह आदि मानसिक विकार एवं भूत, प्रेत, ग्रह की बाधा।

अभिशाप —

सिद्ध महापुरुषो आप्त[2] जनो, महात्माओ, वृद्धो, गुरुजनो एवं पीडित जनो का शाप।

आगन्तुक ज्वरो मे उनके मूल कारणो का गम्भीरता पूर्वक पता लगाना चाहिए। उनके परिवर्जन पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। वेदना के अनुसार दोष प्रकोप का निर्णय करिये। अभिघातज ज्वर के अतिरिक्त शेष आगन्तुक ज्वरो मे मनोविज्ञान एवं देवाराधन का निष्ठा पूर्वक आश्रय लेना चाहिए। देवाराधन की एक बहुत बडी अच्छाई यह है कि उससे चित्त की एकाग्रता और शान्ति बढती है साथ ही मन अनिष्ट भावो की ओर नही जाता। अभिषग ज्वर एक दूसरे के विरुद्ध कारणो से नष्ट हो जाते हैं। जैसे काम ज्वर क्रोध से एवं शोकज ज्वर हर्ष से दूर हो जाता है।

१, ये चिकित्सा के तीन प्रमुख भेद हैं। युक्ति व्यपाश्रय में औषधियों एवं शल्य कर्म आदि, देव बलि व्यपाश्रय में देवाराधन, बलि मंगलादि स्वस्त्ययन तथा सत्वावजय मे मन पर विजय के प्रयत्न होते हैं।

२, रागद्वेष से रहित किसी भी परिस्थिति में असत्य अवास्तविक न बोलनेवाले महापुरुष आप्त कहे जाते हैं।

चिकित्सिक को चाहिए कि वह बडी कुशलता से विरोधी कारण उपस्थित करे। इसमें उसे दूसरे का एवं छल का आश्रय भी लेना पड सकता है। कभी कभी मनगढन्त काल्पनिक घटना या कहानी की रचना भी करनी पडेगी। अब हम एक एक आगन्तुक ज्वर का लक्षण और चिकित्सा निवेदित करेंगे।

अभिघात ज्वर—अस्त्र, शस्त्रादि की चोट, चिह्न[1] अथवा कारण मिलेंगे। इसमें वात प्रकोप होता है। रक्त-मास दूष्य होता है। यहा आहत स्थान व अंग की चिकित्सा शल्य तन्त्र के अनुसार करनी चाहिये। उष्ण औषधियो का विशेष आभ्यन्तरिक प्रयोग न करें। अभ्यग[2] (मालिश) करे। दूध घी पिलायें। मेद्य, मेधा अर्थात् बुद्धि के लिये हितकारी। और आत्मा के अनुकूल मास रस एव भात खिलायें। आवश्यकतानुसार मदिरा भी पिलायें[3]।

विषजन्य ज्वर मे विष के लक्षण—मूर्छा, वमन (मक्खियो के प्रभाव मे रक्त की वमन) ऐंठन आदि लक्षण विष की जाति के अनुसार होंगे।[4] मन्त्रजन्य मे प्रलापादि भी होंगे। वहा विषतन्त्र के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए, जो विषतन्त्र के ग्रन्थो मे लिखी है। विषैली वस्तुओं की गध से मूर्च्छा, शिर मे पीडा, वमन, छींक, बेचैनी और कभी-कभी हिक्का होती है। ऐसी अवस्था मे सुगन्धित, शीतल तैल, शतधौत घृत या मक्खन का लेप नाक के भीतर करे। इस ज्वर मे यदि मस्तिष्क मे दाह हो और ज्वर के परिणाम स्वरूप नासिका से रक्त आने लगे तो मस्तिष्क पर शतधौत घृत की मालिश भी करें। चन्द्रकला रस (मूत्रकृच्छ्र) एक रत्ती की मात्रा मे शतावर[5] के रस मे खिलायें। ऐसी मात्रा दिन रात मे पांच बार दें।

अभिचार ज्वर—इसमे मोह, तृष्णा, दाह, प्रलाप होता है। जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अभिचार किया गया है उसकी दिशा मे रोगी बढता है। जैसे किसी स्थान से उच्चाटन के लिए अभिचार है तो वहां से रोगी हटने की चेष्टा करेगा। इसमे तीनों दोषो का प्रकोप होता है। इसकी चिकित्सा के लिए होम, जप, पूजा, पाठ, दान, स्वस्त्ययन, अतिथि-सत्कार का प्रयोग करें। यदि सम्भव हो तो अभिचरण के विपरीत जो भी कर्म विशेषज्ञ बतायें, करें। इसमे भगवती दुर्गा या शक्ति की उपासना श्रेष्ठ होती है।

१, चिह्न में स्थानीय सूजन, क्षत या भग्न आदि होंगे। इसके अतिरिक्त स्थानीय एव सर्वांगीय वेदना विशेष होगी, इससे वात प्रकोप होता है।

२, जहा अभ्यग की आवश्यकता हो वही इसका प्रयोग करें। नवज्वर मे अभ्यग दुग्ध, घृत का निषेध है। पर यह बात यहां लागू न होगी।

३, विष जन्य मे मदिरा न पिलायें। यदि आघात हो तो मदिरा भी पिलायी जाती है। इससे वेदना और वायु का प्रकोप शान्त होता है।

४, इसके अतिरिक्त मुंह की विवर्णता (काला पीला होना) प्यास हृदय में शूल या गतिरोध, आमाशय या सर्वांग मे दाह स्थावर विष मे अतिसार भी होंगे।

५, शतावर के अभाव में अडूसा, अनार दूब मे से कोई एक ले।

अभिषंगज[1] ज्वर—जिस ग्रह, भूत, प्रेत आदि से रोगी आविष्ट होगा उसके लक्षण मिलेंगे। इसमे अनवसर हास्य, रोदन, कम्पन उन्माद, प्रलाप एवं निद्रानाश होता है। और तीनो दोषो का प्रकोप होता है।

यदि इसमे काम, शोक और भय कारण हुआ तो वात प्रकोप होगा। कामजन्य मे इच्छित वस्तु की प्राप्ति के प्रति उत्कट अभिलाषा, चित्त की अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य, भोजन मे अनिच्छा होती है। इच्छित प्राणी की प्राप्ति पर उसके प्रति क्रोध या घृणा हो जाने से यह ज्वर बडी सरलता से चला जाता है।

शोकजन्य मे प्रलाप और चिन्ता रहती है। इसमे रोगी को हर्षित करें। मन को दूसरी ओर फेरिये।

भयजन्य मे भी प्रलाप, चिन्ता और कम्पन होता है। इसमे भी रोगी को हर्षित करना बडा लाभदायक होता है। भय की ओर से मन फेरिये। इनमे लाभ न हो तो रोगी मे हिम्मत उत्पन्न करें या भयास्पद वस्तु से घृणा अथवा क्रोध उत्पन्न करे।

क्रोधजन्य ज्वर मे पित्त का प्रकोप होता है। आखे लाल, चेहरा तमतमाया हुआ, प्रलाप, निद्रानाश, रक्त मे उष्णता, कम्पन, भौहो का तनाव होता है। इसमे सद्वाक्य, शान्ति, प्रसन्नता, नम्रता, क्रोध के कारण वाले प्राणी के प्रति[2] काम का उदय बडा लाभदायक होता है। पित्त नाशक अन्य उपचार भी हितकारी हैं।

लोभ और मोहजन्य मे कफ प्रकोप होता है। त्याग, परोपकार, निस्वार्थता, लक्ष्मी की चंचलता आदि का उपदेश हितकारी है।

मद, ईर्ष्या एवं मत्सर जन्य मे पित्त का प्रकोप होता है। यहाँ संसार की असारता एवं बडे वीरो, प्रतापियो के नाश की कहानी सुनाना लाभदायक है।

अभिशाप ज्वर—इसमे भी त्रिदोष का प्रकोप होता है। मूर्च्छा, उन्माद, दाह, प्यास आदि लक्षण होते हैं। भयानकता मे कुष्ठ, यक्ष्मा आदि भयानक व्याधिया एवं विचित्र प्रकार के दण्ड मिलते हैं। इसकी उग्रता अभिशाप के कारणो, अभिशाप्ता की शक्ति और अभिशापित की दुर्बलता पर निर्भर है। तदनुसार सोचकर चिकित्सा करें। इसमे अभिचारज ज्वर के समान चिकित्सा करें। अभिशाप्ता या उसके प्रिय पात्रो की आराधना यथासम्भव कर उन्हें प्रसन्न करें।

---

१. इसकी चिकित्सा में योग रत्नाकर के निम्नलिखित श्लोक को स्मरण रखे—

कामात्क्रोध ज्वरो नाश, क्रोधात्काम समुद्भव।
याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च, भय शोक समुद्भव॥

२. यदि मर्यादा के अनुकूल हो और, विपरीत लिंग वाला हो।

सप्तम अध्याय

विविध ज्वर

विषम ज्वर ।

शीत उष्ण कारणों, ज्वरावस्था मे अहित सेवन, उष्ण देशों मे आर्द्रता, जलीय वातावरण एवं गन्दे जल का सेवन करने से विषम ज्वर हुआ करता है ।

लक्षण— इस ज्वर का आरम्भ विषम (कभी पीठ से होता है, कभी शिर से) होता है । इसकी क्रिया विषम (कभी शीत अधिक लगना कभी सन्ताप अधिक होना), आक्रमण काल विषम, (वेग के निश्चित समय से पूर्व या पश्चात् वेग अथवा आक्रमण होना), एवं भोग काल विषम (ज्वर कभी अल्पकालीन और कभी दीर्घकालीन) होता है । कुल मिला कर प्रत्येक बात मे विषमता[1] ही इसका मुख्य लक्षण है ।

आगन्तुक ज्वर को छोड कर शेष सप्तविध, (पृथक दोषो से उत्पन्न द्वन्द्वज, सन्निपातज) ज्वरो एवं इसमे यह अन्तर है ।

सप्तविध ज्वर	विषम ज्वर
१—दोष प्रकोप के समय प्रारम्भ एवं वेग ।	१—प्रारम्भ काल एवं वेग काल अनिश्चित ।
२—सन्निपात के अतिरिक्त किसी मे निश्चित दाह एवं किसी मे निश्चित शीत लगना ।	२—किस विषम ज्वर मे दाह होगा । किसमे शीत होगा । इसका निश्चय नही ।

१, काश्यप संहिता के खिल स्थान में एक सम ज्वर भी कहा गया है जो एक दम सुखसाध्य ज्वर है । जिसके लक्षण ये हैं—अल्पकारण वाला बहिर्वेग वाला, वैकृत (विकारों से उत्पन्न), उपद्रव सहित, एक आश्रय वाला लघुपाक वाला ज्वर समज्वर है। इसके विपरीत लक्षणों वाले ज्वर को विषम ज्वर कहते हैं / मध्यपात मे कही कही विषम ज्वर सन्निपात ज्वर को कहते हैं । यहां काश्यप संहिता के लिखे अनुसार सम ज्वर सामान्य ज्वर को कहते है और भयानक ज्वर को विषम ज्वर कहते है । वहां वेग आदि की विषमता विषम ज्वर का लक्षण नही है ।

३—अनिश्चित काल मर्यादा	३—अनिश्चित काल मर्यादा ।
४—क्रमश: नष्ट होते हैं, पुन नहीं उत्पन्न होते ।	४—सहसा नष्ट होते है, परन्तु पुन उत्पन्न होते है ।
५—दोषो के दृष्टिकोण से चिकित्सा से लाभ ।	५—दोषो का ध्यान रख कर विषमत्व की चिकित्सा अनिवार्य ।
६—नवज्वर में संशोधन एव संशमन अहितकर	६—नव ज्वर मे ही संशोधन एवं संशमन हितकर, सन्तत को छोडकर ।
७—नवज्वर मे लंघन	७—पहले दिनो ही एवं अन्यान्य सभी दिनो ज्वर उतरने पर भोजन ।
८—नवज्वर मे दूध अपथ्य	८—सन्तत को छोड कर नवज्वर मे गौ दूध और खीर पथ्य ।
९—युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा	९—युक्तिव्यपाश्रय के साथ दैववलि व्यपाश्रय एवं सत्वावजय चिकित्सा ।
१०—आशयों या स्वस्थान से निकला दोष पुनः लौटता नहीं और न ज्वर ही करता है ।	१०—हृदयादि स्थान से निकला दोष ज्वर वेग कर पुन. स्वस्थान मे लौट आता है और पुन ज्वर करता है ।

इसके पांच भेद इस प्रकार होते हैं :—

सन्ततज्वर—इसमे दोष आमाशयगत रहता है। लगातार १२ दिन तक ज्वर बना रहता है। इस कारण इसे कुछ लोग विषम ज्वर नही मानते पर १२ वें दिन ज्वर का वेग न्यून होकर पुन प्रवल होकर अधिक दिनो तक चलता है। यो मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए इसकी गणना विषम ज्वरो मे की गयी है। यद्यपि तीनो दोष कारण होते हैं। पर मुख्य दोष पित्त होता है। दूष्य मुख्यतया रस है। सामान्यतः ग्रीष्म एवं वर्षा मे अधिक होता है। प्रलाप, प्यास, अनिद्रा, बेचैनी, शिर शूल, जिह्वा पर सफेद लेप, तन्द्रा, अम्ल-वमन, क्षुधा नाश, अतिसार अथवा मलावरोध, (एवं कौडी प्रदेश चूचको के बीच बीच में पंसलियो के महराव का मध्य स्थल या एपीगेस्टिक) मे पीडा ये मुख्य लक्षण हैं।

चिकित्सा—उपद्रवो की चिकित्सा सन्निपात ज्वर के समान करे। किसी अवस्था में सौभाग्य वटी एक या दो रत्ती न भूलें। यदि वात प्रधान हो तो इसी मे वृहद्वात चिन्तामणि एक रत्ती मिला कर आर्द्रक स्वरस और मधु के साथ दे। यदि पित्त प्रधान हो तो सौभाग्य वटी में १ रत्ती मुक्ता भस्म (अभाव मे मुक्ताशुक्ति) ३ रत्ती डालें। कफ प्रधान हो तो १ रत्ती रस सिन्दूर दें। इस प्रकार प्रत्येक दोष के लिये २४ घण्टे प्रयोग करने के लिए चार मात्रा दें। अनुपान वात और कफ मे लवग का चूर्ण १ रत्ती मिला कर आदी के रस और शहद में दें। पित मे इलायची चूर्ण १ रत्ती मधु के साथ अनुपान बना लें।

पूर्वोक्त रत्नगिरि रस, महाज्वरांकुश रस शीत भंजी रस व सूत शेखर मे किसी का व्यवहार समयानुसार करें।

अत्यन्त जीर्ण हो जाने पर जयमंगल रस, गदमुरारि रस और लक्ष्मी नारायण रस का प्रयोग करे। शक्ति का अधिक ह्रास और जीर्ण ज्वर होने पर वसन्त कुसुमाकर, हेमगर्भ पोट्टली, अतिसार साथ रहने पर मृगांक और लक्ष्मी विलास रस शीघ्रतापूर्वक देना चाहिए।

निम्नलिखित द्रव्यो का क्वाथ स्वतन्त्र या अनुपान स्वरूप पिलायें, तो बड़ा लाभ होता है। त्रायमाण, कुटकी, अनन्त मूल, इन्द्र जौ, परवल की पत्ती।

सतत ज्वर —

इसमे भी दोष आमाशय गत रहता है। तीनो दोषो के कारण होने पर भी मुख्य दोष पित्त एवं मुख्य दूष्य रक्त होता है। दिन रात मे दो बार वेग बढ़ता है। इसमे वात प्रधान होने पर शरीर एवं चेहरे पर कालिमा, कृशता, मलावरोध, तेजहीनता[1], होती है। पित्त प्रधान होने पर मुंह और नेत्र लाल या पीला, नख पीला, अतिसार, स्वेद, प्यास, बेचैनी और अनिद्रा होती है। कफ प्रधान मे शीत लगना, अरुचि, छाती मे भारीपन और आमयुक्त सफेद मल ये लक्षण होते हैं।

चिकित्सा —

वात प्रधान मे ज्वराशनि रस एक रत्ती या श्री जयमंगल रस एक रत्ती या ज्वर कुंजर पारीन्द्र रस एक रत्ती (यह एक मात्रा है) हरसिंगार और तुलसी के रस मे दें। वायु प्रतिलोम हो तो इसी मे प्रतिमात्रा दुअन्नी भर भुना जीरा चूर्ण मिला दें। पित्त प्रधान मे लक्ष्मी नारायण रस एक रत्ती या सुदर्शन चूर्ण एक माशा या कालनाथ वटी[2] एक रत्ती या सप्त पर्ण[3] घनसत्व वटी ४ रत्ती गुरुच के रस मे या अमृताष्टक क्वाथ मे दें। उग्र प्रकोप पित्त का हो तो सूत शेखर रस एक रत्ती मिला दें।

कफ प्रधान मे —

महाज्वरांकुश रस एक रत्ती या त्रिभुवन कीर्ति रस एक रत्ती या अचिन्त्य शक्ति रस एक रत्ती या गोदन्ती हरताल भस्म १ माशा (ये एक मात्रा मे है) को आदी व तुलसी रस मधु में दें। आवश्यकतानुसार रस सिंदूर १।२ रत्ती भी मिला सकते हैं। कफ निकालने की आवश्यकता मे टंकणभस्म न भूलें।

---

१ इनकी जीर्णावस्था को कुछ लोग कालज्वर (कालाजार) कहते है। जिसका वर्णन आगे होगा।

२ काल मेघ चूर्ण चार तोले काली मिर्च २ तोले, शुद्ध सिंगिया २ माशा मिला कर कालमेघ के रस में खूब घोट कर एक एक रत्ती की गोली बनावे।

३ छितिवन का काढ़ा बनाकर छान ले। पुनः काढ़े को पका कर गोली बनाने योग्य हो जाय तो उतार कर ४-४ रत्ती की गोली बनाये। बहुत से लोग इसमे चौथाई भाग काली मिर्च का चूर्ण मिला देते है।

पञ्चविध विषम ज्वर मे दोष-स्थान
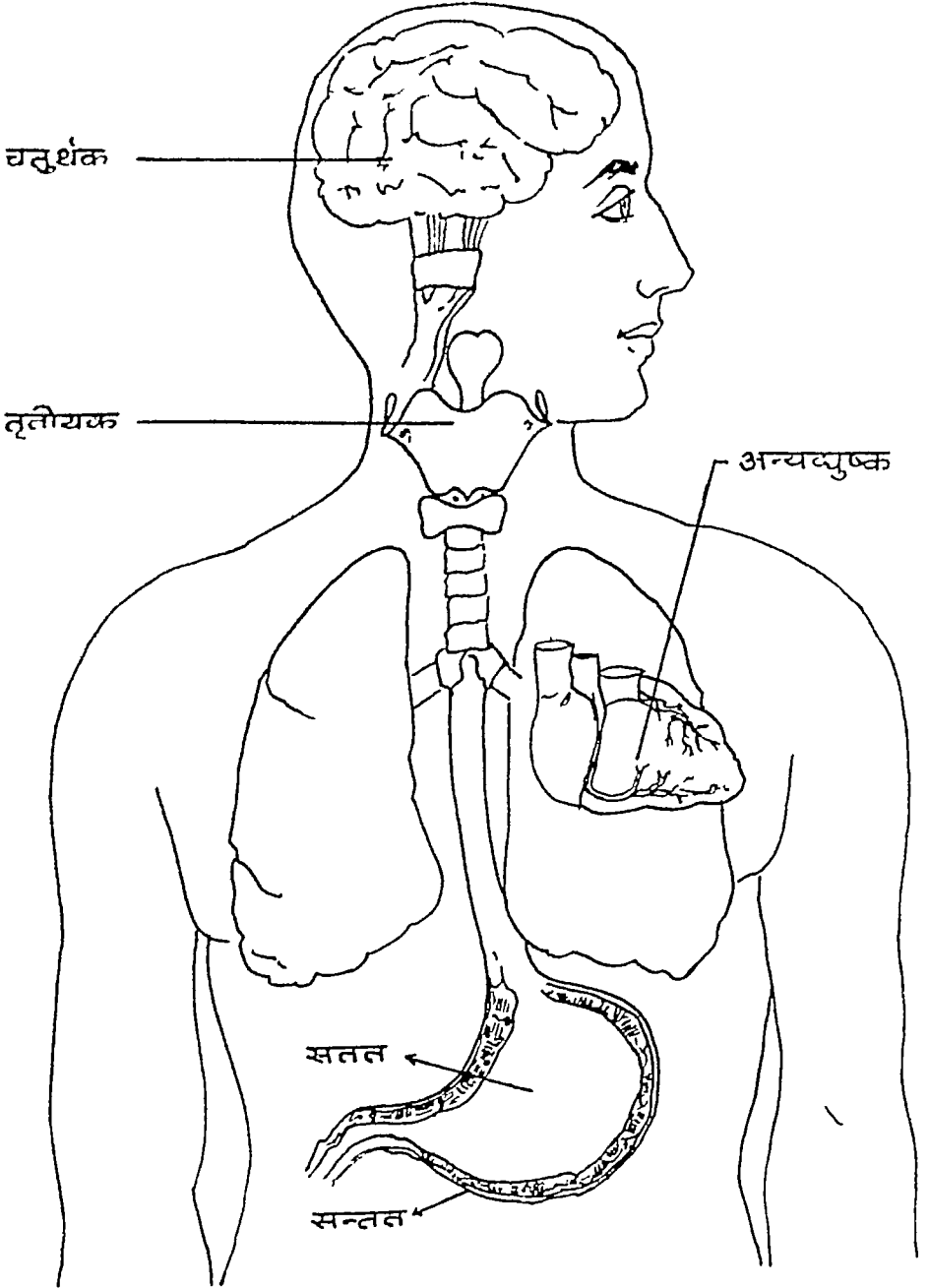
(पृष्ठ १६८ के सम्मुख)

निम्नलिखित द्रव्यों का क्वाथ किसी सतत ज्वर में स्वतन्त्र या अनुपान रूप से दिया जा सकता है।

परवल की पत्ती, वत्सक छाल, नागर मोथा, पाठ और कुटकी। अतिसार होकर पित्त शमित हो गया हो, तो कुटकी का प्रयोग न करे।

अन्येद्युष्क (एकाहिक) ज्वर :—

इसमें दूषित किये दोष आमाशय में जाकर प्रतिदिन २४ घण्टे में एक बार ज्वर का वेग करते हैं। पुनः जब दूष्य से दोष लौट आते हैं तब ज्वर वेग समाप्त हो जाता है। तीनों दोषों के कारण होने पर भी मुख्य दोष पित्त ही होता है। मुख्य दूष्य रक्त[1] ही होता है। प्रायः मलेरिया (एक दूसरा-प्रकार) में आता है। इसमें ये लक्षण होते हैं — मन्द शीत, तृष्णा, दाह, मुँह में फीकापन, तृष्णा, वमन, शिर शूल, प्रलाप, थोड़ा-थोड़ा बारम्बार मूत्रत्याग, तन्द्रा, हाथ पैर टूटने की सी पीड़ा, प्राय. मलावरोध।

सन्तत ज्वर की औषधियों का प्रयोग यहां हो सकता है।

विशेष चिकित्सा—

बृहत् ज्वर हर लौह (भै० र०) एक रत्ती, पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, गुड एक माशा के साथ दें। यह एक मात्रा है। इसे प्रात, दोपहर, सायं और रात में दें। या चन्दनादि लौह (भै० र०) २ रत्ती, नागर मोथे के क्वाथ से अथवा स्वर्णवसन्त मालती (भै० र०) एक रत्ती पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती व मधु के साथ दें। या महाज्वरांकुश रस (भै० र०) अथवा ज्वर कुञ्जर पारीन्द्र रस (भै० र०) एक रत्ती में गोदन्ती भस्म ४ रत्ती मिला कर तुलसी पत्र रस और मधु से दें।

निम्नलिखित द्रव्यों का क्वाथ अनुपान या स्वतन्त्र रूप से दें तो बहुत लाभ होगा—

नीम की छाल, परवल की पत्ती, हर्रा, बहेरा, आंवला, मुनक्का, नागरमोथा और कुटैया की छाल।

याद रखिये इस ग्रन्थ में जहाँ मात्रा की संख्या का उल्लेख नहीं है वहाँ केवल एक मात्रा का मान लिया है। इस मान से २४ घण्टे में कम से कम ४ बार अर्थात् प्रात, दोपहर, साय और रात औषधि देनी चाहिये।

ज्वर के वेग के पूर्व फिटकरी[2] १ माशा, १ माशा गुड के साथ देने से ज्वर का वेग नष्ट या मन्द हो जाता है।

प्रात, सायं नौसादर ३ रत्ती प्रतिमात्रा के हिसाब से गुड या चीनी में खिलाने से भी एकाहिक ज्वर नष्ट होता है। इसे प्रात, सायं दी जाने वाली औषधि में मिला दें, चाहे उसके आधा घण्टा बाद दें।

---

१ यह सुश्रुत का मत है। चरक के मत से रक्त और मांस दोनों दूष्य होते हैं।

२. फिटकरी का लावा नहीं।

तुलसी और आर्द्रक का काढा कर उसमे दूध और मिश्री छोड कर चाय की तरह बना लें। प्रात सायं पिलायें।

— तृतीयक —

इसमे कण्ठ स्थित दोष आमाशय मे एक दिन का अन्तर देकर जाकर ज्वर उत्पन्न करते है। पुन. स्वस्थान मे दोषो के लौट आने पर ज्वर वेग समाप्त हो जाता है। यह क्रम ज्वर के समूल नष्ट होने तक बराबर बना रहता है। इसमे तीनो दोष द्वन्द्व भाव से कुपित होते हैं। मुख्य दूष्य मेद होता है। दोष द्वन्द्व के दृष्टि से इसके तीन भेद निम्नलिखित हैं —

१– वात कफात्मक —

इसमे पीडा पीठ से प्रारम्भ हो कर सर्व शरीर व्यापी होती है। इसमे पीठ की ओर से स्वेदन करना आवश्यक है।[1]

२– वात पित्तात्मक —

इसमे पीडा सिर से प्रारम्भ हो कर सर्व शरीर व्यापी होती है। इसमे शिरोविरेचन[2] कराना आवश्यक है।

३– कफ पित्तात्मक —

इसमे पीडा त्रिकस्थान (कमर) से प्रारम्भ हो कर सर्व शरीर व्यापी होती है। इसमे विरेचन कराना आवश्यक है।

सिद्धान्त निदान —

(स्व० श्री गणनाथ सेन कृत) मे इसके मृदु और दारुण दो भेद बताते हुये ये लक्षण लिखे गये है :—

मृदु तृतीयक—ज्वर अति तीव्र १०-१२ घण्टे रह कर ज्वर वेग समाप्त हो जाता है। चिकित्सा शीघ्र न होने से क्षुधा नाश, कोष्ठबद्धता, दुर्बलता, प्लीहावृद्धि, पाण्डुता, और मु ह पर काले धब्बो का होना आदि लक्षण हो जाते हैं।

दारुण तृतीयक—ज्वर अति तीव्र नहीं होता (ज्वर वेग प्राय २४ घण्टे से ३६ घण्टे तक रहता है)। वमन, कटिशूल, शिर शूल, अतिसार, आमातिसार, बेहोशी, प्रलाप, और कभी-कभी मु ह-गुदा से रक्त का जाना आदि लक्षण होते हैं :—

चिकित्सा—इसमे सामान्यतः सततक ज्वर की औषधियो एवं अनुपानो का व्यवहार होता है। विशेष चिकित्सा यह है —

---

१ देखिये स्वेदन।

२, देखिये पचकर्म के अन्तर्गत।

ऐकाहिकारि[1] (भै० र०) १।२ रत्ती की मात्रा से चवन्नी भर घृत के साथ चटा कर ऊपर से अनीम का क्वाथ २ तोला पिलाने से बडा लाभ होता है। ऐसा प्रात, दोपहर, साय करें। इसके अतिरिक्त ज्वर वेग के १।२ घण्टा पूर्व भी एक मात्रा दें। बडा लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त त्रिलोचन वटी (भै० र०) आधी रत्ती की मात्रा से समान शक्कर मे मिला कर जल से ज्वर के मृदु वेग या वेग रहित्य मे दे तो बडा लाभ होता है। सामान्यत. ज्वर आने के एक घण्टा पूर्व एवं ज्वर उतरने के एक घण्टा बाद देने से लाभदायी होता है। इसके साथ पूर्वोक्त ऐकाहिकारि वटी का योग भी अपने समय पर चलता है। कदाचित् दोनो का समय एक साथ पड जाय तो इसे उससे एक घण्टा पूर्व दे दें।

नोट—ऐकाहिकारि एवं त्रिलोचन वटी मे से किसी एक को ज्वर आने के पूर्व ही २-२ घण्टे पर देने से बहुत ही लाभ होता है। परन्तु तब प्रात, दोपहर, सायं कोई औषधि देने की आवश्यकता नही। यह याद रखें कि एक मात्रा ज्वर आने के १।२ घण्टा पूर्व अवश्य दे देना चाहिए।

या गोदन्ती भस्म एक माशा रससिन्दूर एक रत्ती व भूने हुए करंज बीज का चूर्ण एक माशा सब मिला कर एक मात्रा दें। इसे चिचिढी (अपामार्ग) के पत्ते के रस तीन माशा और मधु के साथ दे। ऐसा ज्वर आने के पूर्व तीन बार प्रति दो घण्टे पर करें।

निम्नलिखित द्रव्यो के क्वाथो मे से कोई क्वाथ शक्कर मधु मिला कर किसी औषधि के अनुपान स्वरूप अथवा स्वतन्त्र रूप से प्रात, साय, दोपहर और रात दे। परन्तु एक मात्रा ज्वर वेग के एक या आधा घण्टा पूर्व अवश्य दे।

१—सोठ, गुरुच, नागर मोथा, लालचन्दन, खस, धनिया।

२—खस लालचन्दन, नागर मोथा, गुरुच, धनिया, सोठ।

३—परवल की पत्ती, नीम की छाल, मुनक्का, सारिवा, हर्रा, बहेरा, आवला, अडूसा।

चातुर्थिक ज्वर

यह ज्वर चौथे दिन अर्थात् दो दिन का अन्तर देकर एक दिन आता है। इसमे तीनो दोष एवं अस्थि मज्जा दूष्य होते है। यह बडा कष्टदायक होता है। इसका प्रभाव दो प्रकार देखा जाता है।

१—श्लैष्मिक—इसमे पहले जंघा मे पीडा होकर सर्व शरीर व्यापी होती है। वस्ति द्वारा मल शोधन आवश्यक है।

---

१ इसमें खपरिया भस्म दो तोला, शंख भस्म दो तोला, तूतिया भस्म आधा तोला पड़ता है सबको लेकर गोजिह्वा गोजी, जयन्ती एवं चौराई के रस से सात सात भावना देकर १ २ रत्ती की गोली बनाये ग्रन्थ में एक तोला शुद्ध तूतिया डालने को लिखा है। पर इससे यह उग्र हो जाता है।

२—वातिक—इसमे पीडा पहले शिर मे होकर सर्व शरीर व्यापी होती है। नस्य एवं शिरोवस्ति द्वारा दोष शोधन एवं शमन करने पर ध्यान देना चाहिये।

दोनो प्रकार के प्रभावों में चातुर्थक ज्वर के सामान्य लक्षण अर्थात् अत्यन्त शीत के साथ ज्वर[1] आना, तत्पश्चात् दुस्सह दाह होना, धातुओ का शोषण, बल वर्ण एवं अग्नि का नाश आदि मिलते है।

चातुर्थिक विपर्यय—

चातुर्थिक ज्वर के वेग काल का उलटा वेग काल इसमे होता है। अर्थात् दो दिन ज्वर वेग होगा एक दिन नही होगा। इस प्रकार पहले और चौथे दिन वेग न होगा। बीच के दो दिन होगा। ज्वर की परम्परा बन जाने पर तो ज्वर मुक्ति का एक ही दिन पहला और चौथा दिन दोनो हो जाता है। इस ज्वर मे निर्बलता या शक्ति का ह्रास अत्यन्त अधिक होता है। शेष लक्षण अर्थात् पहले तीव्र जाड़ा तत्पश्चात् तीव्र दाह और अग्नि का नाश चतुर्थक ज्वर के समान ही होते है।

चिकित्सा—

सततक ज्वर की औषधियो का सामान्यतया यहा भी प्रयोग हो सकता है, ज्वर आने के १५ या ३० मिनट पूर्व सरपेट तक्र मिला कर घी और मरिच के साथ चातुर्थकारि[2] रस (भै० र०) दो रत्ती की मात्रा मे खिला दें। इससे वमन होकर ज्वर का वेग नष्ट होता है।

इस रस को बिना तक्र पिलाये ज्वर के वेग के पूर्व ३-३ घण्टे पर चम्पा के फूल के रस तीन मासा और मधु के साथ अथवा शेफाली के रस तीन मासा और मधु के साथ तीन बार भी दे सकते हैं। परन्तु अधिक वमन आने लगे तो बन्द कर दूसरी औषधि देनी चाहिये।

या तालाक रस (भै० र०) २ रत्ती की मात्रा से द्रोण पुष्पी (गूमा) का रस ६ माशा और मधु या तुलसी का रस ६ मासा और मधु के साथ ज्वर आने के पूर्व २-२ घण्टे पर ३ बार दें।

या ज्वर कुन्जर पारीन्द्र (भै० र०) एक रत्ती मे भूने करंज का बीज का चूर्ण एक माशा मिला कर कुकरौंधा (कुक्कुरद्रुम) के रस २ माशा एवं पान के रस दो माशा मे मधु मिला कर ज्वर आने के पूर्व २-२ घण्टे पर तीन बार दें।

निम्नलिखित क्वाथो मे से किसी एक को प्रात. साय एवं ज्वर के पूर्व किसी औषधि के अनुपान रूप से बहुत दिनो तक पिलायें।

---

१. सामान्यत पित्त के साथ कफ का प्रकोप होने पर पहले अत्यन्त शीत लगता है तत्पश्चात् तीव्र दाह होता है।

२. यह पुराने चतुर्थक ज्वर में विशेष लाभदायी होता है।

१—हर्रा, शालपर्णि, सोंठ, देवदारु का बुरादा आंवला और अडूसा की पत्ती का क्वाथ मिश्री मधु मिला कर।

२—गुरुच, नागर मोथा और आंवले का क्वाथ।

निम्नलिखित नस्यों में से किसी एक का व्यवहार प्रातः और ज्वर आने के पन्द्रह मिनट पूर्व करें।

१—अगस्त की पत्ती के रस का नस्य, इससे अधकपारी भी नष्ट होती है।

२—पुराना घी में तनाव हींग का महीन चूर्ण मिला कर नस्य।

३—निर्गुण्डी के फूल का रस हल्दी और दारुहल्दी का चूर्ण मिला कर नस्य।

पथ्य—

चातुर्थक ज्वर का पथ्य शेष विषम ज्वरों के समान ही होता है। परन्तु एक हजार अमलोट (अम्लोनिया) की पत्ती के क्वाथ से सिद्ध की हुई पेया घी मिला कर खिलाने से विशेष लाभ होता है। यह चक्रदत्त का योग है।

प्रलेपक ज्वर

इस ज्वर में कफ वृद्ध, पित्त मध्य एवं वात हीन रहता है। प्रधान दूष्य रस होता है। इसमें शरीर में भारीपन रहता है और वह पसीना से लिप्त रहता है। शीत लगता है, मन्द ज्वर बना रहता है। प्रातःकाल ज्वर सर्वथा नहीं रहता। दोपहर या सायंकाल से ज्वर वेग प्रारम्भ होकर मध्य रात्रि में खूब पसीना आकर उतर जाता है। यह बड़ा कठिन होता है। इसमें शक्ति का बड़ा ह्रास होता है। यदि यक्ष्मा या शोथ वालों को हो जाय तो प्राण नाशक है। इसकी चिकित्सा में स्वर्ण वसन्त मालती, सितोपलादि चूर्ण, श्री जयमंगल रस, राजमृगांक रस आदि का व्यवहार मुख्य रूप से होता है। अनुपान में सामान्यतः पीपर का चूर्ण और मधु रखिये। अमृताष्टक क्वाथ भी पिलाया जाय तो अत्युत्तम है।

यह स्मरणीय है कि शक्ति की सुरक्षा पर अवश्य ध्यान रहे। सितोपलादि के अतिरिक्त सभी शक्ति वर्धक हैं, पर इसका भी व्यवहार करें। मुक्ता पिष्टी अवश्य मिलायें। इसके अभाव में प्रवाल भस्म मिला दें।

एक सामान्य योग यह है :—

स्वर्ण वसन्त मालती	४ रत्ती
सितोपलादि चूर्ण	४ माशा
मुक्ता पिष्टी	२ रत्ती
मिश्री	४ मात्रा

सहपान पीपर चूर्ण और मधु (अनुपान अमृताष्टक क्वाथ) प्रातः १० बजे से प्रति ४ घण्टे पर दें।

प्रातःकाल गाय का दूध पाव भर, मधु आठ माशा, घृत छः माशा, पीपर चूर्ण १ माशा, मिश्री एक तोला मिलाकर पिलायें। शेष पथ्य में लघु और सुपाच्य अन्न तथा मूंग का यूष, अथवा चावल का भात, गेहूं का फुलका, परवल आदि लें। बकरी का दूध विशेष हितकारी है।

रात्रिज्वर—

निर्बल लोगों को थोड़ा भी परिश्रम करने से रात में मन्द ज्वर आ जाता है। इसमें तीनों दोष क्षीण रहते हैं। पित्त विशेष क्षीण रहता है। अरुचि, मलावरोध, तेज हीनता थकावट, मूत्र में पीलापन और अग्निमान्द्य विशेषतः होता है।

चिकित्सा—

विश्वेश्वर रस (भै० र०) २ रत्ती की मात्रा में प्रातः दोपहर सायं गोदुग्ध में अवश्य दें। साथ में प्रलेपक ज्वर की ओषधियां भी दी जा सकती हैं। भोजनोत्तर द्राक्षासव (शा० सं०) का द्राक्षारिष्ट अवश्य पिलायें।

विषम ज्वर की चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें

१—सन्तत ज्वर की चिकित्सा तो सन्निपात ज्वर के दृष्टिकोण से करें। क्योंकि यह वैसा ही लगभग होता है। पर पूर्वलिखित इसकी औषधियों एवं अनुपानों का प्रयोग अवश्य करें। इनमें संशोधन पर जोर न देकर संशमन पर जोर दें। लघन भी चलेगा।

२—सन्तत ज्वर के अतिरिक्त सभी में कोष्ठ शुद्धि पहले कर लें। सम्भव हो तो वमन करा कर विरेचन करायें। वमन सम्भव न हो तो विरेचन अवश्य करायें। विरेचन के लिए अमलतास का गुदा, निशोथ, कुटकी में से किसी एक का व्यवहार करें। प्रत्येक के साथ मुनक्का १५-२० का प्रयोग भी करें।

वमन के लिये मैनफल का बीज, पीपर और मुलहठी का चूर्ण उष्ण जल के साथ दें। इसकी साधारण एक मात्रा में क्रमशः तीन माशा ४ रत्ती व २ माशा द्रव्य ग्रहण करें

३—कच्ची फिटकरी का चूर्ण एक माशा, दो माशा गुड़ के साथ ज्वर वेग के एक घण्टा पूर्व सन्तत को छोड़कर सभी विषम ज्वरों में निस्सदेह होकर दिया जा सकता है जहां कोई औषधि नहीं वहां यह परमौषधि है।

४—या वेग के पूर्व करन्ज चूर्ण एक माशा उष्ण जल के साथ या दो माशे रसोत के जल में किये घोल में व्यवहार किया जा सकता है।

५—सन्तत और सततक ज्वर को छोड़ कर शेष में कफ का प्रकोप हो तो वेग न रहने पर खीर, मालपूवा, गुलगुला आदि स्निग्ध पदार्थ खाने को दें। मद्यपायी शराब भी पी सकते हैं।

६ जो ज्वर प्रबल रसौषधि, कषाय, चूर्ण वमन, लघन, लघु भोजन आदि से न शान्त हो उसमे घृत पिलाना चाहिए। परन्तु रोगी का रूक्ष होना आवश्यक है, अर्थात् कफ का प्रकोप न हो।

७– दाह या प्यास लगने पर सूत शेखर रस (यो० र०) मात्रा एक रत्ती को न भूलें।

नीम की पत्ती का कल्क एक तोला, आधा सेर जल और मधु चार तोला मिला कर पिलाने से वमन होकर तृषा और दाह दोनो शान्त होता है। यदि आध घण्टे मे वमन न हो तो इसी मात्रा मे दुबारा पिलायें।

शतधौत घृत की मालिश दाह को शान्त करती है या नीम का कल्क पानी मे डाल कर मथ कर झाग उत्पन्न करें। यह झाग सारे शरीर पर पोतने से दाह एव तृषा को नष्ट करती है।

८—विषम ज्वरो मे वेग के समय बहुत वमन होती है, उससे घबडाये नही। उसमे नम्बर दो मे उल्लिखित औषधि से वमन करा कर दोष निकाल देने से वमन सर्वथा शान्त हो जाती है। यदि ऐसा नही चाहते तो सूत शेखर या मयूरपुच्छ भस्म का प्रयोग करें।

९– तुलसी की पत्ती, दोष पुष्पी (गूमा) हरश्रृङ्गार (पारिजात) मे से किसी का स्वरस किसी भी विषम ज्वर (सन्ततको छोड कर) मे अनुपान या स्वतन्त्र रूप से व्यवहृत कर कर सकते हैं।

१० आचार्य यदुनन्दन उपाध्याय के मत से विषम ज्वर का नाम मलेरिया कहना अनुचित है। मलेरिया शब्द माल एरिया दो शब्दो से बना है जिसका अर्थ दूषित वायु मे उत्पन्न रोग होता है। यह ज्वर का एक भेद हो सकता है। पूरा विषम ज्वर नहीं। सुश्रुत उत्तर तन्त्र अध्याय ३९ मे वर्णित औपत्यक ज्वर (पहाड की उपत्यका अर्थात् तराई मे होने वाला) मलेरिया कहा जा सकता है।

११—ज्वर का वेग हट जाने पर ज्वर नष्ट हो गया, यह नही समझना चाहिये। वस्तुत ज्वर वेग हट जाने पर भी ज्वरकारक दोष धात्वन्तर मे लीन रहता है। फिर समय पर प्रकुपित होकर ज्वर करता है। इस लिये ज्वरवेग के सर्वथा नष्ट हो जाने पर ही ज्वर नष्ट समझें।

जीर्णज्वर

तीन सप्ताह बीत जाने पर भी जो ज्वर छोडता नही महीन (सूक्ष्म और मन्दवेगीय अर्थात् ९९ से १०२ डिगरी तक) हो जाता है, प्लीहा, (बरवट या तिल्ली बढ जाती, है अग्निमान्द्य हो जाता है उसे जीर्ण ज्वर कहते हैं। कोई भी ज्वर अपनी सामान्य मर्यादा से अत्यधिक दिन रहने पर उपर्युक्त लक्षण उत्पन्न कर देता है। ज्वर बना रहने पर भी साधारणत. मांस क्षय कम ही होता है। देखने मे रोगी साधारण पुष्ट प्रतीत होगा,

पर चेहरा निस्तेज होगा और शक्ति क्षीणता अधिक होगी। आगे वर्णित कालज्वर से अन्तर कर लें। इसके अतिरिक्त क्षुधा नाश, अरुचि, रक्त हीनता या पाण्डुता, मल-बद्धता भी होती है। लोक मे इसे पुराना ज्वर या महीन ज्वर कहते है।

चिकित्सा—

इसमे लंघन मत कराइये। संशोधन पर भी जोर मत दीजिये। हा इतना अवश्य ध्यान दें कि प्रतिदिन शौच खूब साफ आ जाय। संशमन (दोषो का शमन करना) चिकित्सा पर अधिक जोर दें। शक्ति बढाने पर भी ध्यान दें। कफ क्षीण हो तो दूध खूब पिलायें। यथासम्भव अन्न न दें। विशेषत ज्वर बढने वाले दिन। यदि अन्न देना अनिवार्य हो तो कभी-कभी दूध के साथ थोडा भात या पतली खीर दें। दुग्धाहार से प्लीहा घटती है ज्वर नष्ट होता है और शक्ति बढती है। इससे कभी-कभी मल बद्धता हो जाती है इसलिए दूध मे मुनक्का या अंजीर या निशोथ पका दें। अथवा स्वतन्त्र रूप से एक माशा निशोथ या एक माशा कुटकी का चूर्ण उष्ण जल से खिला दें।

वर्धमान पिप्पली— जीर्ण ज्वर के लिये यह एक साधारण और उत्तम प्रयोग है। ३ छोटी पीपर के दरदरे चूर्ण को पाव भर दूध मे और आधा सेर जल मे डाल कर पकायें। दूध बच जाने पर छान कर पिलाये। प्रतिदिन ३-३ पीपर तदनुसार दिन भर मे पी सकने भर तक दूध बढाते जाय। १० दिन बीत जाने पर प्रतिदिन ३-३ पीपर के ही क्रम से घटाते हुए समाप्त कर दें।

यह ध्यान रखें कि रोगी की आयु, बल, अग्नि के अनुसार उपर्युक्त मान मे न्यूनाधिक्य हो सकता है। आवश्यकतानुसार एक पीपर भी प्रतिदिन बढायी जा सकती है और आवश्यकता पडने पर १० तक भी प्रति दिन बढायी जा सकती है। पर तीन पीपर सामान्य मात्रा है। अधिक दूध सबका सब एक ही बार मे पीना आवश्यक नहीं। कई बार मे पिलाया जाय। यह भी याद रखें कि पीपर की वृद्धि के साथ ही रोगी मे दूध पचाने की शक्ति भी बढती जाती है। इससे जीर्ण ज्वर, प्लीह, वृद्धि, अग्निमान्द्य कफ, कास, श्वास, रक्ताल्पता एवं दुर्बलता सब नष्ट होती है। इससे यदि कास या सूखी खांसी हो तो तुरन्त बन्द कर मिश्री मुलहठी चुसायें। छाती पर पुराना घी मलें।

औषधिया—

स्वर्ण वसन्त मालती (भै० र०) मात्रा दो रत्ती इसकी सुप्रसिद्ध औषधि है। इसे पीपर चूर्ण २ रत्ती या ४ रत्ती और मधु से खिलाते हैं। बहुत से वैद्य पीपर न देकर सितोपलादि चूर्ण ही एक माशा मिला देते हैं। केवल इसी से भी बडा लाभ होता है। इसी मे चन्दनादि लोह (भै० र०) दो रत्ती या सर्व ज्वरहर लौह (भै० र०) २ रत्ती (बृहत्सर्वज्वर हर लौह एक रत्ती) मिला दें। तो बडा उत्तम है। यदि रोग शोष या यक्ष्मा की ओर जा रहा है तो श्री जयमंगल रस (भै० र०) एक रत्ती भी मिला दें या स्वतन्त्र रूप से व्यवहार करें। यकृत या प्लीहा की वृद्धि मे भी उपर्युक्त औषधियो एवं वर्द्धमान पिप्पली से लाभ होता है। पर यकृदरि लौह (भै० र०) एक रत्ती या

यकृत्प्लीहारि लौह (भै० र०) एक रत्ती या प्लीहशार्दूल रस (भै० र०) एक रत्ती भी मिला देने से उत्तम लाभ होता है।

अनुपानो में गुरुच का रस, म्यौडी (निर्गुण्डी) का रस-पीपर-मधु, अमृताष्टक क्वाथ (भै० र०) ये उत्तम अनुपान हैं। इन्हे स्वतंत्र रूप से या किसी औषधि के अनुपान रूप से अकेले या दो तीन मिला कर प्रयोग किया जा सकता है।

कुल मिलाकर एक उत्तम योग यह है :—

स्वर्ण वसन्त मालती	८ रत्ती
यकृत्प्लीहारि लौह	४ ,,
सर्व ज्वरहर लौह	४ ,,
योग	४ मात्रा।

सहपान पिप्पली चूर्ण चार रत्ती मधु दो माशा।

अनुपान गुरुच का रस १ तोला म्योडी का रस एक तोला।

नोट.— १— पीपर चूर्ण से उष्णता बढती है। अत समझकर २ या ४ रत्ती दें। अधिक उष्णता न बढे और लाभ न हो तो ४ रत्ती तक दे सकते हैं। उष्णता बढने से शुष्क कास पाण्डु (पीलिया) लाल मूत्र कभी कभी मूत्र त्याग मे कष्ट आदि होता है। दूध इन्हे ठीक करता है।

२—गुरुच और म्योडी से जी मचलाये या वमन हो तो उनकी मात्रा कम कर दें, म्यौडी गुरुच से अधिक वामक होती है। इस दुर्गुण को कम करने के लिए इसमे भी मधु मिला सकते है।

३— यदि रोगी को सूजन हो गयी है तो अनुपान मे पुनर्नवारस एक तोला भी मिलाया जा सकता है।

४—विना पानी मे पीसे उपर्युक्त अनुपान द्रव्यो का रस नही निकलता। देते समय अनुपान के रस को गरम कर लें। आवश्यकता होने पर कुछ कम उष्णता रह जाय तो मधु मिलायें।

अभ्यग या तैल मर्दन—

महालाक्षादि तैल (भै० र०) या चन्दनबला लाक्षादि तैल (यो० र०) की मालिश से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। शक्ति सुरक्षित रहती है।

इनके सम्बन्ध मे यह याद रक्खें कि यकृत्प्लीहा के ऊपर मालिश न करें। शेष सर्वांग मे करें। २—कभी-कभी लाक्षा के दोष से दाने पड जाते हैं। तब तैल बदल दें या चन्दनादि तैल (भै० र०) की मालिश करें।

गोमूत्र—

गोमूत्र यकृत और प्लीहा की वृद्धि मे बडा लाभ करता है। यदि ताजा मिल सके तो किसी भी समय दो तोला तक पिला सकते है। दिन रात मे दो बार से अधिक न पिलाये। गाय गर्भिणी, रोगी या वृद्धा न हो।

मन्थरक ज्वर (टयफायड फीवर)

मन्थरक ज्वर के कारण और लक्षण—

घाम, दूषित वायु, अधिक मार्ग गमन, मलमूत्र युक्त जलपान, दुर्गन्धित निवास एवं भोजन, मक्षिका से संस्पृष्ट भोजन आदि कारणो से यह उत्पन्न होता है। इसे अत्यन्त मन्थर (धीमी) गति से बढने के कारण मन्थरक, मन्द वेग के कारण मधुरक, निश्चित मियाद (२१ दिन) के कारण मियादी (छोटी आतो मे) कभी कभी बडी आतो मे दाने एवं तज्जन्य क्षत होने के कारण आन्त्रिक, शरीर पर मोती जैसे दाने निकलने के कारण मौक्तिक मोतिया या मोतीझरा, सान्निपातिक लक्षणो के कारण सन्निपात एवं भावी उत्तम स्वास्थ्य के कारण मुबारकी (मुबारक वाला) ज्वर कहा गया है। नामो के अनुसार कुछ लक्षण ऊपर बताये गये है। स्पष्ट और विशिष्ट लक्षण ये है—

बेचैनी शिर शूल, अरुचि एवं अंगो मे फूटने की सी पीडा आदि लक्षणो के साथ ज्वर प्रारम्भ होता है। प्रतिदिन एक डिगरी बढता है। ज्वर के इस बढने के क्रम को सोपान क्रम या शनै स्तोक क्रम कहते हैं। इस प्रकार एक सप्ताह तक ज्वर बढता जाता है। दूसरे सप्ताह मे ज्वर स्थिर रहता है। केवल शाम को एकाध डिगरी कम होकर पुन. प्रात ज्यो का त्यो हो जाता है। ग्रीवा और छाती पर सफेद मोती के समान दाने निकलते है। जिह्वा पर सफेद लेप होता है। उसमे बीच मे चीर लग जाती है। मुंह का सूखना, प्यास बेचैनी, हृद्दौर्बल्य हो जाता है। ताप बढने पर भी नाडी की गति नियमानुसार नही बढती।[1] उग्र हो जाने पर सन्निपात के लक्षण यथा प्रलाप, बेहोशी, अतितन्द्रा, जंहाई हो जाती है। तीसरे सप्ताह मे ज्वर सोपान क्रम से ही एक-एक डिगरी प्रति दिन कम होकर सप्ताहान्त मे सामान्य हो जाता है। दाने भूमी के समान छूटने लगते है। किसी-किसी रोगी का यकृत (लीवर, प्लीहा या बरबट) भी बढ जाता है। विशेष ध्यान देने के योग्य बात यह है कि दाने ग्रीवा की ओर से प्रारम्भ होकर जाघो पर जा कर समाप्त होते है। यह क्रम और दानो का अधिक निकलना शुभ होता है। दाने कम[2] निकलें या जाघ की ओर से प्रारम्भ होकर ग्रीवा की ओर जाय तो कष्ट बढता है। मटर की दाल के यूप के समान बहुत लोगो को पीला दस्त होता है। अन्तत

---

१. सामान्यत एक डिगरी ज्वर बढने पर नाड़ी की गति में १० स्फुरण बढ जाते है। पर मन्थरक ज्वर में १०३ डिगरी ज्वर रहने पर भी नाडी के स्फुरण १०० से ऊपर नहीं जाते जब कि तापवृद्धिक नियमानुसार न्यूनतम १२० होने चाहिये। यह स्मरणीय है कि नाड़ी में प्रतिमिनट ७२ स्फुरण स्वस्थावस्था में होते है।

२. इस ज्वर के सटीक लक्षण चरकोक्त कफ ज्वर से मिलते हैं गुलाबी दाने (अरुण बिन्दु) भी निकलते है। पर ऐसा भारत में कम होता है। पीला या लाल दस्त होना पित के सहयोग का द्योतक है। पित ज्वर में अरुण बिन्दु का उल्लेख है।

किसी-किसी को कभी-कभी रक्तातिसार भी हो जाता है। किसी-किसी को मलावरोध होता है। शरीर से विस्र (आम या शव के समान) गन्ध निकलती है। सुचारु रूप से उपचार से निश्चय २२वें दिन ज्वर सामान्य हो जाता है। और, कोई उपद्रव नही होता। अन्यथा कष्ट बढ जाते हैं। आंख, कान, वाणी, नाक मे से किसी मे विकृति आकर उसके कार्य मे बाधा हो जाती है। कुल मिला कर इसमे अन्त्र, हृदय एवं मस्तिष्क विकृत होता है। एक चौदह दिन का टाईफाइड, टाईफस नाम से होता है। जिसका अन्तर एव अन्य समान प्रतीत होनेवाले ज्वरो का अन्तर या सापेक्ष्य निदान इस प्रकार है —

टायफाइड	टाइफस
१— मर्यादा २१ दिन।	मर्यादा १४ दिन।
२— दानो या पिडका के निकलने आदि का क्रम एक-एक सप्ताह का।	दानो या पिडका आदि का क्रम ५–५ दिन का।
३— ज्वर वेग की अपेक्षा नाडी-गति मंद	ज्वर वेग के अनुपातानुसार गति तीव्र।
४— अन्त्र में पीडा, उदर मे स्पर्श मे या दबाने से पीडा।	अन्त्र या उदर मे पीडा का अभाव।
५— पेट मे आध्मान (फूलना) और अतिसार।	मलावरोध।
६— ताप का क्रमश बढना	प्रारम्भ मे ही ताप की वृद्धि
७— प्राय शिर शूल और प्रलाप का अभाव।	अति शिर.शूल और प्रलाप
८— रक्तातिसार, न्यूमोनिया या अन्त्र क्षत से मृत्यु।	मूर्च्छा या रक्त के अभाव से

टायफाइड	विषम ज्वर
१— ज्वरारम्भ मे शीत का अभाव	शीत लग कर ज्वरारम्भ।
२— सोपान क्रम से ज्वर का चढाव उतार	सोपान क्रम का सर्वथा अभाव।
३— ज्वर का नियमित क्रमश उतार	अनियमित विना क्रम का उतार
४— अतिसार	मलावरोध
५— नाभि के पास दबाने से पीडा	कौड़ी (छातीके नीचे पसलियो के महराब के नीचे) प्रदेश मे दबाने से पीड़ा।
६— ज्वर वेग की अपेक्षा नाड़ी मन्द	ज्वर वेग के अनुपातानुसार नाड़ी तीव्र।
७— वमन और कामला का अभाव	वमन और कामला की उपस्थिति
८— पाचन और ग्राही चिकित्सा	शामक और शोधक चिकित्सा।
९— ज्वर नष्ट करने के लिये प्रयत्न न कर धीरता से काल मर्यादा की प्रतीक्षा करना।	ज्वर नष्ट करने का प्रबल प्रयत्न होता है। अन्तिम काल मर्यादा प्राय. नही होती।

१ –लंघन आवश्यक	लंघन अनावश्यक
टायफाइड	**इन्फ्लूएंजा**
१ — प्रतिश्यायका अभाव	प्रतिश्याय आवश्यक।
२ — ज्वर के वढने मे सोपान क्रम	ज्वर की वृद्धि में शीघ्रता सोपान का अभाव।
६ — सर्वांग पीडा एव शक्तिह्रास का सामान्य अभाव।	अधिक सर्वांग पीड़ा एवं शक्ति क्षय।

नोट .— दाने न्यूमोनिया मे भी होते है पर उसमे श्वास कष्ट कास, विना सोपान क्रम के ज्वर का तीव्र वेग एवं कफ का प्रकोप आदि लक्षण विशिष्ट होते हैं। दाने अधिकतर ग्रीवा और छाती पर होते हैं, काल मर्यादा बहुत कम होती है। चिकित्सा मे त्वरा तेजी की जाती है। फेफड़ो एव छाती मे विशेष कष्ट होता है।

गण्डूपद (केचुये) क्रिमि जन्य ज्वर मे भी दाने होते हैं। पर वहा जी मचलना नेत्रो की पलको मे मटमैली शिरायें आदि लक्षण विशिष्ट होते हैं।

चिकित्सा. — निम्नलिखित वातो पर ध्यान दें —

१— ज्वर उतारने के लिये जल्दवाजी न करें।

२— मस्तिष्क हृदय और अन्त्र की सुरक्षा पर ध्यान दें। औषधियो मे इनकी औपधि अवश्य दें।

३— पाचक चिकित्सा पर अधिक जोर दें। शामक चिकित्सा तिक्त रस प्रधान क्विनाईन आदि का सर्वथा त्याग करे।

४— मल पतला हो तो तुरन्त उसे गाढा करने और रोकने के लिये ग्राही[1] चिकित्सा करें। नही तो दौर्वल्य वढेगा।

५— कोई उपद्रव वढने न पावे, उपद्रव होने पर तुरन्त ठीक करें।

६— लंघन तोडने के लिये जोर न दें। लगातार दो दिन तक ९९ या साढे ९७ डिगरी ज्वर हो तव अन्न देने की वात सोचें।

७— दूध न दें।

८— मुंह मे विरेचक औषधि न दें। यदि मलावरोध है तो मुनक्का या अमलतास आदि मृदु रेचक औषधियो का प्रयोग हो सकता है। फलवर्ती (देखिये पूर्वोक्त विरेचनाधिकार) का प्रयोग निरापद है।

---

१. पर अहिफेन या भाग का प्रयोग एक दम न करे तो उत्तम है। अत्यन्त उग्र अतिसार हो और सजीवनी या अन्याय से काम न चलता हो तो अनित्तारोक्त अहिफेन घटित योग सिद्ध नांधार या कर्पूर वटी आदि का प्रयोग हो सकता है जिसके साथ मोती, प्रवाल मकरध्वज आदि हृद्य औषधि अवश्य रहेगी।

९— यथा सम्भव मस्तिष्क के लिये ब्राह्मी। हृदय के लिये मुक्ता और मकरध्वज या प्रवाल को न भूलें।

१०— लवंग और विडंग का अष्टमाश शेष जल अवश्य दें। बारह दाना लवंग और २५ दाना विडंग को आध सेर पानी मे पका कर एक छटांक बचाये। यही अष्टमांश शेष जल है। ऐसा दिन रात मे चार बार दें। निस्संदेह लाभ करता है। इसी को आठ कटोरिया या आठ दिया का पानी भी कहते है।

११— पीने के लिये ५१ दाना लवंग को एक सेर पानी मे पका कर आधा सेर या तीन पाव बचा कर वही पानी दें।

१२— उपयु`क्त संख्या ११ का पानी खूब पिलायें। यदि वह पानी रोगी न पी सके तो गरम जल ही खूब पिलायें।

१३— औषधियो मे संजीवनी वटी (शा०), रस सिन्दूर या मकरध्वज, प्रवाल या मोती, पिष्टी, सौभाग्य वटी या टंकण भस्म को न भूलें। मलावरोध मे संजीवनी और अतिसार मे टकंण भस्म न दे या अत्यन्त कम दें। एक योग —

संजीवनी वटी (शां)	४ रत्ती
मुक्ता पिष्टी	२ रत्ती
रस सिन्दूर	२ रत्ती
सौभाग्यवटी (भै० र०)	४ रत्ती
योग	४ मात्रा

प्रातः, दोपहर, सायं और रात को निम्नलिखित काढा से दें—

लंवग एक भर, विडंग एक भर, ब्राह्मी एक भर, हंसराज (परसोसा) एक भर मुनक्का १६ सबको दरदराकूट कर, एक सेर पानी मे पका कर, एक पाव बचा कर शीशी में रख कर ४ मात्रा करें।

यदि अतिसार हो उपयु`क्त क्वाथ में से मुनक्का निकाल कर उसके स्थान मे या अवश्यकतानुसार एक या दो तोला नागर मोथा मिला दें।

खासी है तो किसी भी कढा मे मुलहठी आवश्यकतानुसार एक या दो तोला मिला दें।

यदि कोई क्वाथ न बना सकें तो पूर्वोक्त आठ-कटोरिया का पानी ही अनुपान स्वरूप प्रयोग करें। क्वाथ बन जाने पर इस पानी को उसके बाद या स्वतंत्र किसी समय मे पिलाये।

ध्यान दीजिये, उपर्युक्त चिकित्सा मे मस्तिष्क हृदय एव अन्त्र के लिये अत्यन्त उत्तम वस्तुयें क्रमश ब्राह्मी, मुक्ता और द्राक्षा या नागर मोथा है और विभिन्न दृष्टियो से उपर्युक्त क्रम अत्यन्त हितकर है। काढे और आठ कटोरिया के पानी से दाना खूब निकलता है, जिस मन्थरक ज्वर मे दाना न निकले उसे खतरनाक समझिये।

वायु के उपद्रव मे बृहद्वात चिन्तामणि आधी रत्ती या एक रत्ती पित्त के उपद्रव में सूत शेखर एक रत्ती एवं कफ के उपद्रव मे बृहत्कस्तूरी भैरव एक रत्ती मिला दें तो उत्तम है। यो तो उपर्युक्त संजीवनादि योग मे तीनो दोषो की व्यवस्था कर दी गयी है। अन्यान्य उपद्रवो मे उनकी अलग-अलग अधिकार मे वर्णित औषधियो मे मिलायी भी जा सकती है। प्रलाप एवं अनिद्रा आदि मे, सन्निपात ज्वर मे इसके लिये वर्णित उपायों का अवलबंन कर सकते हैं। नाडी डूब रही हो तो भी बृहत्कस्तूरी भैरव योगेन्द्र रस का व्यवहार हो सकता है।

पथ्य - लंघन पर अधिक जोर दें। न चल सके तो मोसम्मी या वीहीदाना या (मीठा अनार) का रस व फाडे हुये गोदुग्ध का पानी दें। इन तीनो या किन्ही दो का प्रयोग भी हो सकता है। लगातार दो दिनो तक ९७ या साढे ९७ डिगरी ज्वर रहे तब परवल का यूष, मूंग का यूष आदि पर विचार करें।

कक्रचसन्निपात : गर्दन तोड़ ज्वर :

कारण और लक्षण —

प्रवृद्ध वात, मध्यम कफ एवं हीन पित्त से यह ज्वर होता है। धूली, धूवा, एवं अस्वच्छ स्थानो मे रहने से वालको मे विशेष होता है। कभी कभी वृद्ध भी इससे ग्रसित होते देखे जाते हैं। यह रोग वडा भयानक होता है। वालक और वृद्धो पर इसकी घातकता का विशेष प्रभाव पडता है। ८०-९० प्रतिशत इसके रोगी निश्चय मृत्यु के मुख मे समा जाते हैं।

प्रलाप, मूर्च्छा, थकावट, वदहोशी, वैचैनी, चक्कर ये सामान्य लक्षण है साधारणत १०३ से लेकर १०६ डिगरी तक ज्वर रहता है। विशिष्ट लक्षण है— मन्यास्तम्भ (गर्दन जकडना)

मस्तिष्कावरण कला मे शोथ, इसकी शारीरिक विकृति है मस्तिष्क विवरो में स्थितलसीका विकृत होकर पूय का रूप धारण कर लेती है। नाड़ी संस्थानमे विकृति होने के कारण कुछ विचित्र चिन्ह मिलते है जैसे चित्त लेटे हुये रोगी के शिर को आगे की ओर मोडने से उसकी जाघे और घुटना स्वतः मुडने लगता है।

चित्त लेटे हुये रोगी का एक पैर मोडने से दूसरा स्वत. मुडने लगता है।

चित्त लेटे हुये रोगी के पैरो को उदर पर मोडने के वाद रोगी उसे फेला नही सकेगा।

चिकित्सा—

जहां ज्वर मे गर्दन मे पीडा और शिर शूल हो तुरन्त इस ओर ध्यान दीजिये अन्यथा गर्दन जकड जाने पर असाध्यता हो जायेगी।

गर्दन और रीढ पर पानी मे खौलते हुए म्योडी के पत्ती की भाप दें और उन्ही पत्तो से सेंक करें। इस काम में संकोच न कर लगभग आधा घण्टा या एक-एक घण्टा

क्रकच सन्निपात में दोष निकालने का स्थान रीढ

(पृष्ठ १८२ के सम्मुख)

कटि में अंकित विन्दुदार रेखा के ऊपर रीढ पर बने गोल चिह्न के स्थान से जानकार चिकित्सक सूचिका द्वारा दोष निकालते हैं। सम्भव न होने पर यहाँ भाप से सेंक कर राई का लेप करें।

क्रकच सन्निपात मे दोष निकालने का स्थान ग्रीवा
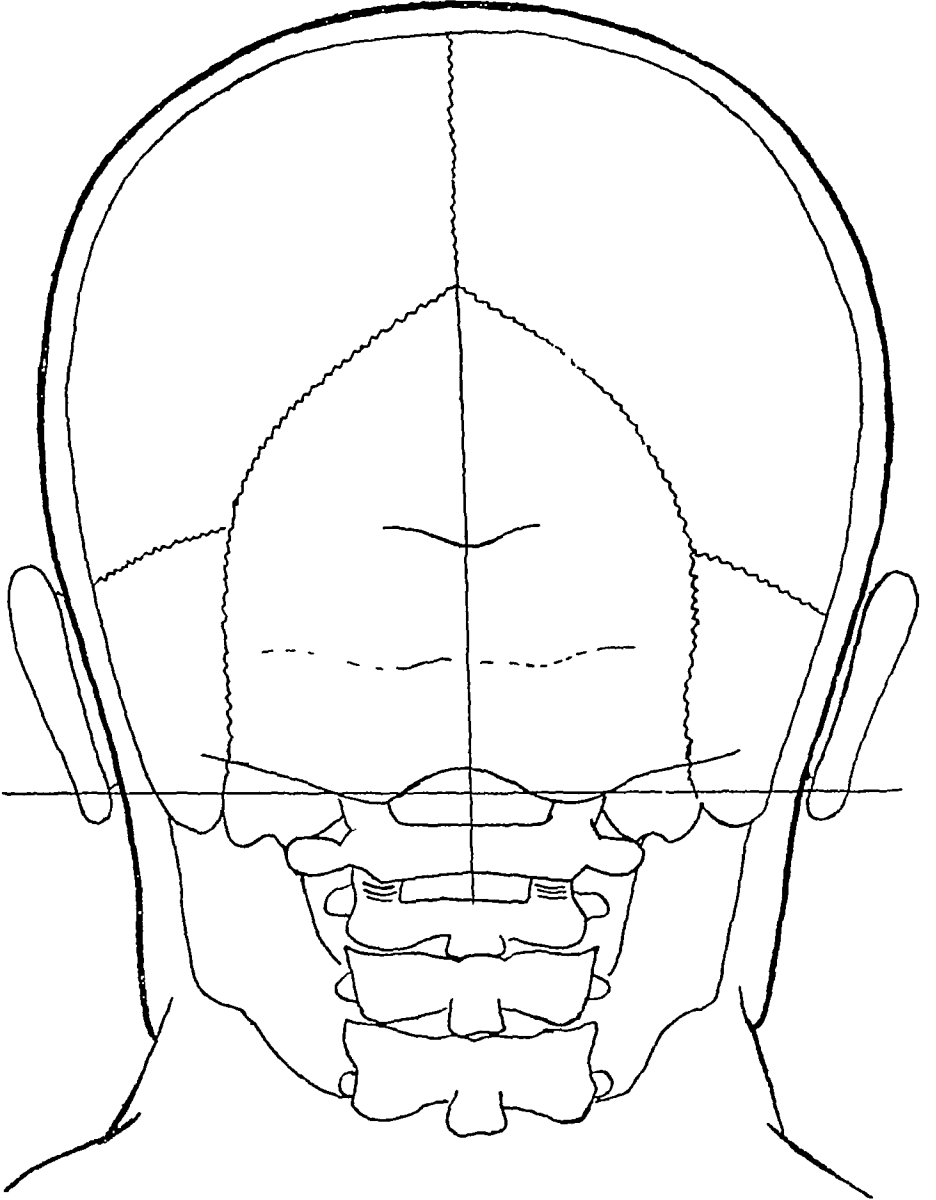
(पृष्ठ १८३ के सम्मुख)

दोनों रेखाओं के क्रास (+) के स्थान पर भी भाप से सेंक कर राई का लेप करें। जानकार चिकित्सक सूचिका द्वारा यहाँ से भी दोष निकालते हैं।

तक इसे करें। तत्पश्चात् दर्द वाले भाग (रीढ और गर्दन) पर राई का उष्ण लेप करें। इसके बाद में नन्हे-नन्हे छाले पड जायेंगे, तो घबडायें नही-रोग प्रकोप शान्त होने पर उन पर सौ बार का धोया घी कपूर मिला कर लगा दे। छालो मे आकृष्ट लसीका (छाले का पानी) के रूप मे मुख्य दोप निकलेंगे। यदि सम्भव हो सिर पर और गर्दन पर सिंगी लगा कर दूषित रक्त लसीका या पूय को तत्क्षण निकालें। लसीका या पूय निकल जाने पर या सेक के बाद रीढ पर विषगर्भ तेल[1] या तारपीन का तेल मलें। सिर पर उष्ण जल से सेक करें। उपर्युक्त उपाय मन्यास्तम्भ हो जाने पर भी करें।

मलावरोध मे तुरन्त एरण्ड तेल आधा पाव की वस्ती देकर मल निकाल लें। सामान्यवस्था मे मलावरोध से बचाने के लिये मुनक्का क्वाथ या इच्छाभेदी रस (भै० र०) आधी रत्ती या एक रत्ती का व्यवहार करते रहे।

मूत्रावरोध हो तो उसे भी शीघ्र दूर करने की व्यवस्था करें। इसके लिये उपर्युक्त मुनक्का क्वाथ या उष्ण कर ठण्ढा किये हुए जल मे कलमी शोरा दिन रात मे अधिकतम तीन माशा डाल कर पिलायें। पेडू पर कलमी शोरा के घोल से भीगा कपडा रक्खें। यदि सम्भव हो तो किसी चिकित्सक या कम्पाउण्डर द्वारा रबड की स्वच्छ नलिका से मूत्र निकलवा दें। सामान्यावस्था मे भी मूत्रावरोध से बचने के लिए उष्ण कर ठण्ढा किया हुआ जल बारम्बार पिलाते रहे।

अन्न व फल आदि न देकर लघन करायें।

औपधि :—

पूर्वरूपावस्था मे ही गर्दन मे पीडा होने या ग्रीवा स्तम्भ हो जाने पर महायोगराज गुग्गुल (शो०) ४ रत्ती, एरण्ड तेल चार तोले आधा पाव उष्ण दुग्ध (गायका) मे डाल कर पिला दें। तत्पश्चात् डेढ पाव दूध पुन पिला दें।

ज्वर के रूप उपस्थित होने पर निम्नलिखित प्रयोगो मे से किसी एक को प्रति चार घण्टे पर व्यवहार मे लायें।

१—मृत्युञ्जय (भै० र०) १ रत्ती की मात्रा से दशमूल क्वाथ या स्योडी की पत्ती के रस एक तोला मे दें।

२—सूतराज (र० यो० मा० प्रथम) एक रत्ती की मात्रा मे उपर्युक्त अनुपान से दें।

---

१. यह महाविषैला तैल है जो अच्छा काम करता है। इसका सम्पर्क मुंह से न होने दे। इसके स्थान पर प्रसारिणी तेल या महानारायण तेल का भी व्यवहार लाभदायी है। शराब की मालिश से भी ग्रीवा स्तम्भ एव रीढ का तनाव तत्क्षण कम होता है पर यह अस्थायी लाभ करता है। स्थायी लाभ के लिये अन्यान्य चिकित्सा करते रहें। यदि, सेक न कर सकें या लसीका पूय न निकाल सकें तो भी मालिस करे। सावधान। छाला या घाव पर विष गर्भ तैल न मलें।

आयुर्वेद विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री का निम्नलिखित योग बडा काम करता है।

कृष्ण चतुर्मुख	४ रत्ती
सौभाग्य वटी (भै० र०)	३ रत्ती
चन्द्रोदय या रससिन्दूर	२ रत्ती
वृहत्कस्तूरी भैरव (भै० र०)	२ रत्ती

सब मिला कर ६ मात्रा ४-४ घण्टे पर आर्द्रक रस डेढ माशा, ब्राह्मी रस डेढ माशा म्यौडी की पत्ती का रस डेढ माशा, मधु ३ माशा के अनुपान से दें।

उग्र आक्षेप या तनाव मे वृहद्वात चिन्तामणि (भै० र०) एक रत्ती महायोगराज गुग्गुल चार रत्ती की मात्रा से प्रात दोपहर सायं और रात को आर्द्रक और म्यौडी की पत्ती के रस के अनुपान से दें।

यदि सम्भव हो तो निम्नलिखित अर्कादि क्वाथ प्रात सायं स्वतन्त्र या किसी औषधि के अनुपान स्वरूप व्यवहार करें।

मदार की जड की छाल, जवासा, चिरायता, देवदारु, रास्ना, म्यौड़ी की पत्ती, वाल-वच, जैता की छाल, सहिजन की छाल, पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्ता, सोठ, असगन्ध और भंगरैला प्रत्येक चवन्नी भर लेकर तीन पाव जल मे काढा कर तीन छटाक बचाये, इसी मे दो मात्रा करें।

इसमे एवं प्रत्येक रोग में औषधि न मिलने पर अनुपान से काम चलायें।
इस दृष्टिकोण से काष्ठोषधियो से अधिक काम होता है। अरचार द्रव्यो यथा मण्ड, तक्र, दूध, जल आदि से अपेक्षाकृत बहुत कम काम होता है

ज्वर हट जाने पर ज्वर का साधारण पथ्य, परवल का यूप, मूंग का यूप आदि देने का विचार करें।

वातालिका : प्लेग :

कारण और लक्षण —

कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित भेल संहिता के जनपद विभक्तीय अध्याय एवं श्री परशुराम शास्त्री द्वारा सम्पादित शार्गधर संहिता की टिप्पणी मे इस रोग का बड़ा सुन्दर वर्णन है। यह रोग साधारणत ऋतु की व्यापात्ति से उत्पन्न होता है। और संक्रामक (छूत से फैलने वाला:) होता है। इस रोग का दोष लूता नामक कीट को प्रभावित करता है। इस कीट को इधर-उधर ले जाने मे चूहे कारण होते हैं। ये कोट भूमि से २—६ फीट से अधिक नहीं फुदक सकते। जब मनुष्यो को ये काटते हैं, तब प्लेग का दोष मनुष्य शरीर मे प्रविष्ट हो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न कर देता है :—

काख वंक्षण (ऊरु यारनन और पेडू की सन्धि) कण्ठ, कर्ण प्रदेश आदि मे ग्रन्थि उत्पन्न होने, साथ ही सर्वांग मे तीव्र ज्वर, प्यास, वेचैनी, शिर शूल, चक्कर, मूर्च्छा, निद्रा नाश, दौर्बल्य, नाडी की अतिमन्दता या अतिचलता, चिन्तातुर, मुखाकृति।

वातालिका (प्लेग)

उग्र हो जाने पर रोगी प्रलाप करता है। उन्मत्त की भांति चेष्टायें करता है। कुल मिलाकर इसका प्रसार काल एव लक्षण इतना स्पष्ट होता है कि इसे पहचानने मे जन साधारण को कठिनाई नहीं प्रतीत होती। यह स्मरणीय है कि ३-४ दिन के अन्दर रोगी की मृत्यु और इसके बीत जाने पर आरोग्य लाभ होता है।

इसके प्रसार काल मे बचने के लिए निम्नलिखित उपाय करना चाहिए।

१—बस्ती का त्याग २—चूँहो का विनाश ३—सक्रमित चूँहो से बचाव ४—पैरो में सरसो के तेल की मालिश व मोजा जूता पहनना। ५—भूमि पर न सोना। ६—संक्रमित व्यक्ति से बचाव। सेवा करते समय सक्रमण मे पूर्णतया सुरक्षा इत्यादि।

चिकित्सा :—

ग्रन्थि से विष निकालने, हृदय की सुरक्षा, कोष्ठ शुद्धि, मूत्रशुद्धि, ज्वर एव उपद्रवो के शमन का ध्यान चिकित्सा मे मुख्यतया करते हैं।

ग्रन्थि पर निम्नलिखित प्रयोगो मे एक करें —

१—देवकाडर को (जलधनिया) बिना पानी डाले पीस कर लेप करें। इसे पञ्जाब मे लटकारी बूटी कहते है। यह ठण्ढे स्थान मे २-३ फीट ऊँचा क्षुप होता है। पत्ती धनिया की पत्ती के समान होती है।

२—ताजी राख ग्रन्थि पर रखकर मिट्टी के तेल से उसे तर करें।

इन प्रयोगो को प्रति तीन घण्टे पर तब तक करें जब तक कि ग्रन्थि पर छाला न पड जाय। छाला पड जाने पर उस पर मक्खन या गरी का तेल लगा दें। जहा तक हो सके छाले को स्वयं न फोडें। फूट जाने पर उसको स्वच्छ कर गरी का तेल या तिल तैल लगाते रहे।

स्वर्गीय श्री पं० गोवर्धन शर्मा छागाणी का निम्नलिखित प्रयोग अनुभूत है :—

एक भिलावें मे सूई खोस कर उसे गोहरी के निर्धूम अगारे पर रख देना चाहिए। तनिक देर मे सूई मे तेल चुपड जायेगा। फिर सुई भिलावें से निकाल कर गाठ के चारो ओर उससे भिलावें का तेल लगा दें। बीच में क्रास के चिन्ह के समान तेल की रेखा खींच दें। गाठ के चारो ओर खिची रेखा के चारो ओर पानी मे बुझे चूने की रेखा खीच दें। बस दूसरे दिन लाभ होता है, गाठ बैठ जाती है। भिलावें लगाने से खाज उत्पन्न हो जाती है उस पर नारियल या तिल्लो का तेल लगायें।

असगन्ध की ताजी जड जल मे चन्दन के समान घिस कर लेप करने से भी गांठ फूट जाती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थि के फूटने या उसे बैठाने का उपक्रम अन्यान्य भी किया जा सकता है। पर उपर्युक्त प्रयोगो से प्लेग के विष नाशन का भी सम्बन्ध है। यथासम्भव ग्रन्थि के छाले का पानी शरीर पर अन्यत्र न लगे। लग जाय तो घबडायें नहीं, उसे पोछ कर गरी का तेल लगा दें।

खाने के लिए संजीवनी वटी (शा) २ रत्ती की मात्रा से देवकाडंर के ताजा स्वरस से प्रति पाच घण्टे पर दें।

या मृत्युन्जय रस (भै० र) १ रत्ती की मात्रा से सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ मे प्रति ५ घण्टे पर दें।

उपर्युक्त योगो से कोष्ठबद्धता दूर होती है। यदि १२ घण्टे में खुलकर शौच न हो तो अश्वकन्चुकी रस (र० रा० सु०) एक रत्ती की मात्रा से उपर्युक्त किसी औषधि मे २ या ३ बार मिला दे। अधिक दस्त होने पर इसे बन्द कर दें।

उपर्युक्त औषधियो मे मूत्र भी साफ आता है। इसके लिये देवकाष्ठ से शुद्ध जल या उष्ण जल बारम्बार खूब पिलाना चाहिये।

प्रलाप या उन्माद की चेष्टा मे प्रलापक सन्निपात की चिकित्सा पर ध्यान दें। अर्थात् सिर पर पुरातन घृत आदि का लेप और बृहद्वात चिन्तामणि को ब्राह्मी स्वरस आदि से खिलावें। यह उचित यह है कि बृहद्वात चिन्तामणि को उपर्युक्त संजीवनी या मृत्युञ्जय वाले प्रयोग मे मिलाकर दें।

बहुत से वैद्य प्लेग में मल्लभस्म या मल्लचन्द्रोदय का प्रयोग करते है। इसे किया जा सकता है। पर मूत्रावरोध या सदोष वृक्क एवं रक्तस्राव या अत्यधिक उत्ताप मे यह भयानक हानि करता है। मल्ल (संखिया) भस्म की साधारण मात्रा १।६४ रत्ती एवं मल्लसिन्दूर या मल्लचन्द्रोदय की मात्रा १।२ रत्ती है। अन्यान्य उपद्रवो की चिकित्सा उनके अनुसार होनी चाहिये। पर किसी परिस्थिति मे संजीवनी का कुछ-न-कुछ प्रयोग चलता रहे। मुक्ता भस्म आधा रत्ती या मुक्ता पिष्टी आधा रत्ती या प्रवाल भस्म दो रत्ती भी योगो मे मिला देने से हृदय की सुरक्षा हो जाती है।

ज्वर मुक्त होने पर परवल या मूंग का यूप या धान के लावे का माड़ देना चाहिये। शक्ति आ जाने पर अश्वकन्चुकी १ रत्ती या २ रत्ती का ठण्डे जल से प्रयोग करने से कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। और, यथाशीघ्र कोई बीमारी नहीं होती।

वातबलासक (बेरी बेरी)

वात और बलास (कफ) से होने के कारण इसका नाम वातबलासक पड़ा।

नाम, कारण और लक्षण—

आर्द्र स्थान और वायु, सार-रहित भोजन, विशेषत सार-रहित भात (मिल के चावल का जिन पर से भूसी के साथ सार वाला छिलका भी निकल जाता है) दूषित या विजातीय द्रव्यो से मिश्रित तेल, दूषित मछली, बासी सडा-गला ठण्डा भोजन आदि इसके विशेष कारण हैं :—

इसमे नित्य मन्द ज्वर रहता है, शरीर रूक्ष हो जाता है। कभी-कभी चेहरे पर विशेष रूक्षता आ जाती है। शरीर विशेषतः पैर, हाथ एवं मुँह पर सूजन, अंगो की जकडन (विशेष अवस्था मे सन्धि शैथिल्य), कफ की प्रधानता (खांसी श्वास के रूप में नहीं अपितु आलस्य, भारीपन, मन्द ज्वर तथा अरुचि आदि के रूप में) और दुर्बलता ये विशिष्ट लक्षण हैं। प्राय. आंखो की ज्योति कम हो जाती है। हृदय दुर्बल
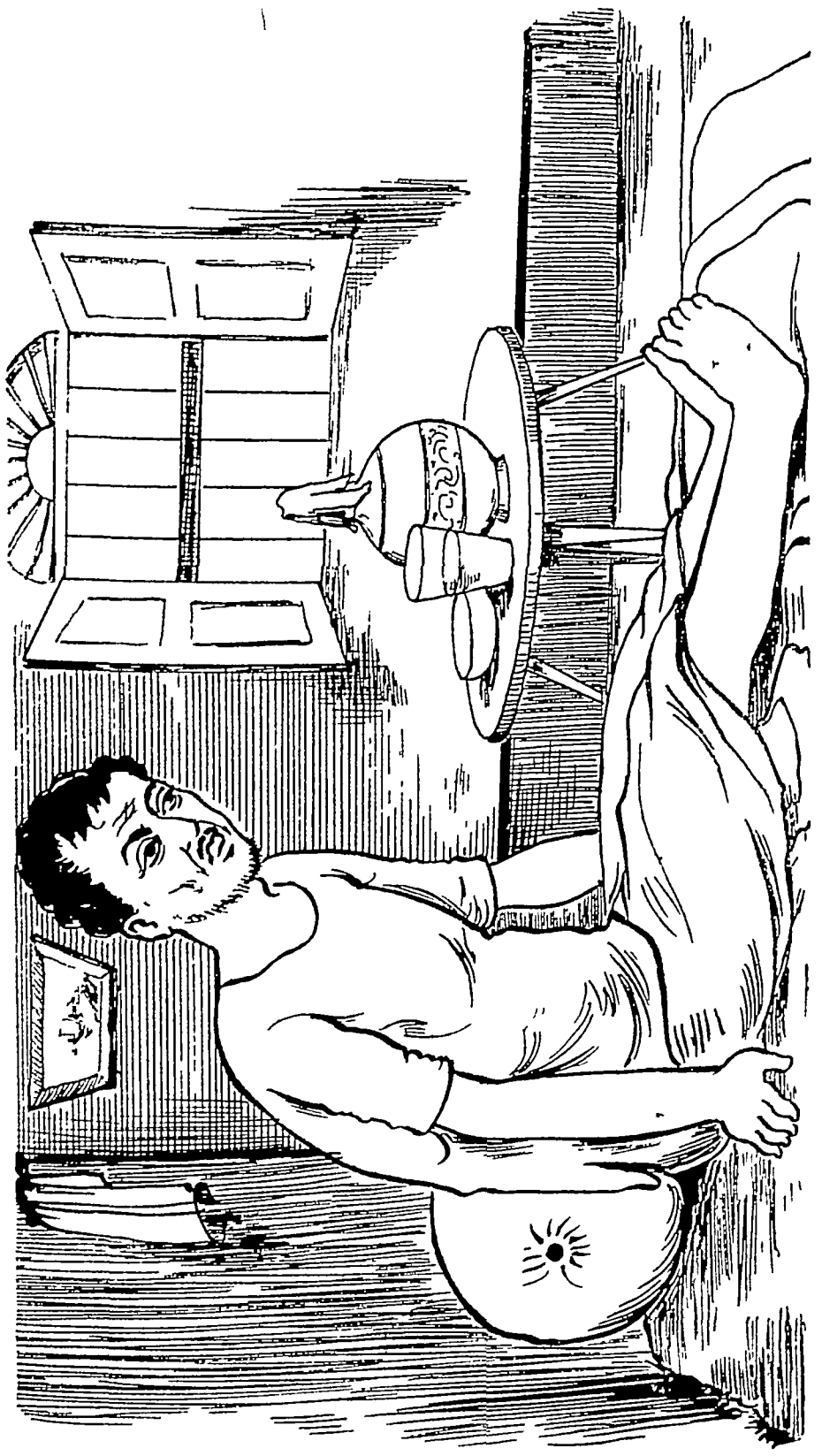
वात बलासक

(पृष्ठ १८६ के सम्मुख न० १)

रूक्षता, सूजन, दुर्बलता एव नेत्रों की मन्द ज्योति

वात व्लासक की विशेष अवस्था सन्धि शैथिल्य

(पृष्ठ १८६ के सम्मुख नं० २)

कम्पन और रूक्षता के साथ ही सन्धियाँ इतनी शिथिल होती जा हैं कि रोगी के वश में नहीं रहतीं और अंग लटक जाते हैं।

हो जाता है। प्रारम्भ के सप्ताह मे लगभग १०० डिगरी (कभी-कभी १०२ डिगरी तक) ज्वर रहता है। परन्तु दीर्घकालीन रोग मे ज्वर ९८ या ९९ डिगरी से अधिक नहीं रहता।

चिकित्सा—

कारणों का तुरन्त त्याग करना चाहिये। ज्वर उतारने पर विशेष जोर न देकर शोथ को दूर करने का प्रयत्न करें। इसके लिये मध्यम-श्रेणी की विरेचन एव मध्यम-श्रेणी की मूत्रल औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। तीव्र विरेचन और तीव्र मूत्रल प्रयोग मत कीजिये। साथ ही लोह घटित योग अवश्य दीजिये। हृद्दौर्बल्य को दूर करने के लिये मोती, प्रवाल, व्योमाश्म (सगेयशव की गुलाव-जल मे पिष्टी) हरिताश्म (सगेजराहत) की पिष्टी आदि शीतल औषधियों का स्वतन्त्र प्रयोग न करें क्योकि हृदय मे कफ की वृद्धि क साथ वात की भी वृद्धि है। उनके साथ रस सिन्दूर, अभ्र आदि कफ नाशक औषधि मिला दें। स्वर्णघटित योग इसके लिये उत्तम है। इनके अभाव मे रस सिन्दूर या अन्यान्य प्रयोग करें। हृद्दौर्बल्य, मूत्रशोधन एव सूजन आदि को दूर करने के लिये शिलाजीत का प्रयोग औषधियो मे अवश्य कीजिये।

औषधियो मे चन्दनादि लौह एक रत्ती, सर्वज्वर हर लौह एक रत्ती, विषमज्वरान्तक लौह, (पुटपक्व) एक रत्ती, स्वर्ण वसन्त मालती एक रत्ती, आदि मे से किसी एक का प्रयोग अवश्य करें। साथ मे आरोग्यवर्धिनी दो रत्ती, चन्द्रप्रभा वटी ४ रत्ती, शिलाजत्वादि लौह दो रत्ती और शुद्ध शिलाजित दो रत्ती में से किसी एक का प्रयोग भी करें। हृदय के लिये हृदयार्णव एक रत्ती, प्रभाकर एक रत्ती, विश्वेश्वर रस एक रत्ती, स्वर्ण भस्म १।२ रत्ती मे से किसी एक को मिला दें। पुनर्नवा मण्डूर ४ रत्ती अभाव मे शोथारिलौह दो रत्ती का प्रयोग प्रत्येक योग के साथ अवश्य करें।

अनुपानो मे विल्वपत्र स्वरस दो तोला या गदह पुरना का स्वरस दो तोला अवश्य रहेगा। उसी में अर्जुन की छाल अठन्नी भर या चवन्नी पर घिस दें। गुरुच का स्वरस एक तोला भी रहे तो उत्तम है।

सभी विभिन्न दृष्टिकोणों से निम्नलिखित दो योगो में से किसी एक का प्रयोग श्रेयस्कर है :—

१—पुनर्नवा मण्डूर	१६ रत्ती
चन्दनादि लौह	४ रत्ती
शिलाजित	८ रत्ती
हृदयार्णव	४ रत्ती
योग	४ मात्रा

अनुपान पुनर्नवा स्वरस दो तोला, गुरुच का रस १ तो०, अर्जुन घृष्ट अठन्नी भर प्रतिमात्रा।

७—स्वर्ण वसन्त मालती	८ रत्ती
प्रभाकर या विश्वेश्वर रस	२ रत्ती
पुनर्नवामण्डूर	१६ रत्ती
आरोग्य वर्धिनी	४ रत्ती
योग	४ मात्रा

अनुपान विल्वपत्र स्वरस एक तोला, पुनर्नवा स्वरस एक तोला, अर्जुन वृष्ट अठन्नी भर प्रतिमात्रा।

विशेष :—

अनुपानो मे मधु प्रत्येक मात्रा मे अठन्नी भर मिला ले तो हानि नहीं अपितु कफ और स्वाद के लिये लाभ ही होगा।

पथ्य :—

गोदुग्ध एवं फलो का रस खूब सेवन करें। गेंहूं की दलिया या रोटी, साबूदाना, धान के लावा का माड, मधु, ताल की मिश्री, प्रात.कालीन वालवाली ताजी ताडी की साधारण मात्रा आव सेर पीने से सर्वाधिक लाभ होता है। परवल, कुन्दरु, लिटोरा की तरकारी भी खायी जा सकती है, इन्हें स्वल्पमात्र घी एवं जीरा, मेथी आदि से संस्कृत कर सकते हैं। काली मिर्च लंवग, धनिया, हल्दी भी डाल सकते हैं।

अपथ्य :—

प्रारम्भिक एक सप्ताह में अन्न का निषेध है। नमक तेल, खटाई, कड़ुवी वस्तुयें, (काली मिर्च, सोंठ, पीपर को छोड कर) आरोग्य दर्शन तक निषिद्ध है। अजीर्ण, गुरु, सडे-गले, वासी, शीतल भोजन से वचें। सीडवाला स्थान त्याग दें।

अन्यान्य ज्वर :—

न्यूमोनिया का श्वास, कालाजार का पाण्डु, इन्फ्लूएञ्जा का प्रतिश्याय, रात्रिज्वर का यक्ष्मा, तथा प्रसूती ज्वर एवं गर्भिणी ज्वर का वर्णन स्त्री रोग मे होगा।

रसादि धातुगत ज्वर

यद्यपि सभी ज्वरो मे दोष सामान्यरूपेण रस धातु का अनुगामी होता है। परन्तु रस में अनुगमन के पश्चात् भी दोष कभी-कभी विशिष्ट धातु मे अधिक आश्रित होकर विशिष्ट लक्षणों से युक्त ज्वर उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्था मे जिस दोष के लक्षण मिलें उनकी चिकित्सा के साथ ही विशिष्ट धात्वाश्रित ज्वर की चिकित्सा करनी चाहिये। अलग-अलग धात्वाश्रित ज्वर का लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार है :—

रसस्थज्वर :—

रसस्थ ज्वर में भारीपन, जी मचलना, सुस्ती, वमन, अरुचि, और दीन भाव ये लक्षण होते हैं। इसमें वमन और लंघन विशिष्ट चिकित्सा है। श्लेष्म दोष की भी चिकित्सा करें।

रक्तस्थ ज्वर : इसमे थूक मे रक्त आना, दाह, बदहोशी, वमन, चक्कर, प्रलाप, पिडकायें और प्यास ये विशिष्ट लक्षण होते हैं। इसमे रक्त मोक्षण, संशमन, लेप और जलादि से सेंचन करें। साथ ही पित्त की चिकित्सा भी करें।

मांसगत ज्वर :—

इस ज्वर मे पैर की पिण्डलियो मे ऐंठन, प्यास और मूत्र का अधिक आना, उष्णता, अन्तर्दाह, हाथ पैर का फेंकना (पीडा के कारण) और ग्लानि ये विशिष्ट लक्षण हैं। इसमे तीक्ष्ण विरेचन विशिष्ट चिकित्सा है। वात पित्त की चिकित्सा पर भी ध्यान रखें।

मेदोगत ज्वर :—

इसमे स्वेदाधिक्य, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीर से दुर्गन्ध, अरुचि, ग्लानि और असहिष्णुता ये विशिष्ट लक्षण होते हैं।

इनमे मेदो रोगनाशक चिकित्सा विशिष्ट रूप से करनी चाहिये। पित्त कफ की चिकित्सा पर भी ध्यान रक्खें।

अस्थिगत ज्वर—

अस्थिगत ज्वर मे हड्डियो मे टूटने की सी पीडा, पेट मे कूंजने की आवाज, श्वास, दस्त, वमन, और पीडा के कारण हाथ-पैरो का फेंकना ये विशिष्ट लक्षण होते हैं।

इसमे वातनाशक कर्म यथा वस्ति, अभ्यंग, (मालिश एवं उद्वर्त्तन अंगो का मर्दन या दवाना) यह विशिष्ट चिकित्सा है।

मज्जागत ज्वर—

इसमे अन्धकार मे प्रवेश की प्रतीति, हिचकी, कास, शीतांगता, वमन, अन्तर्दाह, दीर्घश्वास और मर्मो मे छेदनवत् पीडा ये विशिष्ट लक्षण हैं।

यह असाध्य है। अत इसकी विशिष्ट चिकित्सा नही लिखी है। त्रिदोष के लक्षण हैं, उन्हें समझ कर चाहे तो जवाब देकर चिकित्सा करें।

शुक्रगत ज्वर—

शुक्रस्थान मे ज्वर के पहुँचते ही मृत्यु हो जाती है। रोगी का लिंग स्तब्ध (खडा) रहता है। शुक्रपात बहुत होता है, ये लक्षण जीवित रोगी में नही मृत मे ही देखे जाते हैं।

यद्यपि शुक्र समस्त शरीर मे स्थिर रहता है, परन्तु यहाँ शुक्र स्थान का तात्पर्य शुक्राशय एवं अण्डकोश से है।

प्राकृत विकृत ज्वर

जिस ऋतु मे जो दोष स्वभावत. कुपित होता है यदि उस ऋतु मे उसी दोष से

उत्पन्न ज्वर हो तो उसे प्राकृत ज्वर कहते हैं। जैसे वर्षा मे वात ज्वर, शरद मेपित्त-ज्वर एवं वसन्त ऋतु मे कफ ज्वर।

इसके विपरीत अर्थात् ऋतु मे स्वभावत. कुपित दोप से भिन्न दोप के कारण उत्पन्न ज्वर वैकृत ज्वर कहा जाता है।

वर्षाऋतु में उत्पन्न प्राकृत ज्वर के अतिरिक्त सभी प्राकृत ज्वर सुखसाध्य होते हैं। सभी वैकृत ज्वर दुस्साध्य होते हैं। वर्षा का प्राकृत ज्वर भी दुस्साध्य ही है।

प्राकृत और वैकृत ज्वरो की चिकित्सा में ज्वरोत्पादक दोप के साथ ही उस ऋतु मे स्वभावत कुपिन दोप का ध्यान रखें। एक दोप की चिकित्सा दूसरे दोप को कुपित न करने पाये।

यह भी स्मरणीय है कि वर्षा मे उत्पन्न प्राकृत ज्वर मे वात का अनुगामी पित्त-कफ, शरद ऋतु मे उत्पन्न प्राकृत ज्वर मे पित्त का अनुगामी कफ होना है। एवं वसन्त ऋतु मे उत्पन्न ज्वर मे कफ का अनुगामी वात पित्त होता है।

शरद ऋतु के प्राकृत ज्वर मे अधिक लंघन कराया जा सकता है। क्योंकि इस समय विसर्ग काल (स्वाभाविक बल का समय) है और पित्त-कफ दोनो द्रव धातुयें होने के कारण अधिक लंघन सहन कराने की क्षमता रखती हैं।

ज्वरों की साध्यता असाध्यता

यह सर्वदा ध्यान रखें कि बलवान और स्वल्पदोष वाले रोगी मे उपद्रव रहित ज्वर तथा बहिर्वर्गीय ज्वर साध्य होता है, उपद्रव आगे वर्णित है।

अन्तर्वर्गीय ज्वर—

अन्तर्दाह अधिक होना, प्यास, प्रलाप वमन, चक्कर, सन्धि, एवं अस्थियो में शूल, स्वेद का न निकलना, दोप तथा पुरीप की रुकावट ये अन्तर्वर्गीय ज्वर के लक्षण हैं। यह दुस्साध्य होता है।

बहिर्वर्गीय ज्वर—

बाहरी सन्ताप अधिक, अन्तर्दाह का अभाव और तृष्णा आदि अन्तर्वगीय ज्वर के लक्षणों की मृदुता ये बहिर्वगीय ज्वर के लक्षण हैं। यह सुखसाध्य होता है।

गम्भीर ज्वर—

अन्तर्दाह, प्यास दोपो व मलो का अत्यन्त अवरोध, श्वास और कास ये गम्भीर ज्वर के लक्षण हैं। यह भी अत्यन्त कष्टसाध्य या असाध्य होता है।

निम्नलिखित लक्षणो से युक्त ज्वर असाध्य होते हैं :

बहुत और बलवान कारणो से उत्पन्न, बहुत लक्षणो से युक्त एवं शीघ्र इन्द्रियो को नष्ट करने वाला ज्वर प्राणनाशक होता है।

जो रोगी बेहोश हो जाता है, उसकी आँखो के सामने अन्धेरा छा जाता है, गिरते ही (ज्वर युक्त ही) सो जाता है, (चारपाई पर से उठने का नाम नहीं लेता), शीत मे पीडित रहने पर भी अन्तर्दाह से युक्त होता है, वह ज्वर से मर जाता है।

जो रोमाच, लाल नेत्र और हृदय मे आघात की पीडा से युक्त हो उसे ज्वर मार डालता है।

जो नासिका से श्वास न लेकर मुँह से ही श्वास लेता है, हिचकी श्वास और प्यास से युक्त है एव जिसके नेत्र इधर-उधर घूम रहे हो वह भी मर जाता है।

लगातार उच्छ्वास ले रहा हो, जिसकी प्रभा एव इन्द्रियाँ मारी गयी हो, जो अरुचि तथा तीक्ष्ण वेग मे पीडित हो वह ज्वर का रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

आरम्भ से ही जिसका ज्वर विषम (सन्निपात जैसा हो गया है), जो अत्यधिक काल तक चलने वाला है, या जिसकी रात अत्यन्त लम्बी अर्थात् अत्यन्त कठिनाई से कट रही हो, जो रोगी अत्यन्त क्षीण तथा अति रूक्ष है वह ज्वर से मर जाता है।

क्षीण एवं शूजन से युक्त गम्भीर ज्वर, एवं विना माँग फाडे ही जिसके रोगी के सिर में माँग फट जाती है वह ज्वर असाध्य होता है।

गम्भीर ज्वर—

अन्तर्दाह प्यास, श्वास, कास मलावरोध एवं वायु के अवरोध से युक्त ज्वर को गम्भीर ज्वर कहते हैं। यह भी असाध्य होता है।

ज्वर के उपद्रव—

कास, मूर्च्छा अरुचि, वमन, प्यास, अतिसार, पुरीष की रुकावट, हिचकी, श्वास, अंगो मे टूटने की सी पीडा ये ज्वर के दस उपद्रव हैं। इनसे युक्त ज्वर भी असाध्य होता है। इसमे अतिसार एवं मल की रुकावट इन दो लक्षणो मे से एक ही लक्षण मिलता है।

ज्वर मोक्षण—

ज्वर छोडते समय दाह, पसीना, चक्कर, प्यास कम्पन, मल का पतला होना, बेहोशी, कराहना, मुख मे दुर्गन्धि ये लक्षण होते हैं।

कभी-कभी ये लक्षण इतने भयानक होते हैं कि रोगी के घर वाले घबडा जाते हैं, समझते है कि रोगी अब मरा। पर वैद्य को घबडाना नही चाहिये। ऐसी अवस्था मे रस सिन्दूर एक रत्ती, कस्तूरी १।४ रत्ती या बृहत्कस्तूरी भैरव एक रत्ती आदि मे से जो मिले उसी को आर्द्रक स्वरस मे दे देना चाहिये। अर्थात् रोगी को तुरन्त सम्भाल लेना चाहिये। जब तक नाडी ठीक न चलने लगे या शरीर स्वाभाविक उष्ण न हो जाय तबतक जल्दी-जल्दी कई मात्रा यहाँ तक कि ३—४ तक भी देनी पडती है।

ज्वर मुक्ति के लक्षण—

स्वेद, हलकापन, सिर में खुजली, मुँह का पकना या ओठो पर पपडी पडना, छींक और अन्न मे लालसा ये लक्षण ज्वर छोड देने पर उत्पन्न होते हैं।

पुनरावर्त्तक ज्वर :—

ज्वर छोड देने पर भी असंयम, अपथ्य, चिकित्सा की गडवडी और अन्त मे रेचन असमर्थता में शमन न कराने से ज्वर दोहरा देता है। इसी को पुनरावर्तक ज्वर कहते हैं। इसमे पुन. लंघन और उष्ण उपचारादि क्रम पूर्ववत करना चाहिये। तिक्त घृत का पान भी श्रेयस्कर है। इसके अतिरिक्त लाक्षादि इत्यादि तैल की मालिश, स्नान और धूपन करना चाहिए। निम्नलिखित क्वाथ वडा लाभदायी है :—

चिरायता, कुटकी, नागर मोथा, पित्त पापडा एवं गुरुच, प्रत्येक दो दो तोला लेकर एक सेर पानी मे काढा कर आधा पाव वचा कर रखदें। इसमे चार बार के लिये चार मात्रा है। इसे कुछ दिनो तक पीने से ज्वर निर्मूल होता है।

ज्वर का सामान्य पथ्यापथ्य —

विशिष्ट ज्वरो का पथ्यापथ्य यथास्थान लिखा जा चुका है। सामान्यतः सभी ज्वरो मे व्यायाम, मैथुन, स्नान, टहलना अपथ्य है। जब तक रोगी वलवान नही हो जाता तव तक इनका त्याग करें। सभी नये ज्वरों मे (अभिघातज को छोडकर) दूध भयानक अपथ्य है। दिन में सोना, स्नान, मालिश, अन्न, मैथुन, क्रोध, तेज हवा, कपाय रस से युक्त काढा ये भी अपथ्य हैं।

यथोचित लंघन के वाद शालि या साठी चावल का भात गेहूँ या जौ का फुलका, मूंग कुलथी मोथी मसूर मे से किसी की दाल, धान का लावा, रामदाना का लावा, कुमुदिनी, (वेर्रा) का लावा देना चाहिए।

फलो मे अनार, मौसम्मी, मुनक्का, अंजीर, गम्भार का सामान्य प्रयोग हो सकता है। यह ज्ञातव्य है कि मुनक्का और अंजीर कुछ रेचक है। शेष रसदार फल कुछ शीत वीर्य है। इन्हे दिन मे ही सेवन करें तो उत्तम हैं।

परवल, करैला, मूली, नीम या गुरुच की पत्ती, चौराई, मकोय, वथुआ और जीवन्ती का प्रयोग तरकारी या शाक के लिये करें।

खटाई की आवश्यकता मे अनार दाना, कैथ, अम्लवेत, आलू-बुखारा में से किसी एक का व्यवहार करें।

मसाला मे धनिया, हल्दी, तेजपात, लँवग और काली मिर्च का प्रयोग करें। छौंकने वघारने के लिये जीरा, मेंथी तथा अत्यन्त कम घी का प्रयोग करें।

दूध का प्रयोग करना हो तो गाय का करें उसमे सोठ या पीपर पका लें।

मास का प्रयोग सर्वथा ज्वर मुक्त हो जाने एवं अग्नि प्रवल हो जावे पर ही करें। लवा, तीतर, वटेर, कबूतर, हारिल और बकरे का मास लघु है। इसे रोग के दृष्टिकोण से सिद्ध कर सेवन किया जा सकता है।

—०—

अष्टम अध्याय

अतिसार

जिस व्याधि में मल का अतीव सरण (अधिक बाहर निकलना) हो उसे अतिसार कहते हैं। यद्यपि मूत्रातिसार शब्द का प्रयोग भी हुआ है, पर गुदा मार्ग से केवल मल अथवा उसके साथ आम, रक्त, श्लेष्मा आदि के निकलने के तात्पर्य से ही अतिसार रूढ हो गया है। इसमें वात-पित्त, कफ दोष एवं जलीय धातुएँ, अर्थात् रस, रक्त, मेद, स्वेद, मूत्र, जल, मज्जा दूष्य होती है।

कारण :—

गुरु, अति स्निग्ध, अति रूक्ष अति उष्ण, अति द्रव, अति स्थूल, अति शीतल, विरुद्ध संयोग (जैसे दूध और मछली व देश-काल मात्रा आदि से विरुद्ध अध्यशन), (पूर्व का भोजन बिना पचे भोजन (अपक्व अन्न, विषम भोजन,) बहुत थोडा या अकाल मे किया भोजन, (स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवासन के अतियोग तथा हीन योग, विष, भय, शोक, दूषित जल, अधिक मद्य सेवन, ऋतु विपर्यय, जलक्रीडा, मल-मूत्रादि अधारणीय वेगों की रुकावट एवं क्रिमि दोष से अतिसार होता है।

सम्प्राप्ति :—

प्रदुष्ट जल धातुयें अग्नि को शमित कर, वायु द्वारा नीचे प्रेरित होकर मल के साथ गुदा के बाहर अधिक मात्रा मे निकलती है। इसी व्याधि को अतिसार कहते है। यह छः प्रकार की होती है। १—वातातिसार २—पित्तातिसार ३—कफातिसार ४—सन्निपातातिसार ५—शोकातिसार ६—आमातिसार। चरक मे आमातिसार नही लिखा है वहाँ उसका अन्तर्भाव सन्निपातातिसार में किया गया है। इसके स्थान पर भयातिसार अलग से वहाँ लिखा गया है।

पूर्व रूप :—

हृदय, नाभि, गुदा, उदर मे सुई चुभने सी पीडा, अंगो में शिथिलता, अधोवायु की

रुकावट, पुरीष की रुकावट, पेट का फूलना और अन्न का न पचना, ये भावी अतिसार के पूर्व रूप हैं।

लक्षण :—

संक्षेप मे इसके भेदो के अलग-अलग लक्षण ये हैं —

वातातिसार :—

फेन, पीडा, रूक्षता, शब्द से युक्त थोडा किञ्चित गुलाबी मल निकलना।

पित्तातिसार :—

पीला नीला, लाल, मल निकलना तथा दाह, मूर्च्छा, प्यास और गुदा मे पाक होना। इसमे अधिक पित्ताकारक पदार्थ खाने से रक्तातिसार हो जाता है।

श्लेष्मातिसार :—

सफेदगाढा, विस्र (शवगन्धी), शीतल, श्लेष्मायुक्त मल निकलना, रोमाञ्च होना।

सन्निपातातिसार :—

सूअर की चर्वी, मास धोवन के समान एवं तीनो दोषो से उत्पन्न अतिसार के लक्षणों से युक्त, कष्टसाध्य सान्निपातातिसार होता है।

शोकातिसार :—

शोक के कारणो मे शोक करते हुए, अल्पाहारी मनुष्य की वाष्प (नेत्र, नासा, तथा गले से निकलने वाला जल) तथा उष्माशोकजनित शरीर और मल की गर्मी, कोष्ठ मे जाकर उसके रक्त को क्षुभित करता है। वह लाल गुन्जा के समान लाल रक्त सगन्ध या निर्गन्ध पुरीषयुक्त या पुरीषरहित होकर वाहर निकलता है। यही अत्यन्त दुश्चिकित्स्य कष्ट दायक शोकातिसार है।

भय से वायु कुपित होकर कच्चा पतला और उष्ण पुरीष निकालने लगता है। इसे भयातिसार कहते हैं। शोकातिसार व रक्तातिसार का अन्तर यो समझिये :—

शोकातिसार	रक्तातिसार
१—इसका कारण शोक है	इसका कारण पित्तावर्धक पदार्थ है।
२—रक्त अल्प निकलता है।	रक्त अधिक निकलता है।
३—मानसिक व्याधि है।	शारीरिक व्याधि है।
४—सत्वावजय (मन पर विजय) चिकित्सा की आनिवार्यता।	युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा की अनिवार्यता

आमातिसार :—

अन्न के अजीर्ण से विमार्गगामी दोष कोष्ठमे रक्तादि धातु समूह एवं मल को दूषित कर अनेक वर्णो के अनेक वार मल को वाहर निकालते हैं। साथ मे शूल भी होता है। इसी को आमातिसार कहते हैं।

चिकित्सा—

चिकित्सा मे दोष, दूष्य का ध्यान रखने के साथ ही आम और पक्व मल (देखें मल परीक्षा) पर विचार करना होगा। आम मल को रोकना नहीं चाहिये। पाचन उपाय से पचाना चाहिये, पक्व मल को ग्राही औषधियों से रोकना चाहिये। पर ध्यान रखिये वायु का प्रकोप होकर पेट फूलने न पावे। याद रखिये पाचन एवं ग्राही औषधियों में शंख भस्म का व्यवहार करने मे वायु का प्रकोप नहीं होता। सोंठ चूर्ण, काला नमक भी यही काम करता है।

सम्प्राप्ति के दृष्टिकोण से दो प्रकार की चिकित्सा की जाती है।

१— प्रवृद्ध जल धातुओं मे से जल को सुखाना। यह कार्य जायफल आदि से होता है। लंघन से भी इस कार्य मे सहायता मिलती है।

२ जलवाही स्रोतों के मुख को बन्द करना, यह कार्य दो प्रकार से होता है।

(क) अभिष्यन्दी पदार्थों से गोंद के समान स्रोत मुख को चिपकाकर बन्द कर देना अर्थात् लसीला पदार्थ उसमें भर देना। जैसे दही, राल मोचरस रसौत आदि से।

(ख) कषाय या सकोचक द्रव्यो से स्रोतों के मुख को सकुचित कर बन्द कर देना। यह कार्य कषाय रस वाले फिटकरी आदि एवं ग्राही अहिफेन आदि द्रव्यो से होता है।

आम और पक्व मल का ध्यान रखते हुए प्रारम्भिक अवस्था मे सम्प्राप्ति के अनुसार प्रथम प्रकार एव कुपितावस्था मे द्वितीय प्रकार उचित है। पर शीघ्र लाभ के लिये दोनो प्रकारों का सम्मिलित प्रयोग किया जाता है। विशेषतः बढे हुए रोग मे तो ऐसा करना अनिवार्य होता है।

सामान्यावस्था और रोगी के दुर्बल न होने पर पहले पाचन-दीपन उपाय किये जाते है बाद मे ग्राही उपाय होते है।

विशिष्टावस्था अर्थात् प्रकुपित रोग एवं रोगी के दुर्बल होने पर पहले ही ग्राही उपाय कर अतिसार को रोकते है। तत्पश्चात् पाचन-दीपन उपाय कर आम को पचाते एवं अग्नि को दीप्त करते हैं। प्रारम्भ मे लंघन ही श्रेयस्कर है। रोगी लंघन न सहन कर सके तो अनार का रस, मण्ड, केले की तरकारी, दही और मट्ठा से काम चलायें। यथासम्भव अन्यान्य अन्न आदि न दें।

अलग-अलग अतिसारो की चिकित्सा यह है :—

वातातिसार की चिकित्सा—

इसमे थोडा-थोडा मल पीडा के साथ निकलता है। यदि रोगी दुर्बल न हो तो एरण्ड तैल एक तोला या दो तोला उष्ण दुग्ध आधा पाव से विरेचन कराकर मल निकाल देने से शीघ्र लाभ होगा। ऐसा न कर सकें तो प्रति दूसरे दिन या आवश्यकतानुसार प्रतिदिन रात सोते समय इसबगोल की भूसी ६ माशा या एक तोला उष्ण जल

या उष्ण दुग्ध से दें। यह चिकना होने से आतों में चिकनायी उत्पन्न कर मल को नीचे की ओर सरका देता है। अधिक मल चाहे वह आम या पक्व हो निकल रहा हो तो इसका प्रयोग न करें। निम्नलिखित औषधियों में से किसी एक का प्रयोग प्रातः, दोपहर, सायं और रात या प्रकुपित अवस्था में प्रति तीन या चार घण्टा पर करें।

शंखोदर रस—१ रत्ती मधु से।

वृद्ध गंगाधर चूर्ण—एक माशा गुड से।

लाई चूर्ण—एक माशा मधु या कुड़ैया क्वाथ से।

वृहत् कनकसुन्दर रस—एक रत्ती मधु से।

पथ्य—

वृहत्पंचमूल या कैथ, वेल, चागेरी, अनार दाना, तक्र से सिद्ध पेया या लाजमण्ड दें।

अपथ्य—

वातकारक पदार्थ यथा रुक्ष, लघु पदार्थ, सभी दालें अपथ्य हैं।

भोजन के वाद हिग्वष्टक चूर्ण एक माशा, लवण भास्कर चूर्ण एक माशा का व्यवहार अवश्य कर लें। अनुपान तक्र या जल।

पित्तातिसार में यदि रोगी वलवान हो और उदर में अधिक मल हो तो उसे मुनक्का या अंजीर सीद्ध दूध से विरेचन करा देना चाहिये। इसके लिये वकरी का दूध सर्वश्रेष्ठ होता है। अभाव में गाय के दूध से काम चलायें।

यदि रोगी दुर्वल है और रोग प्रवल है तो अनार का पुटपक्व अथवा उष्ण रस आधा पाव या पाव भर देने से तुरन्त लाभ होता है। अभाव में सन्तरा या मौसम्मी के रस से भी काम चलाया जा सकता है।

पुटपक्व रस वनाने का विधान यह है—

किसी हरे या सूखे द्रव्य के कल्क को वरगद, गूलर आदि के पत्तों में लपेट कर कुश या डोरा से वांध दें। फिर उस पर गीली चिकनी मिट्टी का एक अगुल मोटा लेप कर सुखाकर गोहरी की आँच में रख दें। जव लेप कुछ लाल हो जाय तो उसे निकाल लें। अव मिट्टी, कुश या डोरा और पत्ता हटाकर कल्क का रस निचोड़ लें। वस यही पुटपक्व रस है। इस क्रिया का नाम पुटपाक है। सूखे द्रव्य को पानी या रोगनाशक द्रव्यों में पीस कर कल्क वनायें।

यदि उदर में शूल के साथ उग्र पित्तातिसार है या इसके साथ रक्तातिसार है तो शतावर, मुलहठी, वेल, की गुद्दी प्रत्येक एक भाग, तिल तैल एक भाग, गोघृत एक भाग, वकरी का दूध ८ भाग, सौंफ का काढा सोलह भाग पका कर घृत और तैल शेष रखें।

इसमे अनुवासन वस्ति देने मे आम एव मल निकल जाता है और, शूल के साथ रोग भी नष्ट होता है।

निम्नलिखित पिच्छा वस्ति भी अत्यन्त लाभ करती है—

सेमर के ताजे फूल का चार तोला कल्क बनाकर बरगद या गूलर के पत्ते मे लपेट कर ऊपर से कुश या डोरा बाध कर मिट्टी का एक अगुल मोटा लेप करें। इसे गोहरी की आग में रख दें। जब मिट्टी सूख जाय तो गोला निकाल कर उसके भीतर से पत्ता और कुश या डोरा हटा कर कल्क को तीन पाव उबले बकरी के दूध (अभाव में गोदुग्ध) मे मिलाकर छान लें। फिर इस दूध मे मुलहठी का महीन कल्क तीन तोला, तीन तोला घी और तीन तोला तिल तैल मिलाकर वस्ति दें। यही पिच्छा वस्ति है इससे आतो मे हुई खराश या व्रण, दाह, आदि मे उत्तम लाभ पहुँचता है और, भयानक पित्तातिसार या रक्तातिसार नष्ट होता है। वस्ति के लौट आने पर बकरी का दूध या मांस रस और भात खिलाना चाहिये।

निम्नलिखित मे से किसी एक या आवश्यकतानुसार दो-तीन का योग कर प्रातः, दोपहर, सायं और रात अथवा, तीन-तीन, चार-चार घण्टे पर प्रयोग करें।

पीयूषवल्ली रस—एक रत्ती भुने बेल की गुद्दी व गुड से।

अहिफेन वटिका—एक रत्ती भुने बेल की गुद्दा व गुड़ से।

बृहद् गगन सुन्दर रस—एक रत्ती अनुपान बकरी का दूध या जामुन के छिलके का रस अथवा भुने बेल की गुद्दी व गुड से।

नोट—उपर्युक्त औषधियो मे यदि रक्त पित्त की कोई औषधि भी मिला दें तो बहुत लाभ होगा। अनुपान मे दूर्वा स्वरस भी उत्तम है। अनार मिल सके तो अवश्य दें।

वत्सकादि क्वाथ—

कुड़ैया की छाल, अतीस, बेल की गुद्दी, सुगन्धवाला, नागर मोथा प्रत्येक दो तोला लेकर एक सेर पानी में काढा कर आधा पाव बचा कर चार मात्रा करें। इसे स्वतन्त्र या अनुपान रूप से चार बार देने से अत्यन्त लाभ करता है।

पथ्य—

मण्ड, तक्र, अनार, मौसम्मी, बकरी के दूध का प्रयोग करें।

अपथ्य—

पित्तकारक पदार्थ यथा उष्ण, कटु, खट्टा, तीक्ष्ण, क्षार आदि।

सावधान। अपथ्य सेवन करने से रक्त अधिक आने लगेगा।

श्लेष्मातिसार चिकित्सा—

श्लेष्मातिसार की चिकित्सा करने के पूर्व इससे आमातिसार का अन्तर समझ लेना चाहिये, जो इस प्रकार है :—

श्लेष्मातिसार	आमातिसार
१—प्रारम्भ मे आम अन्त में पक्व मल आता है।	१—सर्वदा आम मल आता है, पक्व मल आने पर आमातिसार सज्ञा ही समाप्त हो जायेगी।
२—दीर्घकालीन होता है।	२—अपेक्षाकृत अल्पकालीन होता है।
३—श्वेत वर्ण का मल निकलता है।	३—अनेक वर्ण का मल निकलता है।
४—अल्प शूल या शूल का अभाव।	४—शूल या मरोड की अनिवार्यता।
५—कभी-कभी रोमाञ्च होता है।	५—रोमाञ्च का अभाव रहता है।
६—शीतल मल निकलता है।	६-शीतल मल न होकर दोषानुसार होता है।
७—कफ का ही प्राधान्य रहता है।	७—तीनो दोषो मे किसी का प्राधान्य होता है।
८—कफ की प्रधान चिकित्सा होती है।	८—आम की चिकित्सा के साथ प्रकुपित दोष की भी चिकित्सा होती है।
९—पहले पाचन तत्पश्चात् ग्राही उपचार होता है।	९—पहले रेचन तत्पश्चात् पाचन उपचार होता है। इसमे अत्यन्त क्षीणता के अतिरिक्त ग्राही उपचार नही करना चाहिए।

शेष बातें आगे वर्णित आमातिसार प्रकरण मे देखिये .—

श्लेष्मातिसार मे लघन कराना आवश्यक है। लघन की समाप्ति पर लघु पथ्य देना चाहिए। औषधि या अनुपान मे पञ्च कोल, (पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्ता सोठ) में से किसी एक अथवा सम्मिलित का प्रयोग अवश्य करें। आर्द्रक का व्यवहार भी किसी न किसी रूप में होना चाहिए।

औषधियाँ :—

निम्नलिखित औषधियो में से किसी एक का अथवा दो तीन का सम्मिलित प्रयोग करें .—

१—पूर्ण चन्द्रोदय रस दो रत्ती मधु या पञ्चमूलक्वाथ या दोनो मिश्रित से।

२—आनन्द भैरव रस एक रत्ती आर्द्रक स्वरस मधु से।

३—अगस्ति सूत राज एक रत्ती आर्द्रक स्वरस, मधु से। यह विशेष ग्राही है, अतः मल की पक्वावस्था मे अधिक लाभदायी है।

४—हिग्वादि चूर्ण एक मासा उष्णजल मे।

यदि अतिसार जीर्ण हो जाय तो पर्पटी कल्प के अनुसार रस पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी या लौह पर्पटी का प्रयोग करें। बिना पर्पटी कल्प के भी पर्पटियाँ दी जा सकती हैं। पर्पटी के सम्बन्ध मे ग्रहणी प्रकरण देखें।

जीर्ण कफातिसार मे क्षय के लक्षण भी मिलते हैं। वहाँ स्वर्ण पर्पटी, हेम गर्भ पोट्टली रस, एक रत्ती की मात्रा मधु के साथ व्यवहार कराने से लाभ होता है। पीयूष वल्ली रस दो रत्ती भूना हुआ बेल व गुड के साथ प्रयोग कराया जा सकता है। जाति फलादि चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ या लवंगादि चूर्ण एक माशा उष्ण जल के साथ भोजन के आधा घण्टा बाद दीर्घ काल तक प्रयोग करायें।

यह स्मरण रखें कि श्लेष्मातिसार मे पीने के लिये उष्ण जल का ही प्रयोग करें। फुलका (जौ का), मूँग की दाल, धान को लावा, कच्चा केला की तरकारी, अत्यन्त पुराना चावल का भात, मधु, जीरा, आर्द्रक, त्रिकुट युक्त मट्ठा, बेल का शर्बत आदि पथ्य हैं।

शीतल जल, स्निग्ध पदार्थ, उरद के पदार्थ, मधुर पदार्थ आदि अपथ्य हैं।

द्वन्द्वज अतिसार :—

दो दोषो से उत्पन्न अतिसार भी होता है, पर उनकी गणना पृथक नहीं की गयी है। जिन दो दोषो से अतिसार उत्पन्न होता हो उन्हीं दोषो से उत्पन्न अतिसार की सम्मिलित चिकित्सा करने से लाभ होता है :—

वातश्लेष्मज अतिसार मे वृहत् कनकसुन्दर, हिंगुलेश्वर, अगस्ति सूतराज (इसमे अफीम पडती हैं), अग्नि तुण्डी वटी, लाई चूर्ण का अलग-अलग आवश्यकतानुसार दो का सम्मिलित व्यवहार करने से लाभ होता है।

वातपित्तातिसार :—

इसमे सूतशेखर रस, जातिफलादि वटी, शखोदर रस, कुटजारिष्ट का पृथक-पृथक अथवा दो का सम्मिलित व्यवहार लाभदायी होता है।

पित्तश्लेष्मातिसार मे कर्पूरासव, कुटजावलेह, कुटजारिष्ट प्रभृति काम करते हैं। इनका पृथक-पृथक अथवा सम्मिलित प्रयोग करे।

सन्निपातातिसार :—

अतीत काल से यदि मलावरोध रहता है तो मल के सूख जाने पर उसके निकलने मे आँतें छिल जाती हैं। अन्तत वहाँ व्रण होकर मास धोवन, पूय इत्यादि के समान मल आता है। अन्यान्य कारणो से भी आँतो मे व्रण होने पर ऐसा होता है। इसलिये सन्निपातातिसार की चिकित्सा करते समय इन बातो का ध्यान रखना चाहिए। आगे लिखित असाध्य लक्षणोंवाले अतिसार के रोगी को जवाब देकर चिकित्सा करनी चाहिये ऋषियो ने द्वारा औषधियो मे ऐसी वस्तुओ का मिश्रण कर दिया गया है जिससे व्रण का

शोधन और पूरण भी हो सके। मोचरस, लाक्षा, लोध रसौत, दारुहलदी अकोठ, मंजीठ, आदि द्रव्यों का प्रभाव आतो के व्रणो पर लाभदायी होता है। निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा दो तीन का प्रयोग आवश्यकतानुसार करें—

वृद्ध गंगाधर चूर्ण ३ माशा तण्डुलोदक एवं मधु से।

कपित्थाष्टक चूर्ण २ माशा जल से श्वास, कास, स्वरभंग हो तो इसे न दें।

अमृतार्णव रस २ रत्ती, अनुपान-बकरी का दूध, मधु कदली स्तम्भ स्वरस, चौराई रस, मधु, धनियां, जीरा युक्त मूंगका यूष मे से, कोई एक।

सिद्ध गन्धार रस १ रत्ती अनार रस, तक्र या दधि से।

चिन्तामणिरस १ रत्ती, अनुपान दोषानुसार।

पथ्या पथ्य :—

इस अतिसार मे लघन नही कराना चाहिये, नही तो शोष हो सकता है। अनार का रस, बकरी या गाय की दही, तक्र, कच्चा केला की तरकारी, पुराना अरवा चावल आदि पथ्य है।

शोकातिसार :—

शोकातिसार मे मूल कारण को दूर कर सत्वावजय (मनोवैज्ञानिक) चिकित्सा पर भी ध्यान देना चाहिए। केवल औषधि से लाभ नही होगा। रोगी को सान्त्वना आदि देते हुए सन्निपातातिसार अथवा आगे वर्णित सर्वातिसार की औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। पथ्या पथ्य भी सामान्य अतिसार के समान करना चाहिये। यह ज्ञातव्य है कि यह अतिसार अतिकष्ट साध्य होता है।

भयातिसार :—

इसमे मस्तिष्क, हृदय, आमाशय, अन्त्र, मलाशय, एव मूत्राशय निष्क्रिय हो जाते हैं। परिणामत. इनके कार्य नही होते। भोजन पर भी इनका कुछ प्रभाव नही पडता। और वह जैसा का तैसा नीचे की ओर ढकेल दिया जाता है। मलाशय मे से उष्ण मल एवं मूत्राशय मे से बूंद बूंद मूत्र थोडी देर पर निकलता है। ओज-क्षय के कारण सारा शरीर विशेषत. मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है। इसमे भी सत्वावजय (मनोवैज्ञानिक) चिकित्सा पर ध्यान देकर भय को दूर करना होगा, सान्त्वना देना होगा। औषधि एवं पथ्य व्यवस्था आदि सान्निपातिक अतिसार के समान करें। हृदय अत्यन्त दुर्बल रहता है इसलिये उसकी सुरक्षा न भूलें। औषधि में मुक्ता, स्वर्ण या किसी हृद्य औषधि का प्रयोग अवश्य करें।

रक्तातिसार —

इसकी चिकित्सा के पूर्व यह निर्णय करना आवश्यक है कि रक्त किस कारण से आता है। रक्तार्श, रक्त पित्त, शोकातिसार, रक्तजा प्रवाहिका, अनन्त्रक्षत, मलकाठिन्य,

गुदचीर एवं उग्रविष प्रकोप मे गुदा से रक्त निकलता है। इसलिए रक्त निकलने के कारणो का पता लगा लेने मे चिकित्सा मे सुविधा होगी। रक्तार्श मे मासाकुर (ववासीर के मस्से) गुदा के बाहर या भीतर अथवा दोनो ओर अवश्य रहेगे। भीतरी मस्से गुददर्शक यन्त्र से सरलता से देखे जा सकते हैं। मल की कठोरता से मस्सो पर दवाव पड़ने के कारण काफी रक्त निकलता है। यह वहुकालीन या मृत्युपर्यन्त रहनेवाला एवं वारम्वार होने वाला रोग है।

अधोग या द्विमार्गगामी अथवा समस्त शरीर से निकलने वाले रक्त पित्त का रक्त विदग्ध देखें रक्तपित्त) होता है। यह रोग भी अपेक्षाकृत वहुकालीन होता है। रक्त भी वहुत निकलता है। इसके साथ मल का आना अनिवार्य नहीं है। इसका रक्त जीव रक्त नही होता।

शोकातिसार :—

शोकातिसार तो अपने मूल कारण शोक के कारण स्पष्ट निर्णीत हो जायेगा। यह भी वहुकालीन या दुश्चिकित्स्य होता है। इसमे रक्त पित्त या रक्तातिसार के समान उष्णता नहीं होती।

रक्तजा प्रवाहिका मे प्रवाहण (मलत्याग के लिये पेट पर जोर देकर कूथना) अनिवार्य होता है। मल अत्यन्त कम निकलता है, आम एवं कफ भी अवश्य रहता है। रक्त कम ही निकलता है। अल्पकालीन (४–५ दिन का) रोग है।

अन्त्रक्षत, मलकाठिन्य एवं गुदचीर ये सव तात्कालिक रोग है। मलोत्सर्जन के समय पहले जरा-सा रक्त निकलता है। वाद मे मल आता है।

उग्र विष प्रकोप मे विष के लक्षण भी शरीर मे मिलेंगे।

रक्तातिसार तात्कालिक रोग है, सुख साध्य है, पित्त का प्रकोप होना इसमें अनिवार्य है। धाराप्रवाह रक्त निकलता है। इसमे जीव रक्त निकलता है।

चिकित्सा :—

रोग रक्तातिसार ही है, इसका निर्णय हो जाने पर निम्नलिखित औषधियो मे से कोई एक अथवा कई का मिश्रित प्रयोग करें—

अहिफेन वटिका एक रत्ती अनार स्वरस या तक्र या मण्ड। यह आर्द्रक रस मे घोटी हुई अफीम एवं पिण्डखजूर वरावर घोट कर आधीरत्ती की मात्रा से वनती है।

कर्पूर रस एक रत्ती अनार स्वरस या तक्र या मण्ड।

सिद्ध गान्धार रस एक रत्ती अनार स्वरस या तक्र या मण्ड।

वृहद् गगनसुन्दर रस, भुना वेल और गुड या जामुन की छाल का रस, या वकरी का दूध।

कुटजपाक स्वरस दो तोला मधु।

कुटजारिष्ट एक तोला समजल भोजन के पाच मिनट वाद।

अहिफेनासव दस बूँद से आधा तोला तक।

राल चूर्ण ४ रत्ती सौंफ का रस या अनार रस या मधु। इनके अतिरिक्त शंखोदर रस, जातिफलादि वटिका, शम्बूक भस्म, (जीव रहित घोघा के वल्कलका भस्म) दाडिमाष्टक चूर्ण एव संगेजराहत भस्म भी उत्तम काम करते हैं। वनचौराई (अभाव मे साधारण चौराई) का कल्क भी मिश्री मधु के साथ वहुत लाभदाई होता है। कुडैया, रसौत, वेल, सौंफ और अनार मे से किसी एक का प्रयोग भी लाभदायी होता है।

पथ्यापथ्य :—पित्तातिसारवत्।

नाल भ्रंश या नाला उखड़ जाना :—

आंत या नाल पर विषम दवाव पडने से वह अपने स्थान से कभी-कभी च्युत हो जाता है। और अत्यधिक पतले दस्त आने लगते हैं। रोगी कुछ पीडा का भी अनुभव करता है। दुर्वलता भी आ जाती है। इसकी एक साधारण पहचान यह है कि रोगी को चित्त लिटा कर उसके दोनो स्तनचूंचको से नाभि की दूरी नापें। यदि दोनो ओर से दूरी मे अन्तर पडे तो नालभ्रंश समझिये।

चिकित्सा —

रोगी दोनो पैर फैलाकर वैठ जाय और दोनो पैर का अंगूठा दोनो हाथ से पकड कर नाक दोनो जानुओ (ठेहुनो) से सात वार सटाये। याद रखें नाक से छूते समय जानु का निचला हिस्सा जमीन से सटा रहे। इसमे थोडा कष्ट होगा पर लाभ अधिक होता है। यहाँ औषधि विशेष लाभ नही करती। पर चाहे तो सर्वातिसार की औषधियाँ दी जा सकती हैं। पथ्या-पथ्य अनुपान सभी सर्वातिसार का ही समझें।

सर्वातिसार :—

याद रखिये, रक्तातिसार की औषधियो एवं पथ्य सभी प्रकार के अतिसारो को कुछ न कुछ लाभ पहुँचाते हैं। गर्भिणी को अहिफेन युक्त औषधि नहीं देना चाहिये। मृतशेखर, काम दुघा, लघुगंगाधर चूर्ण, वकरी का दूध आदि दें। नाभि के चारो ओर आँवले के कल्क का आलवाल (घेरा) वना कर उसमे आर्द्रक स्वरस भर देने से तीन घण्टे मे प्रत्येक अतिसार आराम हो जाता है।

उपद्रव :—

शोथ, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, अरोचक, वमन, हिक्का, मूर्च्छा अतिसार के उपद्रव हैं। इनसे युक्त रोगी नही वचता।

असाध्यलक्षण :—

स्तम्भ (जकडन), कम्पन, पेट फूलना और शीताग ये लक्षण अतिसार के साथ हो तो मारक होते हैं।

पकी हुई जामुन और यकृत के टुकडे के समान रंग का (काला लाल) चितकवरा, काला, नीला, गुलाबी, चमकदार काला रंग से युक्त, घी, तेल, मज्जा, दूध-दही, मास-धोवन, मस्तिष्क की चरबी के समान, शवगन्धी, दुर्गन्धित, अत्यन्त सडा हुआ मल से युक्त अतिसार असाध्य होता है।

उपर्युक्त उपद्रवो के अतिरिक्त बदहोशी, प्रलाप और पार्श्व शूल इन लक्षणो से युक्त अतिसार का रोगी भी नही बचता।

गुदा शिथिल हो जाय (सकुचित न हो सके) या अतिसार के कारण पक जाय तो भी अतिसार मार डालता है।

साध्य लक्षण :—

उपद्रव रहित, दीप्ताग्नि और शरीर का साधारण ताप ये साध्य लक्षण हैं। इनसे रहित अतिसार यदि बालक या युवा को हो तो साध्य होता है।

अतिसार के अच्छा होने का लक्षण :—

जिसे मूत्र स्वतन्त्र रूप से आये अर्थात् उसके साथ कुछ भी मलोत्सर्जन न हो, अधोवायु भी अलग (मलरहित) खुले, दीप्ताग्नि और हलका कोष्ठ हो, उसका अतिसार अच्छा हो गया, ऐसा समझना चाहिये।

गर्भिणी के अतिसार का विवेचन स्त्री रोग मे होगा।

—०—

प्रवाहिका

अहित भोजन करने वाले प्राणी का अत्यन्त बढ़ा हुआ वायु सचित कफ को बहुत प्रवाहण करने पर अल्प मल के साथ नीचे की ओर प्रेरित करता है, इसी को प्रवाहिका कहते हैं। लोक में इसी को आँव पडना, मल पडना या पेचिश कहते है। इसमें पेट मे मरोड बहुत उठता है। परिणामत मलत्याग की इच्छा बारम्बार होती है रोगी बारम्बार मलत्याग करने भी जाता है पर मल अत्यन्त कम यहाँ तक कि चार छ माशा ही निकलता है। रोगी परेशान हो जाता है। इसके चार भेद होते हैं—

१—वातजा

इसमे शूल या मरोड सर्वाधिक होता है।

२—पित्तजा

पित्तजा में शूल अपेक्षा कृत कम रहेगा पर पेट मे और कभी-कभी गुदा मे दाह अधिक होता है।

३—कफजा

कफजा मे शूल सबसे कम रहेगा पर कफ अपेक्षाकृत अधिक निकलेगा। कफ का मतलब यहाँ आप साम कफ से लगाइये। मल कम ही रहेगा।

४—रक्तजा

रक्तजा मे अत्यन्त शूल के साथ कुछ रक्त भी आमके साथ आ जाता है। प्रवाहिका अति प्रसिद्ध और प्रचलित है इस के सम्बन्ध मे इससे अधिक कहने की आवश्यकता नही।

अतिसार और प्रवाहिका का अन्तर निम्नलिखित है :—

अतिसार	प्रवाहिका
१—प्रवाहण कम मल अधिक निकलता है	प्रवाहण अधिक मल कम निकलता है
२—वात एवं आमातिसार के अतिरिक्त शूल नही होता।	सबमे शूल होता है।
३—रक्तातिसार या शोकातिसार मे रक्त और मल अधिक आता है।	रक्तजा मे रक्त और मल न्यून होता है।
४—आमातिसार के अतिरिक्त आम अनिवार्य नहीं।	सबमे आम आवश्य रहता है।
५—इसमे अनेक प्रकार के मल के साथ-साथ द्रव धातुयें निकलती हैं।	इसमे केवल सन्चित कफ के साथ तनिक मल निकलता है।
६—पहले पाचन तत्पश्चात् ग्राही चिकित्सा होती है।	पहले रेचन, तत्पश्चात् पाचन या ग्राही चिकित्सा होती है।

आमातिसार और प्रवाहिका मे यह अन्तर है—

आमातिसार	प्रवाहिका
१—मल अधिक निकलता है।	मल कम निकलता है।
२—मल त्याग के समय के अतिरिक्त समय मे भी शूल रहता है।	मल त्याग के पूर्व शूल मलत्याग के पश्चात् शूल शान्ति होती है।
३—पूय नहीं रहता।	कभी-कभी पूय आता है।
४—इसमे अपक्व अन्न भी निकलता है।	अपक्व अन्न नही निकलता है।

चिकित्सा :—

प्रारम्भ स कम से कम तीन चार दिन तक ग्राही औषधि न दी जानी चाहिये। बल्कि आम को निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये एरण्ड तेल दो तोला गरम जल के साथ पिलाने से मृदु विरेचन होकर सञ्चित कफ या आव निकल जायेगा। या हर्रा का कल्क छ माशा से लेकर एक तोला तक, एक माशा से लेकर तीन माशा तक पिप्पली चूर्ण मिला कर उष्ण जल से पिला दें। रोगी दुर्बल है तो ईसबगोल की भूँसी छ माशा थोड़ा पानी में भिगोकर कुछ चीनी या मिश्री मिला कर खिलाना चाहिये। मृदु विरेचन से आंव निकलने से बचे हुये आंव को पाचन औषधियो द्वारा पचाना चाहिये।

जिस दिन विरेचन लें केवल उस दिन अहिफेन घटित अथवा अन्य ग्राही औषधि न लें। मल रोकना अनिवार्य है तो ग्राही औषधि दे सकते हैं।

औषधियाँ :--

सामान्यत ग्राही और पाचन औषधियाँ अतिसार की यहाँ भी दी जाती हैं। पर किसी भी प्रवाहिका मे सौंफ और वेल को न भूलें। इनका प्रयोग स्वतन्त्र अथवा अनुपान या पथ्य किसी रूप मे करें। निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा कई का मिश्रण प्रयोग करें—

प्रारम्भिक अवस्था मे तीन चार दिन तक

वृ० गङ्गाधर चूर्ण ३ माशा या कनक सुन्दर रस दो रत्ती या रामवाण रस २ रत्ती या सिद्ध गान्धार रस २ रत्ती या हिङ्गुलेश्वर रस २ रत्ती की मात्रा मे सौफ और वेल के चूर्ण तथा मधु मे न्यूनतम चार वार दें।

तीन चार दिन के वाद निम्नलिखित औषधियो मे से कोई एक या कई का मिश्रण आवश्यकतानुसार दें :—

अगस्त सूत राज एक रत्ती, सिद्ध गान्धार एक रत्ती, शंखोदर एक रत्ती, अहिफेनादि वटी १ रत्ती, जातिफलादि वटी २ रत्ती, राल चूर्ण ४ रत्ती, से एक माशा को निम्नलिखित अनुपान मे दें। वेल सौंफ का चूर्ण, मण्ड, तक्र, सौंफ का स्वरस, अनार का स्वरस। राल को साधारण औषध न समझिये यह वहुत ही उत्तम काम करता है, वाजार से लाकर चूर्ण वना लें।

यदि रोगी भोजन करता हो तो भोजनोत्तर कुटजारिष्ट एक तोले की मात्रा से पिला दें।

तीन चार दिन के वाद प्रवाहिका मे केवल हिंग्वष्टक चूर्ण दो तीन माशा की मात्रा से उष्ण घृत के साथ कम से कम चार वार देने से वडा लाभ होता है। भोजन ग्रहण करने वाले रोगी को दो माशा दोनो वार के भोजन के वाद एव दो माशा प्रात सायं दें। अन्य औषधियो का प्रयोग करते हुए भी भोजनोत्तर या अन्य समय मे इसे दे सकते हैं।

केवल वृहत् शतपुष्पादि चूर्ण दो तीन माशा की मात्रा से खौला कर ठण्ढा किये हुए जल मे चार पाच वार देने से भी वडा लाभ होता है। इसके वनाने का विधान यह है :-

सौंफ कच्ची, सौफ भुनी, सोठ भुनी, प्रत्येक चार भाग छोटी हर्रे भुनी एक भाग व विना भुनी हर्रे एक भाग चूर्ण कर लें सवके वरावर देशी चीनी मिला लें चूर्ण तैयार है। इसके अभाव मे केवल कच्ची और भुनी सौफ सम भाग एवं देशी चीनी दोनो के वरावर लेकर शतपुष्पादि चूर्ण वना लें।

निम्नलिखित वत्सकादि क्वाथ भी वडा काम करता है। कुड़ेया की छाल, अतीस,

बेल की गुद्दी, सुगन्ध वाला, नागरमोथा। यह आम शूल एवं रक्त से युक्त पुराने अतिसार को भी दूर करता है। चार दिन के बाद वाले अतिसार में ही इसका प्रयोग करें।

किसी प्रकार रक्त आना बन्द न हो तो अतिसार में वर्णित पिच्छा बस्ति का प्रयोग करें।

पथ्य :—प्रारम्भ के दो तीन दिन लंघन करा दें। लंघन न कर सकने वाले अथवा लंघन समाप्त करने वाले रोगी को मण्ड-भात, तक्र-भात, पकी पेठे की तरकारी-भात में से यथोचित दें। बेल का मुरब्बा और मीठा अनार भी दे सकते हैं। मूंग-भात, दही-भात, मलाई युक्त दही तीन भाग एवं मधु एक भाग संयुक्त कर के दिन में एक बार दें। याद रखिये जिस दिन लंघन तोड़ रहे हैं उस दिन दही न दें तो उत्तम है। यदि दिन में निश्चारक (मरोड़) हो रहा है तो दही ३ भाग मधु १ भाग का भोजन अनुकूल है। पर खांसी जुकाम रोगी को न हो तभी इसे देना उचित होगा। भोजनों में भुना जीरा, सोंठ, सौंफ का यथोचित प्रयोग कर लें तो उत्तम है। खाना नमक भी कुछ न कुछ रहना चाहिए। मधुर पदार्थों में काला नमक न मिलायें। पित्त प्रकोप एवं रक्त निकलने की अवस्था में सोंठ का परित्याग कर दें।

यह याद रखिये, अत्यधिक वेग वाले अतिसार या प्रवाहिका में बारम्बार अर्थात् प्रति २–३ घण्टे पर भी औषधि दी जाती है। यदि औषधि में अहिफेन हो तो कभी-कभी उसके अधिक प्रयोग हो जाने के कारण रोगी को अत्यन्त सुस्ती या तन्द्रा हो जाती है। तन्द्रा या बेहोशी से घबड़ाये नहीं। आर्द्रक रस और हींग का व्यवहार करें। अहिफेन का प्रभाव जाता रहेगा। अनार रस में मिर्च मिला कर दें। रस सिन्दूर या ऐसी ही अन्य हृद्य औषधि भी यथोचित मात्रा में दें तो उत्तम हो। मुक्ता स्वर्ण आदि हृद्य हैं।

गर्भिणी की प्रवाहिका का वर्णन स्त्री रोग में होगा।

प्रवाहिका को भोज ने विस्रसी, पाराशर ने अन्तर्गन्थि और हारीत ने निश्चारक कहा है।

—०—

नवम अध्याय

ज्वरातिसार

ज्वर और अतिसार सयुक्त रहने पर ज्वरातिसार की संज्ञा हो जाती है। यद्यपि परस्पर बहुत से रोग मिले हुए मिलते हैं पर उनके मिश्रित रूप की सज्ञा अलग नहीं होती। ज्वरातिसार की संज्ञा अलग रखने का यह कारण है कि दोनो की चिकित्सा परस्पर विरुद्ध है और दोनो सर्वाधिक प्रचलित हैं साधारणत. ज्वर मे लघन, पाचन और रेचन किया जाता है तो अतिसार मे साधारणत लघन, पाचन और ग्राही क्रम होता है। कतिपय अन्य व्याधियो यथा शोथातिसार की परस्पर विरोधी चिकित्सा होने पर भी उनके सम्मिलित रूप की अलग-अलग संज्ञा नही दी गयी। इसका कारण यह है कि उनके आश्रय भिन्न हैं और भी कई कारण हैं पर ज्वर और अतिसार का मूल आश्रय एक ही अर्थात् आमाशय है।

चिकित्सा —

ज्वरातिसार मे रेचन या ग्राही क्रम नही करना चाहिए। पाचन और शमन उपचार ही यहाँ लाभदायी होता है। सबल रोगी मे लघन चल सके तो बहुत ही उत्तम है।

सामज्वरातिसार मे सुप्रसिद्ध आनन्द भैरव २ रत्ती की मात्रा से इन्द्र जौ के क्वाथ या स्वरस से चार बार देने से बहुत लाभ करता है।

सिद्ध प्राणेश्वर दो रत्ती भी ऐसी ही अवस्था मे लाभदायी होता है।

आध्मानयुक्त ज्वरातिसार मे सूत राज या कनकसुन्दर उत्तम काम करता है। आनन्दभैरव को भूना जीरा चूर्ण युक्त इन्द्र जौ के क्वाथ मे देने पर भी लाभ होता है।

यदि प्रवाहिका के साथ ज्वरातिसार हो तो शंखोदर २ रत्ती अगस्ति सूतराज एक रत्ती या कुटजादि वटी दो रत्ती मे से किसी एक का व्यवहार करें।

ज्वरातिसार की किसी भी अवस्था में आनन्द भैरव, रामबाण और कुटजादि वटी निरापद और हितकारी है। इनमें से किसी एक का अथवा अनेक का मिश्रित उपयोग

हो सकता है। इन्द्र जौ के अनुपान को किसी अवस्था में न भूलें। चाहे इसे स्वतन्त्र रूप से या अन्य अनुपान में मिलाकर या किसी औषधि के अनुपान स्वरूप व्यवहार करें। लाभ ही करेगा।

पथ्य—

मण्ड, मूंग या मसूर का यूष, पुराना अथवा चावल का भात, गूलर, केला, परवल की तरकारी, बकरी का दूध, अनार, भूना या पका बेल पथ्य है। पीने के लिये उबाला किया हुआ जल देना चाहिये।

सावधान—

निर्बल रोगी में लंघन न करायें। उसे लघु पथ्य देते रहें।

—।•।—

ग्रहणी

यकृत

आमाशय

पाचक पित्त प्रणाली

ग्रहणी

दशम अध्याय

ग्रहणी विकार

आमाशय एवं पक्वाशय के मध्य मे स्थित पित्त को धारण करनेवाली एक नलिका है। यह आमाशय मे पाक हुए (संघात युक्त अर्थात् ठोम आहार के कण-कण टूट कर द्रव स्वरूप हो जाने पर क्षुद्रान्त्र मे जाने योग्य) भोजन को नीचे अर्थात् क्षुद्रान्त्र मे जाने देती है और अपक्व (क्षुद्रान्त्र मे जाने के लिये अयोग्य) भोजन को रोक देती है। इस प्रकार अन्न को अर्गला के समान ग्रहण करने (रोक देने) के कारण इस नलिका का नाम ग्रहणी है। यह क्षुद्रान्त्र का ही ऊपरी भाग है जो आमाशय के अधोद्वार अर्थात् मुद्रिका द्वार से सटा रहता है। इसी के रोग या विकार को ग्रहणी रोग या ग्रहणी विकार कहते है।

प्राय. अतिसार के अच्छा हो जाने पर अहित भोजन करने से मन्दाग्नि वाले पुरुष की दूषित अग्नि ग्रहणी को दूषित कर देती है। (विना अतिसार के भी कभी-कभी ग्रहणी विकार हो सकता है।) इसमे प्राय. कच्चा भोजन ही निकलता है। कभी पक्व मल निकलता है, कभी पीडा के साथ, कभी विना पीडा के, कभी पचा कभी द्रव और कभी गाढा मल निकलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसमे मल सर्वथा अनियमित रहता है। इस रोग का दौरा भी होता है। अर्थात् १५-२० दिन या २-१ मास अथवा चार-छ मास रोगी स्वस्थ रहेगा। फिर जरा-सा अपथ्य हो जाने पर रोग का प्रकोप हो जायगा। रोगी दुर्वल हो जायेगा। यो तो पृथक पृथक तीनो दोषो से इसके उत्पन्न होने का उल्लेख है। परन्तु वहुधा वात प्रधान होता है। जिसमे मल क्रिया की अनियमितता के अतिरिक्त आध्मान (पेट फूलना) भी होता है। हृदय, पसलियो और वक्षणो (ऊरु एव पेड़ू की सन्धि) मे पीडा, सुस्ती, प्यास, भूख, सभी रसो को खाने की इच्छा आदि लक्षण होते है। किसी-किसी (हजारो मे एक रोगी) को वारम्वार विसूचिका (हैजा) भी होता है। शरीर स्वस्थावस्था की अपेक्षा काला पड जाता है। रोगी को वातगुल्म, हृद्रोग एवं प्लीहा वृद्धि की शका होती है। पित्त प्रधान मे खट्टी डकार, हृदय-कण्ठ मे दाह, अरुचि और प्यास होती है। पुरीष नीला-पीला होता है।

कफ प्रधान मे मीठी डकार, मुख मे मधुरता एवं लेप, थुकथुकी, जुकाम, जी मचलाना, छर्दि, अरुचि एवं कास होता है। मल पतला, कफ से युक्त और जल मे डूबने वाला आता है। विना कृशता के रोगी को आलस्य एवं दुर्बलता प्रतीत होती है।

ग्रहणी विकार के उत्तरार्ध काल के अन्तिम भाग मे रोगी को बारम्बार मुखपाक हो जाया करता है। जो रोग की कष्टसाध्यता का द्योतक है।

आज कल के चिकित्सक प्रवाहिका को डिसेन्टरी कहते हैं। जो हमारे विचार से दूष्यन्त्री या दूष्यन्तरी शब्द का अपभ्रंश है जिसमे आते दूषित हो जाती हैं। या उसमे ग्रहणी यन्त्र के बिगड जाने से अन्न का दूषित प्रवेश होने लगता है। जो ग्रहणी रोग का मुख्य व्यञ्जन (लक्षण) है।

ग्रहणी विकार मे दोष और मल की सामता और निरामता (कच्चापन और पक्कापन) अतिसार के समान समझना चाहिये। साध्यासाध्य लक्षण और उपद्रव भी अतिसार के समान ही है। यह भी स्पष्ट समझिये कि ग्रहणी विकार बालक मे साध्य, युवक मे कष्ट साध्य, वृद्ध (६० वर्ष के ऊपर) मे असाध्य होता है।

अतिसार	ग्रहणी रोग
१—यह प्राय प्रारम्भ मे होता है। इनमे समस्त शरीर की क्षुब्ध जल धातुएं मुख्य कारण है।	यह प्राय. अतिसार निवृत्त हो जाने पर होता है इसमे अग्निमान्द्य से ग्रहणी दूषित होना मुख्य कारण होता है।
२—तात्कालिक होता है।	चिरकालीन होता है।
३—रोगावस्था मे प्राय. एक-सा मल आता है।	विभिन्न प्रकार का मल कभी द्रव कभी बँधा आता है।
४—इसका वेग नही होता।	बारम्बार वेग होता है।
५—इसमे सामान्यत. निषेध न होने पर भी पर्पटी का व्यवहार नही होता। पर्पटी कल्प तो नही ही होता।	सामान्यत. पर्पटी का व्यवहार होता है उसमे भी प्राय: पर्पटी कल्प होता है।

ग्रहणी रोग का विकृत रूप ही संग्रहणी और घटी यन्त्र के नाम से उल्लिखित है। संग्रहणी में ग्रहणी के सब लक्षण मिलते है। आम और वात विशेष रहता है। दिन में प्रकोप रात मे शान्त रहता है। घटी यन्त्र असाध्य होता है। इसमें लेटते समय पार्श्व मे शूल होता हैं। लेटते समय तथा मलत्याग के समय पेट में जल मे डूबते हुए अथवा जल गिरते हुए घडे के समान शब्द होता है। इसी से इसे घटी यन्त्र कहते हैं।

चिकित्सा—

यह समझ लीजिये कि इसमे प्रमुख कर्त्तव्य आम को पचाना और अग्नि को दीप्त करना है। समस्त चिकित्सा क्रम इसी दृष्टिकोण से होगा। ग्रहणी मे स्थित दोष का

उपचार अजीर्ण के समान अर्थात पाचन दीपन औषधि द्वारा और यदि सम्भव हो तो वमन विरेचन द्वारा करना चाहिये। उसके आम को अतिसार के विधान अर्थात् लंघन और पाचन क्रम से नष्ट करना चाहिये। यदि रोगी दुर्बल न हो तो पहले मैनफल क्वाथ से वमन करा कर एरण्ड तैल से विरेचन करा देने से शीघ्र लाभ होता है। जहाँ यह संभव नहीं वहाँ पहले बलानुसार लंघन करायें। लघन भी सम्भव न हो तो पथ्य मे वर्णित लघु पथ्य दे। जिस समय अतिसार का वेग हो उस समय तो भले ही ग्राही औषधि देकर बाद मे पाचन करे, पर वेग का समय न हो तो सर्वदा पाचन क्रम पर ध्यान दें। यह याद रखिये। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर) और पंचकोल (पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रा, सोंठ) उत्तम पाचक औषधियां हैं। इनका उपयोग किसी न किसी प्रकार अवश्य करे। वातानुलोमन के लिये जीरा का प्रयोग भी अनिवार्य है। यदि उदर में पीडा हो तो उसे शान्त करने के लिये अहिफेन युक्त औषधि न दें। भागयुक्त औषधि दी जा सकती है। भांग आम पाचक, अग्नि दीपक एव पीडा शामक है। हां यहां पर अफीम आदि का लेप पीडा के लिये हो सकता है। रोगी के लिये शारीरिक एवं मानसिक विश्राम आवश्यक है। चिकित्सा एवं पथ्य दीर्घकालीन यहा तक कि ५-६ मास या वर्ष भर होना चाहिये। ग्रहणी विकार को स्थायी रूप से दूर करने के लिये आगे वर्णित पर्पटी कल्प सर्व श्रेष्ठ उपाय है। वह सम्भव हो या न हो तो भी निम्नलिखित औषधियों मे से किसी एक का प्रयोग चार छ मास तक सर्वदा (वेग या अतिसार काल को छोड कर) प्रतिदिन चार बार करें—

हिग्वंष्टक चूर्ण दो माशा घृत या तक्र से वात प्रधान मे।

हिग्वादि चूर्ण (भै० र० अतिसार) दो माशा घृत या तक्र से वात प्रधान मे।

यवानी खाण्डव चूर्ण दो माशा अनार स्वरस या शीतल जल से पित्त प्रधान मे।

दाडिमाष्टक चूर्ण दो माशा अनार स्वरस या शीतल जल से पित्त प्रधान मे।

चित्रकादि वटी ४ रत्ती आर्द्रक स्वरस से कफ प्रधान मे।

कपित्थाष्टक चूर्ण २ माशा उष्ण जल से नये ग्रहणी विकार मे।

रामबाण एक रत्ती या महागन्धक दो रत्ती अनुपान दोषानुसार।

किसी भी औषधि के सेवन काल मे भोजनोत्तर तक्रारिष्ट दो या चार तोले की मात्रा से अभाव में सोंठ एव चित्रा के चूर्ण से युक्त तक्र न्यूनतम पाव भर अधिकतम आधा सेर पीयें।

अतिसार काल मे दोषानुसार नीचे लिखी औषधियों मे से किसी एक का अथवा कई के मिश्रण का प्रयोग दोष प्रकोप के अनुसार करें —

वात प्रधान ग्रहणी विकार मे

ग्रहणी कपाट रस एक रत्ती (अहिफेन युक्त) मधु से।

अगस्ति सूतराज एक रत्ती, जीरा चूर्ण जाती फलघृष्ट से।

जातिफलादि चूर्ण ४ रत्ती (भांग युक्त), कुडैया क्वाथ से ।
लाई चूर्ण चार रत्ती (भांग युक्त , कुडैया कवाथ से ।
कनक सुन्दर दो रत्ती (भांग युक्त), क्रत क्वाथ से ।
अग्नितुण्डी आधा रत्ती, जीरा मधु से शूल मे विशेष हितकर ।

गर्भवती स्त्री हो तो जातिफलादि चूर्ण चार रत्ती की मात्रा से तीन बार बकरी के दूध से दें। इस चूर्ण मे भांग है। साधारणत इसे गर्भवती स्त्रियाँ जिन्हे भांग सह्य है, सहन कर लेती है। यदि न सहन कर सकें तो हेमगर्भ पोटली रस एक रत्ती की मात्रा से अथवा केवल महागन्धक ३ रत्ती की मात्रा से जीरा मधु से दें।

प्रसूता स्त्री हो तो लक्ष्मी नारायण रस, पचामृत पर्पटी १ या दो रत्ती, प्रताप-लंकेश्वर १ रत्ती मे से किसी एक का प्रयोग करें। भोजनोत्तर दशमूलारिष्ट एक तोला या जीराकाद्यरिष्ट एक तोला का प्रयोग भी करें।

गर्भवती स्त्री को छोडकर शेष वातजग्रहणी विकार के रोगियो को जलपानार्थ बृहन्मेथीमोदक आधा तोला से लेकर एक तोला तक घी मधु से या मेथी मोदक आधा तोला एक तोला घी मधु से प्रात सायं जलपानार्थ दिया जा सकता है। प्रात. औषधि भक्षण के आधा घण्टा बाद एवं सायं औषधि भक्षण के एक घण्टा पूर्व जलपान ठीक होता है।

पित्त प्रधान ग्रहणी विकार मे

गहणी कपाट रस एक रत्ती, तक्र से
लाई चूर्ण चार रत्ती, अनार रस से
हेमगर्भ पोटली एक रत्ती, निम्बचूर्ण एवं घृत मधु से
पंचामृत पर्पटी दो रत्ती, जीरक मधु से
स्वर्ण पर्पटी एक रत्ती, ,, ,, से
लौह पर्पटी एक रत्ती, ,, , से
नागराद्य चूर्ण (कुटकी रहित) १ माशा, जीरक मधु ।

प्रवल दाह हो तो मुक्ता पिष्टी या प्रवाल पिष्टी किसी भी औषधि मे मिला सकते हैं, अनार, मौसम्मी, सेव, गुरुच, ये भी दाह को शान्त करते हैं। अम्ल-पित्त और शूल भी हो तो सूत शेखर दे दें। जलपानार्थ जीरकादि मोदक, आधा तोला शीतल जल से प्रयुक्त हो सकता है।

श्लेष्मज ग्रहणी विकार में

अगस्ति सूतराज एक रत्ती, मधु से
लाई चूर्ण ४ रत्ती, सुण्ठी मधु से
सूतराज । एक रत्ती, ,, ,, से
रामवाण दो रत्ती, आर्द्रक स्वरस मे

आनन्द भैरव एक रत्ती कुडैया की छाल या इन्द्र जौ से ।
क्रव्याद रस एक रत्ती, सैन्धव युक्त तक्र से ।
चित्रकादि वटी चार रत्ती, सैन्धव युक्त तक्र से ।
जातिफलादि चूर्ण (भग युक्त) १ माशा, मधु से ।

जलपानार्थ कल्याण गुड एक तोला प्रात. सायं दे सकते हैं । अग्नि कुमार मोदक ३ माशा बकरी के दूध या शीतल जलमे भी दिया जा सकता है ।

अर्शज ग्रहणी विकार बडा कठिन होता है । जब तक अर्श (ववासीर) न ठीक हो तब तक इसका ठीक होना कठिन है । पूरा प्रयत्न पहले अर्श नष्ट करने का करें । अर्श मे कोष्ठबद्धता एवं ग्रहणी विकार मे अतिसार होने से चिकित्सा मे कठिनाई पडती है । अतिसारावस्था मे दोषानुसार कोई ग्राही औषधि देकर लाभ पहुँचाये । तत्पश्चात् चित्रकादि वटी और तक्रारिष्ट का प्रयोग करायें । इसमे आगे वर्णित पर्पटी कल्प तक्र से अत्युत्तम लाभ करता है ।

सान्निपातिक ग्रहणी या सग्रहणी या घटी यत्र मे वज्र कपाट रस दो रत्ती अभाव मे ग्रहणी शार्दूल रस चार रत्ती स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी योग में मिला कर देना न भूले ।

पर्पटी

पर्पटी का प्रयोग ग्रहणी विकार मे दो प्रकार होता है—

१–खुली पर्पटी—

इसके सेवन के समय अन्न एवं जल आदि रोग के पथ्यानुसार दिया जाता है । सुकुमार, स्त्री, बालक, निर्धन, साधन-हीन अनात्मवान् लोगो के लिये यही ठीक है । किसी परिस्थिति वश यदि बन्द पर्पटी का प्रयोग न कराया जा सके तो इससे काम चलाना चाहिये । निस्सन्देह यह बद पर्पटी से कम लाभ करती है । यह साधारण औषधि के समान प्रात., दोपहर, सायं, रात को या आवश्यकतानुसार दो बार आवश्यक मात्रा मे दी जाती है । पर्पटी एव दुग्ध आदि की मात्रा क्रमश बढाने की इसमे आवश्यकता नही । इसके संबंध मे इससे अधिक निवेदनीय नही है ।

२–बन्दपर्पटी—

इसमे निर्धारित एक पथ्य तक्र, दुग्ध, दही, खरबूजा या आम आदि के अतिरिक्त अन्य पथ्य या जल नही दिया जाता । इसी लिये इसे बन्द पर्पटी कहते हैं । आत्मवान साधन सम्पन्न रोगियो के लिये यह सर्वश्रेष्ठ ग्रहणी रोग नाशक उपचार है । जीर्ण ज्वर हृद्रोग, यक्ष्मा, कास, श्वास, प्रमेह, नपुन्सकता, निर्बलता, शोथ, आदि में भी लाभदायी है । इसमे पर्पटी एव निर्धारित पथ्य की मात्रा क्रमश. बढाई और घटाई जाती है । पथ्य के व्यतिक्रम होने या जल एवं लवण लेने पर अनर्थ हो जाता है । इसलिये इसमे

बडी सतर्कता एवं सावधानी की आवश्यकता होती है। पर्पटी ठीक से उतर जाने (यथा विधि क्रम पूर्ण हो जाने) पर स्थायी रूप से रोग नष्ट होने के साथ ही बल, वीर्य, वर्ण ओज, धातु, आदि की वृद्धि होती है तथा अन्य रोग भी शीघ्र पीडित नही करते। इसे वन्द पर्पटी कल्प भी कहते है। निस्सन्देह आयुर्वेद का यह विशिष्ट चमत्कार है।

विभिन्न पर्पटियाँ—

सामान्यत. पञ्चामृत पर्पटी का प्रयोग अधिक होता है। शोथ, यकृद्-प्लीहा के विकार, गुल्म रक्ताल्पता, आदि मे युक्त ग्रहणी रोग मे यही हितकारी होती है। यह प्रत्येक अवस्था मे दी जा सकती है। सुवर्ण पर्पटी हृद्रोग और दौर्बल्य से युक्त ग्रहणी रोग मे हितकर है। तक्र का पथ्य देने से यहाँ दुर्बलता विशेष वढती है इसलिये वहाँ भी इसका प्रयोग हितकारी है। यह सग्रहणी मे विशेष हितकारी है। रस पर्पटी प्रारम्भिक ग्रहणी विकार मे दो जा सकती है। रोग वढने पर विशेष लाभप्रद नहीं। पञ्चामृत पर्पटी का प्रयोग जहाँ हो सकता है वहाँ लौहपर्पटी भी प्रयुक्त हो सकती है। अर्शज ग्रहणी-विकार वडा कठिन होता है। वहाँ विजय पर्पटी लाभप्रद होती है।

पर्पटी कल्प का पथ्य—

सामान्यत गोदुग्ध[1] पर पर्पटी कल्प का प्रयोग अधिक होता है। इसलिये कि यह वलवर्धक भी होता है। पर जहा पर अग्निमान्द्य अधिक हो, पाचनशक्ति अत्यन्त क्षीण हो, उदर मे वायु विकार हो अथवा क्रिमि हो या ववासीर हो, दूध से स्वाभाविक अरुचि हो वहाँ दुग्ध का प्रयोग नही होना चाहिये। वहाँ तक्र ही हितकारी है। ऐसी अवस्था मे शक्ति वढाते रहने के दृष्टिकोण मे सुवर्ण पर्पटी का प्रयोग हितकारी होता है। स्त्रियो मे तक्र विशेष अनुकूल पडता है। कभी-कभी एक पथ्य के अनुकूल न होने पर दूसरा पथ्य बदल कर देने से वडा लाभ होता है। पर ऐसी स्थिति कम ही आती है। कम से-कम पाँच दिन धैर्यपूर्वक प्रयोग कर देख लें कि पथ्य अनुकूल पड रहा है या नही। दूध को उबाल आने तक खौलाकर ही देना चाहिये। अधिक पका या विलकुल कच्चा दूध अहितकर होता है। दूध या तक्र गाय या वकरी का ही होना चाहिये। दही मे चौगुना जल मिलाकर मथ कर तक्र निकालें। उसका घी या मक्खन रोगी को नही देना चाहिये। ग्रहणी के रोगी मे मलाई रहित उत्तम दही (गाय का दही) भी पथ्य रूप मे चलता है। यक्ष्मा मे पर्पटी कल्प आम और गोदुग्ध पर चलाना उत्तम होता है। यहाँ पाल का आम मीठा रसदार ही लेना चाहिये। सुन्दर, लंगडा, वम्बई या मालदह, सीपिया, दशहरी, सफेदा, आदि कलमी आम हानिकारक होते हैं। आम का गारा

१, शोथ युक्त ग्रहणी विकार में गोदुग्ध ही देना चाहिए, यदि मल के साथ या स्वतन्त्र रूप से मल मार्ग से रक्त आ रहा हो तो वकरी का दूध विशेष हितकर है। वकरी का दूध अधिक मिलना सम्भव न हो तो जितना मिले उतना ही प्रयोग करें। शेष आवश्यकता गो दुग्ध से पूरी करे।

पर्पटी कल्प में यदि दूध चल रहा हो और प्यास से रोगी परेशान हो, तो दूध का अर्क निकाल कर पिलाये। फटे दूध का पानी उससे कम अहित कर है। पर अभाव में उसका प्रयोग हो सकता है।

हुआ रस पिला कर ऊपर से दूध पिला दें अथवा आम चूस कर ऊपर से दूध पी लें। एक बार में ५-६ आम से अधिक नहीं ग्रहण करना चाहिये। खरबूजे के दिन हो तो केवल खरबूजे पर ही पर्पटी कल्प चल सकता है। पका मीठा खरबूजा अच्छा होता है। खरबूजा छील कर उसके छोटे-छोटे टुकडे या उनका रस दिया जाता है। एक बार मे पाव भर से अधिक टुकडो का प्रयोग न करें। कुछ लोग आम की भांति खरबूजे पर भी दूध का प्रयोग करते हैं।

यह स्मरणीय है कि दूध, दही, खरबूजा, आम या मट्ठा, आदि मे चीनी या अन्य मीठा नहीं मिलाना चाहिये। नमक का प्रयोग भी अहितकर है। यदि काम न चले, लाचारी हो तो पहले मुंह मे चीनी या मिश्री कुछ रखकर ऊपर से दूध या अन्य पथ्य ग्रहण करें। इसी प्रकार मुंह मे कुछ सेंधा नमक रखकर ऊपर से तक्र पी सकते हैं। तक्र में भुना जीरा और सोंठ का या इनमे से एक का चूर्ण किसी भी अवस्था मे मिला सकते है। अधिक अग्निमान्द्य और क्रिमी-विकार हो तो मीठा एवं शोथ हो तो नमक का व्यवहार सर्वथा न करें।

किसी भी ऋतु मे पर्पटी कल्प कराया जा सकता है पर यह सामान्य अवस्था मे शीत ऋतु एव वर्षा ऋतु मे कराया जाता है। ग्रीष्म ऋतु मे पर्पटी कल्प चलाने से प्यास के कारण कुछ अधिक कष्ट होता है। यद्यपि परिस्थितिवश तक्र, दूध, आम खरबूजा या दही दिया जाता है, पर यह स्मरणीय है कि तक्र पर पर्पटी कल्प चलाने से प्यास कम लगती है।

पर्पटी कल्प के योग्य और अयोग्य :—सामान्यत ३५ वर्ष से लेकर ५० वर्ष तक के लोगो मे यह कल्प विशिष्ट काम करता है। ६० वर्ष की आयु के ऊपर विशेष लाभ नही करता। पैंतीस वर्ष के पूर्व प्रकृति प्रदत्त शक्ति बनती रहती है। इस लिये उसमें अनावश्यक छेड़छाड़ करना उचित नही। इस लिये पथ्य कर्म या कोई कल्प वहाँ न किया जाय तो अच्छा है क्योंकि इसकी शक्ति मानव प्रदत्त है। परन्तु यक्ष्मा, हृद्रोग, ग्रहणी-विकार या अन्य पर्पटी कल्प साध्य विकार हो ही जाय तो लाचारीवश इनका प्रयोग इस अवस्था मे करना ही चाहिये।

जिसके पास पथ्य औषधि की सुविधा हो, आयु अनुकूल हो, इस कल्प के लिये पर्याप्त समय हो, शरीर या बल अत्यन्त ध्वस्त न हो गया हो, जो धैर्य शाली हो, अनात्मवान एवं चञ्चल मन वाले न हो, वैद्य मे श्रद्धालु हो ऐसे लोगोमे ही पर्पटी कल्प कराना चाहिये।

विधान :—

यहाँ हम पहले दूध पर चलाये गये पर्पटी कल्प का विधान बतायेंगे। तत्पश्चात् तक्र, दही, आम, खरबूजा, आदि पर किये गये पर्पटी कल्प का विचार होगा। शास्त्र में कई कल्पो एवं औषधियो के लिये एक मण्डल काल का समय बताया गया है। मण्डल का

अर्थ चालिस दिन लगाया जाता है। शास्त्र मे इसका अर्थ अडतालिस[1] दिन बताया गया है। पर व्यवहार मे अडतालिस दिन की मर्यादा पालनीय नही है। वहाँ मर्यादा पर्पटी की अनुकूलता और पथ्य के पचाने की स्थिति पर निर्भर है। कभी-कभी मर्यादा तीन ही मे समाप्त हो जाती है तो कभी वह साठ ७ दिन तक चल जाती है। इसी प्रकार शास्त्र मे प्रति-दिन एक-एक रत्ती बढाते हुए बारहवें दिन १२ रत्ती तत्पश्चात् एक-एक रत्ती घटाते हुए चौवीसवें दिन १ रत्ती देकर पर्पटी बन्द कर देने का विधान बताया गया है, पर व्यवहार मे यह बात नही। वहाँ वर्द्धन क्रम प्रतिदिन चलना अनिवार्य नही है। कभी-कभी दो-दो दिन तक एकही मात्रा चलाई जाती है। वस्तुत. मात्रा भी यहाँ पर्पटी कल्प की अनुकूलता पर निर्भर है। पर्पटी कल्प का व्यवहारिक विधान यह है :—

यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल न हो और वमन विरेचन के अनुसार हो तो उसे साधारण पूर्वोक्त स्नेहन कराने के बाद वमन विधानोक्त साधारण औषधि मैनफल के काढे से वमन करा कर एरण्ड तैल[2] दूध मे पिला कर विरेचन करा देनाचाहिये। यदि वमन विरेचन करानेकी स्थिति न हो तो सहने योग्य लघन[3] (उपवास) करा देना अच्छा होता है।

बिना वमन, विरेचन अथवा लंघन कराये भी पर्पटी कल्प चलता है पर इसमें प्रारम्भ से ही कम सिद्धि मिलती है। कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर सिद्धि यथाक्रम मिलती है।

प्रथम रोगी को एक रत्ती पर्पटी दो तोला शुद्ध गोदुग्ध के अनुपान से प्रात.काल खिला दें। उसके पश्चात् अधिकतम ४-५ छोटा-छोटा टुकडा की हुई सोपाडी रोगी चबायें। यदि दाँत दुर्बल हो तो २-३ दिन पानी मे भीगी हुई अथवा उसी दिन उबाली या पिसी हुई सोपाडी खानी चाहिए। जब प्यास लगे या भूख लगे तब अधिकतम आधा पाव तक गोदुग्ध पीना चाहिये। इस प्रकार प्रथम दिन पाव भर या आधा[4] सेर तक गोदुग्ध पिला दें। यह स्मरणीय है कि यह बन्द पर्पटी का विधान है इसमे कल्प के समय तक्र, दूध या निर्धारित पथ्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ जल, लवण या अन्न आदि देना घातक होगा।

कभी-कभी दूध से पेट मे मल की गाँठे बन जाती है जिससे मल नही निकलता

दूसरे दिन दो रत्ती पर्पटी एक रत्ती प्रात एक रत्ती साय दो तोले दूध के अनुपात से दे। अब सोपाडी खिलाने की आवश्यकता नहीं। प्यास और भूख लगने पर छटाक पानी या आधापाव की मात्रा से गोदुग्ध पिलाते रहे। इसी प्रकार तीसरे दिन तीन रत्ती एक एक रत्ती प्रात. सायं एवं दोपहर दें। चौथे दिन चार रत्ती २ रत्ती प्रात.—२ रत्ती सायं खिलायें। स्वभावत, भूख प्यास बढने के साथ ही दूध की मात्रा भी बढती जायेगी।

---

१ दिवसैर्यत्र तत्रा ऽपि वसुसागरसम्मिते ।
मिषक्क्रियोपयोगाय मडल मिषजामतम् ॥ (राज निघटु सत्वादिवर्ग)

२ इसकी साधारण मात्रा दो तोले की है जिसे आध पाव उष्ण गोदुग्ध में डालकर पिला देते हैं। उपर से और उष्ण दुग्ध आध सेर तक या उष्ण जल पिला देते है ।

३, लघन के विषय में ज्वर प्रकरण में पर्याप्त विचार किया गया है।

४ सेर या डेढ सेर तक दूध भी प्रथम दिन पिला देते है पर धीरे धीरे दूध का बढाना उत्तम है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि दूध की मात्रा नही वढती तो इस प्रकार की मात्रा दो रत्ती, चार रत्ती, छ रत्ती अथवा आठ रत्ती दो-दो, चार-चार, दिन तक चलायी जाती है। फिर दूध वढने लगे तो मात्रा भी वढायी जाती है। फिर पाचवे दिन अथवा जिस दिन दूध वढने लगे उस दिन पाच रत्ती, (प्रात. सायं) पर्पटी खिलायें दूध वढता जाय तो छठवें दिन ६ रत्ती (प्रात दोपहर साय), खिलायें। पुन दूध वढता जाय तो सातवें दिन सात रत्ती (प्रातः, दोपहर, सायं), आठवें दिन ८ रत्ती (प्रात, दोपहर, साय, रात), इसी प्रकार नौवें दिन ९ रत्ती, दसवें दिन दस रत्ती, ग्यारहवें दिन ग्यारह रत्ती, और वारहवें दिन वारह रत्ती पर्पटी खिला दें। जिस दिन दूध न वढे अथवा कोई आपत्ति हो उस दिन मात्रा न वढा कर पूर्ववत् हो रक्खें[1]। दूध वढे तो वढने दें। दूसरे दिन मात्रा वढा दें।

वीच मे जो आपत्ति आये उसका सावधानी और विवेक से निराकरण करते रहे। यो तो आपत्तियो की सीमा नही है। और वैद्य सभी आपत्तियो को हटाने का उत्तरदायित्व भी नही रखता। पर जहाँ तक हो शारीरिक और मानसिक आपत्तियो से रोगी को वचाना चाहिये। मानसिक आपत्तियो को धैर्य, आश्वासन या यथासम्भव इष्ट लाभ से वचायें। शारीरिक आपत्तियो मे जो आपत्ति आये उसका निराकरण इसी पुस्तक या अन्य पुस्तक अथवा अनुभव से दूर करें।

कभी-कभी दूध से पेट मे मल की गाठे वन जाती हैं जिससे मल नहीं निकलता, पेट फूल जाता है, दर्द भी होता है, दूध पीने को इच्छा नही होती। ऐसी अवस्था मे गोदुग्ध के साथ एरण्ड तैल मिला कर विरेचन करा देना चाहिये। याद रखिये। किसी भी स्थिति मे पानी, भोजन या अन्य पदार्थ मुँह के भीतर न जाये। आपत्ति में भी भूख, प्यास लगने पर गोदुग्ध ही दें। सम्यग् विरेचन हो जाने पर सब उपद्रव नष्ट हो जायेंगे। अव दूसरे दिन पुन. मात्रा और दूध वढाते जांय। तेरहवें दिन अथवा जिस दिन वारह रत्ती पर्पटी की दैनिक मात्रा हो जाय उसके दूसरे दिन पर्पटी कम कर दें। दूध भी कुछ कम हो जायेगा। इस प्रकार प्रतिदिन एक एक रत्ती पर्पटी घटती जायेगी। दूध भी घटता

---

1 यदि रोगी दुर्वल आत्मा का है और यह सम्भव हो कि वह वीच में लवण के लिए दुराग्रह करेगा तो रोग नाशक औषधियों के क्वाथ या स्वरस से भावित सेंधा नमक की टिकिया रोगनाशक औषधि के पत्र में लपेट कर पुट पक्व कर ले। उस नमक को प्रारम्भ से ही रत्ती मात्रा में दे सकते हैं। यदि पुटपाक करने का समय न हो और रोगी दुराग्रह कर रहा है तो केवल आगपर सुवह सेंधा नमक का उपयोग भी रत्तीमात्रा में किया जा सकता है। पर प्यास, शूल, और अम्लपित्त और आध्मान आदि के लिए सावधान रहें।

इसी प्रकार दुर्वल आत्मा के रोगी को प्रारम्भ से ही रोग नाशक औषधि से सिद्ध जल या अर्क, सौंफ पुदीना का अर्क, पित्तपापड़ा का अर्क स्वल्प मात्रा में दिया जा सकता है।

याद रखिये उपर्युक्त लवण और जल का प्रयोग शास्त्र विहित नहीं अपितु व्यवहार विहित है।

यदि अनिवार्य हो तो उस मात्रा को भी कम कर सकते हैं पर सर्वथा वन्द न करे। अर्थात् पर्पटी कल्प विच्छिन्न न होने दे।

जायेगा। घटाने के क्रम मे कोई विशेष आपत्ति नही होती। घटाने के क्रम मे बारहवें दिन पर्पटी की एक रत्ती दैनिक मात्रा हो जायेगी। फिर तेरहवें दिन भी दूध पर ही रोगी को रखें। इसी दिन दूध मे सोठ[1] अवश्य पका दें। कम मे कम दो-तीन दिन तक दुग्ध ही दें। औषधि के नाम पर रामबाण एक या दो रत्ती और शंख भस्म चार रत्ती की मात्रा से दो तीन बार भुना जीरा-चूर्ण और मधु से दें। दो तीन दिन बीत जाने पर पाव भर या आधा सेर गरम जल थोडा-थोडा करके कई बार मे पिला दें। इस दिन के बाद परवल का थोडा यूप दें। इसके बाद मूँग का यूप दें। तत्पश्चात् गेहूँ का फुलका और परवल या मूँग का यूप दें। तत्पश्चात् पुराना चावल का भात और मूँग का यूप दें। कहने का तात्पर्य यह है कि धीरे-धीरे क्रमश स्वाभाविक अन्न औरजल पर रोगी को ले जांय। जल्दीबाजी न करें। रामबाणादि औपधि चलती रहेगी।

इस प्रकार स्वाभाविक स्थिति मे आने मे रोगी को साठ दिन लग जाता है। रोगी का स्वाथ्य बडा उत्तम होता है।

यदि दही पर पर्पटी कल्प चलाना हो तो अच्छी प्रकार गाय के दूध की जमी हुई मीठी दही होनी चाहिये। मलाई नहीं देनी चाहिये। इसमे मीठा या नमक आदि कुछ भी नही मिलाना चाहिये। इसे भी थोडा थोडा बढाना चाहिये। पर्पटी दही अथवा मधु से देनी चाहिये।

खरबूजा पर देना हो तो पका मीठा खरबूजा छोटे-छोटे टुकडे के रूप मे देना चाहिये। इसका रस भी थोडा-थोडा पिलाया जा सकता है। बढाने घटाने का क्रम भी धीरे-धीरे क्रमश चलना चाहिये। पर्पटी इसके रस या मधु से देनी चाहिये।

आम पर चलाना हो तो देशी पाल का पका आम होना चाहिये। चाहे उसे चूसें अथवा उसका रस पीयें। केवल आम पर चलायें अथवा साथ मे दूध का प्रयोग करें। इस कल्प मे स्वर्ण पर्पटी विशेष लाभदायी होती है। अभाव मे पंचामृत पर्पटी भी दी जाती है। पर्पटी[2] को सामान्यतः भुना जीरा एवं सोंठ के चूर्ण व मधु के साथ आम खाने के न्यूनतम एक घण्टा पूर्व देते हैं। भूख-प्यास के अनुसार अर्थात् आम व दूध बढने के अनुसार पर्पटी की मात्रा क्रमश बढ़ेगी। भूख-प्यास न बढे, आम व दूध न बढे तब पर्पटी की मात्रा स्थिर कर पुन भूख प्यास बढने पर बढाना चाहिये। कोई आवश्यक नही कि बारहवें दिन ही बारह रत्ती पर्पटी दी जाय। वर्धनक्रम से इसके बाद के किसी दिन भी यह मात्रा पड सकती है। साधारणतया प्रातः सायं आम का

१, पर्पटी चलते समय भी पचने के दृष्टिकोण से कुछ वैद्य दूध में सोंठ पका देते हैं। या मल की गांठे बनने की सम्भावना में मुनक्का पका देते हैं। पैत्तिक गृहणी में सोंठ न पकावें।

२, कुछ लोग स्वर्ण पर्पटी में कपर्दिका भस्म चार रत्ती की मात्रा से मिला देते हैं। कुछ लोग पर्पटी के समय के अतिरिक्त समय में जातिफलादि चूर्ण या लायी चूर्ण का एक एक माशा प्रयोग करते हैं।

प्रयोग होता है। उसके दो घण्टे बाद गोदुग्ध दिया जाता है। दोपहर या अन्य समय में भूख-प्यास लगने पर दूध देना चाहिये। पहले दिन प्रात., सायं दोनो समय मिला कर १०-१२ आम पर्याप्त है। उसके बाद भूख-प्यास बढने के क्रम से आम क्रमशः बढाते जायं। स्वभावत. दूध भी बढता जायेगा।

यह स्मरणीय है कि इस कल्प मे सोठ, जीरा देते रहने से अजीर्ण या आध्मान (पेट फूलना) आदि उपद्रव नहीं होने पाते। आम के अजीर्ण पर ५-७ काली जामुन भी खायी जा सकती है।

ग्रहणी रोग में साधारण पथ्य :—

यदि पर्पटी कल्प न चल रहा हो तो अथवा पर्पटी कल्प के बाद पर्याप्त समय अर्थात् कम से कम दो मास बाद तक आवश्यकता एवं रोगी की इच्छा विचार कर निम्नलिखित पथ्यो मे से किन्ही का प्रयोग करें—

मूँग या मसूर का यूष, पुराना अरवा या साठी चावल का भात या मण्ड, धान के लावा का मण्ड, परवल या कच्चा केला की तरकारी, गाय या बकरी का दूध, दूध का मक्खन, बिना मलाई की दही, मट्ठा, बेल, कैथ, अनार, गूलर, सेव, जामुन खजूर, हिरन, खरगोश, तीतर, लवा, बटेर का मास-रस भांग[1], अफीम, जीरा, सोठ, धनियां, काली मिर्च चित्ता, इन्द्र जौ, ईसब-गोल, सोपाडी। आवश्यकता पडने पर थोडा सेंधा नमक दिया जा सकता है।

शुद्ध जल बिना पका पीने को दें। पर आम एव कफ दोष से युक्त ग्रहणी विकार मे लगातार कुछ दिनो तक गरम करके ठण्ढा जल दें। याद रखें इस अवस्था मे कभी पका और कभी कच्चा जल देना ठीक नही।

यदि सम्भव हो तो सागर तट की वायु का सेवन करें। विश्राम खूब करें।

अपथ्य :—

मिर्चा, मसाला, खट्टा व तीक्ष्ण पदार्थ, अधिक नमकीन पदार्थ, काञ्जी, अजीर्ण, अध्यशन, (भोजन बिना पचे भोजन), आम उत्पन्न करने वाले पदार्थ यथा अरुई-आलू-भिण्डी-मलाई आदि, वेगावरोध (मल मूत्रादि के वेग को रोकना), रात्रिजागरण, शराब, चाय, काफी, अत्यन्त उष्ण भोजन, अनियमित, भोजन, पहाडो जलवायु इत्यादि अपथ्य हैं।

१. जिन्हें इसका अभ्यास हो वे ही सेवन करें।

पर्पटी का क्रम

निरापद रूप से साधारण अवस्थाओं में पर्पटी का यह क्रम है :—

दिनाक	पर्पटी की मात्रा	दूध	केवल आम	आम और दूध	तक्र	दही	मग्गूजा	विशेष
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	१र.	ऽ।=	१०	६+ऽ।	ऽ॥	ऽ।	ऽ।	गोपाटी
२	२र.	ऽ॥	१५	१०+ऽ॥	ऽ१	ऽ॥	ऽ॥	५-७ टुकड़ा
३	३र	ऽ१	२०	१५+ऽ॥।	ऽ२	ऽ१	ऽ१॥	गोपाटी बन्द
४	४र.	ऽ१॥	३०	२०+ऽ१	ऽ३	ऽ१॥	ऽ२	,,
५	५र.	ऽ२	३५	२५+ऽ१॥	ऽ४	ऽ२	ऽ२॥	,,
६	६र.	ऽ२॥	४०	३०+ऽ२	ऽ५	ऽ२॥	ऽ३	,,
७	७र.	ऽ३	५०	३५+ऽ२॥	ऽ६	ऽ३	ऽ४	,,
८	८र.	ऽ४	६०	४५+ऽ३।	ऽ७	ऽ४	ऽ५	,,
९	९र.	ऽ५	७०	५५+ऽ४	ऽ८	ऽ५	ऽ६	,,
१०	१०र.	ऽ६	८०	६५+ऽ५	ऽ९	ऽ६	ऽ७	,,
११	११र.	ऽ७	९०	७५+ऽ६	ऽ१०	ऽ७	ऽ८	,,
१२	१२र.	ऽ८	१००	८५+ऽ७	ऽ११	ऽ=	ऽ९	,,
१३	११र.	ऽ७	९०	७५+ऽ६	ऽ१०	ऽ७	ऽ८	उतार
१४	१०र.	ऽ६	८०	६५+ऽ५	ऽ९	ऽ६	ऽ७	,,
१५	९र.	ऽ५	७०	५५+ऽ४	ऽ८	ऽ५	ऽ६	,,
१६	८र	ऽ४	६०	४५+ऽ३।	ऽ७	ऽ४	ऽ५	,,
१७	७र.	ऽ३	५०	३५+ऽ२॥	ऽ६	ऽ३	ऽ४	,,
१८	६र.	ऽ२॥	४०	३०+ऽ२	ऽ५	ऽ२॥	ऽ३	,,
१९	५र.	ऽ२	३५	२५+ऽ१॥	ऽ४	ऽ२	ऽ२॥	,,
२०	४र.	ऽ१॥	३०	२०+ऽ१	ऽ३	ऽ॥	ऽ२	,,
२१	३र.	ऽ१	२०	१५+ऽ॥।	ऽ२	ऽ१	ऽ१॥	,,
२२	२र	ऽ१½	१५	१०+ऽ॥	ऽ१	ऽ१½	ऽ३	,,
२३	१र.	ऽ।=	१०	६+ऽ।	ऽ१½	ऽ१	ऽ१	,,
२४	½र	१पाव	५	३+ऽ=	१पाव	ऽ=	ऽ=	उष्णजल, यूष, लाजमण्ड स्वल्प

विशेष :—

१—पांचवें एवं छठवें दिन कुछ आपत्तियां आती हैं। पर्पटी कल्प में बाधा डालने वाली बात यथा आध्मान, हृद्दौर्बल्य, रोगवृद्धि होती है। इस लिये वैद्य और सावधान

रहे। औषधि, उपाय तथा सान्त्वना आदि से काम निकालें। आपत्तियाँ हटायें और आगे बढें।

२—उपर्युक्त क्रम व्यवहार के लिये लिखा गया है। उसमे यथासम्भव विशेष आपत्ति नहीं होती। इसलिये विशिष्ट दिनो मे पथ्य के वर्धन और ह्रास क्रम के तारतम्य मे कुछ भंग हो गया है। अर्थात् लगातार यदि दूध ऽ। ऽ॥ या ऽ१ बढा है तो विशिष्ट दिन वह ऽ=, ऽ। या ऽ॥ ही बढा है। इसी प्रकार अन्य पथ्य भी समझिये। यह उदाहरण मात्र है।

३—बहुत से वैद्य विशिष्ट औषधियो यथा संखिया, ताम्र आदि के बल पर और अपने अनुभव के बल पर दूध २० सेर एवं दही २० सेर तक एक-एक दिन मे खिला देते हैं। पर वह सरल नही, इसलिये उसपर विशेष प्रकाश नही डाला गया है। विशिष्ट रोगियो मे विशिष्ट वैद्यो द्वारा सखिया और ताम्र के बिना भी २० सेर दूध या २० सेर दही एक-एक दिन मे खिलाई जाती है। यह अनुभव और अभ्यास से आप भी कर सकते हैं।

४—ऊपर दिनो की सखया साधारण और निरापद स्थिति के लिये लिखी गयी है। पर वह अधिकतर नही चल पाती, क्योकि उस क्रम से पर्पटी या पथ्य बढ नहीं पाता। रुकावट पडने पर वर्धन क्रम में देर होती ही है और पर्पटी का चढाव उतार मिलाकर ४८ दिन हो जाते हैं। सामान्य स्थिति मे रोगी को लाने मे कुल ६० दिन लग जाते हैं।

५—ग्रहणी के साथ या स्वतन्त्र रूप से क्रिमि-अर्श या कास आदि हो तो पर्पटी मे उन-उन रोगो की औषधि यथोचित मात्रा मे मिला दी जाती है। पथ्य भी उन-उन औषधियो से सिद्ध कर उनके चूर्ण आदि के साथ दिया जाता है। जैसे क्रिमि के लिये विडङ्ग, अर्श के लिए चित्ता एवं कास के लिए लवङ्ग या मुलहटी का प्रयोग कर देते हैं। औषधियाँ आदि उन-उन रोगो मे अलग लिखी हुई हैं।

—:—

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्श (बवासीर) एव चर्मकील

कारण और लक्षण :—

तीनो दोषो को कुपित करने वाले कारण इनमे कारण होते हैं । पर सर्वोपरि कारण मलवद्धता (कब्जियत) है । इसमे वात, पित्त, कफ दोष और त्वचा, रक्त, मास, मेदा दूष्य होते हैं ।

मल की गाँठो के कारण गुदा की सिराओं पर दबाव पडने से उनमें प्रवाहित होने वाले रक्त की गति मे कुछ बाधा पडने लगती है परिणामत वहाँ सिरायें फूल जाती हैं जो मस्सा या अंकुर के रूप मे हो जाता है। इसी मस्से या अंकुर का नाम अर्श, बवासीर, गुदज, गुदकील और मामाकुर है। गुदा के आसपास सिराओ की रचना कुछ भिन्न है। इसलिये अर्श प्राय. वहीं होता है। अत्यन्त नगण्य लोगो में नासा कान, आँख, लिंग, नाभि आदि में भी होता है।

गुदा में तीन वलियाँ (चक्र या घुमाव, जैसे शख के मुँह मे होता है) होती हैं। सबसे भीतर की वलि का नाम प्रवाहिणी, उसके बाद बाहर की ओर की वलि का नाम विसर्जनी और सबसे बाहर की वलि का नाम ग्राहिणी या संकोचनी वलि है। संकोचनी वलि मे होने वाला एक वर्ष तक का अर्श एवं वात, पित्त, कफ में से किसी एक दोष से उत्पन्न अर्श सुख साध्य होता है। विसर्जनी वलि मे आश्रित एक वर्ष के ऊपर का एवं दो दोषो से सम्बद्ध अर्श कष्टसाध्य होता है। सबसे भीतरी वलि अर्थात् प्रवाहिणी मे आश्रित त्रिदोषज एवं जन्म से होनेवाला अर्श असाध्य होता है। परन्तु कुल मिलाकर अर्श अत्यन्त कष्टदायक, अनेक व्याधियो के जनक और अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं।

लोक में रक्त जाने के दृष्टिकोण से ये खूनी और वादी दो प्रकार के कहे जाते हैं। खूनी या रक्तज अर्श भीतरी दोनो बलियो मे होते हैं। मल की गाँठो के दबाव से जब

गुदा की बलि मे शंख के समान आवर्त्त
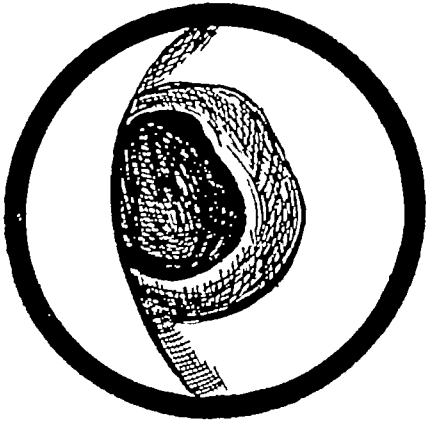
अर्शाङ्कुर
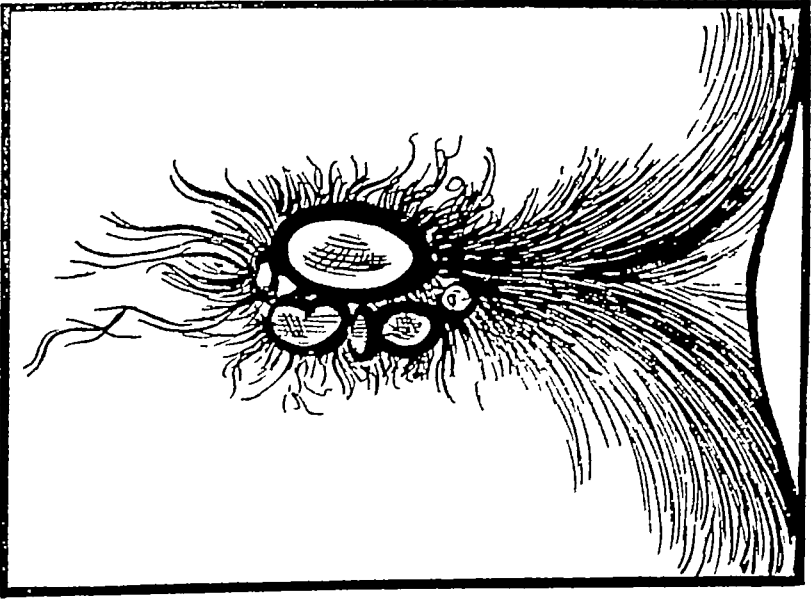
(पृष्ठ २२२ के सम्मुख)
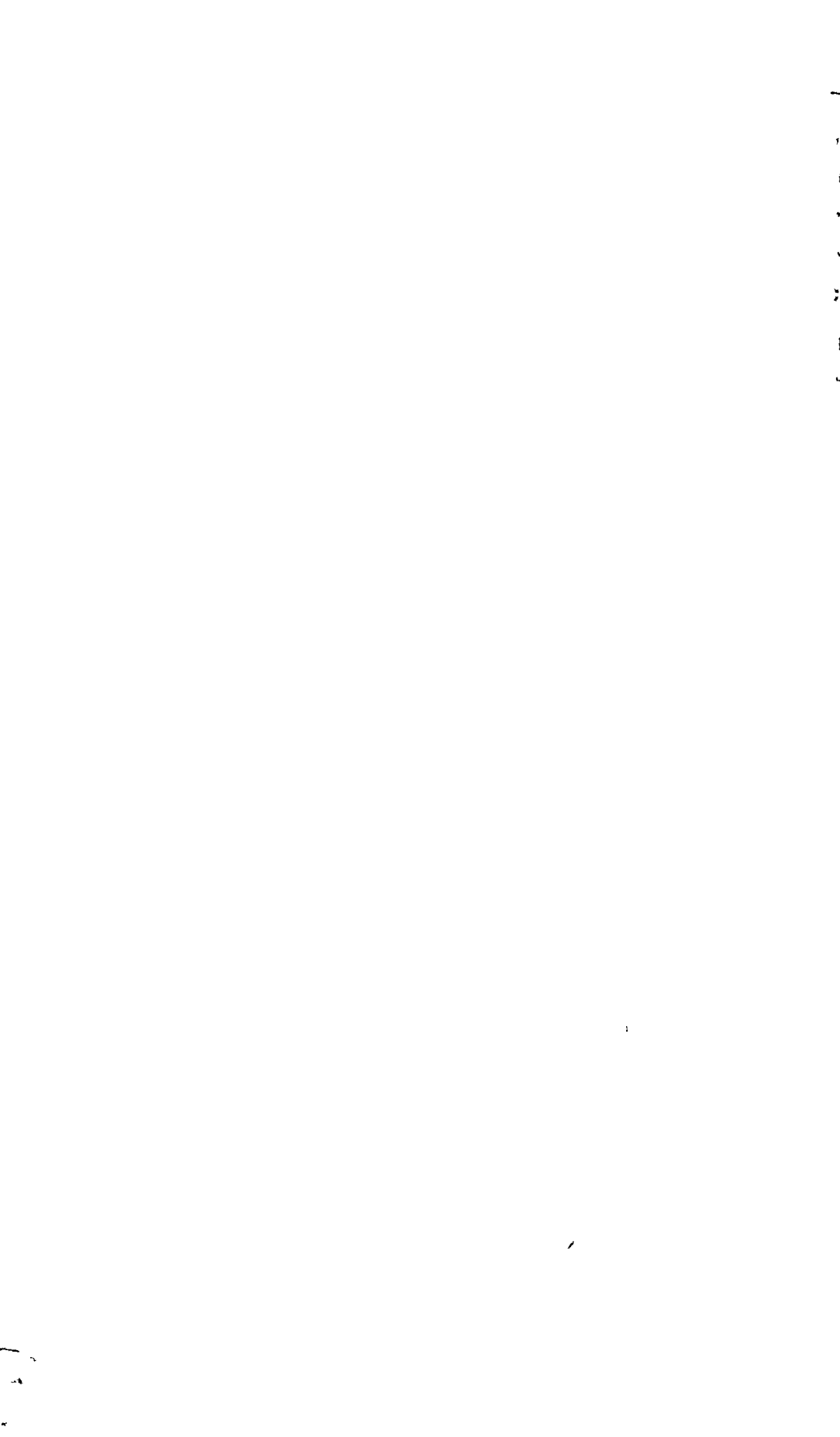
रक्तवाहिनी सिरायें छिल जाती है तब रक्त आता है। रक्त अधिक आ जाने से रक्त क्षय के लक्षण अर्थात् सारे शरीर मे पीलापन दुर्वलता, घवडाहट, चक्कर आदि होते हैं। गाँठो के निकल जाने पर मल के ढीला या पतला होने पर रक्त वन्द हो जाता है। रोगी दस वारह दिन अथवा चार-छ. मास के लिये हरा भरा हो जाता है फिर मल मे गाँठ पड जाने से रक्त आने लगता है। यह स्थिति अर्श के सर्वथा निर्मूल होने तक अथवा जीवन भर रहती है।

वादी या शुष्क अर्श मे रक्त विलकुल नही जाता। ये वाहरी वलि मे होते हैं। रक्तार्श की अपेक्षा कम कष्टदायक होते हैं। इनमे दोषानुसार पीडा दाह या खुजली आदि होती है।

अर्शाकुंरो का कोई निश्चित आकार नहीं होता। कोई सरसो के समान छोटे तो कोई गूलर के समान वडे होते हैं। कोई चिकने तो कोई खुरदरे होते हैं, कोई गोल तो कोई मुनक्का के समान लम्वे होते है। पर सभी गुदा मे डाट का काम कर मल को रोकते और मलवद्धता करते हैं।

अर्श निम्न प्रकार से छ प्रकार के होते हैं

१—वातज अर्श सूखे, मलिन, स्तव्ध, खुरदरे, साँवले या गुलावी होते हैं। वात प्रकोप में उदर में जो पीड़ायें होती हैं या मल में जो लक्षण होते हैं वे सव इसमें प्राप्त होते हैं। कास, श्वास, उद्गार, छीक आदि कष्ट भी होते हैं।

२—पित्तज अर्श पीले, लाल, कोमल और उष्ण होते हैं। मल भी पीला, लाल, उष्ण होता है। रोगी को दाह, पाक, ज्वर, मूर्च्छा, प्यास, वेचैनो आदि होते हैं।

३—श्लेष्मार्श वडे-वडे चिकने कुछ श्वेत, लसीले और पुष्ट होते हैं। उनमे खुजली भी होती है। श्वास, कास, प्रमेह, जी मचलना, आदि भी होता है। वक्षणो (जंघासा) की गति को भी कभी-कभी रोक देते हैं। मल में वरावर चिकनाई या कफ आता रहता है।

४—त्रिदोषज में तीनो के लक्षण मिलते हैं।

५—सहज (जन्म से होनेवाले) मे भी तीनो दोषो के लक्षण मिलते है। यह अर्शयुक्त माता पिता या उनकी परम्परा के कारण सन्तान मे आता है।

६—रक्तज या खूनी अर्श में पित्तज अर्श के लक्षण मिलते हैं। गुदा से रक्त आता है। पुरीष कठिन और रूक्ष होता है, अधोवायु भी नहीं होता, शेष लक्षण ऊपर कह चुके हैं। रक्तज प्रवाहिका एवं रक्तार्श मे यह अन्तर है—

रक्तप्रवाहिका	रक्तार्श
१—तात्कालिक रोग है।	दीर्घकालीन रोग है।
२—मस्सो का अभाव।	मस्सो की विद्यमानता।

रक्तप्रवाहिका	रक्तार्श
३—आम मल के साथ अल्प रक्त दर्शन।	पक्व मल के साथ अधिक रक्तदर्शन।
४—आंत से रक्त आता है।	गुदा से रक्त आता है।
५—मल कम	पर्याप्त मल।
६—मल मे गांठो का अभाव।	मल में गाठें।
७—मल निकालने के लिये अधिकतर मारक औषधियां दी जाती है।	अधिक तर मल भेदक औषधियां दी जाती हैं।
८—गुदा या उसके आस-पास बाह्य उपचार नहीं होता।	बाह्य उपचार भी होता है।

चिकित्सा—

अर्श की चिकित्सा मे निम्नलिखित चार उपायो का अवलम्बन किया जाता है—

१—औषधि, २—क्षार, ३—शास्त्र और ४—अग्नि

१—औषधि का प्रयोग अर्श चिकित्सा मे अपेक्षाकृत अधिक निरापद एवं सरल होने के कारण सर्वश्रेष्ठ उपाय बताया गया है। इसमें मुख्यतया मन्दाग्नि एवं मलबद्धता को नष्ट करने के साथ ही अन्त्रो को बलवान बनाने का प्रयत्न होता है। जो मुख्यतया दीपन, पाचन एवं लेखन औषधियो एवं प्रयत्नो द्वारा सम्पन्न होता है। इस पुस्तक मे हम इसी का विस्तृत वर्णन करेंगे।

२—क्षार का प्रयोग अर्श काटने के लिये करते हैं। क्षार में सने हुए सूत्र से अर्श की जड को बाध कर क्रमश: कसते जाते हैं। क्षार शक्ति नष्ट होने पर क्षार सूत्र बदलते जाते हैं। धीरे-धीरे अर्श के मस्से कट जाते हैं। अथवा क्षार का मस्सो पर लेप करते हैं। इससे वे छिलते जाते हैं अथवा सूख जाते हैं। इस उपाय से मस्सों के नष्ट होने अथवा सूखने तक लगातार ५-७ दिन तक रोगी को बहुत कष्ट होता है। क्षार उग्र होगा तो मस्से शीघ्र नष्ट होगें, दुर्बल या मृदु होगा तो देर से नष्ट होगें। इसीके अनुपात से कष्ट भी होता है। मस्से यदि कटते है तो वहां होने वाले व्रण को व्रण चिकित्सा अर्थात् शोधन (स्वच्छता, और रोपण (व्रण को भरना) क्रिया द्वारा ठीक करते है। व्रण को भरने का काम साधारणतया शतधौत घृत अथवा मक्खन से करते हैं।

३—शस्त्र का प्रयोग अर्श के मस्सो को काटने के लिये करते हैं। अत्यन्त कुशल चिकित्सक द्वारा यह कार्य होना चाहिये। अन्यथा रक्त धार को रोकना कठिन हो जाता है। रक्तधार रुकने एवं व्रण के भर जाने पर भी नाडी व्रण या भगन्दर हो जाता है। इसलिये इसमें अत्यन्त सावधानी एवं कुशलता बरतनी चाहिये।

४—अग्नि का प्रयोग अर्शांकुरों को जलाने के लिये करते हैं। सामान्यत: प्रतप्त शलाकाओं द्वारा यह कार्य होता है। अंकुरो के जल जाने पर अग्निदग्ध की चिकित्सा की

जाती है। आजकल यह क्रिया दाहक द्रव्यो यथा तेजाव अथवा कास्टिक सोडा इत्यादि के द्वारा सम्पन्न की जाती है। दग्ध हो जाने पर दाहक द्रव्यानुसार उसकी चिकित्सा होनी चाहिये।

विशेष —

क्षार एवं अग्नि द्वारा एक ही प्रकार का कार्य होता है। परन्तु क्षार द्वारा मृदुता मे धीरे-धीरे कार्य होता है। अकुर गिरने तक लगातार कष्ट होता है। अग्नि से तेजी से एक ही बार कार्य सम्पन्न होता है और कष्ट एक ही बार होता है। बाद मे दोनो से नाडी व्रण या भगन्दर होने की सम्भावना रहती है। पर शस्त्र क्रिया से होने वाली सम्भावना से यह कम ही रहती है। क्षार, शस्त्र और अग्नि मे क्षार अधिक निरापद एवं सरल है।

औषधि चिकित्सा—

अर्श को नाश करने के लिये अग्नि को दीप्त करना, भोजन को सुव्यवस्थित रूप से पचाना, मल का ढीला होना एवं आंतो का बलवान होना आवश्यक है। इसके लिये दीपन (दीप्त अग्नि को करने वाली (पाचन) आम को पचाने वाली, (एवं भेदन मल की गाठो को फोडने वाली) औषधियो एव पथ्यो का व्यवहार होता है। कुल मिला कर इन सब कामो के लिये आग्नेय द्रव्य, चित्ता, भिलावा, षडूषण, पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य चित्ता, सोठ, मिर्च, कुटकी इत्यादि उपयोगी होते हैं। यवक्षार, सज्जी खार, सेहुण्ड क्षार, मदार क्षार, कदली क्षार आदि क्षार, एवं सूरन, मूली, पपीता, पत्रशाक (वथुआ, पालक, चौराई) आदि क्षारीय द्रव्य भी बहुत उपयोगी होते हैं। यह ज्ञातव्य है कि क्षार सभी आग्नेय होते हैं। ये अग्नि दीपक पाचक एव भेदक तीनो होते है। इसलिये इनका अर्श-चिकित्सा मे उत्तम स्थान है। अन्य औषधियो के साथ मिला कर या स्वतन्त्र रूप मे इनका व्यवहार अवश्य करना चाहिये। पित्तार्श एवं रक्तार्श मे क्षार का व्यवहार कम अथवा मृदु क्षार का व्यवहार करना चाहिये। यद्यपि क्षार एवं क्षारीय द्रव्य आंतो को कुछ दुर्बल बनाते हैं किन्तु मल आदि आंतो के भार को वे निकालते हैं। इससे उनके द्वारा उत्पन्न दुर्बलता की अपेक्षा आंतो को अधिक आराम मिलने मे शक्ति मिलती है। तक्र दीपन-पाचन है एवं उसमे आंतो को बल देने का अद्भुत गुण है। विभिन्न औषधियो से युक्त होने पर वह अत्यधिक लाभ करता है। इसलिये उसका व्यवहार पथ्य मे अवश्य होना चाहिए। रक्तार्श और शुष्कार्श दोनो मे इसका व्यवहार निःशंक करना चाहिये। चाहे वे किसी दोष से उत्पन्न हो।

उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुए दोषो के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो पर भी ध्यान देना चाहिए।

वातार्श में स्नेहन, विरेचन एवं वस्तिका प्रयोग भी करें तो उत्तम है। स्नेहन, स्वेदन समस्त शरीर पर साधारण एवं मस्सो पर विशेष करें। मल शुद्धि के लिये यहा

एरण्ड तैल का व्यवहार लाभदायी है, ये औषधियां विशेष हितकारी हैं। इनका व्यवहार स्वतन्त्र या सामान्य औषधियो मे मिला कर करें—

प्राणदा गुटिका, ३ माशा गोदुग्ध या उष्ण जल से।

हिंग्वादि चूर्ण ३ माशा तक्र से।

दुर्नाम कुठार वटी (भै०र०) एक रत्ती तक्र से ।

वृहच्छूरण मोदक एक तोला उष्ण जल से जलपानार्थ प्रात. सायं।

पित्तार्श मे विरेचन से बडा लाभ होता है। इसमे उत्पन्न दाह एवं बेचैनी को दूर करने के लिये प्रवाल-पिष्टी या भस्म अथवा मुक्तापिष्टी अभाव मे मुक्ताशुक्ति भस्म का व्यवहार सामान्य औषधियो मे मिलाकर स्वतन्त्र रूप से अवश्य करना चाहिये। सम शर्कर चूर्ण, चार माशा या गुरुच सत्व एक माशा, नागकेशर चूर्ण एक माशा, छोटी इलायची के दानो का चूर्ण चार रत्ती (सब मिला कर एक मात्रा है।) या सुगन्धबाला और सोंठ का सम भाग चूर्ण दो माशा की मात्रा से व्यवहार अवश्य करें। इनमे से किसी एक को स्वतन्त्र अथवा परस्पर मिला कर सामान्य औषधियो के अतिरिक्त समय मे दें, अथवा सामान्य औषधियो मे मिलाकर दें। भल्लातक मोदक, प्रात. सायं, जलपानार्थ प्रयोग करें।

अनुपानार्थ या पथ्य के लिये बकरी का दूध, अनार, मक्खन, मिश्री विशेष हितकारी है।

कफजअर्श मे यदि सरलता से वमन करा सकें तो ठीक है। न करा सकें तो परेशान न हो। त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) मे किसी एक का व्यवहार अवश्य किसी न किसी रूप मे करें इसमे भी सोठ या आदी विशेष हितकर है।

पंचकोल (पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्ता और सोठ) चूर्ण दो माशा या लवण भास्करचूर्ण २ माशा की मात्रा से सामान्य औषधियो के साथ या स्वतन्त्र रूप से व्यवहार करें। अनुपान में सोठ चूर्ण युक्त तक्र या चित्ता चूर्ण युक्त तक्र का व्यवहार करें।

अर्शांकुर मे उत्पन्न खुजली और शोथ आदि को दूर करने के लिये भाग को जल मे पीस कर थोडे घी में गरम कर, गरम-गरम मस्सो पर बाँध दें। मस्से भीतर हो तो भी गुदा द्वार पर बांध दें। सब पीडा शान्त होगी।

रक्तार्श—

रक्तार्श में प्रथम गिरते हुए रक्त को नही रोकना चाहिये। यह दुष्ट रक्त है। इसके निकलने से बहुत-सी पीडायें शान्त हो जाती हैं, न निकलने से हानि होती है।

बाद में रक्त को आगे वर्णित रक्त पित्त नाशक औषधियो से रोकना चाहिये। यहाँ मुख द्वारा उग्र क्षारो या क्षारीय द्रव्य का व्यवहार ठीक नहीं, तक्र आदि शामक उपायो से काम चलाना चाहिये। कदली क्षार और मूली क्षार का व्यवहार हो सकता है। दाह इत्यादि हो तो पित्तार्श मे उल्लिखित औषधियो का व्यवहार हो सकता है। यहाँ विरेचन के लिये मुनक्का, अजीर, गुलकन्द, अमलतास आदि मृदु द्रव्यो का व्यवहार करें।

गर्भवती का अर्श :—

गर्भवती को अर्श रहने पर क्षारीय और आग्नेय औषधियाँ अथवा क्षार न दें न कोई तीक्ष्ण बाहरी उपचार करें। हाँ यह ध्यान रखें कि उसे मल शुद्ध होता रहे। इसके लिये मुनक्का, अञ्जीर, गुलकन्द उपयोगी हैं। यदि रक्तार्श हो तो रक्त रोकने के लिये रक्तपित्तोक्त मृदु औषधि का व्यवहार करें। तक्र, अनार आदि सेवन किये जा सकते हैं। यही ध्यान रखें कि गर्भिणी को अर्श से कष्ट न होने पाये। सर्वथा अर्श नष्ट करने के लिये गर्भ-मुक्ति के बाद शक्ति उत्पन्न होने पर प्रयत्न करें।

सभी अर्शों की सामान्य औषधियाँ :—

इनमे से किसी एक अथवा कई का संयुक्त व्यवहार करें—

अर्श कुठार रस ४ रत्ती से १ माशा तक वात और कफ के अर्श में मूली स्वरस से पित्तार्श में एवं रक्तार्श मे गुलकन्द के साथ।

लवणोत्तमादि चूर्ण २ माशा, तक्र से
कल्याण लवण एक माशा, मूली के रस से
मरिचादि चूर्ण ० माशा, उष्ण जल से
जाति फलादि वटी ४ रत्ती, निम्बु स्वरस युक्त उष्ण जल से
व्योषाद्य चूर्ण (यो० र०) ४ माशा, सोठ युक्त तक्र से।
कुटजावलेह ६ माशा, वकरी का दूध या मण्ड से (रक्तार्श मे)
श्रीवाहुशाल गुड ६ माशा, उष्ण जल से
काकायन गुटिका ४ रत्ती, तक्र से
शूरण मोदक ६ माशा। यह गर्भिणी के अर्श एवं रक्तार्श मे न दें।
चन्द्रप्रभा गुटिका ४ रत्ती, तक्र, दही का पानी दूध या शीतल जल से
दन्त्यरिष्ट डेढ तोला जल युक्त भोजनोत्तर।
अभयारिष्ट डेढ तोला ,, ,, ,,
वकायन के बीज का चूर्ण २ माशा, उष्ण जल से
चित्ता का चूर्ण २ माशा, तक्र से।

वाह्य प्रयोग

बृहत्काशीसादि या काशीसादि तेल (यह घृत भी होता है) मस्सो पर लगाने से बडा लाभ होता है। नीम का तेल मलने से भी लाभ होता है। सेहुण्ड के दूध में हल्दी का चूर्ण मिलाकर लेप करने से मस्से नष्ट होते हैं। मदार के पत्तो एवं सहिजन के पत्तो के लेप से भी ये नष्ट होते हैं।

नीम और कनइल के पत्तो के लेप से भी बडा लाभ होता है। भाँग एक तोला एक माशा अफीम जल मे पीस कर गरम लेप करने से पीडा तुरन्त नष्ट होती है। हल्दी के चूर्ण को सेहुण्ड दुग्ध मे घोट कर उसमे मजबूत डोरा तीन दिन तक भिगोयें। फिर उस डोरे को छाया मे सुखा लें। इस डोरे से मस्से को कस कर बांधने से वह कट कर गिर जायेगा। फिर घाव पर शतधौत घृत या उष्ण घी लगायें।

भाँग, नीम की पत्ती वकायन की पत्ती, इमली की पत्ती और स्योंडी की पत्ती को कूट कर थोडे जल मे पका कर उसका वफारा (वाष्प) मस्सो पर लेने से लाभदायी होगा।

महाव्याधियों के उपद्रव

वलक्षय, मास क्षय, श्वास, शोप, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार और हिक्का ये महाव्याधियो (हारीत सहिता के अनुसार वातव्याधि, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, प्रमेह, उदर रोग, पथरी, मूढगर्भ ये आठ महाव्याधियां हैं।) के उपद्रव हैं। इनसे युक्त अर्श असाध्य होता है।

अर्श के उपद्रव व अन्य असाध्य लक्षण

हाथ, पैर, गुदा, नाभि और अण्ड कोष मे शोथ हो, हृदय और पार्श्व मे शूल हो, मूर्च्छा या वेहोशी हो, प्यास हो, गुद-पाक हो तो अर्श के रोगी को असाध्य समझिये।

पथ्य :—

मूली, पपीता, पत्र शाक (बथुवा, पोई, पालक, चौराई आदि) सभी प्रकार के बवासिरो मे हितकारी हैं। सूरन रक्तार्श के अतिरिक्त सब में हितकारी है। (इसमें मिर्चा, मसाला, सरसो-तेल न पडें तो अच्छा अन्यथा कम-से-कम डालें) परवल, करैला, पुराना अरवा चावल, साठी चावल, मूंग या कुलथी की दाल, वेल, अंगूर, पपीता, आंवला, कैथ, गोमूत्र, वकरी का दूधग्रौर, हरिण का मांस ये सभी बवासीरो मे हितकर हैं।

अपथ्य :—

मल-मूत्र-अधोवायु के वेगो को रोकना, साईकिल, घोडा, ऊँट आदि (जिनकी पीठ पर इधर उधर टांग फैला कर वैठा जाता है) की सवारियां, मैथुन एवं, कोष्ठ बद्धता करने वाले सभी आहार-विहार अपथ्य हैं।

चर्मकील

कारण और लक्षण :—

व्यान वायु श्लेष्मा को साथ लेकर वाहरी त्वचा मे काटो के समान खुरदरापन प्रगट कर देती है, यही चर्मकील है। यह स्पष्टत चिकित्सक को स्पर्श करने से विदित हो जाता है। मालूम होता है कि वहुत से छोटे-छोटे काँटे त्वचा पर उग गये हैं।

इसमे वृहत्काशीसादि तैल या वृहत्काशीमादि घृत मालिश करने से शीघ्र वडा लाभ होता है। केवल उसी से नष्ट भी हो जाता है।

भीतरी औषधि, अनुपान या विशिष्ट पथ्य की आवश्यकता नही होती।

इस रोग के रोगी वहुत कम मिलते हैं।

—:o:—

बारहवाँ अध्याय

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक विलम्बिका

चार प्रकार की अग्नियाँ—

निम्नलिखित चार प्रकार की अग्नियां होती हैं :—

कफ की अधिकता से मन्दाग्नि, पित्त की अधिकता से तीक्ष्णाग्नि (भस्मक), वायु की अधिकता से विषमाग्नि एवं तीनो दोषो की समता से समाग्नि होती है। इनमे समाग्नि श्रेष्ठ कही गयी है, उसका रक्षण करें। अग्नियो के लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार हैं :—

मन्दाग्नि या अग्निमान्द्य—

मन्दाग्निवाले प्राणी द्वारा खाया हुआ भोजन तनिक भी नही पचता। इससे कफ के विकार उत्पन्न होते हैं। समस्त रोगो के घर आम की उत्पत्ति, भारीपन, आलस्य, सुस्ती, मुख मे मीठापन या फीकापन बहुमूत्रता, मूत्र मे अन्यान्य विकार, अतिसार, अर्श, ग्रहणी विकार, अरुचि, अजीर्ण आदि राग इसी मे उत्पन्न होते हैं। कुल मिलाकर शास्त्र ने कह दिया है कि रोगा: सर्वेऽपि मन्देग्नौ सुतरामुदराणिच (अर्थात् सभी रोग विशेषत उदर रोग अग्निमान्द्य से होते हैं) इसलिये इसकी चिकित्सा मे तनिक देर भी नहीं करनी चाहिये। इसमे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिये —

१—किसी रोग के परिणाम स्वरूप अग्नि मान्द्य हो गया हो तो उसे दूर करें। विशेषत. जीर्ण रोग में प्राय अग्नि मान्द्य हो जाता है।

२—यदि कोष्ठबद्धता हो तो उसे दूर करें। इसके लिये पञ्चकर्मोक्त विधान मे लिखित वमन, विरेचन निरूहण का प्रयोग करें। यदि सब सम्भव न हो तो विरेचन अवश्य करायें। कोष्ठ के अनुसार विरेचन का प्रयोग करें। साधारणत एरण्ड तैल दो तोला, कुटकी छ माशा, निशोथ छ माशा, पंच सकार चूर्ण तीन माशा मे से किसी एक का व्यवहार उष्ण जल से करें। उग्र कोष्ठबद्धता हो तो नाराच रस ३ रत्ती का व्यवहार निम्बुरस युक्त चीनी के शर्बत से करें। अत्यन्त उग्र कोष्ठबद्धता मे सेहुण्ड का

दूध ५ बूँद को चीनी मे मिलाकर खिलाकर जल पिला दें। परन्तु सावधान, सेहुण्ड का प्रयोग कुशल चिकित्सक ही करें।

३—प्रतिदिन कोष्ठ शुद्ध होता रहे, भोजन पचता रहे, इसका ध्यान रखें। औषधि प्रयोग मे भी इसका ध्यान रखें।

४—सामान्यत कुछ उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल औषधियो के उचित प्रयोग से अग्निमान्द्य नष्ट हो जाता है।

५—पर्याप्त निद्रा आवश्यक है। मानसिक अशान्ति, ईर्ष्या, द्वेष, भय लाभ, क्रोध आदि से दूर रहना चाहिए। थकावट नहीं आनी चाहिए। प्रात, साय स्वच्छ वायु मे कुछ न कुछ टहलना चाहिये।

६—तक्र, मण्ड, निम्बू, चित्ता, सोठ, खानेवाला सोडा, यवक्षार विशेष अग्नि दीपक हैं। भोजन के पूर्व आर्द्रक का सेवन एवं अन्त मे तक्र का सेवन विशेष हितकर है। किसी समय गरम पानी मे नीम्बू का रस अवश्य पी लिया करें।

भोजन के पाँच मिनट बाद कोई उत्तम आसव या अरिष्ट यथा द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, मृद्विकासव, तक्रारिष्ट आदि मे से कोई डेढ तोला की मात्रा से सम जल मिला कर पी लेने से विशेष लाभ होता है।

निम्नांकित औषधियों से किसी एक अथवा संयुक्त का व्यवहार करें :—

लवण भास्कर चूर्ण तीन माशा, निम्बु रस युक्त उष्ण जल अभाव मे उष्ण जल या तक्र से।

हिंग्वष्टक चूर्ण तीन माशा, भोजन के पहले ग्रास मे उष्ण घृत मिला कर।
शंख वटी चार रत्ती, उष्ण जल से।
रसोनादि वटी या गन्धक वटी चार रत्ती, लवण भास्कर के समान।
अग्नि मुख चूर्ण दो माशा, उष्ण जल से।
यवक्षार एक माशा सोठ चूर्ण तीन माशा व गोघृत से।
अग्नितुण्डी वटी एक रत्ती उष्ण जल (इसमे कुचिला है) से।
लघुक्रव्याद रस एक माशा, उष्ण जल या तक्र से।

धातु-क्षयजन्य अग्निमान्द्य मे द्राक्षारिष्ट या अश्व-गन्धारिष्ट का भोजनोत्तर प्रयोग करें। वंग या शिलाजतु या नाग घटित शुक्र मेह को औषधियों का भी व्यवहार करें। ज्वर के बाद हुई मन्दाग्नि में वसन्त मालती और सितोपलादि चूर्ण मिला कर अथवा केवल सितोपलादि का व्यवहार करें। पिप्पल्याद्यरिष्ट भी उपयोगी है। ऋतु परिवर्तन या जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अग्निमान्द्य मे आर्द्रक और निम्बू का प्रयोग विशेष हितकर है।

अन्त्रक्षय या आंतो की दुर्बलता मे द्राक्षासव, आरोग्य वर्द्धनी एवं अग्नि तुण्डी वटी हितकर है।

उपर्युक्त अनुपानो के अतिरिक्त अजवाईन का अर्क या काढा, कांजी, शुण्ठी चूर्ण, मधु, चित्ता का काढा आदि भी अनुपान या स्वतन्त्र रूप से अच्छा लाभ करते है।

पथ्य :—

तक्र मण्ड, निम्बु, आर्द्रक, सोंठ, अजवाईन, लहसुन, परवल, मूली, पत्र शाक, सूरन, पपीता, मुनक्का, गेहूँ या जौ, मसूर, अरवा चावल, गोदुग्ध, स्वच्छ वायु, भ्रमण, व्यायाम व प्रसन्नता।

अपथ्य :—

गुरु-अभिष्यन्दी पदार्थ यथा दही, खीर, रबडी, मलाई आदि एव अन्यान्य, घृत और चीनी से सिद्ध पक्वान्न, दिवा शयन, अप्रसन्नता, मानसिक विकार, आलस्य, अजीर्ण आदि।

तीक्ष्णाग्नि या भस्मक रोग :—

इसमे पित्त अत्यन्त प्रवल रहता है। यहा तक कि अधिक से अधिक एव भारी से भारी खाद्य पदार्थ रोगी खा जाता है और वह अत्यन्त शीघ्र पच जाता है। पुन तीव्र भूख लगती रहती है। पर टट्टी बिलकुल नहीं या नाम मात्र को होती है। इतना होने पर भी रोगी क्षीण होता जाता है। कारण यह है कि प्रवल पित्त भोजन न मिलने पर शरीर की धातुओं को जलाने लगता है। भूख इतनी लगती है कि उसे पूर्ण करने भर कोई खा नही सकता। रोगी हमेशा भूख प्यास से पीडित रहता है। इसकी चिकित्सा में निम्न-लिखित बातो का ध्यान रक्खें —

१—प्रवल पित्त को शमन करना यह कार्य मधुर एवं तिक्त रस प्रधान औषधियो से होता है।

२—गुरु और स्निग्ध पदार्थ खिलाना, जैसे उरद के योग (उरदी की दाल, बाडा, फुलौडी आदि), पूडी कचौडी, मालपूआ, लड्डू, खोआ, दही, मलाई, रबडी व भैंस का दूध आदि। यहाँ मल अधिक बनाना भी चिकित्सा का एक लक्ष्य है। ये भोजन मल भी खूब बनाते हैं। अपामार्ग (चिचडी) का बीज भैंस के दूध मे पकाकर शक्कर और घी मिला कर खिलायें। यह सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। यहाँ लघु सुपाच्य पदार्थ से कोई लाभ न होगा।

निम्नलिखित औषधियों मे से किसी एक का अथवा सयुक्त व्यवहार करें :—

सितोपलादि चूर्ण	२ माशा, घी छ माशा व मधु तीन माशा से
सूतशेखर १ रत्ती	घी १ माशा और मधु १ माशा से
लवंगादि चूर्ण	दूध के साथ।
शुक्ति भस्म ४ रत्ती	भैंस के घृत युक्त दुग्ध

वराटिका (कौडी) भस्म ४ रत्ती निम्बु रस युक्त चीनी के शर्बत से
द्राक्षादि चूर्ण ३ माशा, चीनी के शर्बत से
प्रवाल भस्म ४ रत्ती „ „ „
अपामार्ग का वीज का चूर्ण एक माशा, भैंस के शक्कर युक्त दुग्ध से

विषमाग्नि .—विषमाग्नि वायु की अधिकता से होती है और वायु के विकार विशेष करती है। इसमे रोगी द्वारा खाया हुआ साधारण भोजन कभी अच्छी तरह पच-जाता है और कभी विलकुल नही पचता। उदर मे शूल, आध्मान (पेट फूलना) मलावरोध और कभी-कभी अतिसार एवं आतो में गुडगुडाहट आदि लक्षण भी होते हैं।

इसकी चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखे

१—नियमित भोजन पर विशेष ध्यान दें। नियमित समय और नियमित मात्रा भी होनी चाहिये।

२—शयन आदि में व्यतिक्रम न हो।

३ पथ्यो मे गो दुग्ध, घी, और मट्ठा अवश्य खाइये। दूध और घी के बने पदार्थ न खायें। किसी प्रकार का गरिष्ट और न पचने वाला पदार्थ न खायें। दाल न खायें। अनिवार्य होने पर कभी-कभी मूंग की या मसूर की दाल खा सकते हैं।

४—भोजन मे आदी और निम्बू एवं लहसुन, जीरा, हींग, अजवाईन का व्यवहार करें। भोजन के पूर्व नमक आदी खा लें। भोजन के एक घण्टा वाद निम्बु रस युक्त उष्ण जल पीना हितकर है।

५—सूरन के अतिरिक्त अन्य कन्द न खायें। मूली, पपीता, सूरन, पत्रशाक विशेष हितकर हैं। रसदार फल सेवन करें। गूदे वाले फल न सेवन करें। गेहूँ, जौ, पुराना अरवा चावल का व्यवहार हो सकता है। जीरा, हीग से छौंका हुआ मण्ड, नमक, जीरा आदि डाल कर सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

निम्नलिखित औषधियों में से किसी एक का व्यवहार करें।

हिग्वष्टक चूर्ण ३ माशा भोजन के प्रथम ग्रास मे उष्ण घी से।
चित्रकादि वटी ४ रत्ती उष्ण जल या अजवाईन का अर्क से।
हिंग्वादि वटी ४ रत्ती उष्ण जल से।
धनञ्जय वटी ४ रत्ती उष्ण जल से।
विषतिन्दुकादि वटी[1] २ रत्ती उष्ण जल से।
अग्नितुण्डी वटी ८ रत्ती उष्ण जल या सौंफ अर्क से।
रसोनादि वटी ४ रत्ती निम्बू रस युक्त उष्ण जल से।

---

१ शुद्ध कुचिला एव काली मिर्च सममाग लेकर जल से घोटकर १ १ रत्ती की गोली वना लें।

भोजनोत्तर दशमूलारिष्ट डेढ तोला की मात्रा से सम जल मिला कर पिलायें दशमूलघृत ६ माशा की मात्रा से प्रातः सायं उपर्युक्त औषधि भक्षण के एक घण्टा बाद खाकर उष्ण जल पीयें।

अजीर्ण—

भोजन न पचना ही अजीर्ण है। इसमें तत्काल खट्टी डकार, उदर मे वायु का प्रकोप अर्थात् पेट फूलना, उसमें बजबजाहट या गडगडाहट और मन्द या तीव्र पीडा, मल बद्धता या अतिसार, आलस्य, अरुचि, भारीपन और मूंह मे फीकापन हो जाता है। कुछ काल बाद आम (कच्चा) रस बना कर विविध व्याधियो का आश्रय हो जाता है। अजीर्ण से ही यकृत लीवर और प्लीहा (बरवट) की वृद्धि आदि उदर रोग, पाण्डु, कफ के रोग आदि होते हैं।

इसके कारण अनियमित भोजन, विना पचे भोजन, नीद ठीक से न आना, वेगावरोध अधिक या अतिन्यून जलपान, ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ आदि मानसिक विकार आदि हैं।

चिकित्सा—

इसकी सामान्य चिकित्सा में निम्नलिखित बातो पर ध्यान दें—

१—अजीर्ण होने की आशंका में तत्काल उष्ण जल पी लें। यदि उसमे नीम्बू का रस भी डाल लें तो उत्तम है।

२—उपवास करें, उसवास के बाद कुछ दिन तक पथ्य से रहे।

३—मलावरोध को दूर करने की ओर ध्यान दें। तत्काल इसके लिये निरूहण वस्ति का प्रयोग करें (देखें पञ्चकर्म)।

४—विश्राम करें। आवश्यकता हो तो सोयें।

५—स्त्री-प्रसंग या अन्यान्य प्रसंग से धातुक्षय न हो।

६—मानसिक विकारो का परित्याग करें।

७—मिर्चा, मसाला, और खट्टी चीजो का परित्याग करें।

८—अत्यन्त कष्ट पाने पर भी शूलघ्न औषधि तत्काल न ग्रहण करें।

सा मा न्य औ ष धि या

चित्रकादि वटी, ४ र० उष्ण जल से।

महाशंख वटी, ४ रत्ती उष्ण जल से।

अजीर्णकण्टक, १ रत्ती सौंफ के अर्क या उष्ण जल से।

अग्नि मुख चूर्ण, ३ माशा दही के पानी या उष्ण जल से।

लवण भास्कर, ३ माशा तक्र से।

खाने वाला सोडा ४ रत्ती निम्बू रस युक्त उष्ण जल से।

अजीर्ण के मुख्यतः ३ भेद निम्नलिखित प्रकार से किये गये हैं—

१—आमाजीर्ण २—विदग्धाजीर्ण ३—विष्टब्धाजीर्ण। इनकी लक्षण सहित चिकित्सा इस प्रकार है –

आमाजीर्ण :—

यह कफ के कारण होता है। इसमें भोजन के समान गन्ध वाला उद्गार आता है, भारीपन, जी मचलाना कपोल एवं आंखोंके गढे मे सूजन आदि लक्षण भी मिलते हैं।

आम पाचन पर विशेष ध्यान दें।

चिकित्सा :—

निम्नलिखित औषधियों में से किसी एक का अथवा संयुक्त व्यवहार करें—

अग्नि कुमार रस एक रत्ती निम्बू रस या उष्ण जल से।

राम बाण रस २ रत्ती निम्बू रस या उष्ण जल से।

चित्रकादि वटी ८ रत्ती उष्ण जल या सौंफ के अर्क से।

धनञ्जय वटी ४ रत्ती तक्र या उष्ण जल से।

लशुनादि वटी ४ रत्ती निम्बू रस से।

क्रव्याद रस १ रत्ती सेंधा नमक युक्त तक्र से (भोजनोपरान्त विशेष हितकर)।

लौह भस्म १ रत्ती त्रिफला चूर्ण मधु से।

प्रतिदिन प्रात सोंठ, हर्रा, काला नमक, सम भाग का चूर्ण ३ माशा की मात्रा से गरम जल के साथ लें।

पथ्य :—

यथिशक्तिनम सहने योग्य लघन श्रेयस्कर है। अन्यथा सूरन, पत्रशाक, मूली, नीबू, पपीता, मसूर की दाल, जौ-चना की रोटी, पुराना चावल, तक्र, जामुन, रात्रि शयन विशेष हितकर है। सोंठ, आदी व अजवाईन का विशेष प्रयोग करें।

अपथ्य :—

दिवा शयन, अजीर्ण, दूध, दही, घी, मलाई आदि स्निग्ध और गुरु पदार्थ, कफ कारक समस्त आहार-विहार अपथ्य है।

विशेष :—

यदि शौच शुद्ध न होता हो तो आवश्यकतानुसार नारायण चूर्ण या पंच सकार चूर्ण की ३ माशा का व्यवहार करें। इच्छा भेदी एक रत्ती का व्यवहार भी निम्बु रस युक्त सादा जल से रेचनार्थ हो सकता है।

विदग्धाजीर्ण :—

यह पित्त के प्रकोप के कारण होता है। इसमें पित्त में उष्णता और अम्लता की

अतिशय वृद्धि हो जाती है। इसलिये चक्कर, प्यास, मूर्च्छा, खट्टी डकार, दाह, पसीना एवं पित्त की विविध पीडायें होती हैं। जिस प्रकार अत्यन्त प्रखर आँच से रोटी बाहर जल जाती है और भीतर कच्ची रह जाती है, उसी प्रकार पित्त की प्रखरता मे भोजन कुछ जल जाता है व कुछ कच्चा रह जाता है। बस इसी कच्चे-पक्के का नाम विदग्ध है।

चिकित्सा :—

पित्त को विरेचन एवं शमन चिकित्सा द्वारा शान्त करने का प्रयत्न करें। विरेचन के लिये मधुर एवं मृदु वस्तुयें यथा गुलकन्द, मुनक्का, अञ्जीर, निशोथ मे से किसी एक अथवा संयुक्त कई का व्यवहार करें। शमन के लिये मधुर तिक्त एवं शीतल औषधियों का व्यवहार करें। तीक्ष्ण एवं उग्र औषधियो का व्यवहार अहितकर है। केवल त्रिकटु का व्यवहार शामक औषधियो के साथ हो सकता है। स्वतन्त्र व्यवहार इसका न करें।

निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा संयुक्त व्यवहार करें।
समशर्कर चूर्ण ३ माशा जल से।
शंख वटी दो रत्ती जल से।
शंख भस्म ४ रत्ती अनार रस या मधु से।
प्रवाल भस्म ४ रत्ती अनार रस या मधु से।
शुक्ति भस्म ४ रत्ती अनार रस या मधु से।
दाडिमाष्टक चूर्ण २ माशा चीनी के उष्ण शर्बत से।
यवानीखाण्डव चूर्ण ३ माशा जल से।

पथ्य :—

गोदुग्ध, बकरी का दूध, तक्र, अनार, (विशेष हितकर) मौसम्मी, खजूर, मुनक्का, गम्भारी का फल, गेहू, जौ, पुराना अरवा चावल, मूँग की दाल, नेनुआ, करैला, लौआ, चीनी, मिश्री आदि।

अपथ्य :—

उष्ण, कटु, अम्ल, (निम्बू और आंवला को छोड कर), तीक्ष्ण, मसालेदार, चरपरा पदार्थ, मिर्चा आदि अहितकर है। नमक का व्यवहार यथासम्भव कम करें। सर्वथा त्याग करने की आवश्यकता अनुभूत हो तो सर्वथा त्याग दें।

विष्टब्धाजीर्ण :—

यह वायु प्रकोप के कारण होता है, मल और वायु दोनो रुक जाते हैं। शूल, आध्मान (पेट फूलना), जकडन, बदहोशी, अंगो मे पीडा और वात की विविध वेदनायें होती हैं।

चिकित्सा—

उदर की वायु जीतने का पूरा प्रयत्न करें। इसके लिये स्नेहन, स्वेदन, निरुहण,

(एनिमा) वस्ति जिसमें एरण्ड तैल कुछ अधिक हो या अनुवासन वस्ति का प्रयोग करें। बालक हो तो साबुन की वत्ती अथवा ग्लीसरीन की वत्ती लगायें। विष्टब्धाजीर्ण मे उग्र शूल मे निरूहण वस्ति से मल निकलने से तत्क्षण लाभ होता है।

निम्नलिखित औषधियों मे से किसी एक का अथवा अनेक का संयुक्त व्यवहार करें—

अग्नि कुमार रस १, रत्ती तक्र से।

अग्नि तुण्डी वटी १ रत्ती निम्बू रस युक्त उष्ण जल से (जीर्ण रोग में विशेष हितकर)।

धनन्जय वटी ४ र० तक्र या उष्ण जल।

वडवानल चूर्ण २ माशा जम्भीरी नीबू या कागजी नीम्बू के रस से।

हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशा उष्ण जल से।

अभयारिष्ट डेढ तोला समजल से (रेचक है) भोजनोत्तर दें।

द्राक्षारिष्ट (अभयारिष्ट के अभाव मे) डेढ तोला समजल से (रेचक है) भोजनोत्तर दें।

पेट पर निम्नलिखित लेप वड़ा लाभदायी है—

पलाशवन्दा ६ माशा, सौंफ ६ माशा, राई ३ माशा[1], चूहे की लेंडी १ तोला, काला नमक ६ माशा पानी मे पीस कर पका कर रेंडी का तेल एक तोला मिला कर गरम लेप कर वांध दें। एरण्ड तैल न मिले तो रेंडी का बीज दो तोला साथ मे ही पीस दीजिये, पेट पर हींग का लेप भी किया जा सकता है।

अथवा दारुषट्क देवदारू, वाल, वच, कूट, सौंफ, हींग और सेंधा नमक सब बराबर लेकर कान्जी अथवा अभाव मे निम्बू रस या किसी अम्ल पदार्थ युक्त उष्ण जल से पीस कर गरम गरम लेप करें।

पथ्य—

विना शौच हुए भोजन न करें। शौच हो जाने पर मुनक्का पका दूध, अजीर, पपीता परवल, मूली, सूरन, गेहूँ-जौ-चना की रोटी, लवा, तीतर, वटेर का मांस रस दिया जा सकता है।

अपथ्य—

दही, मलाई, रबडी, उरद आदि लसीले एवं अभिष्यन्दी पदार्थ, अरुई वण्डा, आलू दिन मे सोना आदि।

कुछ लोग इनके अतिरिक्त अजीर्ण के निम्नलिखित तीन और भेद मानते हैं।

१—रस शेषाजीर्ण २—दिन पाकी निर्दोष अजीर्ण ३—प्राकृत वासरिक।

---

१ राई से कभी-कभी पेट पर दाने पड़ जाते हैं या ललाई आ जाती है। जो साधारण घी या शतधौत घृत लगाने से ठीक हो जाती है। दाना या ललाई आ जाने पर राई न मिलायें।

१—में उद्गार शुद्ध आने पर भी भोजन में अनिच्छा, हृदय मे भारीपन, शूल, मुँह मे पानी आना आदि लक्षण होते है। आहार-रस शेप रह जाने (उससे रक्त न बनने) से यह होता है।

इसकी चिकित्सा मे क्षार एवं तीक्ष्ण विरेचन का प्रयोग अत्यन्त अहितकर होता है। नित्य शौच शुद्ध होता रहे इसके लिये मुनक्का अमलतास की गुद्दी, या निशोथ आदि मृदु औषधियो का व्यवहार करना चाहिये। भोजन कुछ रूक्ष, थोडा-थोडा, कई वार नियमित समय पर करना चाहिये। एक ही वार भर पेट भोजन हानिकारक होता है। दातो को यथा शक्ति व्यवस्थित रक्खें। भोजन खूब चवा-चवा कर करना चाहिये। वह पचता जाय इसका ध्यान रखें। जल भोजन के मध्य में पीयें। भोजन के पहले और वाद मे पीया जल आहार-रस का परिपाक करने मे वाधा पहुँचाता है। भोजन करने के आधा घण्टा पूर्व और एक घण्टा वाद तक दाहिने करवट लेटें। इससे आमाशयिक रस भरपूर आतो में आकर पाचन मे सहायक होगा। प्रातः और रात को सोते समय उष्ण जल पी लिया करें।

अजीर्णाधिकार की कुचिला घटित औषधिया यथा अग्नि तुण्डी वटी एक रत्ती उष्ण जल या सौंफ के अर्क से लें। सुप्रसिद्ध कुचिसादि वटी एक रत्ती भी शंख भस्म एक रत्ती मिला कर इसी अनुमान से ले सकते हैं। लवण भास्कर चूर्ण २ माशा, ताजा तक्र या अनार दाना रस से या रसोनादि वटी ४ रत्ती तक्र से ले सकते हैं।

पथ्य मे परवल, पत्रशाक, पपीता, गदहपुरना, तक्र, जौ-चना (मिश्रित) की रोटी, सावा, अत्यन्त पुराना चावल, मूग की दाल आदि का व्यवहार करें। दूध, घी, फल आदि के चक्कर में न पडें। यथा सम्भव खूब सोयें। दिन मे अवश्यकता न हो तो भी सो सकते हैं।

शेप नं०२ व ३ के अजीर्ण के विषय मे इतना ही निवेदनीय है कि इनका प्रसंग इस पुस्तक में अनावश्यक है।

विसूचिका[1] (हैजा)

इसका मुख्य कारण अजीर्ण है जो प्राय. दूषित अन्न-जल सेवन करने से होता है। अति भोजन, वासी, सडा गला भोजन, दूषित जलवायु या किसी रोगी से दुर्वल मनुष्य में सक्रमण होने से भी होता है। यह रोग अति प्रसिद्ध है इसलिये इसके विषय मे अधिक लिखना अनुचित होगा।

इसके लक्षणो मे वमन, अतिसार और प्यास प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त पेट मे शूल, चक्कर, दाह, वैचैनी, शरीर का विवर्ण होना, कम्पन एवं शिर तथा हृदय मे पीडा भी

१ इस अजीर्ण में वायु सूई के चुभने की सी पीड़ा करता हुआ रहता है। इस लिये इसका नाम विसूची या विसूचिका पड़ा है।

असाध्य विसूचिका

(पृष्ठ ५३४ के सम्मुख)
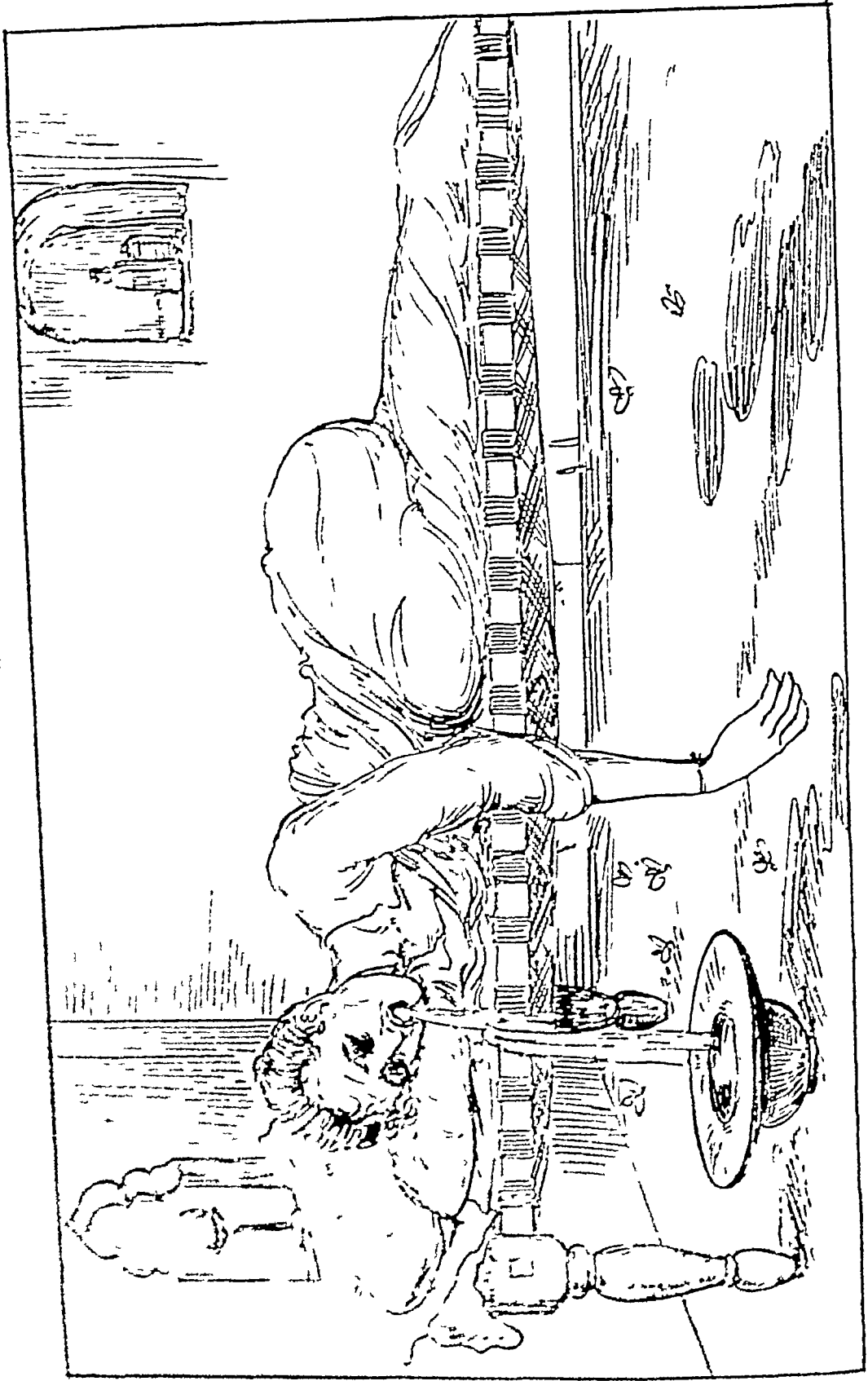
होती है। शरीर सर्वाङ्ग शीतल हो जाता है। अन्ततोगत्वा रोगी बेहोश भी हो जाता है। वमन अतिसार के द्वारा रक्त का रस बाहर आ जाता है, परिणामत. हाथ पैर में ऐंठन होने लगती है। रक्त का रस निकल जाने के कारण वृक्को में मूत्र नही आता।

इस रोगी की नाडी-गति मे यह विशेषता होती है कि वह स्थान (अंगुष्ठ मूल) छोड देती है। फिर भी प्राणघातक नही होती। अन्य रोगो में स्थानच्युत नाडी प्राणघातिनी है।

प्राय: वमन और अतिसार अत्यधिक सख्या मे होते हैं। पर कभी-कभी एक दो या तीन वमन और दस्त मे रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसलिये इस रोग मे तत्क्षण पूरी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये। मल का रंग पहले पीला या भूरा फिर चावल के धोवन या माड के सामान होता है। मल में पहले सडन की गन्ध रहती है। अत्यधिक अतिसार मे गन्ध कम या नही होती।

अजीर्णजन्य विसूचिका का प्रकोप मृदु होता है। शूल अधिक होता है। वमन और दस्त अधिक होती है। फिर भी शरीर की शक्ति एवं उष्णता का नाश शीघ्र नही होता। किन्तु संक्रमण जन्य विसूचिका का प्रकोप अत्यन्त उग्र होता है। इसमे उदर-शूल प्रवल नही होता। शारीरिक शक्ति एवं उष्णता का नाश अत्यन्त शीघ्र ५-१० घण्टे मे हो जाता है। कुल मिला कर विसूचिका की काल मर्यादा ३ दिन से ७ दिन तक होती है। सामान्यत. ३ दिन ही होती है। इसके बीत जाने पर रोगी के बच जाने की पूरी सम्भावना रहती है।

उपद्रव :—

निद्रानाश, बेचैनी, कम्पन, मूत्रनाश एवं बेहोशी ये पाँच भयानक उपद्रव विसूचिका में होते हैं।

साध्यलक्षण —

शरीर में उष्णता एव मूत्रत्याग होना इसका प्रमुख साध्य लक्षण है। फिर तो नाडी भी यथा स्थान (अगुष्ठ मूल में) आ जाती है।

असाध्यलक्षण :—

दात, ओष्ठ एवं नख का काला पड जाना, अल्प सज्ञा वमन से पीडित होने से नेत्रो का भीतर धँस जाना, स्वर का बैठ जाना, सन्धियो का विमुक्त या शिथिल हो जाना, ये विसूचिका के असाध्य लक्षण हैं।

इस रोग की समानता मल्ल (सखिया) विष से शरीर मे उत्पन्न लक्षणो से अधिक होती है। उसका अन्तर इस प्रकार करें—

विसूचिका	मल्लविषप्रकोप
१—अजीर्ण, दूषित अन्नपान या संक्रमण का इतिहास मिलेगा।	खोज करने पर मल्ल (संखिया) विष प्रयोग का इतिहास मिलेगा।
२—वमन व अतिसार मे रक्त नही आयेगा।	वमन व अतिसार मे रक्त आयेगा।
३—छाती मे जलन नहीं होती है।	छाती मे जलन होती है।
४—मूत्र नाश होता है	मूत्र नाश अपेक्षा कृत कम होता है।
५—रोग प्रकोप के साथ ही शक्ति का ह्रास नहीं होता।	विष प्रकोप के साथ ही तुरन्त शक्ति का ह्रास हो जाता है।
६—शीतागावस्था अधिक रहती है।	उष्णता रहती है।

चिकित्सा :—

चिकित्सा में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दें।

१—रोगी के मल मूत्र की स्वच्छता तुरन्त सावधानी से करें। हो सके तो इसके लिये क्रिमिघ्न द्रव फेनाईल, तूतिया घोल, चूना घोल, नीमके पत्ते का काढा आदि का प्रयोग करें। स्वच्छताओं मे असावधानी बरतने से अन्य जनो पर रोग का आक्रमण हो सकता है। मल मूत्र पर मक्खियां यथासम्भव न बैठने पायें। इसलिये उसपर तत्क्षण फेनाईल, गोमूत्र आदि कोई क्रिमिघ्न द्रव या राख डाल देना चाहिये। याद रखिये। रोगी के मल मूत्र से ही मक्खियां इस रोग का वहन कर अन्य जनो मे पहुँचाती है।

२—अजीर्ण एवं दूषित अन्नपान का सेवन न होने पाये। देश व्यापी प्रकोप हो तो जल उबाल कर अथवा शोधन द्रव्यो द्वारा शुद्ध कर पीना चाहिये। देश व्यापि काल मे एक भाग चूना दो भाग गुड मिलाकर तीन रत्ती की गोली बनाकर अथवा सुप्रसिद्ध रसोनादि वटी या संजीवनी वटी एक-एक अथवा लवंग ✓—✓ प्रात सांय जल से निगल जांय। इससे विसूचिका होने का भय न रहेगा। भोजनोत्तर लवग, इलायची, कपूर और पान आदि मुख शुद्धिकारक पदार्थ अवश्य सेवन करें।

३—विसूचिका मे पीने के लिये कच्चा जल सर्वथा न दें। प्यास लगने पर बरफ के टुकडे चूसने को दें। यह प्यास बुझाने का निरापद एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय है। कोई भी द्रव एक बार मे ३—४ चम्मच से अधिक न दें। थोडा-थोडा द्रव बारम्बार देना हितकर होता है। एक बार मे अधिक देने से वह पचेगा नहीं, वमन हो जायेगा। इस दृष्टिकोण से तीन तीन या चार-चार चम्मच बरफ का पानी सौंफ या पुदीना का अर्क, लवंग से पकाया पानी, पीपर की सूखी छाल का अंगारा बुझा हुआ जल, इनमें सुविधानुसार किसी एक को दें। प्यास अधिक न रोकें। थोड़ा-थोडा उपर्युक्त द्रवो से गला सीचते रहें।

४—औषधि, बारम्बार १५—१५ मिनट अथवा आधा-आधा घण्टा पर दी जाती

हैं। औषधि वमन द्वारा निकल आये तो तुरन्त ही दूसरी मात्रा दें-दें। रोग प्रकोप शान्त होने पर औषधि काल वढा दें। यहां तक कि तीन-तीन चार-चार घण्टा अथवा प्रातः, दोपहर, सायं, रात कर दें। औषधि के अनुपान मे अधिक द्रव का प्रयोग न करें।

५—रोग प्रकोप काल तक लंघन चलाइये, कोई आहार द्रव्य न दें। हां ग्लूकोज का जल तीन-तीन चार-चार चम्मच दिया जा सकता है। यह हृदय को वल देता है। मूत्रल भी होता है। पर याद रक्खें शीत-वीर्य होता है। अधिक प्रयोग करने से गले मे कफ की घरघराहट आने लगती है। इस लिये उष्ण जल में उसका घोल दें।

६—अजीर्ण जन्य विसूचिका मे पहले वमन-विरेचन रोकना नहीं चाहिये। रोकने के लिये अफीम आदि स्तम्भक चीजो का प्रयोग न करें। यदि सम्भव हो तो इसके प्रारम्भ में मल शोधन के लिये एरण्ड तैल की अनुवासन वस्ति दे दें। दो चार वमन एवं दस्त हो जाने के बाद रोकने का प्रयत्न करना चाहिये। अव अफीम आदि स्तम्भक औषधियां दी जा सकती हैं। वमन-विरेचन रोकने के लिये अनुपान मे कोई सुगन्धित द्रव्य यथा इलायची, लवंग, सौंफ पुदीना, कपूर का कोई योग अवश्य होना चाहिये।

७—हृदय को बल देने वाली कोई औषधि अवश्य दें। इसके लिये रस सिन्दूर या मकरध्वज आधी रत्ती की मात्रा में उत्तम होता है। कस्तूरी भी १।८ रत्ती की मात्रा से मिलायी जा सकती है। एक दो चम्मच मृत सन्जीवनी सुरा या शराव भी पिलायी जा सकती है। पर सुरा-शराव विना काम चल जाय तो उत्तम है।

८—शरीर की उष्णता वनाये रखने के लिये कम्वल या अन्यान्य उष्ण वस्त्र से शरीर ढके रहे। पूर्वोक्त हृदय को शक्ति देने वाली औषधियो से भी उष्णता सुरक्षित होती है। शीताग हो जाने पर गरम राख, कायफल चूर्ण, सोठ चूर्ण मे से किसी एक का शरीर पर मर्दन करायें। ऐंठन में भी यह उपयोगी है। शराब की मालिश अत्यन्त लाभदायी है। पुकाद्य तैल का मर्दन भी हितकर है। रोगी को शीत और सीधी वायु न लगने पाये।

९—मूत्र आये इसके लिये भी प्रयत्न करते हैं। याद रक्खें इसमें वृक्को में मूत्र का छनना वन्द हो जाता है। इसलिये पीठ पर कटि में रीढ के दोनो ओर (यहीं भीतर वृक्क रहते हैं) चूहे की लेंडी एक तोला, कलमी शोरा एक तोला, राई ३ माशा को वरफ के पानी या अन्य ठण्ढा पानी में पीस कर लेप करना चाहिये। मिट्टी के जलपात्र के नीचे की गीली मिट्टी या कोहार के चाक पर लगी हुई मिट्टी भी यही काम करती है। ये ही प्रयोग पेड़ू पर भी किये जांय। पलाश का फूल मिल जाय तो उसे भी एक तोला या आधा तोला लेप मे पीस दें। केवल पलाश फूल जरा-सा घृत मे गरमा कर गरम-गरम पेड़ू पर वांधने से भी कुछ लाभ होता है। कुछ न हो सके तो मूत्रमार्ग मे कपूर का छोटा-सा टुकडा घुसा दें। इससे काम होता है। पर कुछ कम। यह भी याद रखें कि प्राय कय और दस्त रुकने पर ही रक्त में जलीयांश मिलने पर मूत्र आता है। पर वहीर्लेप तो होना ही चाहिये। पाव-पाव भर लवण युक्त जल वारम्बार गुदा द्वारा प्रविष्ट कराने से भी लाभ होता है।

१०—सुप्रसिद्ध संजीवनी वटी को न भूलें। चाहे कोई अन्य औषधि भले ही खाने को दें पर इसे उसमे इसे अवश्य एक या दो रत्ती की मात्रा से मिला दें। इस पर हम अध्याय के अन्त मे अधिक प्रकाश डालेंगे।

११—निम्नलिखित अनुपानो मे किसी एक का प्रयोग करें—

छोटी इलायची-लवंग का चूर्ण और मधु, सौंफ पुदीने का अर्क मिश्रित एक-एक तोले अथवा कोई एक-एक तोला, प्याज का रस एक तोला, लाल मिर्चा को पानी मे पीस कर तैयार किया घोल। इनके अभाव मे नम्बर ३ मे कथित किसी पेय जल का व्यवहार अनुपान मे करें।

१२—अर्क कपूर पाँच बूंद चीनी, बताशा मे डालकर दो तीन बार खिलाने से बडा लाभ होता है। एसेन्सियल आयल पाँच-दस बूंद की मात्रा से चीनी या बताशा मे डालकर देने से भी उत्तम लाभ होता है। इस आयल मे सब आयुर्वेदिक घरेलू चीजों का सार भाग पड़ा है।

सामान्य औषधियाँ:—

निम्नलिखित औषधियो म से किसी एक का अथवा संयुक्त का व्यवहार आवश्यकतानुसार बारम्बार करें —

१—सजीवनी वटी दो रत्ती लवंग इलायची चूर्ण मधु या प्याज के रस से।

२—रसोनादि वटी ४ रत्ती निम्बू सत्व व सौंफ के अर्क से।

३—विसूची विध्वंस रस १।४ रत्ती निम्बू सत्व व सौंफ के अर्क से। भयानक अवस्था मे यह उपयोगी है।

४—विसूचिकान्तक रस २ रत्ती लवंग, इलायची, मधु से।

५. कर्पूरासव ५ बूंद मे २० बूंद चीनी या बताशा से।

रोग के अच्छा होने के लक्षण—

वमन-दस्त बन्द हो जाना, मूत्र आना और ज्वर यह रोग के अच्छा होने का लक्षण है। नाडी भी यथा स्थान, स्वाभाविक गति से चलने लगती है। भूख लगती है।

पथ्य—

रोग अच्छा होने के लक्षण मिलने पर परवल, मूंग, केला का यूष, पुराना अरवा चावल, गेहूँ की पतली रोटी आदि क्रमश दें। याद रक्खें भोजन पचता जाय भूख लगती जाय, मल-मूत्र यथोचित रूप में निकलता जाय तभी पथ्य में आगे बढें। जल्दबाजी न करें। नही तो ग्रहणी विकार या उदर रोग हो जायगा। कुछ दिनो तक भोजन के पूर्व नमक और आर्द्रक का व्यवहार करें। पथ्य ग्रहण करने के ५—७ दिन बाद सोठ या पीपर से पका दूध दें।

अपथ्य—

अजीर्ण कारक सभी अन्न यथा दही-घृत के पक्वान्न भैंस का दूध, वेगावरोध, व्यायाम, मैथुन, आलू, अरुई, कन्दा, आदि।

याद रखिये! किसी किसी रोगी मे विसूचिका अच्छा हो जाने के बाद वातोल्वण सन्निपात हो जाया करता है। वहा वातोल्वण सन्निपात को चिकित्सा करें।

संजीवनी वटी

शार्गंधर संहिता के मध्यम खण्ड मे उल्लिखित सन्जीवनी वटी, विविध रोगो में लाभ पहुँचाने वाली एक अत्यन्त उत्तम औषधि है। इस लिए उस पर यहा विस्तृत प्रकाश डाला जा रहा है—

घटक—

शुद्ध भिलावा, बहेर्रा, आवला, हर्रा, पिप्पली, सोठ, वाल वच, गुरुच, शुद्ध भिलावा[1] और शुद्ध वच्छनाग[2] या सिंगिया। प्रत्येक बराबर।

निर्माण विधि—

पहले गुरुच को गोमूत्र मे भली भाँति पीस कर उसका रस छान लें। इसी रस मे शेष द्रव्यो का कपडछान चूर्ण डाल कर भीगने योग्य गोमूत्र डालकर खूब घोंटे। इस प्रकार सात दिन तक घोट कर एक-एक रत्ती की गोली बना लें। गोली भली भाति सुखा कर शीशी मे रख लें।

उपयोग—

संजीवनी वटी का प्रयोग कुशल वैद्य बहुत से रोगो मे कर यश का लाभ करते हैं। यह उत्तम बनी हो तो सचमुच अपने नाम को चरितार्थ करती है। इसलिए यह आयुर्वेद मे अति प्रसिद्ध है। उन्माद, अत्यन्त हृद्दौर्बल्य, वात कास, श्वास रोग एव रक्त स्राव मे इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। निम्नलिखित रोगो में उनके अनुपानो से प्रयोग करें।

सन्निपात ज्वर, मोती झरा, विषम ज्वर, वात ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, उदर शूल व विसूचिका। सर्पदंष्ट्र में रोगी को चार-चार गोली बारम्बार खिलाकर ऊपर से

---

१ इसे किसी वैद्य अथवा औषधालय से खरीद ले।

२ वत्स नाम सिंगिया यह लाईसेन्स प्राप्त व्यापारियों के यहाँ ही मिलता है इसे छोटे छोटे टुकड़े में काट कर दोलायन्त्र से गोमूत्र में उबाल ले। उसके बाद टुकड़ों को सुखा कर चूर्ण कर ले। बस वह शुद्ध हो गया।

दोला यन्त्र का विधान यह है कि एक मिट्टी की हाँडी में द्रव्य को कपड़े में ढीला बाँध कर लकड़ी के सहारे इस प्रकार लटका दें कि पोटली हाँडी की पेंदी से स्पर्श न करने पायें उसमें द्रव्य पोटली डूबने तक डाल कर आँच पर पकायें

अनुष्य का मूत्र[1] पिलायें। यहाँ वारम्वार का मतलव १५-२० मिनट में ८२ गोली तक खिला देने से है। गुल्म, जलोदर, प्रतिश्याय आदि मे भी यह लाभदायी है।

अलसक एव विलम्विका

अलसक और विलम्विका दोनो लगभग एक ही प्रकार के रोग हैं। एक ही प्रकार की चिकित्सा से काम भी होता है।

अलसक—

इसमे वायु का प्रवल निरोध हो जाता है। जिससे अँतड़ियाँ अत्यन्त वँध जाती है, अर्थात् उनमे होने वाली स्वाभाविक गति रुक जाती है। परिणामतः अधोवायु एव मल की अत्यन्त रुकावट हो जाती है। अधिक प्यास और डकार होती है। आँतो मे रुका हुआ वायु ऊपर-नीचे गुडगुडाहट या वजवजाहट के साथ घूमता है। कुल मिलकर अन्न आलसी होकर आँतो मे पडा रहता है। इसी लिये इसे अलसक कहते हैं। वमन और अतिसार नही होता। गुदा की विसर्जनी एवं ग्राहिणी वलियाँ शिथिल हो जाती हैं। परिणामत. मल त्याग नही होता। आँते विशेषतः वृहदन्त्र मल भरने से विस्तृत हो जाती हैं।

दण्डालसक—

अलसक की यह भयानक अथवा कष्ट साध्य[2] अवस्था है। इसमें डकार आना भी वन्द हो जाता है। शरीर दण्ड के समान कडा पड जाता है। इसीलिये इसे दण्डालसक कहा गया है। यहाँ आँतो मे मल पूर्णतया भरा रहेगा। वायु की ऊपर-नीचे घूमनेवाली गति भी वन्द हो जाती है। इस रोग का वर्णन चरक संहिता में है।

विलम्विका—

चरक सहिता में सुश्रुतोक्त विलम्विका को ही दण्डालसक वताते हुये यह लक्षण कहा गया है कि—दूपित भोजन कफ और वायु से निरुद्ध होने के कारण ऊपर या नीचे के मार्ग से नहीं निकलता। यह अत्यन्त कष्ट साध्य है। अन्न के आलसी होकर आँतो मे ठहरने से उसके निकलने मे विलम्व होता है। इसलिये विलम्विका कहा गया है।

विशेप—

अलसक एवं दण्डालसक (विलम्विका) दोनो विसूचिका से अत्यन्त भयानक हैं। इसलिये कि विसूचिका में वमन और अतिसार से अन्न का विप एवं उसके परिणाम से

---

१ मनुष्य के मूत्र से घृणा न करें। यह सर्प विप में जीवन दायी है। यह न हो सके तो द्रोण पुष्पी (गुम्मा) के रस ।

२ इसे असाध्य भी कहा गया है। कष्ट साध्यता या असाध्यता की कल्पना आप इसी से कर लीजिये कि इसमें अन्त्र इतना शिथिल हो जाता है कि उसमें तनिक भी गति नहीं होती। मल सव जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। यहाँ तक कि वह २२-२३ सेर तक एकत्र हो जाता है। परिणामत अन्त्र वहुत चौड़ा हो जाता है। यहाँ तक कि १५ ई० से ३० इन्च तक चौड़ा हो जाता है।

उत्पन्न अन्यान्य विकार शीघ्रता से निकलते हैं। परन्तु अलसक और विलम्बिका मे वमन और अतिसार न होने से अन्न का विष एवं अन्यान्य विकार आंतो एवं तत्पश्चात् सारे शरीर मे सञ्चित होकर आलसी बन कर बैठ जाता है। अत्यन्त तेजी से चिकित्सा न करने पर रोगी मृत्यु के मुख मे चला जाता है।

विसूचिका, अलसक, एवं दण्डालसक, (विलम्बिका) मे यह अन्तर है—

विसूचिका	अलसक	विलम्बिका (दण्डालसक)
१—इसमे वमन और अतिसार होता है।	१ इसमे वमन और अतिसार नही होता।	१—वमन अतिसार नहीं होता
२-सुई चुभने सी पीडा (तोद)	२—तोद का अभाव	२—तोद का अभाव
३—उदर शूल	३—किसी-किसी रोगी मे उदर शूल।	३—शूल शान्ति
४—हाथ पैर में ऐंठन	४—ऐंठन का अभाव	४—ऐंठन का अभाव
५—जम्भाई	५—जम्भाई का अभाव	५—जम्भाई का अभाव
६—उद्गार का अभाव	६—उद्गार (डकार)	६—उद्गार का अभाव
७—दाह	७—दाह का अभाव	७—दाह का अभाव
८—आनाह का अभाव	८—आनाह	८—आनाह
९—मल संचय न होने से अन्त्र की विस्तृति का अभाव।	९—मल सञ्चय से अन्त्र का विस्तार।	९—मल सञ्चय से अन्त्र का विस्तार।
१०—गुदा की विसर्जनी वलि काम करती है।	१०—विसर्जनी वलि शिथिल हो जाती है।	१०—विसर्जनी वलि शिथिल हो जाती है।
११—मृत्यु काल मे सधियो के शिथिल होने से शरीर ढीला रहता है।	११—इस दृष्टिकोण से शरीर की सामान्य स्थिति रहती है।	११—शरीर दण्ड के समान कडा हो जाता है।
१२—इसमे वमन-अतिसार रोका जाता है।	१२—इसमे वमन अतिसार कराया जाता है।	१२—इसमें भी वमन अतिसार कराया जाता है।
१३—सामान्यत क्षार का प्रयोग नहीं होता।	१३—क्षार का प्रयोग होता है।	१३—लाचारी मे क्षार का प्रयोग होता है।
१४—अत्यन्त बढने पर पष्णि या एडी मे दागना पडता है। अन्त्र छेदन नहीं होता।	१४—शल्य चिकित्सक अन्त्र छेदन करता है। उससे सामान्यत मृत्यु होती है।	१४—अन्त्र छेदन लाचारी से करते हैं, उससे सामन्यत. मृत्यु होती है।
१५—सामान्यत साध्य	१५—कष्ट साध्य	१५—कष्ट साध्य

अलसक और विलम्बिका की चिकित्सा—

१—तत्क्षण स्नेहन स्वेदन की बिना प्रतीक्षा किए पञ्च-कर्मोक्त वमन के विधान मे नमक युक्त उष्ण जल पिला कर वमन करा दें।

२—वमन के पश्चात् अथवा यदि वमन न हो तो भी एक छटाक एरण्ड तैल एव एक छटाक गोदुग्ध (दोनो को उष्ण कर) से पञ्च कर्मोक्त वस्ति विधान से गुदा में वस्ति दें[1]। वस्ति का अवसर शीघ्र न हो तो ग्लीसरीन या साबुन को वत्ती या हींग को गुदा मे प्रविष्ट करा दें। कोईना (महुआ का बीज या गुठली) को गरम पानी मे पीसकर उसमें कपडा सान कर उसकी बत्ती बना कर गुदा मे प्रविष्ट कराने से भी उत्तम काम होता है।

३—पेट पर विष्टब्धाजीर्णोक्त पलाशवन्दा इत्यादि अथवा दारुपट्क का लेप करें अथवा यवक्षार (अभाव में सज्जी खार या नवसादर) १ तोला को एक छटांक जौ के आटे में खट्टा मट्ठा (अभाव मे नीबू का रस या अन्य खटाई मिला लें) से सान कर उष्ण लेप[2] कर ऊपर से रूई चिपका कर कपडा बाध दें। उस पर न्यूनतम आधा घण्टा तक गरम पानी की बोतल से सेंक करें।

४—सावधान! तीक्ष्ण शूल होने पर भी तीक्ष्ण शूल को शान्त करने वाली औपधियाँ यथा अहिफेन या ऐस्प्रीन आदि के योग न दें। साधारण हीग और शंख आदि से काम चलायें। वमन एवं वस्ति द्वारा मल निकलने पर शूल शान्त हो ही जायेगा। इसलिये इन्हीं पर जोर दें।

५—मुख द्वारा रेचक औपधि देकर रेचन के चक्कर मे न पडें, मल निकालने के लिये वमन, वस्ति, फलवर्ती (गुदा मे प्रयुक्त वत्ती) और पेट पर के लेप से काम चलायें।

६—अनुपान मे उष्ण जल, निम्बू स्वरस युक्त उष्ण जल, शंख-द्रावक युक्त उष्ण जल काञ्जी और सिरका मे से किसी का व्यवहार करें। विलम्बिका में अन्य अनुपान से काम न चले तो शंख द्राव युक्त उष्ण जल का प्रयोग करें।

७—खाने वाली रस युक्त औपधि को चौबीस घण्टे मे पाँच बार से अधिक न देना अच्छा है। हाँ, हींग, काला नमक और अन्यान्य काष्ठौपधि को इससे अधिक बार दे सकते हैं।

औषधियाँ—

निम्नलिखित औपधियो में से किसी एक का अथवा कई का संयुक्त व्यवहार करें—

क्रव्याद रस १ रत्ती सेंधा नमक युक्त तक्र से।

वज्रक्षार ४ रत्ती नागर मोथा क्वाथ या उष्ण जल से।

---

[1] इस वस्ति को प्रति दिन दें। अथवा आवश्यकता पड़ने पर दिन में दो वार दें।

[2] इस लेप को भी आवश्यकता नुसार दिन में दो वार करें।

अग्नि कुमार १ रत्ती निम्बू के रस युक्त उष्ण जल से।

अग्नि तुण्डी वटी १ रत्ती " "

महाशंख वटी दो रत्ती तक्र, दही का पानी, कान्जी, सिरका, उष्ण जल में किसी से।

पथ्य—

रोग प्रकोप के समय अर्थात् मल न निकलने तक लंघन करायें। प्यास लगने पर उष्ण जल देना पडेगा। मल निकल जाने पर अजीर्ण के समान पथ्य यथा परवल, पपीता, पत्रशाक का रस, काला नमक भुना जीरा हींग युक्त तक्र आदि दें। दूसरे तीसरे दिन से क्रमश. मूग का यूष, खिचडी, गेंहूँ का फुलका आदि दें। काञ्जी, सिरका, तक्र, आदि भी चलता रहेगा। एक दो महीनो तक सावधानी से पथ्य पर रहे। फलो का रस वारम्बार दिया जा सकता है। मुनक्का और अंजीर खिलाया जा सकता है। इनका काढा भी अच्छा काम करता है। एक महीना तक सप्ताह मे एक बार निम्बू रस युक्त पानी एवं साबुन का निरूहण ले लेना अच्छा रहता है।

अपथ्य—

गुरु, अभिष्यन्दी एवं न पचने वाली सभी आहार दिवा शयन, (रात्रिजागरण होने पर दिवाशयन ठीक है) परिश्रम, व्यायाम, मैथुन, मानसिक विकार आदि अपथ्य हैं।

असाध्य लक्षण—

दण्डालसक या विलम्बिका असाध्य है। अलसक मे किसी प्रकार से मल न निकलने पर भयानकता समझिये। वस्ति द्रव्य का रुक जाना (रुकने पर क्षार उष्ण जल मे मिला कर वस्ति दे या फलवर्ती लगायें) भी खतरनाक है दात, नख, ओठ का काला पड़ जाना भी असाध्य लक्षण हैं।

—·०·—

तेरहवां अध्याय

क्रिमि रोग

शरीर मे अगणित क्रिमि अगणित व्याधियो एव उपद्रवो को उत्पन्न करते हैं। उनका वर्णन करना सम्भव नही। आयुर्वेद एवं अन्यान्य वेद, शास्त्रो और पुराणों आदि मे इतने क्रिमियो एवं उनसे होने वाले रोगो का वर्णन है जितने का अन्यत्र नहीं है। फिर भी रोग का प्रमुख कारण एव चिकित्सा का प्रमुख आधार इन्हें नही बनाया गया। ऐसा क्यो ? इसका उत्तर यहाँ देना पुस्तक को अप्रासंगिक शास्त्रार्थ का विषय बनाना होगा। इसके लिये लेखक की आगामी रचना दोष दर्शन देखें। आप इतना ही समझ लीजिये कि क्रिमि, दोष प्रकोपक कारणो मे से एक प्रमुख कारण हैं और कारण को निदान परिवर्जन के दृष्टि कोण से ध्यान मे रख कर इन्हे नष्ट करना होता है। आयुर्वेदीय संशोधन, संशमन चिकित्सा मे इसका पूर्णतया ध्यान रखा गया है। प्रत्येक रोग की चिकित्सा व्यवस्था (औषधि-अन्न-विहार) मे उस रोग के क्रिमि को नष्ट करने की क्षमता भर दी गयी है। यही कारण है जो केवल क्रिमि को दृष्टिकोण में रखने वाला चिकित्सक जहाँ सफल होता है वहीं त्रिदोष के सिद्धान्त के आधार पर चलने वाला चिकित्सक भी सफल होता है।

प्राय. ऐसा होता है कि केवल क्रिमि नाश करने के कारण शरीर भी नष्ट होने लगता है क्यो कि क्रिमि के जीवन को नष्ट करने वाली औषधियां निस्सन्देह मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, जिसके कारण रोगो को पाण्डु, कामला, हृद्रोग आदि अन्य भयानक रोग होने लगते हैं। आयुर्वेद में संशोधन चिकित्सा मे क्रिमियो की बाहर निकालने की व्यवस्था है। जिसमे मानव जीवन को क्रिमि नाशक औषधि की उग्रता से हानि नहीं होती। संशमन चिकित्सा में ऐसी व्यवस्था की गयी है जिससे रोगोत्पादक क्रिमि मात्र मर जाय और वह मानव जीवन को हानि न पहुचाये। यह व्यवस्था क्रिमि नाशक योग के मात्रा निर्धारण, क्रिकि नाशक औषधि की मृदुता एवं योग मे जीवन रक्षक अन्यान्य

औषधियों द्वारा सम्पन्न होती है। इसी कारण त्रिदोष के आधार पर चलने वाला चिकित्सक रोगी के जीवन को क्रिमियो के नष्ट करने के बाद भी सुरक्षित रखता है और उसे अन्य रोगो मे ग्रसित होने से बचाता है।

आढ्यवात या ऊरुस्तम्भ को छोडकर सशोधन चिकित्सा का महत्व संशमन से अधिक है। संशमन चिकित्सा द्वारा चिकित्सित रोगो मे भी अन्त मे अथवा साथ मे ही संशोधन चिकित्सा का विधान है। जहाँ पर संशोधन के योग्य शरीर नही है वहाँ ऐसी व्यवस्था फल-रस दूध आदि द्वारा की जाती है। जिससे मल कम बने और सशोधन चिकित्सा की आवश्यकता ही न पडे। इसके अभाव मे अवशिष्ट दोष अथवा क्रिमि को संशमन चिकित्सा द्वारा समाप्त कर दिया जाता है।

यह याद रखिये कि यदि मानव जीवन को अधिकतम स्थायी रूप मे रखना अभीष्ट हो तो क्रिमि नाशक उग्र औषधि मत दीजिये। मृदु औषधियो एवं संशोधन से ही काम चलाइये। यदि दुर्भाग्यवश असावधानी अथवा अनिवार्य कारणो से उग्र औषधि दे दी गयी है तो उसकी विषाक्तता से तन मन के कण-कण को बचाने के लिये जीवनीय पदार्थों यथा फलो का रस, दूध, शतावर, गुलकन्द, मुक्ता, हीरा, प्रवाल आदि का व्यवहार करें। यह भी याद रखिये कि जीवन जल या कफ या सोम है। अत समस्त जीवनीय द्रव्य कफ कारक ही होते है और कफ कारक द्रव्य क्रिमियों को भी पुष्ट करते एवं उत्पन्न करते हैं। इसलिये जहाँ-जहाँ क्रिमि नाशक औषधि की विषाक्तता से क्रिमि नष्ट हो गये हैं, वहाँ जीवनीय द्रव्यो का इस दृष्टिकोण से निर्द्वन्द्व प्रयोग करें। प्रतिज्ञा यह है कि वे पचते जाय एवं तन मन के लिये सात्म्य (अनुकूल) होते जांय। जहा विषाक्तता से क्रिमि पूर्णतया या अल्प मात्रा मे नष्ट न हुए हो और जीवन को भी हानि पहुँच रही हो वहा जीवनीय द्रव्यो द्वारा पहले जीवन को सम्भाल कर मृदु क्रिमि नाशक औषधियों एव सशोधन चिकित्सा द्वारा क्रिमियो को नष्ट करें। जीवनीय रसौषधिया यथा मुक्ता, प्रवाल, हीरा, स्वर्ण आदि क्रिमि की विषाक्तता नष्ट करती हैं पर क्रिमियो को बढाती नहीं।

इस अध्याय मे मानव जीवन के लिये हानिकारक क्रिमियो का संक्षिप्त भेद, कारण एव लक्षण बताकर सक्षिप्त चिकित्सा ही बतायी जायेगी।

क्रिमियों के भेद—

कुल मिला कर आश्रय के भेद से क्रिमियो के दो भेद होते हैं —

१—बाह्य क्रिमि

इनके अन्तर्गत बाल एवं वस्त्र मे रहने वाले ढील, जू (यूका), लीख एवं चिल्लर आदि आते हैं जो बालो एवं वस्त्रो की मलिनता से उत्पन्न होते हैं। इनके काटने से तोद (सूई चुभने की सी पीडा) एवं खुजली आदि होती है। इनकी चिकित्सा शरीर, बालो एव वस्त्रो की स्वच्छता है। अन्य उपाय जनता द्वारा अविदित नही है। ये विशेष कष्ट भी नहीं देते।

२—आभ्यन्तर क्रिमि—

ये शरीर के भीतर होते हैं। इनके कारण नाना प्रकार के रोग होते हैं। इसलिये प्रधानत. शास्त्र मे इन्ही का वर्णन मिलता है।

जन्मभेद से क्रिमियों के चार भेद होते हैं :—

१—स्वेदज या बाह्य क्रिमि :—

ये क्रिमि स्वेद से उत्पन्न होते हैं, बालो, वस्त्रो आदि मे रहते हैं। लीख (लिक्षा), जूँ (यूका या ढील) और चिल्लर आदि इनके नाम हैं। तोद, खुजली आदि उत्पन्न करते हैं। बालो एवं वस्त्रो की स्वच्छता से ये स्वत: नष्ट होते हैं। फिर भी निम्नलिखित उपायो मे आवश्यकतानुसार किसी का उपयोग करें :—

(क) धतूरे के पत्ते के रस मे भींगा हुआ वस्त्र रात में सिर पर बाधें। प्रात.काल सिर को गरम पानी से धो डालें। इससे बालो की यूका और लिक्षा नष्ट हो जाती हैं।

(ख) विडंग, मन.शिला एवं गन्धक का समभाग कल्क एक छटांक सरसो का तेल पाव भर और गो मूत्र दो सेर मिला कर मन्द आच से पाक कर केवल तेल बचा लें। यह तेल मालिश करने से समस्त बाह्य क्रिमियो को नष्ट करता है तथा उनसे उत्पन्न खुजली भी नष्ट करता है।

(ग) धतूरे के पत्ते का कल्क पाव भर, सरसो का तेल सेर भर, धतूरे के पत्ते का रस चार सेर, सब मिलाकर मन्द-मन्द आच से पकायें। केवल तेल रह जाय तो छान कर मालिश करें। बडा लाभदायी है। इसका नाम धत्तूर तैल है।

नोट—

उपर्युक्त तीनो प्रयोग जहर हैं अत. इनका आभ्यन्तरिक प्रयोग न करें।

२–पुरीषज क्रिमि—

ये क्रिमि पतले, सफेद, अत्यन्त छोटे होते हैं। प्रायः सयानो एवं बच्चो के पुरीष में आये दिन देखे जाते हैं। अधिक संख्या में निकलते हैं। इनसे गुदा मे खाज (विशेषत. बच्चों की गुदा मे खुजली या चूना लगना होता है जिसमे गुदा खुजलाते-खुजलाते लाल हो जाती है।) अतिसार या मलावरोध, आध्मान (पेट फूलना) शूल और अग्निमान्द्य हो जाता है। ये रस एवं रक्त को चूसते हैं। जिससे कृशता, पीलापन और त्वचा मे रूक्षता हो जाती है। जब आमाशय की ओर आते हैं तो श्वास में पुरीष की गन्ध आती है।

३–कफज क्रिमि—

कफ का मुख्य स्थान आमाशय है। ये क्रिमि वहीं अधिकतर उत्पन्न होते हैं। नीचे ऊपर चारो ओर गति करते हैं। मुंह की ओर से कभी-कभी बाहर निकलते हैं। इनमे

कोई लम्बे, कोई छोटे, कोई तात जैसे, कोई चिपटे एवं कोई धान्याकुर के समान होते हैं। केचुआ, स्फीत क्रिमि (फीते जैसे लम्बे कीडे) आदि कफज क्रिमि ही हैं। इनके कारण जी मिचलाना, वमन,अतिसार या मलावरोध, आध्मान, अरुचि, अजीर्ण, कृशता एवं ज्वर आदि होते हैं।

४-रक्तज क्रिमि—

ये केश रोम, नख, एव दात इत्यादि में उत्पन्न होकर उन्ही को खाते रहते हैं। इसी कारण इनका नाम केशाद, रोमाद या लोम द्वीप अथवा रोमविध्वंसी, नखाद दंताद इत्यादि पडा है। ये रक्तवाही संस्थान मे रहते हैं। अत रक्त एवं रक्त से बनने वाली अन्यान्य धातुओं के रोग उत्पन्न करते हैं। परिणामत खुजली, कुष्ठ इत्यादि रक्त रोग इनमे हो जाते हैं। केश एवं लोम झड जाते हैं, रोमाच, तोद (सूई चूभने सी पीडा या चुनचुनाहट) भी होते हैं। इनसे त्वचा, सिरा, स्नायु, मास एवं तरुणास्थिया नष्ट-प्राय या दूषित हो जाती हैं।

यहाँ पुन. स्पष्ट कर देना उत्तम होगा कि पुरीषज क्रिमि, कफज क्रिमि एवं रक्त क्रिमि सभी आभ्यन्तरिक क्रिमि हैं। जिनके उत्पन्न होने का प्रमुख एव अधिकाश कारण कफ कारक औषधि, अन्न और विहार हैं। इसमें भी विशेषत कफ कारक अन्न कारण होता है।

आभ्यन्तरिक क्रिमियों की उत्पत्ति—

मधुर अम्न लवण गुरु स्निग्ध विशेषत दूध, दही, घी, तैल, उरद, मास, मछली, गुड आदि पदार्थों, विरुद्धाहार, (दूध-मछली, खिचडी-दूध, मधु-घृत आदि) एवं शाक के अधिक सेवन से आभ्यन्तरिक क्रिमियो की उत्पत्ति होती है। यह भी याद रखिये कि किसी भी शारीरिक या मानसिक कारण से अजीर्ण हुआ तो उसमे क्रिमि उत्पन्न होते हैं। कुल मिला कर जहाँ भी सडन या इसका कारण होगा, वही क्रिमि उत्पन्न होगे। और, सडन दूषित जल या दूषित कफ से ही होती है। इसी लिये क्रिमि प्राय कफ कारक आहार विहारो से उत्पन्न होते हैं। आम या अपक्व रस, जो सर्व प्रधान कफ वर्गीय अपक्व धातु है, से ही प्रत्यक्षत समस्त रोगो अथवा पीडाओ का कारण स्वरूप आधार मिलता है। इसी आम से सडन होती है जिससे क्रिमि उत्पन्न होते हैं। कुल मिला कर कारण स्वरूप आधार आम से रोगो की उत्पत्ति माने अथवा आम से उत्पन्न होने वाले क्रिमियो से रोग की उत्पत्ति माने बात एक ही है।

रोगो की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार समझ लें--

विविधाहित सेवन से दोष प्रकोप, दोष प्रकोप से सभी अग्निमान्द्य, अग्निमान्द्य से आम, आम से क्रिमि और क्रिमियो से प्रत्यक्षत रोग होता है।

वाह्य क्रिमियो (पूर्वोक्त स्वेदज क्रिमियो को छोड कर) से जो रोग होते हैं वे आगन्तुक

रोग होंगे। यहाँ यह भी समझ लीजिये कि प्रत्येक रोग आगन्तुक एवं प्रत्येक रोग दोषज हो सकता है। दोषज (निज) और आगन्तुक का भेद तो स्थूल रूप से चिकित्सा सौकर्य या व्यवहार के लिये किया गया है। अब यहाँ इससे अधिक गम्भीरता में जाना अप्रासंगिक होगा।

आभ्यन्तरिक क्रिमि से उत्पन्न लक्षण--

आभ्यन्तरिक क्रिमियो से जैसा कि स्पष्ट उल्लेख है अगणित रोग होते है। व्यापक दृष्टि से देखने पर जिनका पता चल जाता है। यत. स्पष्ट रूप से उदर में अधिकांशतः क्रिमियो की उत्पत्ति होती है। इसी लिये वहाँ उत्पन्न क्रिमियों से उत्पन्न होने वाले लक्षण विशेष रूप से लिखे जाते है।

उदर में पीडा, आध्मान, आमाशय और पक्वाशय मे शूल, हृदय मे पीडा, अतिसार, वमन, जी मचलना, अरुचि, क्षुधा नाश, चक्कर आना, रोमाञ्च, मुह में दुर्गन्ध, निद्रा मे दाँत कटकटाना, गुदा एवं नाक में खुजली, शरीर मे रूक्षता एवं विवर्णता और मन्द ज्वर, ये लक्षण उदर मे क्रिमि हो जाने पर होते है। इन लक्षणो में से अधिकांश के उत्पन्न होने पर क्रिमियो पर अवश्य ध्यान दें।

उदर में क्रिमि हो जाने पर आखो की निचली पलको मे मोटी-मोटी खड़ी या तिरछी धारियाँ (सिराओ की) पड जाती है। पलकें कुछ मोटी भी हो जाती है। यह लक्षण अभी तक गलत सिद्ध नहीं हुआ। इनका उल्लेख शास्त्रो में कहाँ है यह खोजने का विषय है। पर हमारे अनुभव द्वारा यह सिद्ध है।

आभ्यन्तर क्रिमि चिकित्सा का सामान्य सूत्र—

पुरीषज एवं कफज इन दोनो प्रकार के क्रिमियो मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान दें—

१—पूर्वोक्त आभ्यन्तर क्रिमियों के उत्पादक कारणों का त्याग करें। विशेषत मधुर स्निग्ध विरुद्धाहार, मास मछली एवं उरद का परित्याग अवश्य कर दें।

२—यद्यपि लवण का निषेध है पर उपर्युक्त नम्बर १ के विशेषत. परित्याग योग्य पदार्थों को छोड़ कर शेष नमकीन पदार्थ सेवन कर सकते हैं। यदि मधुर-लवण अम्ल तीनो रस का सेवन सर्वथा छोड़ कर कटु, कषाय व तिक्त रसो का ही सेवन करें तो सर्वोत्तम है।

३—क्रिमि निकल जाने या नष्ट हो जाने के न्यूनतम २ मास आगे तक पथ्य करें। जिससे क्रिमियो के अण्डे या कहीं कोने मे छिपे हुए क्रिमि भी नष्ट हो जांय, नहीं तो एक भी अण्डा या दुर्बल क्रिमि पुन. असंख्य क्रिमियो को उत्पन्न कर देगा।

४—सर्वप्रथम अवसर हो तो स्नेहन (अपथ्य होने पर भी संशोधन के पूर्व करने से घबड़ावें नहीं) स्वेदन के बाद सहन कर सकने योग्य पर्याप्त वमन विरेचन करायें।

तत्पश्चात् क्रिमिनाशक उपायो का अवलम्बन करें। स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन[1] में भी क्रिमि नाशक औषधियो एवं उनसे सिद्ध पदार्थों का व्यवहार करें। पथ्य में भी इसी पर ध्यान दें।

५—वमन के आधा घण्टा पूर्व क्रिमि उत्पन्न करने वाले पदार्थ खिलायें। तत्पश्चात् वमन औषधि पिलायें। इसी प्रकार विरेचन के पूर्व भी करें। जिससे क्रिमि पदार्थ की ओर खूब आकृष्ट हो और संशोधन से सरलता से बाहर आ जांय। इस दृष्टिकोण से केवल गुड ही छटाक आधपाव तक खा लें तो भी उत्तम होगा।

६—किन्हीं कारणो से वमन सम्भव न हो तो विरेचन अवश्य करायें।

पुरीषज क्रिमि चिकित्सा—

१—प्रात काल स्नानादि मे निवृत होने पर सुरसादि गण (सु०सू०अ०३८) विडंग, अजवाईन पलाशवन्दा और तुलसी मे सिद्ध भोजन देकर साधारण विरेचनार्थ या निशोथ पञ्च सकार चूर्ण, त्रिफला चूर्ण मे से किसी एक को ३ माशा खिला कर विडंग क्वाथ पिला करा दें। इससे विरेचन द्वारा अन्त्र गत क्रिमि बाहर निकल जायेंगें।

२—नम्बर १ के क्रम के दूसरे दिन प्रात काल छटाक-आधापाव गुड खिलाकर आधा घण्टा बाद अजवाईन का चूर्ण ३ माशा विडंग के क्वाथ के साथ खिला दें। उसके आधा घण्टा बाद एरण्ड तैल से सम्यक् विरेचन करा दें। एरण्ड तैल की सामान्य मात्रा २ तोला और विशेष मात्रा १ छ० है।

३—नम्बर २ के दूसरे दिन सुरसादि गण (सू०सू०अ०३८) या विडंग या पलाश-वन्दा से सिद्ध तेल की अनुवासन वस्ति दें।

विशेष—

(१) नम्बर १, २ एवं ३ के उपचार के औषधि काल के अतिरिक्त कालो अर्थात् दोपहर, सायं और रात क्रिमि नाशक औषधियाँ खिलायें। ये औषधिया एक, दो, तीन् के उपचारो के समाप्त होने के बाद भी आवश्यकतानुसार न्यूनतम एक मास तक खिलायी जांय।

(२) सुरसादिगण न मिले तो अन्यान्य क्रिमिनाशक द्रव्यो यथा विडंग, पलाशवन्दा तुलसी आदि का व्यवहार करें।

सामान्य औषधियां[2]

कच्ची सोपाडी का कल्क (पानी या किसी क्रिमिघ्न द्रव्यों मे बनी चटनी) ४ रत्ती से एक माशा, जम्बीरी नीबू के रस से।

---

१ वमन के लिये यदि क्रिमिनाशक औषधियों का चुनाव न सम्भव हो तो साधारण वमन कारक औषधि मैनफल का प्रयोग करे। विरेचन के लिये ऐसी स्थिति में नाराच रस अश्वकन्चुकी रस, इच्छा भेदी रस, नारायण चूर्ण में से किसी एक का व्यवहार करे। २ इनमें से किसी एक या आवश्यकतानुसार कई का संयुक्त उपयोग करे।

पलाशबीज (पलाश बन्दा) चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा, अजवाईन के क्वाथ से ।
कबीला चूर्ण[1] ४ माशा से ६ माशा, गुड व उष्ण जल से ।
पलाश बीजादिचूर्ण ३ माशा,[2] गुड़ और उष्णजल से केचुआ में विशेष हितकर है ।
पलाश बीज चूर्ण व अजवाइन चूर्ण सम भाग कुल मात्रा एक माशा गरम जल से ।
क्रिमिमुद्गर रस २ रत्ती, सहपान मधु एव अनुपान नागरमोथा क्वाथ से ।
क्रिमिघातिनी गुटिका ४ रत्ती, नागरमोथा क्वाथ से ।
पारशीयादि चूर्ण ३ माशा, मधु से केचुए के लिये विशिष्ट है ।
क्रिमि कुठार रस २ रत्ती सत्यानाशी या भंडभाड की जड के क्वाथ के साथ । इसमें कुचिला है ।

विडंगादि चूर्ण २ माशा, तक्र से ।

निम्नलिखित दो क्वाथो मे से किसी एक का प्रयोग भी प्रात सायं स्वतन्त्र या अनुपान रूप मे बड़ा लाभदायी होता है—

मुस्तादि कषाय—

नागर मोथा, मूसा कर्णी, हर्रा, बहेरा, आवला, सहिजन, देवदारु का काढा बना कर उसमे प्रति मात्रा पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती और विडंग का चूर्ण एक माशा डाल दें ।

त्रिकट्वादि कषाय—

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रा, बहेरा, आंवला, नीम की छाल निशोथ, बालबच, इन्द्र जौ का काढा बनाकर उसमे प्रति मात्रा गोमूत्र २ तो० मिल सके तो छोड दें ।

निरूहण वस्ति—

पुरीषज क्रिमि मे धतूर के पत्ते के काढे से दी गयी निरूहण वस्ति बडा लाभ करती है । विडंग, अजवाइन, कबीला और पलाश बीज के क्वाथ मे विडंगाद्य तैल दो तोला डाल कर निरूहण वस्ति देने से भी बडा लाभ होता है ।

गुदा मे खुजली या चूना लगना—

पुरीषज क्रिमि के कारण गुदा मे बहुत खुजली होती है । वह स्थान खुजली से लाल हो जाता है उसमे निम्नलिखित कोई प्रयोग करें ।

१—धतूरे के पत्तो का रस लगायें । २—इन्द्रायण की जड पानी में घिस कर गुदा मे बाहर भीतर लगायें । ३—तितलौकी का कल्क गुदा के भीतर बाहर लगायें । ४—जैतून का तेल लगायें ।

कफज क्रिमि की चिकित्सा—

कफज क्रिमि मे पुरीषज क्रिमि की पूरी चिकित्सा (निरूहण को छोड कर) अथवा

---

१ व २ इन्हें देने के आधा घंटा बाद प्रात काल एरण्ड तैल से विरेचन करा दें। एरण्ड तेल को विडंग क्वाथ से पिलाये तो उत्तम अन्यथा उष्ण जल से दें। इस प्रकार तीन चार दिन तक दें ।

औषधियां काम करती हैं। विशेष बात यह है कि इसमें क्रिमि नाशक औषधि दिन भर खिला कर दूसरे दिन प्रातः वमन के विधान से तितलौकी और मैनफल के काढे से वमन करा दें तो उत्तम है। यदि वमन उचित न हो तो रेचन कर्म अवश्य करें।

सामान्य औषधियाँ—

निम्नलिखित में से एक का अथवा आवश्यकतानुसार कई का संयुक्त व्यवहार करें:—

क्रिमि कालानल रस दो रत्ती, विडंग क्वाथ से।

क्रिमि कालानल रस २ र०, धनिया-जीरा क्वाथ से।

क्रिमिघ्न रस २ र०, मूसाकर्णी रस या नागर मोथा क्वाथ से।

कीट मर्द रस २ र०, नागर मोथा क्वाथ से।

विडंग लौह २ र० मुस्ताद्य क्वाथ से।

नोट—

यवोना चूर्ण (पुरीषज क्रिमि चिकित्सा) में का प्रयोग भी अवश्य करें।

नाक या मस्तिष्क गत क्रिमि—

— घोडे का पुरीष छाया में सुखाकर विडंग क्वाथ से दस भावना देकर सुखा लें इस चूर्ण का नस्य देने से नाक में क्रिमि गिरेंगे।

तृणकान्त पिष्टी (यूनानी द्रव्य कहरवा समई को गुलाब जल में घोट कर सुखा पिष्टी तैयार करें) की नस्य कुछ दिनों (२० दिन लगभग) तक प्रति दिन ३ बार देने से नाक के क्रिमि गिरते हैं। नासिका से जाने वाला रक्त भी इससे बन्द होता है।

सभी क्रिमियों में भोजनोत्तर विडंगारिष्ट डेढ़ तोले समान जल मिलाकर पिलायें।

रक्तज क्रिमियों की चिकित्सा कुष्ठ रोग में निवेदन करेंगे।

—:o:—

चौदहवाँ अध्याय

पाण्डु, कामला, काला ज्वर

पाण्डु का अर्थ होता है पीला। शरीर मे उत्तम वर्ण उचित परिमाण के शुद्ध रक्त पर निर्भर है। रक्त की कमी या उसमें दोष आ जाने से वर्ण मे अनेक प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं। रक्त का एक नाम लोहित भी है जिसका तात्पर्य है कि रक्त मे लोह है। बस इस लोहतत्व की कमी से शरीर मे पीलापन आ जाता है। किसी कारण से रक्त निकलने या रक्त के निर्माण न होने अथवा रक्तान्तर्गतलोह के नष्ट होने से लोह की कमी हो जाती है। परिणाम स्वरूप पाण्डु रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त क्रिमियो द्वारा रक्त के चूसे जाने पर भी पाण्डुता हो जाती है।

कारण और लक्षण —

अर्श, क्षत या अन्य कारण से रक्त नष्ट होने पर होने वाली पाण्डुता के सम्बन्ध मे अधिक समझाने को आवश्यकता नहीं है। इस लिये कि वह प्रत्यक्ष कारण रक्तक्षय है। और रक्त पान, रसयुक्त फल, दूध आदि के सेवन से वहां तत्काल ठीक भी हो जाता है। जहा पर रक्त क्षय स्पष्ट नही दिखायी पडता, वहाँ सामान्य कारण रस धातु से रक्त का निर्माण न होना एवं रक्त के भीतर लोहित कणो का नष्ट होना है। इन दोनो मे बहुत से कारण हैं, पर सामान्य रूप से होने वाला कारण कोष्ठबद्धता है। इससे उदर मे मल-सञ्चय होता है। परिणामत. आहार का रस नहीं बन पाता। बना हुआ आहार रस भी यकृत मे रक्त बनने के लिये जाने नहीं पाता। रक्त न बनने से रस का आम बन जाता है। रस को रक्त बनाने एवं आम को पचाने मे यकृतप्लीहा को अधिक मेहनत पडती है। इस कारण एवं अवशिष्ट आम के वहां संचय होने से वे सूज जाते हैं। तब पसलियो के नीचे पेट मे दाहिने एवं बायें दोनो ओर जरा दबा कर स्पर्श करने से वे विदित होते हैं। लोक में इसे लीवर और बरवट का बढना कहा जाता है। कोष्ठबद्धता, यकृत्प्लीहा की वृद्धि, रक्त बनाने योग्य रस धातु का अभाव यही पाण्डु रोग की संक्षिप्त सम्प्राप्ति है।

कोष्ठबद्धता का कारण—

अपक्व आहार, मल-मूत्रादि के वेग का अवरोध, गुरु, स्निग्ध, क्षारीय, अभिष्यन्दी आहार, दिवास्वप्न, अधिक मैथुन, मद्यपान एवं व्यायामादि है। ये कोष्ठबद्धता अथवा पाण्डु के विप्रकृष्ट (दूरस्थ) कारण हैं।

मिट्टी खाना कोष्ठबद्धता अथवा पाण्डु रोग का एक सन्निकृष्ट (सन्निकट) कारण है। इससे भी रसवाही स्रोत रुक जाने से रक्त का निर्माण नही हो पाता। परिणामत पूर्वोक्त सभी सम्प्राप्ति होती है।

जहाँ तक लक्षणो का प्रश्न है वहाँ तक पाण्डु मे पाण्डुता (पीलापन या रक्ताल्पता) विशिष्ट व्यक्तित्व वाला लक्षण (व्यञ्जन) है। शोथ, (शिर) शूल, हृद्दौर्बल्य, भ्रम, कोष्ठबद्धता[1], मूत्राल्पता, नख-मूत्र-मल मे पीतता, किसी रोगी में खट्टी डकार व कण्ठ मे जलन आदि लक्षण भी होते है। ये ही लक्षण लगभग पूर्वरूप मे भी होते हैं। अन्त मे शोथ के साथ श्वास कष्ट भी हो जाता है। मिट्टी भक्षण करने से उत्पन्न रोग में प्राय शोथ के साथ श्वास कष्ट का दौरा होता है। इतना कि मालूम पडता है कि रोगी अब मर जायेगा। पर विरेचन हो जाने पर शीघ्र लाभ होकर कुछ दिनो के लिये रोगी अच्छा हो जाया करता है। पुन. मिट्टी खाने पर यही स्थिति हो जाया करती है।

इसमें वात, पित्त, कफ दोष, एवं रस, रक्त, त्वचा, मास दूष्य होता है। मिट्टी दोष प्रकोपक कारण है जिसमे मधुर मिट्टी कफ, ऊसर की मिट्टी (क्षारीय) पित्त एवं कसैली मिट्टी वात को कुपित करती है। इन सब दृष्टियो से पाँच प्रकार का पाण्डु कहा गया है .—

१—वातज, २—पित्तज, ३—कफज, ४—सन्निपातज ५—मृत्तिका जन्य। सभी मे अपने दोष एव दूष्य की विशिष्टता के साथ उपर्युक्त पाण्डु के व्यञ्जन और शोथादि सामान्य लक्षण मिलते हैं .—

असाध्य लक्षण

अतिकाल (लगभग ३ वर्ष) से उत्पन्न होने के कारण खर होना (पुरातन होना), शोथ होना[2], कुछ बँधा एव हरापन तथा कफ से युक्त मल निकलना, श्रीराहित्य, श्वेत वर्ण का आधिक्य, वमन-मूर्च्छा-प्यास से युक्त होना, अतिशय रक्त क्षय के कारण पाण्डुता से आगे बढकर श्वेतता होना, नख दन्त-नेत्र का पीला होना, समस्त पदार्थों का पीला दिखायी पडना, हाथ-पैर मे शोथ एव धड मे क्षीणता, धड मे सूजन एवं हाथ-पैर मे क्षीणता गुदा-लिंग-अण्डकोश मे शोथ तथा ज्वर व अतिसार दोनो से पीडित होना। इन लक्षणो या इन उपद्रवो से युक्त पाण्डु रोगी को छोडकर शेष की चिकित्सा करनी चाहिये।

---

१ पित्त जन्य एव क्रिमिजन्य पाण्डु में अतिसार होता है।
२ शोथ युक्त पाण्डु रोगी साध्य भी होते हैं

चिकित्सा—

चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान दें :—

१—कोष्ठबद्धता है तो उसे शीघ्र दूर करें एवं प्रतिदिन कोष्ठ शुद्ध होता रहे इसका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये त्रिफला, कुटकी, निशोथ मे से एक या इनसे युक्त योग का सामान्यत. व्यवहार होता है। यथोचित मात्रा मे वमन और विरेचन दोनो करायें। वमन सम्भव न हो तो विरेचन अवश्य करायें। वमन विरेचन के लिये स्नेहन कराना हो तो हलदी से पके घृत का व्यवहार करें।

२—औषधि मे लोह या मण्डूर स्वतन्त्र या योग के साथ अवश्य दें।

३—अनुपान मे गदहपुरना[1] का प्रयोग अवश्य करायें। फलत्रिकादि क्वाथ (हर्रा बहेर्रा, आंवला, गुरुच अडूसा की पत्ती, कुटकी, चिरायता निम्ब की छाल) मधु डालकर उत्तम लाभ करता है। इसी में यदि गदह पुरना स्वरस मिला दें तो अत्यन्त लाभकारी है।

४—पीने का पानी भी गदहपुरना पका कर दें अथवा गदहपुरना का अर्क ही पिलायें। गो मूत्र मिल सके तो दो तोला या एक छटांक की मात्रा से एक या दो बार पिलावें।

५—नमक अवश्य छुडा दें। तनिक भी नमक रोगी को न दें। यथा सम्भव अधिकतम कम करते-करते सर्वथा नमक छोड़ देने मे सुविधा होती है। एकाएक सर्वथा छोडने से कुछ कमजोरी मालूम पडती है। ६-७ दिन के बाद अभ्यास हो जाने से नमक विहीन भोजन ही अच्छा लगता है। नमक विहीन भिण्डी, कुनरू, भट्टा अच्छे लगते हैं। आलू भी नमक विहीन अच्छा लगता है। पर उससे तनिक हानि होती है।

६—शास्त्रो मे घृत का व्यवहार लिखा है पर यह वातिक और पैत्तिक पाण्डु मे दिया जाय तो उत्तम है। सो भी पाण्डु नाशक औषधियो से सिद्ध कर। अन्यथा सभी स्निग्ध पदार्थ त्याज्य हैं। मधु न दें। तीक्ष्ण, अम्ल, क्षार निषिद्ध हैं। फिर भी अत्यन्त कम मात्रा में अनारदाना, अमल बेत-आलू बुखारा आदि अम्ल एवं गोमूत्र तथा पत्रशाक के रूप मे क्षार दिया जा सकता है। नमक की अपेक्षा ये कम अहितकर है। टमाटर अम्ल होने पर भी रक्त वर्धक है। इस लिए इसे उचित मात्रा में दे सकते हैं।

७—गोदुग्ध खूब दें। फलो का रस, चीनी, मुनक्का, खजूर, पपीता, अनार, सेव, अंगूर, टमाटर, गेहूँ, पुराना चावल, दलिया, सभी पत्र शाक, बथुआ, मोआपालक, गदह पुरना, पोई, भिण्डी, कुनरु, नेनुआ, सरपुतिया, लौआ, करैला आदि पथ्य हैं। खीर भी दी जा सकती है। गाजर का रस भी रक्तवर्धक है।

---

[1] गदह पुरना शीत वीर्य होने से अधिक व्यवहार होने पर कास-श्वास कष्ट भी उत्पन्न करती हैं ऐसी अवस्था में मधु मिला दें। अथवा इसका काढा दें। लेकिन रस अधिक लामदायी है।

८—भोजनोत्तर कुमार्यासव डेढ तोला सम जल मिलाकर अवश्य दें, अभाव में लोहासव भी दे सकते हैं।

सामान्य औषधियाँ

इनमे किसी एक अथवा कई का संयुक्त व्यवहार करें।

पुनर्नवा मण्डूर १ मा०, पुनर्नवा स्वरस या उष्ण जल से।

नवायस लौह या नवायस चूर्ण ४ रत्ती, घृत मधु से।

पाण्डु सूदन रस १ रत्ती, मधु से (शीतल जल एवं अम्ल न दें।)

धात्री लौह ४ रत्ती, मधु से।

मण्डूर भस्म ४ रत्ती, मधु से।

लौह भस्म २ रत्ती, मधु से।

योगराज रस (भै०र०) ४ रत्ती, मधु से कबूतर, मकोय, कुलथी न दें। यह भीषण पाण्डु या ज्वर युक्त पाण्डु में विशेष हितकारी है।

त्र्यूषणादि मण्डूर ३ रत्ती, तक्र से।

त्रैलोक्य सुन्दर रस ४ र०, मिश्री या मधु से।

निशा लौह ४ रत्ती मधु घृत से।

काशीस भस्म २ रत्ती, मधु या उष्ण जल से।

नोट—

१—क्रिमिज पाण्डु रोग मे क्रिमि नाशन का भी उपाय करें। इसमें विडगांद्य लौह २ र० की मात्रा से गोमूत्र पथवा पुनर्नवा और विडंग क्वाथ से विशेष हितकारी होता है।

२—यदि तैल मालिश की आवश्यकता हो तो पुनर्नवाद्य तैल की मालिश करें।

३—रक्त क्षय जन्य में हृदय को सुरक्षित करने के लिये मुक्तापिष्टी (अभाव मे प्रवाल या तृणकान्त पिष्टी) अनार रस का व्यवहार भी करें।

४—मृत्तिका जन्य मे विरेचन द्वारा मिट्टी निकालने पर पहले और अधिक ध्यान दें। यह भी ध्यान रक्खें कि रोगी पुन मिट्टी न खा सके।

का म ला

इसमे पाण्डु के सब लक्षण मिलते हैं। कारण, खाने वाली औषधियाँ अनुपान, पथ्यापथ्य, साध्यासाध्य आदि भी पाण्डु रोग के समान ही हैं। अन्तर यह है कि इसमे पित्त प्रधान दोष कोष्ठ (आमाशय, पक्वाशय, मूत्राशय, यकृत, हृदय, अन्त्र और फुफ्फुस) एवं शाखा (रस, रक्त मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र) दोनो मे रहता है। तो पाण्डु में केवल कोष्ट मे रहता है। दूसरा अन्तर यह है कि कामला में आखो का पीला होना अनिवार्य है। पाण्डु मे ऐसा होना अनिवार्य नही।

सामान्य औषधिया—

हरिद्रा घृत या द्राक्षाद्य घृत ६ माशा की मात्रा से उष्ण जल से दें। कामलान्तक लौह की २ रत्ती की मात्रा मधु से दें। पाण्डु रोगोक्त नवायस लौह, पुनर्नवा मण्डूर, निशा लौह बहुत लाभदायी है। दार्व्यादि लौह ४ रत्ती की मात्रा से पुनर्नवा स्वरस के साथ देने से बडा लाभ होता है। इनमे एक या कई का संयुक्त उपयोग करें।

इसमे अञ्जन और नस्य अवश्य कराया जाता है। अतः द्रोण पुष्पी के रस का अथवा हल्दी, गेरू एवं आवँला के चूर्ण का अञ्जन करायें। नस्य के लिए कबीला का चूर्ण या बाँझकोडा का चूर्ण का प्रयोग कराये। कामला मे रेचन के लिए निशोथ अथवा इन्द्रायण का चूर्ण मिश्री मिला कर गरमजल से दें तो उत्तम है।

हलीमक :—

यह वात एवं पित्त की प्रधानता से होने वाली पाण्डु रोग की ही कठिन अवस्था विशेष है। पाण्डु के सभी लक्षणो के अतिरिक्त ये लक्षण मिलते हैं :—

शरीर हरा या श्वेत हो जाना एव वल, वर्ण, उत्साह आदि का अत्यधिक क्षय।

चिकित्सा आदि पाण्डु के समान ही होगी। विशिष्ट औषधियां ये हैं:—लौह भस्म २ रत्ती व नागर मोथा चूर्ण एक माशा मिला कर खैरसार के काढे से दें अथवा मिश्री, मुलहठी, हर्रा, वहेर्रा, आंवला हल्दी, दारुहल्दी मिश्री का सम भाग चूर्ण १ माशा या दो माशा की मात्रा से लौह भस्म २ रत्ती मिला कर खिलायें।

कालाज्वर या कालाजार

आजकल कालाजार अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया है। साधारण शिक्षित इसके लक्षणो से प्रायः परिचित हैं। अत. इसका संक्षिप्त लक्षण लिखना अभीष्ट है:—इसमे ज्वर, यकृत्प्लीहा की वृद्धि, रक्ताल्पता, कृशता, और दुर्बलता हो जाती है। शरीर का वर्ण वदल जाता है। ९९ प्रतिशत रोगी काले पड जाते हैं। विलम्ब होने पर कास आदि क्षय के लक्षण मिलने लगते हैं। कभी-कभी रक्त स्राव भी होता है। वाद मे चल कर शोथ और जलोदर हो जाता है। विषम ज्वर से इसकी समानता मिलती रहती है। जिसका अन्तर इस प्रकार है।

काला ज्वर	विषम ज्वर
१—अनियमित प्राय. दिन मे दो वार ज्वर होता है।	सततक को छोडकर सब मे एक ही वार ज्वर होता है। ज्वर का समय प्रति तीसरे दिन या चौथे दिन पडता है।
२—विना जाडा के ज्वरारम्भ होता है।	जाडा के साथ ज्वरारम्भ होता है।

कालाज्वर एवं विषमज्वर का अन्तर
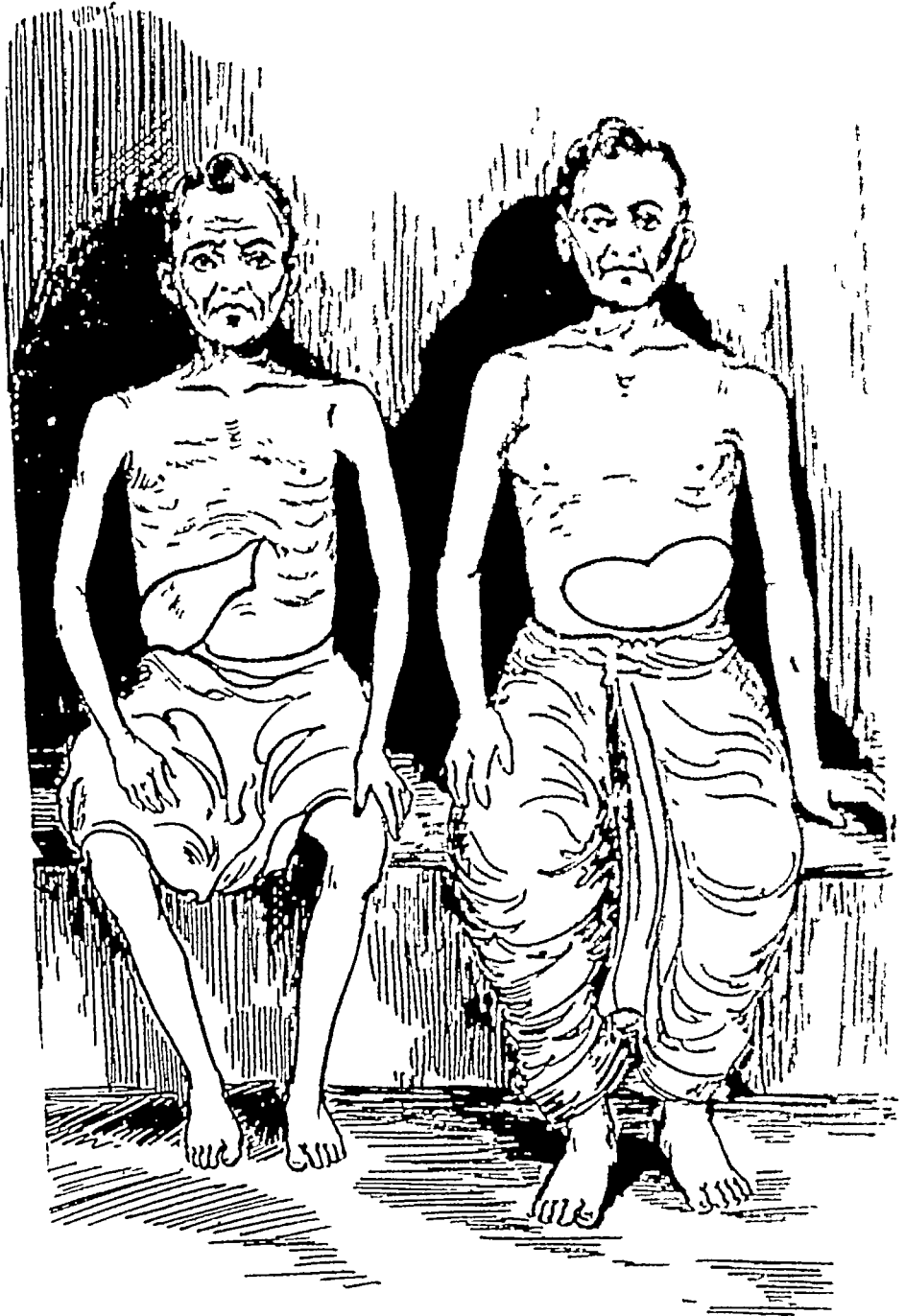
(पृष्ठ २६१ के सम्मुख)

काला ज्वर	विषम ज्वर
३—भूख लगती है।	भूख कम लगती है।
४—यकृत्प्लीहा दोनो की वृद्धि होती है।	प्राय केवल प्लीहा की, कभी-कभी यकृत की अल्प वृद्धि होती है।
५—बल-मास का क्षय होता है।	बल-मास का क्षय न होकर साधारण पुष्टि बनी रहती है।
६—वमन नही होती।	अधिकाश रोगियो मे वमन होती है।
७—जिह्वा स्वच्छ रहती है।	जिह्वा मलिन रहती है।
८—कभी-कभी किसी रोगी मे रक्त स्राव होता है।	कभी किसी रोगी मे रक्त स्राव नहीं होता।
९—अञ्जन (अण्टीमनी) से लाभ क्विनाईन से हानि होती है।	क्विनाईन से लाभ अञ्जन से हानि होगी।

काला ज्वर को आयुर्वेद में क्या कहा जाय इसका पूर्णतया निर्णय नहीं हुआ और किसी चिकित्सा विज्ञान में वर्णित किसी व्याधि का सामञ्जस्य अन्य चिकित्सा प्रणाली की बीमारी मे सर्वथा बैठाना कठिन है। क्योकि दोनो में दृष्टिकोण का अन्तर पडता है। इस लिए सर्वथा सामञ्जस्य करने का दावा हम नही कर सकते। अधिकांश लक्षणो के मिलने के आधार पर कालाजार को अधिकाश वैद्य सुश्रुत उत्तर तन्त्र में वर्णित व्याधि लाघरक या अलसक मानते हैं।

उपर्युक्त अन्तरो से इसका सही निदान हो जायेगा यदि न हो सके तो शुद्ध कृष्ण अञ्जन चूर्ण देकर निर्णय कर लें। इसके प्रयोग से लाभ हो तो कालाज्वर अन्यथा अन्य ज्वर समझिये। मलेरिया से अधिक सामञ्जस्य मिलता है इसलिए इसी का अन्तर बताया गया है। टाइफाइड मे भी कालाजार या मलेरिया निर्णय कर चिकित्सा करने से बडी हानि होती है। इसी प्रकार कालज्वर को मलेरिया या टाइफाइड मानकर चिकित्सा करने से हानि होती है।

चिकित्सा—

साधारणत: जीर्ण ज्वर के समान चिकित्सा, पथ्या-पथ्य आदि होता है पर अञ्जन का प्रयोग इसमें विशेष होता है। जलोदर, शोथ या रक्तस्राव होने पर उनका अलग से उपचार करना चाहिए।

सामान्य औषधियाँ—

१—प्रवाल मुक्तादि योग ३ रत्ती की प्रतिमात्रा कालमेघ के रस दो माशा और म्योडी की पत्ती के रस २ माशा मे मधु मिला कर देने से बडा लाभ होता है। रक्त स्राव मे भी यह हितकारी है। हृदय को शक्ति देता है।

२—ज्वर विशेष हो तो उपर्युक्त प्रवाल मुक्तादि योग में ज्वर कुन्जर पारीन्द्र रस एक रत्ती की मात्रा से मिला दें।

३—स्वर्ण वसन्त मालती २ रत्ती पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह १ रत्ती मिला कर तुलसी एवं म्योढ़ी की पत्ती के रस मे देने से भी बड़ा लाभ होता है। इस लोहे के अभाव में आवश्यकतानुसार सर्वज्वर हर लौह या चन्दनादि लौह दिया जा सकता है।

४—क्षय के लक्षण मिलने पर औषधियो में जयमंगल रस एक रत्ती की मात्रा से अवश्य मिला दें।

५—यकृत्प्लीहा पर देवदार्वादि या सहिजन की छाल को गोमूत्र मे पीस कर उष्ण कर दो बार लेप करें तो उत्तम है। अनुपान मे कालमेघ, म्योढ़ी, गुरुच, तुलसी का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।

पथ्य—

बकरी का दूध सर्व श्रेष्ठ है। अभाव मे गाय का दूध दें। उसमे पिप्पली अवश्य पका दें। यदि २ या ३ पिप्पली प्रतिदिन बढाते हुए १०–१२ दिन तक ले जाय तो उत्तम है। गेहूं का दलिया, मौसम्मी, मुनक्का, अंजीर, खजूर, पपीता भी दिया जा सकता है। जलोदर, शोथ या रक्त स्राव होने पर इन रोगो की पथ्य व्यवस्था जो आगे क्रमश उदर, शोथ एवं रक्त-पित्त में वर्णित है; करें।
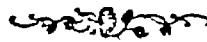
पंद्रहवाँ अध्याय

रक्त पित्त

कारण और लक्षण--

घाम, व्यायाम, श्रम, शोक, क्रोध, मद्य, मैथुन, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, कटु कान्जी, तैल, मछली, मास, आदि का अधिक सेवन करने से कुपित हुआ पित्त रक्त को विदग्ध कर देता है। उस प्रतप्त रक्त के चारो ओर घूमने से प्रतप्त रक्त वाहिनियो के आकार मे विस्तार हो जाता है। परिणामत उनमें सुषिरता (छिद्रमयत्व) हो जाती है। उन छिद्रो से रिस रिस (चू चू) कर इकट्ठा हुआ रक्त आमाशय मे आकर ऊपर मुख नासिका आदि से, नीचे आन्त्र, वस्ति, गर्भाशय मे आकर मूत्र द्वार योनि से एवं समस्त शरीर के रोम कूपो से निकलता है। बस इसी पित्त द्वारा विदग्ध रक्त का नाम रक्त पित्त है।

इसकी पूर्वरूपावस्था मे शीतल पदार्थों की इच्छा, कण्ठ में धूआँ निकलने के समान प्रतीति, नि श्वास एवं वमन मे प्रतप्त लौह के जल मे डूबने से उत्पन्न गन्ध के समान गन्ध आती है।

ऊपर से निकला हुआ ऊर्ध्वग रक्तपित्त कहलाता है। यह कफ से युक्त होता है। साध्य होता है। नीचे से निकला हुआ रक्त पित्त अधोग रक्त पित्त कहलाता है। यह वायु से युक्त होता है एवं याप्य (औषधि एवं पथ्य से रहने पर लाभ अन्यथा हानि) अर्थात् किसी प्रकार काल यापन करने योग्य होता है। दोनो मार्ग से जाने वाला रक्त कफ और वायु दोनो मे संयुक्त होता है। एवं असाध्य होता है।

त्रिदोषज---

त्रिदोष से कुपित रक्त पित्त समस्त रोम कूपो से निकलता है। यह भी असाध्य होता है।

सामान्यत. सभी रक्त पित्तो में रक्त निकलने के अतिरिक्त ये लक्षण भी होते हैं। ज्वर, घबडाहट, बेचैनी, चक्कर, प्यास और दौर्बल्य ऊर्ध्वग (मुख द्वारा प्रवृत्त रक्त पित्त) में वमन एवं खाँसी अधोगत (गुदा द्वारा प्रवृत्त) मे अतिसार होता है। नासा द्वारा

प्रवृत्ति मे प्रायः (शिर) शूल, लिंग द्वारा प्रवृत्त मे दाह एवं पीला लाल मूत्र भी होता है।

कई व्याधियो की समानता रक्त पित्त से मिलती है। इसलिये निम्नलिखित अन्तरो से उनका निर्णय करना चाहिये।

ऊर्ध्वग रक्त पित्त	यक्ष्मा
१–प्रारम्भ से ही रक्त निकलता है।	अन्तिम अवस्था मे निकलता है।
२–रक्त विदग्ध होता है उसमे कुछ कालिमा भी हो जाती है।	विदग्ध न होकर जीव रक्त होता है कालिमा न होकर लालिमा रहती है।
३–रक्त पर मक्खियाँ नही बैठती हैं और न कुत्ते उसे खाते हैं।	रक्त पर मक्खियाँ बैठती हैं एवं उसे कुत्ते खाते हैं।
४–रक्त आमाशय से आता है।	रक्त फुफ्फुस से आता है।
५–पार्श्व मे प्राय. पीडा नही होती	पार्श्व मे (छाती) मे पीडा होती है।
६–प्रारम्भ मे रोकने से श्वास हृद्रोग आदि कष्ट।	तुरन्त रोकने से लाभ।
७–शीतोपचार से लाभ, उष्णोपचार से हानि।	शीतोपचार से कास आदि हानियाँ।
८–साध्य	कष्ट साध्य या असाध्य।
९–रक्तवाहिनियो के विस्तार से उत्पन्न सुषिरिता के कारण रक्त जाता है।	कास के आघात से रक्त वाहिनियो के फटने से रक्त आता है।

गुद प्रवृत्त रक्त पित्त	रक्तार्श	रक्तातिसार
१- विदग्ध रक्त निकलता है	शुद्ध लाल जीव शोणित निकलता है।	विदग्ध रक्त निकलता है
२–अतिसार होता है।	कोष्ठबद्धता होती है।	अतिसार होता है।
३–अर्शांकुर का अभाव	अर्श के अंकुर होंगे।	अर्शांकुर का अभाव
४–याप्य	याप्य	साध्य
५-वमन से लाभ रेचन से हानि।	रेचन से लाभ वमन अनावश्यक।	सामान्यतः रेचन[1] और वमन दोनो अनावश्यक।
६–क्षार निषिद्ध।	कुछ मृदु क्षार दिया जाता है।	क्षार नहीं दिया जाता।
७–शल्य क्रिया नहीं होती।	शल्य क्रिया होती है।	शल्य क्रिया नही होती।

१. कभी कभी मुनक्का निशोथ और इसबगोल की भूसी आदि सौम्य रेचन देकर भी पित्त शान्त करते हैं। उष्ण कटु और क्षार युक्त रेचन हानिकर है।

मूत्र मार्ग प्रवृत्त रक्तपित्त	रक्त (पैत्तिक के अन्तंगत) प्रमेह
१—रक्त पित्तका कारण व इतिहास मिलेगा।	प्रमेह का कारण व इतिहास मिलेगा।
२—याप्य होता है।	याप्य होता है।

चिकित्सा—

रक्त पित्त की चिकित्सा में निम्नलिखित बातो पर ध्यान दें :—

१—सामान्य औषधि या चिकित्सा के अतिरिक्त नासा, गुदा, मूत्रमार्ग आदि के रक्त पित्त पर स्थानीय चिकित्सा भी की जानी चाहिये।

२—रक्तपित्त मे प्रथम रक्त को रोकने से हृद्रोग, श्वास आदि कष्ट हो जाते हैं। अत. प्रारम्भिक रक्त को न रोकिये।

३—मुख्य दोष पित्त को मृदु, मधुर एव स्निग्ध रेचन द्वारा निकालने एव तिक्त, मधुर, शीतल पदार्थों द्वारा शमन करने की ओर ध्यान दें।

४—जिन कारणो से रक्त पित्त हुआ है उनसे विशेषत. उष्ण, कटु, अम्ल, तीक्ष्ण आदि पित्त कारक आहारो एव ताप, क्रोध आदि विहारो से रोगी को बचाइये।

५—मल्ल विष (संखिया) एवं अत्यन्त उष्ण औषधि के सेवन से आमाशय—अन्न नलिका-मुह मे व्रण तथा खरोच आदि के परिणाम स्वरूप भी प्राय: मुंह अथवा कभी नासा से रक्त आता है। वहा इतिहास, व्रणवत स्थानीय पीडा आदि पर ध्यान देकर गम्भीरता-पूर्वक निर्णय करना चाहिये। मल्लविष मे मूर्च्छा आदि विष के लक्षण, व्रण में स्थानीय पीडा, एवं खरोच मे तात्कालिक रक्त प्रवृत्ति होने के साथ ही दाह, पीडा, बेचैनी घब-राहट आदि का अभाव होगा।

६—किसी भी रक्त-पित्त मे अडूसा (वासा या वासक) को न भूलें। यह अत्यन्त सुलभ श्रेष्ठ काष्ठौषधि है। इसके पश्चात्, गूलर, गेंदा का नम्बर आता है। इन्हे अनुपान या स्वतन्त्र अथवा पथ्य रूप में अवश्य व्यवहार करें। कुछ अन्य अनुपान ये हैं :—

वनचौराई की जड़, दूर्वा, मुलहठी, धनिया, मोचरस, कदली और आमलकी।

७—पथ्य मे मीठा अनार प्रमुख है। खजूर, मुनक्का, गम्भार, आंवला, मौसम्मी, सन्तरा, अंगूर, तालफल, फालसा, तरबूज, सिंघाडा, सफेद कोहडा, परवल, कुन्दरू, लौकी, मीठीनीम, चौराई शाक, ईख का रस, मिश्री, शालि (अरवा) व साठी चावल, मूंग, मेथी, अरहर, जौ, बकरी-गाय का दूध, घी, सौंफ, धनिया, खरगोश, तीतर-वटेर, लवा, हिरन; चिनगा—वरमी मछली, ग्लूकोज, नारियल का जल, शीतल जल आदि भक्ष्यवपेय के रूप में कपूर-चन्दन का लेप, शीतल झरना आदि मे स्नान, ठण्ढा जल से स्नान, कदली-कमल के पत्ते

पर शयन, चादनी रात, शतधौत घृत (मर्दनार्थ), मुक्ता, प्रवाल, मणि आदि का धारण, वाटिका एवं शीतल गुफाओ, भुईंधरा आदि मे निवास इत्यादि का सेवन करें। ऊर्ध्वग में विरेचन व अधोग मे वमन भी हितकारी है। उभय मार्गगत रक्त-पित्त में लंघन या बकरी का दूध अथवा फलरस श्रेयस्कर है। अत्यन्त भयानक रक्त-पित्त में रोगी को केवल बकरी के दूध का ही पथ्य दें तो सर्वोत्तम है।

८—घाम, क्रोध, ताप, उष्ण, कटु (पिप्पली सोंठ को छोडकर), अम्ल (आंवला अनार को छोडकर), तीक्ष्ण, क्षारीय, गरम वस्त्र आदि सभी पित्त कारक पदार्थ अपथ्य हैं।

सामान्य औषधियां

निम्नलिखित औषधियो में से किसी एक अथवा संयुक्त का व्यवहार करें :—

रक्त-पित्तान्तक लौह २ रत्ती, दुर्वा या वासा या दोनो के संयुक्त रस से।

सुधानिधि रस १ रत्ती, त्रिफला क्वाथ से।

चन्द्रकला रस १ रत्ती, रक्त-पित्त नाशक किसी अनुपान से।

शतमूल्यादि लौह २ रत्ती, वासास्वरस से।

कच्ची फिटकरी १ माशा, रक्त-पित्त के किसी अनुपान से।

तृणकान्तपिष्टी ४ रत्ती, रक्त-पित्त के किसी अनुपान मे।

दुग्धपाषाण (संगेजराहत) चूर्ण २ माशा, रक्त-पित्त के किसी अनुपान से।

रक्त-पित्तान्तक रस १ रत्ती, शक्कर मधु से।

समशर्कर लौह ६ रत्ती नारियल के जल से।

बोल पर्पटी २ रत्ती शक्कर मधु से।

पीपर की लाख ६ माशा, मधु घृत से।

राल ४ रत्ती एक माशा, मिश्री मिला कर, जल से।

मोचरस ३ माशा, मधु से, गुद प्रवृत्ता में विशेष हितकर।

अडूसे के पत्तो का रस २ तोला शक्कर मधु से।

जलपानार्थ कूष्माण्ड खण्ड एक तोला या वासा खण्ड एक तोला, जल से।

वासावलेह एक तोला, च्यवनप्राश १ तोला में से किसी एक का व्यवहार बकरी के दूध से, अभाव मे गोदुग्ध या शीतल जल से करें।

वासा घृत ६ माशा, दूर्वाद्य घृत ६ माशा, शतावरी घृत ६ माशा मे से किसी एक का व्यवहार भोजनो के संस्कार आदि मे करें। वासाद्य घृत अस्वादु है।

मर्दनार्थ चन्दनादि तैल, चन्दन बला लाक्षादि तैल, दूर्वाद्य घृत में से किसी एक का प्रयोग करें।

याद रक्खें। यदि प्राप्त हो तो किसी भी रक्त-पित्त की औषधियो मे मुक्ता पिष्टी (अभाव में प्रवाल भस्म) और लौह भस्म अवश्य देना चाहिये। रक्त-पित्त नाशक

औषधियाँ (चन्द्रकला को छोडकर) और अनुपान आदि सामान्यत. अग्नि शामक होते हैं। इसलिये रक्त-पित्त का प्रकोप शान्त होने पर ही इस ओर ध्यान दें। इस स्थिति मे ऐसे योग जो पित्त को कुपित न करें जैसे पिप्पली सोठ आदि को विचारपूर्वक प्रयोग मे लायें।

उपर्युक्त सभी प्रयोग सभी रक्त-पित्तो मे लाभ करते हैं। मुखगत में तो उन्हें देना ही चाहिये। अन्यान्य मे भी देना होगा। अन्यान्य के लिये कुछ विशिष्ट प्रयोग नीचे लिखे जा रहे हैं। इन्हे उपर्युक्त प्रयोगो के साथ भी किया जा सकता है।

नासिका प्रवृत्त रक्त-पित्त पर

१—नासा मे दुर्वा स्वरस डालें। शतधौत गो घृत भी अभाव मे डाल सकते हैं। चीनी का शर्बत या दूध भी डाल सकते हैं।

२—सिर पर आवला, लौकी अथवा शतधौत घृत का लेप या मर्दन करें। कलमी शोरा ईख के सिरका में पीस कर लेप करने से भी लाभ होता है।

मूत्रमार्ग प्रवृत्त रक्त-पित्त पर

१—बकरी के दूध या अनार के फूल के रस की वस्ति दें। फिटकरी एवं गेरु को जल मे घोल कर उस जल की भी उत्तारवस्ति दे सकते हैं।

२—तृणपञ्च मूल (कुश-कास, सरपत, दाभ अर्थात् छोटी जाति का कुश, ईख की जड) का क्वाथ या इनसे सिद्ध बकरी का दूध पिला दें।

गुदमार्ग प्रवृत्त रक्त-पित्त पर

१—बर्फ के जल की वस्ति दें। यदि मन्द ज्वर हो तो स्वर्ण वसन्त मालती अवश्य दें। इस अवस्था मे ह्रीवेरादि क्वाथ और रक्त-पित्तान्तक रस विशेष हितकारी होते हैं। रक्त-पित्त की खाँसी स्वरभेद या श्वास कष्ट मे एलादि गुटिका चूसने से बडा लाभ होता है, इसे बारम्बार १०-१५ गोली तक चूसने को दे सकते हैं।

—:o:—

सोलहवां अध्याय

राज्यक्ष्मा (टी० बी०)

राजा चन्द्रमा को यह रोग हुआ था, इसलिये इसे राजा (चन्द्रमा का यक्ष्मा) रोग कहा गया। इस रोग में मुख राजता (सुशोभित होता) है इसलिये यह नाम पड़ा। सभी क्रियाओ का क्षय करने के कारण इसे क्षय एवं रसादि धातुओंका शोषण (सुखाने) करने के कारण शोष कहा गया है।

राजा चन्द्रमा से दक्ष प्रजापति की २७ कन्यायें व्याही थी उनमे वे केवल रोहिणी से ही प्रीति या सम्भोग करते थे। अवशिष्ट कन्याओ ने अत्यन्त दु खित होकर अपने पूज्य पिता से यह बात कही। अन्तत. दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया कि तुम्हे यक्ष्मा हो जाय। बस चन्द्रमा को यक्ष्मा हो गया। यह पौराणिक गाथा है। इसका वास्तविक रहस्य क्या है ? इसका उत्तर हमारे जैसे अल्पज्ञ नहीं दे सकते। किन्तु जहा तक हमारी बुद्धि काम करती है वहा तक इसका तात्पर्य यह लगाया जा सकता है।

चन्द्रमा की उत्पत्ति मन[1] से बतायी गयी है, मन की दुर्बलता से सुन्दर चन्द्रमा ने एक मे अत्यधिक व्यवाय (मैथुन) किया। अनेक मे करते तो मन व्यवाय मे तल्लीन न होता। अनेक में व्यवाय करने वाला सुरत (मैथुन) के सम्बन्ध मे. मन का सुदृढ होता है उसकी आसक्ति एक मे नहीं होती। एक मे आसक्ति मन की अत्यन्त हीनता या अत्यन्त सुदृढता का परिचायक है। हीन मन ही व्यवाय के भयानक परिणाम को जानते हुये भी लौल्यता (चञ्चलता) के कारण उसमे अतियोग कर देता है। सुदृढ़ मन अनेक में मैथुन करते हुए भी अनासक्त होकर अच्युत रहता है। अनासक्त ही मानसिक ह्रास को न प्राप्त कर मस्त रहता है। अनासक्त लोग संसार के कार्यों को उत्तमता से करते हैं, अथवा मूढ के समान सासारिक गति मे बिल्कुल भाग नहीं लेते। दोनो को अपने तात्कालिक कर्त्तव्य या आनन्द से तात्पर्य रहता है। तात्कालिक कर्त्तव्य या आनन्द के पश्चात् वह

१, ज्वराधिकार में हमने य प्रजापतिस्तन्मेमन के रूप में दक्ष का तात्पर्य मन से लगाया है। यहा (चन्द्रमा मनसो जात) के रूप में मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति लिखी गयी है। इस प्रकार दक्ष से जायमान चन्द्रमा दक्ष के जामाता भी हुए इसके रहस्य भेदन का इस पुस्तक में आवश्यकता नहीं।

पहले की चिन्ता छोडकर आगे के कर्तव्य या आनन्द मे लग जाता है। कर्त्तव्य परायण या आनन्द परायण को मोहजनित मानसिक ह्रास नहीं प्राप्त हो सकता। सुन्दर राजा चन्द्रमा को एक मे मोहजनित मानसिक ह्रास हो गया था। परिणामतः उन्होंने अपनी अवशिष्ट पत्नियो मे भोग न कर केवल एक में ही वीर्य का अतिपात कर दिया। वे मानसिक दौर्बल्य के कारण शेष पत्नियो के लिये एवं अपने लिये भी कर्त्तव्य पालन नही कर सके और यक्ष्मा के लक्ष्य बन गये। अनासक्त भगवान् कृष्ण सोलह सौ आठ स्त्रियो का मन अपनी ओर खीचते हुये भी अच्युत (जिसका वीर्यच्युत न हो) रह कर ऊर्ध्वरेता रहे। तात्कालिक कर्तव्य का पालन कर उनके मोह को ठुकरा कर वे आगामी कर्तव्य के लिए मथुरा गये। आवश्यकता पडने पर मथुरा का मोह त्याग कर द्वारिका पहुँचे। वहाँ से महाभारत जैसी सर्वसंहारकारी भयानक राग-द्वेषमयी लीला मे प्रवृत्त हो गये। वहाँ से गीता के रूप मे साख्य योग एवं कर्म योग का रहस्य विश्व को बतलाया। अन्ततः पाण्डवो एव ग्वालो जिनके लिए सब कुछ किया, मे भी नाता तोड अनासक्त भगवान ने मर्त्यलोक का भी त्याग स्वेच्छा से कर दिया। यह है अनासक्त का, संग-रहित का और मोह-रहित का सामयिक (तात्कालिक) कर्तव्य पालन। ऐसा व्यक्ति मनोदैन्य या मानसिक ह्रास का लक्ष्य कभी नहीं होता वह करोडो से व्यवाय करे फिर भी उसे यक्ष्मा नहीं हो सकता।

प्राय यह देखने में आता है कि सुन्दर नौजवान सद्गृहस्थ अपने साथी को पाते ही उसमे ही वीर्य का अतिपात कर यक्ष्मा के लक्ष्य बन जाते हैं। इसके विपरीत अनेक साथियो से सम्भोग करने वाले लोफर[1] एवं वारवनितायें प्राय. यक्ष्मा के लक्ष्य नहीं बनते। इनमे प्राय. मानसिक ह्रास या मनोदैन्य नही रहता। ये मस्त रहते हैं, तात्कालिक आनन्द मे इन्हे मतलब है। परिणामत इनके वीर्य का सञ्चय भी होता रहता है। एक साथी मे मोह हो जाने अथवा सर्वदा उसके साथ रहने के कारण व्यवाय जनित इच्छा के बारम्बार उदय होने से वीर्य की उत्पत्ति या सञ्चय का समय ही नहीं रह पाता। और, पूर्वकालीन (साथ से पहले का) वीर्य क्षीण होकर यक्ष्मा का लक्ष्य बना देता है।

यह ज्ञातव्य है कि सौन्दर्य कफ से, तेज पित्त से एवं शक्ति वात से होती है। भगवान श्री कृष्ण मे तीनो का यथोचित अद्भुत सामान्जस्य था। वे सौन्दर्य से नारियो को आकृष्ट कर लेते थे दूसरी ओर तेज से शत्रुओं को अभिभूत कर लेते थे और तीसरी ओर शक्ति से बडे से बडे हाथी, पहलवान, अजगर प्रभृति को नष्ट कर देते थे। ऐसे पुरुषो को बहुपत्नी गामी होने पर भी यक्ष्मा नही हो सकता। बडे-बडे राजा और महन्थ आदि इसके लघु उदाहरण हैं। उनमे एक मे अनासक्ति के साथ ही तीनो दोषो का यथोचित सामान्जस्य होता है। जिससे कोई दोष घट बढ नहीं सकता। परिणामत. यक्ष्मा का कोई रोग उन्हें शीघ्र नही होता। कफ या सौन्दर्य का अधिष्ठान चन्द्रमा तेज (पित्त) एवं

---

[1] पर इन्हें आगामी अगणित पीढियों में चलने वाले और जीवन नष्ट करने वाले मूत्र संस्थान के रोग गर्मी, सूजाक प्रमेह आदि हो सकते हैं।

शक्ति (वात) मे हीन रहा । परिणामतः कफ प्रधान दोषो मे होने वाला यक्ष्मा उसे हो गया । सुन्दर एवं कोमल परन्तु तेज तथा शक्ति से रहित युवक अति व्यवाय की शक्ति को नहीं सह सकते । वीर्य पतन के बाद होने वाले धातु क्षय जनित अग्निमान्द्य को तेज (पित्त) की हीनता के कारण वे पुन: सन्तुलित नहीं कर पाते । तब कफ की प्रधानता में और वृद्धि हो जाती है । दूसरी ओर वात शक्ति की हीनता के कारण मैथुन में क्षीण होने वाली शक्ति भी पुन. नहीं सन्तुलित हो पाती तब और अधिक क्रियाक्षय हो जाता है बस उन्हे कफ प्रधान दोष मे रसादि धातुओं का शोष और क्रियाक्षय सब मिला कर यक्ष्मा हो जाता है ।

यह स्पष्ट कह देना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त बातें हमारी स्थापना या सिद्धान्त नहीं हैं । यह विचारणा है । इस पर अन्यान्य विद्वान भी विचार करें और तथ्य समझें तो ग्रहण करें, अन्यथा चन्द्रमा से यक्ष्मा की उत्पत्ति की दिशा मे और विचार करें । मस्तिष्क में भी चन्द्रमा (चन्द्रनाडी), रोहिणी आदि है उनमे भी इन पौराणिक गाथा का सामञ्जस्य स्थापित करें तो रहस्यभेदन हो सकेगा ।

राज्य यक्ष्मा का कारण—

अधोवायु, मल एवं मूत्र के वेग[1] को रोकने, मैथुन, ईर्ष्या, अनशन और विषाद आदि से उत्पन्न धातुक्षय, दुस्साहस (शक्ति से अधिक काम करना) और विषमाशन (भोजन के समस्त नियमो का उलंघन कर किया हुआ भोजन) इन चार कारणो से यक्ष्मा होता है । गम्भीरता पूर्वक विचारने से प्रतीत होता है कि फुफ्फुस-क्षय, ग्रन्थि-क्षय अन्त्र-क्षय, उर.क्षतजक्षय, व्यवायजक्षय आदि सभी क्षयो के समस्त कारणो का अन्तर्भाव उपर्युक्त हेतुचतुष्टय में हो जाता है ।

सम्प्राप्ति—

यक्ष्मा की सम्प्राप्ति दो प्रकार से चलती है ।

१–अनुलोम—

कफ प्रधान दोष से रस वाहिस्रोतो के रुकने के कारण क्रमश. अन्य धातुयें रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र क्षीण होती हैं इसे अनुलोम क्षय कहते हैं ।

२–प्रतिलोम—

अत्यन्त मैथुन से शुक्र के क्षीण होने पर अन्य धातुयें मज्जा, अस्थि, मेद, मास रक्त और रस क्षीण होती हैं । इसे प्रतिलोम (धातुओं का उलटे क्रम से क्षय होना) क्षय कहते हैं ।

दोनो प्रकार के क्षय से मानव शोष (यक्ष्मा) को प्राप्त होता है ।

---

[1] मधु कोष व्याख्या कार वेगरोध का अर्थ केवल वात मूत्र पुरीष का वेग रोकना ही कहते हैं हमारे विचार से कास, अतिश्वास छिक्का के वेगों को रोकने से भी यक्ष्मा होता है ।

पूर्व रूप:—

भावी शोष मे श्वास, अंगो मे टूटने की (मर्दनवत्) पीडा, मुख से कफ का निकलना, तालु शोष, वमन, अग्नि मान्द्य, नशा (खुमारी) जुकाम, कास, आंखो के श्वेत भाग मे अधिक श्वेतता और निद्रा ये लक्षण होते हैं। रोगी मास खाने व मैथुन करने की अधिक इच्छा करता है। वह स्वप्न मे कौवा, सुग्गा, साही, नीलकण्ठ, गीध, बन्दर, गिरगिटान पर सवारी करता है। सूखी नदियो एवं वायु, धूम दावाग्नि से पीडित वृक्षो को देखता है। ये पूर्व रूप शारीरिक एवं मानसिक दोनो हैं।

लक्षण:—

कन्धो और पसलियो मे पीडा, हाथ पैरो में दाह या जलन और सर्वाङ्ग मे ज्वर ये राजयक्ष्मा के मुख्य लक्षण हैं। व्रण शोष मे तो कम पर अन्य सभी क्षयो में ये लक्षण अवश्य मिलते हैं। इसलिये इन्हे प्रमुखता मिली है। इनके अतिरिक्त स्वरभेद, शूल, कन्धो एव पसलियों में संकोचन, दाह, अतिसार, रक्त का आगमन और कास आदि लक्षण भी मिलते हैं। रात्रि स्वेद विशिष्ट निर्णायक लक्षण है।

अलग-अलग विभिन्न कारणो से होने वाले शोष के ये लक्षण हैं:—

व्यवाय (मैथुन) जन्य शोष :—

इसमें शुक्रक्षय के लक्षण यथा दौर्बल्य, असहिष्णुता आदि लक्षण, पीलापन होता है एवं पूर्व की ओर अर्थात् क्रमश. मज्जा, अस्थि, मेद, मास, रक्त और रस क्षीण होते हैं।

शोक शोष :—

शुक्र शोष के सभी लक्षणो के अतिरिक्त अधिक सोचना एवं शिथिलागता ये विशिष्ट लक्षण होते हैं।

जरा शोष :—

वृद्धता से होनेवाले शोष में वीर्य, बुद्धि, बल, इन्द्रियाँ एवं रुचि मन्द हो जाती हैं। रोगी कृश होता है। गौरव, बेचैनी से युक्त रहता है। उसकी नासा, मुख और आंख से पानी बहता रहता है। छवि और मल रूक्ष होता है।

मार्ग शोष :—

शिथिलांगता, छवि का रूखी एवं भूनी हुई-सी होना, गात्रो का सोना (हिलाने-डुलाने का अभाव), मुख और गला का सूखा होना ये लक्षण होते हैं।

व्यायाम शोष :—

मार्ग शोष के ही लक्षण अधिकता से मिलते हैं और रोगी आगे वर्णित उर. क्षत के लक्षणों (क्षत को छोडकर) से भी युक्त रहता है।

व्रण शोष :—

रक्त क्षय, पीडा एवं आहार-नियन्त्रण के कारण व्रण रोगी को शोष होता है और वह असाध्य होता है।

उरः क्षत :—

कठिन धनुष को खीचना, बलवान से युद्ध, दौडने वाले बलवान पशुओ घोडा-बैल आदि को रोकना, जोर से पढना, बड़ी नदी को तैरना, घोड़े के साथ दौडना, तेज नृत्य आदि दुस्साहसो से फुफ्फुसों में क्षत हो जाता है परिणामतः वहां बडी ही पीडा होती है। रोगी का बल, वीर्य, वर्ण, रुचि, अग्नि सब क्रमशः क्षीण हो जाते हैं। ज्वर, पीडा, मनोदैन्य और अतिसार भी हो जाता है। कास के साथ कफ और रक्त दोनो अधिक आता है। शुक्र और ओज के क्षय से अत्यन्त क्षीण हो जाता है। तुरन्त उपचार हो तो रोगी बच सकता है। अन्यथा एक वर्ष मे याप्य एवं तत्पश्चात् वह असाध्य होता है। यह तुरन्त होता है इसका अव्यक्त अस्पष्ट लक्षण ही इसका लक्षण है। धातुक्षयजन्य और उरःक्षतजन्य यक्ष्मा मे यह अन्तर है :—

धातुक्षयजन्य यक्ष्मा	उर. क्षतजयक्ष्मा
१—देर मे छाती मे पीडा।	तुरन्त छाती मे पीडा।
२—छाती मे मन्द पीडा।	छाती मे असह्य पीडा।
३—अन्त में ही रक्तागमन।	आरम्भ मे रक्तागमन।
४—कभी-कभी प्रतिलोम क्षय मे मैथुना-धिक्य मे तत्काल मूत्रमार्ग या योनि से रक्त दर्शन।	मुख मार्ग से तत्काल रक्त दर्शन।
५—पूर्व रूप स्पष्ट होता है, व्याधि क्रमश. होती है।	व्याधि प्रकोप एकाएक होता है। पूर्व रूप स्पष्ट होने का अवसर नही रहता।
६—प्रारम्भ से ही संक्रामक।	अन्त में संक्रामक।
७—सामान्यत' शारीरिक कारणो से क्रमश. उत्पत्ति।	केवल आगन्तुक कारणो से अकस्मात् उत्पत्ति।

असाध्य लक्षण :—स्वर भेद, रक्त का आगमन एवं अतिसार हो जाने पर रोगी नहीं बचते। ये लक्षण प्राय. अन्त में ही होते हैं। लोक मे प्रसिद्ध है कि मल छूटने पर यक्ष्मा का रोगी नही बचता।

बल-मास का अतिशय क्षय हो जाने पर यक्ष्मा के उपर्युक्त कन्धो एवं पसलियो मे पीडा आदि सभी लक्षण मिलें तो रोग असाध्य है। अत्यधिक भोजन करने वाला रोगी क्षीण होता जाय, अतिसार से पीडित हो, अण्डकंप और उदर सूजा हुआ हो तो भी

असाध्य होता है। यक्ष्मा का रोगी उर्ध्व श्वास से पीडित हो कष्ट से अधिक मूत्र त्याग करे तो भी असाध्य है।

साध्य लक्षण .—बल, मास की क्षीणता न हो, ज्वर की लगातार परम्परा से रहित हो, बलवान, आत्मवान, क्रिया सहिष्णु, दीप्ताग्नि और कृशता रहित हो तो वह रोगी साध्य होता है।

चिकित्सा

चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान द :—

१—वेगरोधादि एवं व्यवायादि कारणो में से किस कारण से यक्ष्मा हुआ ? इसका निर्णय कर कारण को दूर करना चाहिये और कारण को दृष्टिकोण मे रखकर चिकित्सा करनी चाहिये। जैसे व्रण-शोष मे व्रण उत्पन्न न होने पायें एवं उत्पन्न व्रण अति शीघ्र भर जायें यह प्रयत्न सर्वोपरि है।

२—सभी यक्ष्मा में धातुक्षय होता है। इसलिये धातुपात या धातुक्षय न होने पाये इसके लिये शारीरिक कारण मैथुन, परिश्रम आदि एवं मानसिक कारण शोक, रोष, द्वेष आदि का परिहार करने के साथ ही तत्तद् धातु को पुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। स्वप्न दोष के कारणो से रोगी को बचाइये। एक दिन भी स्वप्नदोष से हुई क्षीण शक्ति को तुरन्त बढाइये।

४—सामान्यत एक धातु से दूसरी धातु की पुष्टि होती है। इसलिये जो धातु क्षीण हो उसके पोषण पर विशेष ध्यान देने से अन्य धातु भी पुष्ट होती है। रस धातु फल रस से, रक्त धातु रक्त कारक पदार्थ एवं रक्त से, मास धातु मास रस या मास से, मेद धातु स्नेह से, अस्थि कछुये की पीठ (कछुहड) एवं घोघा (शम्बूक) की अस्थि की भस्म से, मज्जा स्नेह से एवं वीर्य धातु वीर्य अर्थात् अण्डा से एवं दूध से पुष्ट होती है।

४—विश्राम निश्चिन्तता और स्वच्छ वायु सभी धातुओ को पुष्ट करता है। इसलिये इनका सेवन यथेच्छ करना चाहिये।

५—निस्सन्देह धातु पोषक पदार्थ पथ्य होते हैं। पर यह सर्वदा ध्यान रखना चाहिये कि वे सम्यक् पच जाँय उनसे कफ या आव न बने और मल पतला न हो। इन सब दृष्टियो से बकरी का दूध सर्वश्रेष्ठ निरापद पथ्य है। यह कफ नाशक, कास श्वास नाशक, लघु, सुपाच्य एवं क्षय रोग नाशक होता है। इससे मल भेद भी नहीं होता।

रोगी यदि कुछ बलवान हों और दोषाधिक्य हो तो स्नेहन स्वेदन करने के बाद वमन विरेचन करा देना उत्तम होता है। विरेचन मे मल पतला होने की चिन्ता न करें। पर याद रक्खें! वमन-रेचन से कृशता न बढने पाये। वामक और रेचक औषधि के भक्षण के पूर्व स्वर्ण एवं मुक्ता आदि शक्ति रक्षक औषधि खिलाकर साधारणत मैनफल से

वमन कराने एवं यष्टयादि चूर्ण, कुटकी, मुनक्का, अजीर, अमलतास, निशोथ आदि मृदु द्रव्यो से विरेचन कराने से कृशता नही बढती। जयपाल, सेहुण्ड-दुग्ध आदि कृश कारक है।

६—वमन विरेचन के बाद वृंहण (धातुवर्द्धक) एव अग्नि दीपक विधान करें। सामान्यतः यक्ष्मा की औषधियां इसी गुण से युक्त होती हैं।

७—औषधियो मे २४ घण्टे मे न्यूनतम २ रत्ती स्वर्ण भस्म या पत्र के रूप मे रोगी को मिल सके तो उत्तम है। भस्म अधिक सुपाच्य और शक्तिवर्धक होती है। स्वर्ण के अभाव में अन्य औषधियो से भी रोग मुक्ति धीरे-धीरे सम्भव है।

८—प्रायः अन्न से कफ बनता है। इस लिये अग्नि दीपक क्रम अवश्य करें। अन्न से फल कुछ कम कफ बनाते हैं। कफ बनना न कम हो तो इनका क्रमश. परित्याग उत्तम है। इसके परित्याग से उत्पन्न शक्ति हीनता को औषधियो एवं बकरी के दूध, बकरे के मास रस, मुर्गी के अडा से पूर्ण करें। इसके साथ प्रतिदिन उत्तम मद्य जैसे ब्राण्डी २० बूँद या मृतसन्जीवनी सुरा १ तोला दो तोला की मात्रा से व्यवहार करने से ये पच जाते हैं एवं शक्ति तथा रक्त की वृद्धि होती है।

९—बकरी की गन्ध, उसका मल, मूत्र, दूध, मास, दही, घी एवं उसके मध्य में निवास आदि आधुनिक दृष्टिकोण से गन्दगी के कारण और घृणास्पद माने जाते हैं। परन्तु इनसे बढ कर निरापद और सरल यक्ष्मा नाशक उपाय अन्य नहीं हैं। इस लिये इनका प्रयोग करें। अर्थात् बकरियो के झुण्ड मे रहे। इनका दूध घी खायें। मलमूत्र आदि की गन्ध सूघें। इनसे सिद्ध घृत खायें। हजारो रुपये बरबाद करने पर भी सुप्रसिद्ध चिकित्सकों से लाभ न होने पर इनकी शरण में गये बहुत से रोगी अच्छे हो गये हैं।

१०—यदि सम्भव हो तो कुछ प्राणायाम करें। शक्ति से अधिक प्राणायाम न करें।

शक्ति की रक्षा के साथ ही रात्रि स्वेद को दूर करने पर पहले ध्यान दें। रक्त दर्शन हो तो तत्काल रोकने का प्रयत्न करें। रेचक औषधि द्वारा यदि मलपात कराया गया है तब तो ठीक। अन्यथा पतला मल आये तो उसे गाढा करें।

११—कासाधिकार में क्षयज एवं उरःक्षतज कास की चिकित्सा लिखी हुई है उनका उपयोग भी इनकी सामान्य औषधियो के साथ या स्वतन्त्र करें।

औषधियाँ —

निम्नलिखित औषधियो में से किसी एक अथवा अनेक का संयुक्त व्यवहार करें।

राज मृगाक रस १ र०, पिप्पली चूर्ण मधु घृत से।

महामृगाक रस[1] १ र० मिर्च चूर्ण, घृत अथवा पिप्पली व घृत से।

---

१ शास्त्र में उल्लिखित प्राय सभी मृगांक यक्ष्मा में लाभकारी है, यह सर्वोत्तम हैं। इसमें हीरा भी पड़ता है।

स्वल्प मृगांक १ र०, पिप्पली मधु से ।

हेम गर्भ पोट्टली १ र०, पिप्पली मधु से ।

बृहत्कान्चनाभ्र ½ र०, दोषानुसार अनुपान से ।

रसेन्द्र गुटिका ४ र०, मधु से ।

शिलाजत्वादि लोह २ र०, बकरी के दूध से ।

जयमंगल रस १ रत्ती, मधु से, ज्वर मे विशेष हित ।

लक्ष्मी विलास रस १ र०, पिप्पली मधु से ।

वसन्त कुसमाकर १ र० मधु धातुपात मे हितकारी ।

शृंग्यर्जुनाद्य चूर्ण एक माशा, तालीशादि चूर्ण मधु घृत स ।

इनके अतिरिक्त स्वर्ण बसन्त मालती १ या २ र० की मात्रा से सितोपलादि चूर्ण से या इलायची, वंश लोचन चूर्ण व मधु से दें। यह महीन ज्वर को नष्ट कर शक्ति देती है ।

प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी चार रत्ती की मात्रा से तीन बार देने से रात्रि स्वेद में विशेष लाभ होता है । यदि गुरुच का सत्व चार रत्ती मिला दें तो उत्तम है ।

सितोपलादि चूर्ण एक माशा की मात्रा से मधु घृत के साथ देने से क्षय की प्रारम्भिक अवस्था मे लाभकारी है ।

लवंगादि चूर्ण एक माशा या दो माशा अतिसार की अवस्था में बारम्बार देने से लाभकारी है ।

एलादि बटी बारम्बार चूसने से कास को दूर करता है। यह मृदु पर उत्तम कास नाशक है । रक्त दर्शन और कास मे विशेष हितकारी है ।

तालीशादि चूर्ण ६ माशा की मात्रा २४ घण्टे के लिये उत्तम है । इसी में मुलहठी चूर्ण भी मिला दें तो अधिक उत्तम है ।

च्यवनप्राश, वासावलेह में से किसी एक को एक तोला की मात्रा से बकरी के दूध, अभाव मे गोदुग्ध के साथ जलपानार्थ दिन रात मे दो बार प्रयोग करें ।

द्राक्षारिष्ट, द्राक्षासव, पिप्पल्याद्यरिष्ट में से किसी एक का व्यवहार भोजनोत्तर डेढ तोले की मात्रा में सम जल मिला कर करें । यदि अन्न आदि न ग्रहण करते हो तो दोपहर और रात में भी भोजन के समय में पीये गये दूध के आधा घण्टे बाद इसे पीयें ।

असृहरारिष्ट १० या २० बूद की मात्रा से रक्त दर्शन या उर.क्षत मे विशेष हितकर है ।

मर्दनार्थ—

चन्दनादि तैल, लाक्षादि तैल या चन्दनबला लाक्षादि तैल मे से किसी एक का व्यवहार करें । ये सब ज्वर नाशक एवं शक्तिवर्धक हैं ।

अनुपान—

अनुपान मे वासा स्वरस को न भूलें। यह न मिले तो इसका शर्बत लें। इसमें शर्बत लिसोढा मिला देने से कफ निष्कासक होता है। मधु, घृत, पिप्पली, मिर्च, बकरी के दूध का अनुपान भी कार्यकारी होता है।

पथ्य—

जीर्ण ज्वर मे वर्द्धमान पिप्पली का प्रयोग बकरी दूध के साथ कर सकें तो उत्तम है। इसके अतिरिक्त बकरी का दूध, घी, दही विशेष लाभकारी है। बकरियो के झुण्ड में निवास भी उत्तम है। कफ न बने और पचती जांय तो निम्नलिखित चीजें भी दी जा सकती हैं।

हरिण, खरगोश, बकरा, घोंघा, लवा तीतर, बटेर का मांस, मुर्गी का अण्डा, गेहूँ, जौ, अरवा चावल, मूँग, मौसम्मी, अनार, अंगूर, गम्भार का फल।

यदि रक्त दर्शन और शुक्रक्षय नही हो रहा है तो लहसुन एक उत्तम पथ्य है। इसे घी मे भून कर अथवा कच्चा कल्क बना कर अथवा बकरी के दूध मे पका कर ६ मासे से एक तोला तक व्यवहार कर सकते हैं। यह उत्तम कफ नाशक है। यक्ष्मा के कीटाणुओ पर भी प्रहार करता है, पर उष्ण है यदि इसके सेवन से अधिक उष्णता हो तो बन्द कर दें, अन्यथा रक्त दर्शन होगा। इसके साथ मद्य मास का सेवन हो तो अधिक लाभ कर है। गोदुग्ध से इसका विरोध है। बकरी का दूध भी यदि पीना हो तो एक या दो छटाक बाद मे पीयें साथ मे थोडा दूध पिलाना हानिकर नही।

अपथ्य—

मल मूत्रादि के वेग को रोकना, चिकित्सोपयोगी विरेचन के अतिरिक्त विरेचन, स्वेदन, जागरण श्रम मैथुन, क्षार, अम्ल, त्रिकुट के अतिरिक्त अन्य कटु पदार्थ, विरुद्ध, (खिचडी-दूध, मांस-दूध, आदि) और विषम भोजन ये अपथ्य हैं जिनको आदत हो वे कम खायें अन्यथा बद कर दें।

उरस्तोय (प्ल्यूरिसी)

दोनो फुफ्फुसो के चारो ओर दो स्तरो का आवरण है। जिसे फुफ्फुसावरण कहते हैं। दोनो स्तरो के भीतर श्लेष्मा रहती है जिसके कारण श्वास-प्रश्वास लेने एवं खासने आदि में घर्षण नहीं होने पाता।

शीत लग जाने, यक्ष्मा और न्यूमोनिया के पश्चात् शीत लग जाने अथवा गुप्त रूप से यक्ष्मा तथा न्यूमोनिया रहने पर शीत लग जाने से सामान्यत उरस्तोय हो जाया करता है। इसमे उपर्युक्त श्लेष्मा के सूख जाने पर खांसी, मन्द ज्वर और खांसते, लेटते समय अथवा सर्वदा छाती मे असह्य पीडा होती रहती है। जिस तरफ श्लेष्मा शुष्क रहती है उस ओर सोने में अधिक कष्ट होता है। विपरीत करवट या उतान सोने मे कष्ट कम होता है। इसे शुष्क उरस्तोय कहते हैं।

इसमे शृंग भस्म, शृंगाराभ्र, चन्द्रामृत रस, मरिचाद्य वटी का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। वातकासोक्त लेपो या मालिश का प्रयोग करने से पीडा शान्त होती है। वात काम की औषधियो का भी व्यवहार हो सकता है। पथ्य मे यथाशक्ति बकरी के दूध का ही व्यवहार करें, अन्यथा मौसम्मी, मुनक्का, गम्भार, साबूदाना का व्यवहार हो सकता है। सब के बाद मूंग की दाल, परवल, गेहूं, जौ, शालि चावल का व्यवहार होगा।

श्लेष्मा के अधिक बढ जाने पर ज्वर सामान्यत. १०२ डिग्री तक चढकर आता है। हृदय, आमाशय, यकृत् आदि अंगो पर दबाव पडने से वे कुछ स्थानच्युत भी हो जाते हैं। पीडा कम होती है, खासी आती रहती है। इसे तरल उरस्तोय कहते हैं। निम्नलिखित औषधियों मे से किसी एक का व्यवहार करें :—

बृहत्कस्तूरी भैरव १ रत्ती आर्द्रक रस मे, जयमंगल रस एक रत्ती जीरा मधु से, पञ्चमृत[1] रस एक रत्ती की मात्रा लवंग चूर्ण व बकरी के दूध से दे सकते हैं।

छाती पर गरम बालू की पोटली या गरम जल से युक्त रबर की थैली से सेंक करें। इससे स्वदन द्वारा कुछ श्लेष्मा निकलती है और पीडा शान्त होती है। पीने के लिये जल का व्यवहार एक दम न करें। प्यास को बकरी के दूध या पुनर्नवा क्वाथ से शान्त करें। मूत्रल प्रयोग भी करें। इसके लिये शुद्ध शिलाजीत ८ रत्ती की मात्रा पुनर्नवा स्वरस से या क्वाथ से दें। यवक्षार का प्रयोग भी साथ में या स्वतन्त्र हो सकता है।

आरोग्य वर्धनी २ या ४ रत्ती की मात्रा से दिन-रात मे दो बार देने से मल-मूत्र शुद्ध होता है।

पथ्य :—

शुष्क उरस्तोय के समान।

दोनो उरस्तोयो में अपथ्य :—

शीतल वायु, शीतल जल, श्लेष्म वर्धक अभिष्यन्दी वातल पदार्थ, मैथुन, मार्गगमन, दिवाशयन, शोच, क्रोध आदि को कम से कम एक वर्ष तक त्याग दें।

याद रखिये यक्ष्मा, न्यूमोनिया के बाद उरस्तोय एव उरस्तोय के बाद यक्ष्मा और न्यूमोनिया होने की सम्भावना रहती है। इसलिये न्यूनतम एक वर्ष तक सावधानी बरतें। इसलिये इन तीनो के अच्छा हो जाने पर तालीशादि चूर्ण, स्वर्ण वसन्त मालती, च्यवनप्राश का संयुक्त सेवन करते रहे। अर्थाभाव हो तो वसन्त मालती का न सवन करें।

१ इससे विरेचन होता है। रोगी क्षीण हो तो १/१० रत्ती की मात्रा दें।

सत्रहवां अध्याय

कास

'झगड़े का घर हासी और रोग का घर खासी' सुप्रसिद्ध कहावत है। इसके अनुसार सभी रोगो का घर खासी है। शास्त्र मे भी लिखा है कि सभी खासी उपेक्षा करने से क्षय का कारण वन जाती है। इसलिये खासी को अधिक दिनो तक टिकने न देना चाहिये। 'कस गतौ' धातु से यह शब्द वनता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस रोग में वायु कण्ठ से ऊपर सिर की ओर गति करता है इसलिये कास कहा जाता है। अथवा 'कास् कुशब्दे' के अनुसार बुरा शब्द करने के कारण इसे कास कहा जाता है।

कारण और सम्प्राप्ति :—

धूंआ और धूलि के मुंह व नासिका और कण्ठ में चले जाने से, आम रस के आमाशय से मुख की ओर जाने से, व्यायाम एवं रूक्ष अन्न के सेवन से, छींक के वेग को रोकने से एवं भोजन के अन्न नलिका मे न जाकर श्वास नलिका मे चले जाने से दूषित प्राण वायु उदान का अनुगामी होकर कफ-पित्त के साथ अकस्मात् फूटे हुए कांसे के वर्तन के समान शब्द करता हुआ मुख के वाहर निकलता है जिसे बुद्धिमान कास कहते हैं।

भेद :—

कास के पांच भेद होते हैं—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज (उरः क्षतज) और क्षयज। ये क्रमशः अधिक उग्र होते हैं। अन्ततः न अच्छा होने पर सभी क्षयज कास या क्षय के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। इनमे क्षतज कास का कारण और लक्षण उरःक्षत के समान ही है। क्षयज कास का कारण धातु क्षय है। लक्षण राज यक्ष्मा के समान होते हैं। इसलिये इन दोनों के कारणो एवं लक्षणो पर विचार न कर चिकित्सा ही वतायी जायेगी।

वातिक कास का लक्षण :—

इसमे कफ सूख जाता है जिससे वह अत्यन्त कम अथवा विल्कुल नहीं निकलता है। कफ न निकलने से लगातार कास का वेग होता रहता है ज्योही कुछ कफ निकलता है त्यो ही कुछ आराम मिलता है। कफ न निकलने से लगातार खासी आती रहती है।

क्षयज कास
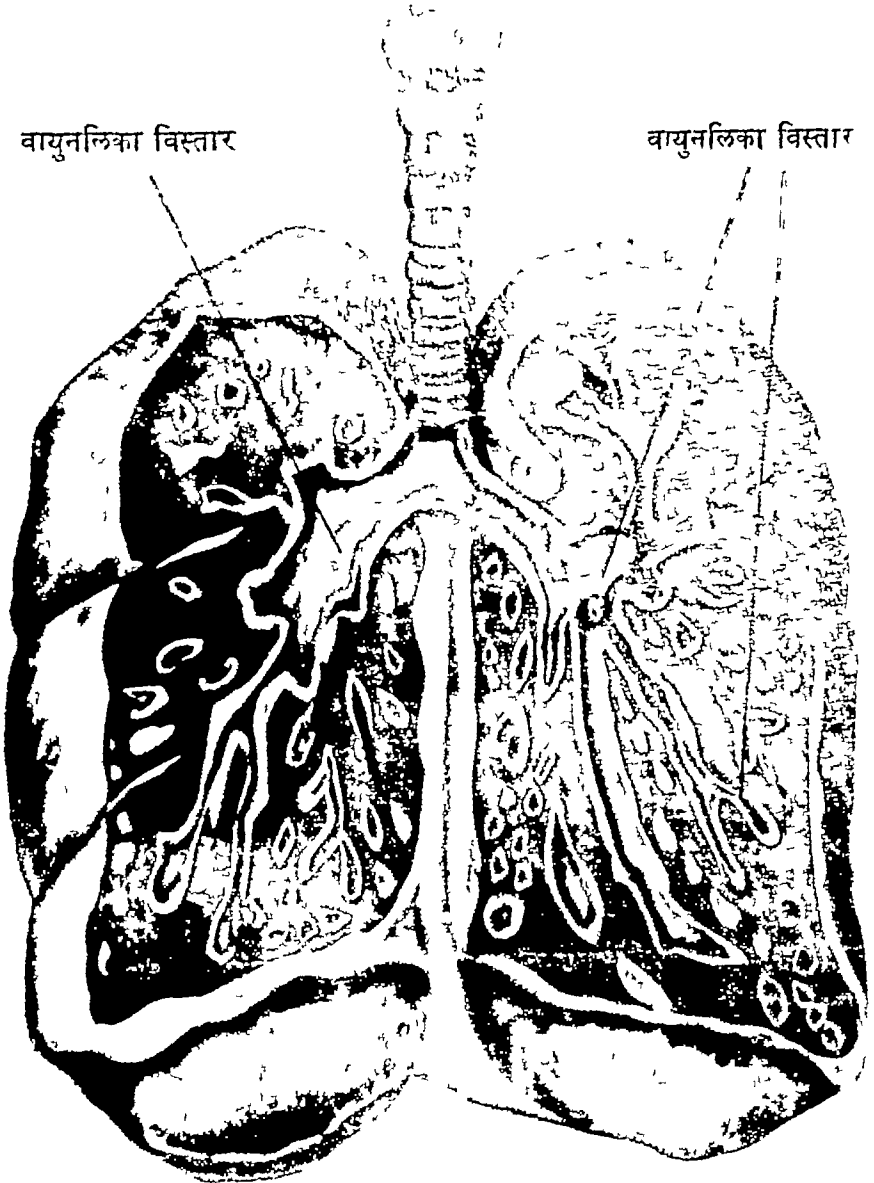
खांसते-खांसते स्वरभेद, हृदय, शंख (पुटपुटी या कच्चा कान के सामने का भाग), सिर, उदर, पसलियो मे पीडा हो जाती है। वल स्वर और ओज क्षीण हो जाता है। मुख क्षाम (सूखा और निस्तेज) हो जाता है।

पैत्तिक कास का लक्षण :—

इसमें ज्वर, छाती मे जलन, प्यास, पीली और कडवी वमन, तीता (नीम के समान) मुख हो जाता है। समस्त शरीर पीला एवं जलन से युक्त हो जाता है, मुंह भी सूखता रहता है।

श्लैष्मिक कास का लक्षण—

इसमे कफ बहुत निकलता है फिर भी खासी कम नही होती। सारा शरीर कफ से भरा हुआ प्रतीत होता है। भोजन मे अरुचि, शरीर मे भारीपन व खुजली, सिर मे पीडा और मुंह मे लेप की अनुभूति होती है।

साध्यासाध्य—

क्षयज और क्षतज कास क्षीणो मे असाध्य, वलवानो मे साध्य या याप्य (काल यापन करने के योग्य) होते हैं। ये दोनो नया और चिकित्सा के चारो पाद (चिकित्सा, रोगी, परिचारक, औषधि) उत्तम रहने पर किसी-किसी रोगी मे साध्य भी होते हैं। बुढापे के कारण उत्पन्न कास याप्य ही होता है।

वातज, पित्तज और कफज कास साध्य ही होते हैं।

चिकित्सा—

चिकित्सा मे निम्नलिखित वातो पर अधिक ध्यान दें—

१—सभी कासो में कफ निकालने का प्रयत्न होना चाहिये। इसके लिये मधुर, क्षारीय, कटु एवं उष्ण पदार्थों का व्यवहार सामान्यत होता है। मधुर मे मिश्री, पुराना गुड, मुलहठी, मधु, क्षारो मे यवक्षार, नवसादर, टंकण (चौकिया सोहागा का लावा), कटु में सोठ या आदी, पीपर, मिर्च और उष्ण पदार्थों मे उष्ण जल, सेहुण्ड पत्र, लहसुन, प्याज का व्यवहार होता है। यह भी ज्ञातव्य है कि सभी कटु पदार्थ उष्ण होते हैं। लाल मिर्चा कटु है पर वह हानिकारक है।

पैत्तिक कास में मृदु क्षार एवं कटु पदार्थों में पीपर व सोठ का व्यवहार हो सकता है। पर इन्हें भी न दें तो उत्तम है। मधुर पदार्थों से काम चलाना उत्तम है। जहाँ कास मे रक्त आ रहा हो वहाँ भी इन वातो का ध्यान रखा जाता है।

२—सभी कासो मे उष्ण जल का पीने के लिये व्यवहार करें। स्नान में भी उष्ण जल का प्रयोग हो तो उत्तम है। उष्ण जल कफ, वायु, पीडा, सडन एवं क्रिमियो को नष्ट करता है। व्यवहार के समय उष्ण जल रहे तो वहुत ही उत्तम है। अन्यथा खूब खौला कर धातु या शीशे के पात्र में रखा हुआ जल भी प्रयुक्त हो सकता है।

३—कफ न निकलने से तकलीफ हो तो छाती पर स्निग्ध तीक्ष्ण चीजो का गरम लेप करना चाहिये। पुराना घी, सरसो का तेल, मोम सम भाग लेकर गरम-गरम मालिश करने से कफ निकलता है। मालिश करने के बाद यदि सेहुण्ड का पत्ता (अभाव में मँदार या पान का पत्ता) रख कर उसके ऊपर रूई रख कर बाध दें तो बहुत लाभ होता है। उपर्युक्त पुराना घी आदि मे कुछ कपूर और अत्यन्त महीन सेंधा नमक भी डाला जा सकता है। सेंधा नमक से अधिक मालिश करने से त्वचा को कष्ट हो तो सेंधा नमक का व्यवहार न करें। केशर और अफीम पानी मे पीस कर गरम-गरम लेप से भी पीडा शान्त होती है।

४—लसीला, दूषित, सडा हुआ कफ अधिक मात्रा में निकल जाने पर भी यदि खासी कम न हो तो दूषित कफ को न बनने देने के लिए प्रयत्न करना चाहिये इसके लिये सितोपलादि चूर्ण एवं यक्ष्मा की सभी औषधिया (कफ निष्कासक औषधियो मे तालीशादि चूर्ण, शर्बत लिसोडा आदि को छोड कर) अच्छा काम करती हैं।

५—छाती में दर्द हो तो उसे दूर करने की ओर ध्यान दें। नम्बर ३ मे लिखित उपचार बडा लाभदायी है। उसमे बारहसिगा की सीग भी पानी मे घिस कर मिला कर पका दें तो उत्तम है। केवल पुराना घी भी लाभकर है। बारहसिघे की भस्म (शृङ्ग भस्म) औषधियो मे २ रत्ती या ४ रत्ती की मात्रा से मिला कर अथवा स्वतन्त्र खिलाने से बडा लाभ होता है। यह कुछ उष्ण होता है। अत. रक्त दर्शन में यथासम्भव न दें। पोहकर मूल चार रत्ती की मात्रा औषधियो मे मिला कर या स्वतन्त्र व्यवहार करने से भी लाभ होता है। दशमूल के क्वाथ से भी लाभ होता है।

६—उर क्षत एव यक्ष्मा की खासी मे फेफडो मे क्षत हो जाता है। इसलिये उसमें तुरन्त खासी बन्द करने एवं अधिकतम विश्राम की ओर ध्यान दें। प्राणायाम न करें। शुद्ध वायु मिलने का प्रयत्न करें। मधु, घृत एक उत्तम मलहम का काम करता है। अतः अनुपान अथवा स्वतन्त्र रूप से इसका व्यवहार खूब करें। दोनों बराबर-बराबर अथवा विषम मात्रा मे मिला कर २४ घण्टे मे अधिकतम आधापाव का व्यवहार कर सकते हैं। वंशलोचन के कण फुफ्फुस अथवा उसके क्षतो पर पहुँच कर कवच का काम कर सुरक्षा पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त यह दूषित कफ को शुद्ध करता एवं उसे बचने से रोकता है। इसलिये सितोपलादि एवं तालीशादि आदि औषधियों मे यह पर्याप्त मिला रहता है। यदि औषधि में यह न मिला हो तो मिला कर अथवा स्वतन्त्र रूप से अवश्य दें।

७—कोष्ठबद्धता को दूर करते रहे। प्रतिदिन शौच शुद्ध होना चाहिये। यदि रक्त दर्शन नही हो रहा है तो वमन द्वारा कफ निकाल देने से बडा लाभ होता है।

८—चिकित्सा के पहले भीतर से गला की परीक्षा कर लें यदि गल शुण्डी (घण्टी) बढी हो तो उसे टकंण भस्म दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुली पर रखकर उससे कस कर

ऊपर की ओर दवा दें। यदि ऐसा करने मे नासिका द्वारा या मुंह द्वारा रक्त आ जाय तो उत्तम समझिये। यह घण्टी के फूट जाने का लक्षण है।

घण्टी के दोनो ओर महराव में ही टान्सिल नामक दो गाठें और होती हैं जो स्वस्थ रहने पर भीतर छिपी रहती हैं। रुग्ण होने पर उभर कर सोपाडी के बरावर होकर दिखायी पडती हैं। उन पर टकणभस्म व फिटकिरी को मधु मे मिलाकर वारम्बार लगायें। नमक और फिटकिरी मिले हुये गरम पानी से बारम्बार खूब गलगला कर कुल्ला करें। गलगलाने का तात्पर्य यह है कि टान्सिल मे पानी से पर्याप्त स्पर्श हो और उसमे सेंक हो। घण्टी फूटने के दो घण्टे बाद और पहले कई दिन ऐसा करें घण्टी फूटने के दो घण्टे बाद तक नमक-प्रयोग न करें।

घण्टी बैठाने वाली स्त्रिया प्राय: हर जगह मिल जाया करती हैं। कोई भी व्यक्ति तीन-चार व्यक्तियो मे अभ्यास करने से उसे बैठा सकता है। कभी कभी भूना चना, कडी रोटी या लिट्टी खाने से भी घण्टी बैठ जाती है।

अनुपान :—

कफ निकालने के लिये मुलहटी का क्वाथ, मिश्री विशेषत. ताल मिश्री की चासनी, मधु, शर्वत लिसोडा, प्याज का रस, सेहुण्ड के पत्ते का रस, आदी का रस आदि अनुपान काम मे लायें।

दूषित कफ न बनने देने के लिये अडूसा, भटकटैया (छोटी कटेरी), पान, काकडा सिंगी, लहसुन आदि का व्यवहार करें।

दोनो अवस्थाओ मे कोई अनुपान न मिलने पर और प्यास आदि के लिये उष्ण जल का व्यवहार करें।

सामान्य ओषधियां

वातकास के लिये :—

१—पञ्चामृत रस २ रत्ती की मात्रा से वहेर्रा चूर्ण और मधु के साथ देने से लाभ होता है।

२—अमृतार्णव रस २ रत्ती की मात्रा से पिप्पली चूर्ण युक्त कण्टकारी (छोटी कटेरी या भटकटैया) क्वाथ मे देने से भी वडा लाभ होता है।

३—तालीशादि चूर्ण या तालीशाद्य मोदक एक माशा या दो माशा की मात्रा शर्वत लिसोडा और शर्वत अडूसा के साथ देने से वडा लाभ होता है।

४—लघुपञ्च मूल (सारिवन, पिठिवन, वडी कटेरी या वनभण्टा, छोटी कटेरी या भटकटैया, गोखरु) का क्वाथ एक छटाक सेहुण्ड पत्र स्वरस दो तोला प्याज स्वरस, दो तोला, आर्द्रक स्वरस १ तोला मे ताल मिश्री अभाव मे साधारण मिश्री एक छटाक और

गुड आधा पाव डाल कर चासनी बनायें। इसी मे शर्वत लिसोडा और शर्वत अडूसा दो तोला डाल दें तो बहुत उत्तम होगा। यह अनुपान के रूप अथवा स्वतन्त्र रूप से वारम्वार चटाने से बडा लाभदायी होती है। मेहुण्डपत्र-स्वरस रेचक होता है। अत. अधिक मलोत्सर्जन हो तो बन्द कर दें।

कफ निष्कापक चूर्ण :—

तालीशादि ६ माशा, मधुयष्ठी (मुलहठी) तीन माशा, टंकण या नवसादर एक माशा, प्रवाल भस्म चार रत्ती, शृङ्ग भस्म ४ रत्ती सब मिला कर रख दें। यह दिन-रात के लिये है। इसे उपर्युक्त कफ निष्कापक शर्वत दो तोला या चार तोला में मिला कर रख दें जब खांसी आये तब-तब चटायें। कफ निकाल कर खांसी को शान्त करता है। लऊक सपिस्ता (यूनानी दवा) भी वारम्वार चाटने से कफ निकलता है। वारम्वार चूसने के लिये तालमिश्री, साधारण मिश्री, मुलहठी, रव्वेसूस, मरिचादिवटी, लवंगादि वटी आदि मे से किसी का व्यवहार करायें।

पैत्तिक कास के लिये :—

१—पित्त कासान्तक रस १ रत्ती की मात्रा से अडूसे के रस मे बडा लाभकारी होता है।

२—सिहास्यादि वटी २ रत्ती की मात्रा से द्राक्षादिलेह के साथ देने से लाभ करती है।

३—सम शर्कर लौह एक माशा की मात्रा से छोटी कटेरी, बडी कटेरी, अडूसा और मुनक्का के क्वाथ से बडा लाभ करता है।

४—वासावलेह एक तोला की मात्रा से बकरी के दूध के साथ देने से लाभ करता है।

उपर्युक्त अनुपानो में किसी एक का स्वतन्त्र प्रयोग हो सकता है। तालमिश्री, मिश्री, मुलहठी, एलादिवटी, रव्वेसूस में से किसी एक को वारम्वार चूसने के लिए दे सकते हैं। अभ्रभस्म योगवाही है अर्थात जिस अनुपान से दिया जायेगा वैसा काम करेगा। अत इसे किसी भी कास मे दोषानुसार अनुपान से दिया जा सकता है। पर श्वेताभ्र भस्म दे सकें तो अधिक लाभ होगा। इसकी ४ रत्ती से १ माशा की मात्रा दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी को भी स्वतन्त्र या औषधि मे मिला कर दे सकते हैं। यह कफ, पित्त और दाह को नाश करता है।

श्लैष्मिक कास के लिये :—

१—वृहद्रसेन्द्र गुडिका एक रत्ती की मात्रा से आर्द्रक स्वरस से देने से बडा लाभ करती है।

२—काम कुठार रस एक रत्ती की मात्रा से पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्ता सोंठ) से सिद्ध दूध के साथ देने से बड़ा लाभदायी होता है।

३—बृहच्छृङ्गाराभ्र ४ रत्ती की मात्रा से दालचीनी चूर्ण व मधु से देने से बड़ा लाभदायी होता है।

४—स्वच्छन्द भैरव रस दो रत्ती की मात्रा से मधु के साथ देने से बड़ा लाभदायी है।

शृङ्ग भस्म, कृष्णाभ्रभस्म, रस सिन्दूर, टंकण भस्म का भी अलग-अलग अथवा किसी औषधि या अनुपान के साथ मिला कर प्रयोग हो सकता है। पिप्पल्यादि क्वाथ भी बड़ा लाभदायी होता है।

कनकासव वासारिष्ट और पिप्पल्यासव में से किसी एक को डेढ़ तोले की मात्रा से समान जल मिला कर भोजनोत्तर दिया जा सकता है।

क्षतज एवं क्षयज कास में क्रमशः उरःक्षत और यक्ष्मा का उपचार करना चाहिये। व्याघ्री हरीतकी, अगस्त्य हरीतकी में से किसी एक को एक तोले की मात्रा से बकरी के दूध या जल से दें। अभाव में वासावलेह भी दिया जा सकता है। लक्ष्मी विलास रस समशर्कर लौह में से किसी एक को यक्ष्मा या उरःक्षत के अनुपानों से दिया जा सकता है।

पथ्य :—

बकरी का दूध सभी कासों में सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। गेहूं, जौ, चावल (अरवा), मूंग, कुलथी, मोथी, मसुरी[1], मौसम्बी, मुनक्का, गम्भार, खजूर, बथुआ, चौराई, परवल, सूरन, लहसुन[1], प्याज, दे सकते हैं। बकरा, लवा, तीतर, हरिण का मांस, या उसका रस और उच्च कोटि का धूम्रपान भी हितकर है।

अपथ्य :—

मैथुन से बचें। सड़ा गला, दूषित पदार्थ, शीतल वायु, शीतल जल, बासी भोजन, धूलि, धूंवा, वेगावरोध आदि अपथ्य हैं।

---

1 इन्हें पित्तज कास और रक्त दर्शन में न द.
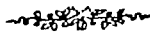
अट्ठारहवाँ अध्याय

हिक्का (हिचकी) श्वास और न्यूमोनियाँ

एक हिचकी आने मे एवं एक श्वास के वन्द होने मे प्राण निकल सकते हैं। इसलिये इनके समान प्राणनाशक अन्य रोग नही कहा गया है। इनमें मृत्यु तुल्य कष्ट होता है। अतएव इनकी चिकित्सा मे अत्यन्त शीघ्रता करनी चाहिये। हिक्की और श्वास के कारण एक हैं। पर सम्प्राप्ति और लक्षण दो हैं। कुछ को छोडकर शेष औषधियाँ एक ही हैं, चिकित्सा क्रम में भिन्नता है। पथ्यापथ्य एक ही है। इसलिये इन दोनो व्याधियो का वर्णन प्राय. एक ही अध्याय मे उपलब्ध होता है। यहाँ हम हिक्का का वर्णन करने के वाद श्वास का वर्णन करेंगे।

हिक्का का कारण व सम्प्राप्ति—

जलन करने वाले, भारी, विष्टम्भी (आँतो को जकड कर पचने वाले), अभिष्यन्दी (स्रोतो मे चिपकने वाले) और रूक्ष भोजन, शीतल पदार्थो धूलि धुवा वायु, व्यायाम, भार, मार्ग गमन, वेगावरोध और आवश्यकता से कम पुष्ट और मान वाले भोजन से हिक्का (श्वास और कास भी) होता है।

सम्प्राप्ति—

वारम्वार शब्द युक्त वायु, यकृत, प्लीहा और अन्त्र को मुख से वाहर की ओर फेंकता हुआ सा तथा हिक् ऐसा शब्द करता हुआ ऊपर निकलता है इसलिये हिक्का कहा गया है। यह प्राणो को शीघ्र नष्ट करता है।

भेद लक्षण व चिकित्सा—

हिक्का निम्नलिखित पाँच भेदो मे होती है।

१— अन्नजा—

भोजन और द्रवों के अत्यधिक सेवन, अत्यन्त कटु (मिर्च, लहसुन, प्याज, आदी, इत्यादि) का सहन शक्ति से अधिक सेवन करने से एकाएक पीडित वायु ऊपर आकर

हिक्का कर देती है। इसका अनुभव सभी को है। अत्यन्त कटु पदार्थ के सेवन से हुई हिक्का तो तुरन्त शीतल जल या मधुर शर्बत पीने से शान्त होती है। भोज्य और पेय द्रव्यों के अधिक सेवन से उत्पन्न हुई हिक्का उष्ण जल पीने से चली जाती है। मिल सके तो साथ मे हिंग्वादि वटी, हिंग्वष्टक चूर्ण और जीरकादि वटी का सेवन दिन रात मे तीन-चार बार करना चाहिये। इनमे जो अधिक लाभदायी हैं वह पहले लिखी हैं। अन्न पच जाने पर यह हिक्का स्वत. नष्ट हो जाती है पर यदि आगे लिखित यमला हिक्का के असाध्य लक्षण मिलें तो असाध्य हो जाती है।

२—यमला या यमिका हिक्का --

यह देर मे सिर और ग्रीवा को कँपाती हुई एक क्षण का अन्तर देकर साथ ही दो वेगो मे आती है। प्रलाप, पीडा और तृष्णा साथ मे होने पर यह असाध्य होती है। क्षीण, दीन, धातु और इन्द्रियो से अत्यन्त दुर्बल रोगी की भी यमला हिक्का असाध्य होती है। सुश्रुत टीकाकार डल्हण के अनुसार यमला हिक्का ही चरकोक्त व्यपेता हिक्का है।

इसमे प्रति मात्रा आधा तोला गाय के घृत मे ४ या ६ रत्ती यवक्षार मिलाकर खिलाने से अत्यन्त लाभ होता है।

चन्द्रशूर (चन्सूर) ४ तोला को ३२ तोला जल मे पका कर आधा पानी शेष रख लें। इस जल को बारम्बार ४ तोला की मात्रा से उष्ण ही पिलाने से तत्क्षण लाभ होता है।

बिजौरे नीबू के २ तोला रस मे ६ माशा मधु और ३ रत्ती काला नमक डालकर बारम्बार पिलाने से बहुत लाभ होता है।

३—क्षुद्रा हिक्का :—

बहुत देर से और मन्द वेग से यह होती है। इसमे वायु जत्रु (छाती और कण्ठ की सन्धि) मूल से ही उठता है। यह परिश्रम करने से बढती है। भोजन करते ही शान्त हो जाती है। यह साध्य है।

४ —गम्भीरा हिक्का :—

नाभि से उत्पन्न होने वाली गम्भीर आवाज और अनेक उपद्रवों से युक्त गम्भीर हिक्का होती है।

यह निस्सन्देह असाध्य है। यमला के असाध्य लक्षण भी इसमें भीषणता से मिलते हैं।

५—महाहिक्का :—

लगातार सब अंगो को कँपाती और मर्मों को भी पीडित करती हुई महाहिक्का होती है, यह भी असाध्य होती है।

हिक्काओं के असाध्य लक्षण :—

हिचकी आते समय जिसकी देह तन जाय, दृष्टि ऊपर चढ़ जाय, जो अत्यन्त क्षीण हो गया हो, अन्न से द्वेष करता हो, अधिक छींकता हो, जिसमें दोष अति संचित हो, भोजन न करने या व्याधियों से क्षीण हो, वृद्ध या अति मैथुन करने वाला हो ऐसे रोगी की हिक्का असाध्य होती है। गम्भीरा और महाहिक्का तो असाध्य ही है। यमला और अन्नजा के असाध्य लक्षण ऊपर लिखे गये हैं।

साध्य हिक्का :—

रोगी पुष्ट, तेजयुक्त, स्थिर धातु एवं स्थिर इन्द्रियों से युक्त हो तो उसकी गम्भीर और महाहिक्का को छोड़कर शेष हिक्का साध्य होती है।

चिकित्सा :—

सभी हिक्काओं की चिकित्सा के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें :—

१—चिकित्सा में अत्यन्त शीघ्रता करें।

२—औषधि बारम्बार दें। लाभ होने के क्रम से औषधिदान का समय बढ़ाते जांय।

३—वायु को अनुलोम करने पर सर्वदा ध्यान रहे। इसके लिये तैल की मालिश कर स्निग्ध और लवण युक्त स्वेदन करें। काला नमक, भुनी हींग एवं इलायची चूर्ण का प्रयोग भी यथोचित मात्रा में करें।

४—रोगी दुर्बल न हो तो स्नेहन-स्वेदन कर वमन-विरेचन करायें। वमन-विरेचन में भी स्निग्धता या वात नाशन का ध्यान रखें। यथासम्भव जयपाल घटित योग न दें। एरण्ड तैल, यष्ट्यादि चूर्ण आदि का प्रयोग विरेचनार्थ करें।

५—यदि सम्भव हो तो हृदय को शक्ति देने के लिये मुक्ता या स्वर्ण आदि अवश्य दें। मकरध्वज भी मिला दें तो सर्वोत्तम है। कोई औषधि न हो तो प्रवाल भस्म से ही काम चलावें।

सामान्य औषधियां :—

सभी हिक्काओं के लिये निम्नलिखित औषधियों में से किसी एक का अथवा अनेक का संयुक्त व्यवहार करें :—

१—मयूरपुच्छ भस्म १/४ रत्ती से २ रत्ती तक, पिप्पली चूर्ण मधु से।

२—शृंग्यादि चूर्ण १ माशा, उष्ण जल से।

३—काली मिर्च का चूर्ण ४ रत्ती, शक्कर ४ रत्ती व मधु ४ रत्ती से।

४—सोंठ, आंवला, पिप्पली का सम भाग चूर्ण, शक्कर व मधु से।

५—आंवले या कैथ का रस और मधु।

६—मुक्ता पिष्टी १।२ र० या १ रत्ती, गेरु युक्त सरसो के तेल से।

७—ताम्र भस्म १।२ रत्ती, बिजौरे नीबू के रस और मधु से।

८—शख चूल रस २ माशा, मधु से।

९- कास की जड ६ माशा, मधु से, (दाह युक्त मे दें)।

१०—केले की जड का रस एक तोला, मिश्री से दाह युक्त मे।

११—सूखे सफेद कोहडे का चूर्ण ६ माशा, उष्ण जल से।

१२—शुद्ध मैनसिल एक रत्ती, मिर्च-चूर्ण युक्त आर्द्रक रस और मधु से।

१३—काली मिर्च, पोहकर मूल और यवक्षार सम भाग चूर्ण १ माशा, उष्ण जल से।

१४—रस माणिक्य एक रत्ती, गुड के शर्वत से।

निम्नलिखित नस्यों मे से किसी एक का प्रयाग करायें।

१—पिप्पली और मिश्री का चूर्ण सम भाग।

२—सोठ के क्वाथ मे गुड का घोल।

३—आर्द्रक स्वरस मे मिश्री का घोल।

४—लहसुन या प्याज का रस।

५—मक्खियो के पुरीष को स्त्री के दूध मे घोलकर। घरो मे टंगी हुई रस्सियो आदि पर मक्खियां बहुधा बैठती हैं। उन्हीं रस्सियो आदि पर से सुरुक कर मक्खी का पुरीष स्त्री दूध मे घोल दें।

निम्नलिखित धूमों में स किसी एक का पान करायें—

१—हलदी उरद का सम भाग चूर्ण।

२—नारियल की जटा।

पथ्य—

बकरी का दूध श्रेष्ठ पथ्य है। इसके अतिरिक्त गेहूँ, जौ, पांचो नमक, (सेंधा, काला, विरिया, समुद्र या सांभर, खारी) हल्दी, आंवला, कैथ, परवल, कुलथी, हिरन तीतर का मांस आदी, लहसुन, मधु, यदि प्रवात न हो तो साठी का चावल, बकरी के दूध मे सोठ डाल कर पिलायें तो अत्यन्त लाभ करेगा।

श्वासरोग

श्वास लेने और बाहर निकालने मे जब कष्ट होता है तो उसे श्वास रोग कहते हैं। लोक और शास्त्र मे रोग और चिकित्सा के सम्बन्ध मे इस रोग के लिये केवल श्वास शब्द रूढि हो गया है। जिन कारणो से हिक्का हाती है उन्ही कारणो से यह भी होता है।

पथ्यापथ्य के दृष्टिकोण से दोनो समान हैं। वायु अनुलोमन करने अथवा कोष्ठ शुद्ध करने के लिये दोनो में ध्यान दिया जाता है। हिक्का में कफ निकल सके तो उत्तम ही

है। पर उसे निकालने का अधिक ध्यान श्वास रोग मे किया जाता है और यहाँ इसकी विशेषता है। इसी विशेषता को लेते हुए इसका चिकित्सा क्रम एवं औषधियाँ बतायी गयी हैं। इसके पांच भेद हैं '१—महाश्वास, २—ऊर्ध्वश्वास, ३—छिन्नश्वास, ४—तमक श्वास, एवं ५—क्षुद्र श्वास। इसमें तमक श्वास ही लोक-प्रसिद्ध दमा है

सम्प्राप्ति—

जब कफ युक्त वायु प्राणवाही स्रोतो (फुफ्फुसो के वायु मन्दिरो) को रोक कर चारो ओर व्याप्त होता है तब वह श्वास रोग कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कफ से रुकी हुई वायु के आगमन के लिये श्वासवाही अगो (फुफ्फुसो एव श्वास मार्ग) में स्थान नहीं मिलता तभी श्वास कष्ट बढ जाता है

महाश्वास के लक्षण—

रोगी के गये मतवाले साँड के समान ऊर्ध्वगामी वायु के कारण फुफकार के समान शब्द करता हुआ अत्यन्त दुखित निरन्तर लम्बा श्वास लेता है, ऐसी अवस्था मे जिसका ज्ञान विज्ञान नष्ट हो जाता है, नेत्र चंचल हो जाते हैं, आँख और मुह खुले रहते हैं, मूत्र और पुरीष रुक जाता है, जो बोलने मे असमर्थ रहता है, श्रीहीन हो जाता है, श्वास का शब्द उच्च होने के कारण दूर से ही जिसकी श्वास क्रिया जानी जाती है वह रोगी महाश्वास से ग्रसित होता है और अत्यन्त शीघ्र मर जाता है।

ऊर्ध्वश्वास के लक्षण—

श्लेष्मा से घिरे हुए मुंह एवं प्राणवाही स्रोत वाला जो रोगी कुछ वायु से पीडित ऊपर ही लम्बी श्वास लेता है, नीचे की ओर जिसकी श्वास नहो लौटती, ऊपर की ओर देखता हुआ इधर-उधर चंचल नेत्र करता है। बदहोश, वेदना और बेचैनी से पीडित होने से सफेद मुंह वाला हो जाता है, जिसकी उर्ध्व श्वास के प्रकुपित होने के कारण नीचे लौटने वाली श्वास रुक जाती है वह मोह एवं अन्धकार से व्याप्त होता हुआ प्राण को छोड देता है।

छिन्नश्वास के लक्षण—

सर्व शक्ति लगा कर भी श्वास लेने पर जिसको श्वास बीच में ही टूट जाती है अथवा वह श्वास नहीं ले पाता, अत्यन्त दुखित हो मर्मच्छेदी पीडा से पीडित रहता है, आनाह (अतड़ियो की गति रुकना) स्वेद, मूर्च्छा और दाह युक्त वस्ति से पीडित रहता है, जिसकी आख डबडबाई रहती है, जो क्षीण रहता है, श्वास लेते हुए जिसकी एक आंख लाल हो जाती है, जो बेहोश, होता है, सूखा मुंह वाला, बदरंग और प्रलापी होता है वह छिन्नश्वास से पीडित मनुष्य शीघ्र ही प्राण त्याग करता है।

तमक श्वास (दमा)—

वायु प्रतिलोम होकर प्राणवाही स्रोतों मे व्याप्त होता है। कंठ और मस्तिष्क

को जकड कर एव कफ को कुपित कर पीनस (विगडा हुआ जुकाम) कर देता है, तव उस कफ से रुका हुआ वायु घुरघुर शब्द करता हुआ अत्यन्त तीव्र वेग वाला और हृदय को पीडित करने वाला श्वास कर देता है जिससे रोगी के सामने अधेरा छा जाता है। वह श्वास से उद्विग्न और चेष्टा रहित हो जाता है। खांसते खांसते वारम्वार वेहोश हो जाता है। श्लेष्मा के न निकलने मे अत्यन्त दुखित होता है। उसके निकलते ही थोडी देर सुख प्राप्त करता है। उसका गला उद्ध्वस्त हो जाता है जिससे कष्ट से वोल पाता है। सोते समय श्वास से पीडित होने के कारण उसे नीद नही आती, क्योकि सोते समय वायु उसके पार्श्वों को पकड लेता है। इस कारण वैठने मे आराम प्राप्त करता है। उष्ण पदार्थों की इच्छा करता है। आँखें चढी रहती हैं। ललाट पर पसीना होता है। बहुत पीडित होता है। मुख सूखता है। वारम्वार श्वास कष्ट से पीडित होकर हाथी पर सवार के समान झूमता है। वदली, वर्षा, शीत और पूर्वी हवा एवं कफ कारक कारणो से बढता है। यह तमक श्वास याप्य है। यदि नवीन हो तो साध्य भी हो सकता है।

प्रतमक श्वास :—

जव तमक श्वास मे ज्वर और मूर्छा हो तो उसे प्रतमक श्वास कहते हैं। यह उदावर्त्त (इस रोग का वर्णन आगे है), धूलि, अजीर्ण एवं शरीर गीला होने से होता है।

सन्तमक श्वास :—

तमक श्वास जव अन्धकार से बढता है शीत से तुरन्त शान्त हो जाता है और रोगी अन्धकार मे डूबता हुआ अनुभव करे तो उसे सन्तमक कहते हैं।

क्षुद्र श्वास :—

रूक्ष पदार्थो एवं परिश्रम से कोष्ठ मे वायु कुपित होकर क्षुद्र श्वास (परिश्रम या दौडने इत्यादि से श्वास फूलना या हफनी) उत्पन्न कर देता है। यह अङ्गो को न पीडित करता है और न इसमे अन्यान्य श्वास रोगो के कष्ट होते हैं। यह भोजन, पान (द्रव पदार्थों का पीना) की उचित गति को नहीं रोकता। इन्द्रियो मे कोई व्यथा या अन्यान्य कोई पीडा उत्पन्न नहीं करता।

साध्यासाध्य :—

क्षुद्र श्वास साध्य होता है। सभी श्वास रोग पूर्वावस्था मे साध्य होते हैं। रूपावस्था मे तमक श्वास कष्ट साध्य होता है, यह अत्यन्त दुर्वल रोगी मे असाध्य होता है। शेष तीनो महाश्वास, उर्ध्वश्वास और छिन्न श्वास रूपावस्था मे असाध्य ही होते है।

चिकित्सा :—

श्वास रोग की चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखें।—

१—तीव्र वेग मे तत्काल कफ को निकालने का उपाय करें। वे उपाय कास और यक्ष्मा मे लिखे हैं। यहा पुन संक्षेप मे लिख दे रहे हैं, तालीशादि चूर्ण, मधुयष्टी, टंकण या नौसादर को शर्बत लिसोडा या शर्बत अडूसा के साथ बारम्बार चटायें। पुराना घी, मोम, सरसो तेल को पका कर गरम-गरम छाती पर मालिश करें। सेहुण्ड का पत्ता रख कर ऊपर से रूई बाध दें। कासाधिकार मे विस्तार से कफ निष्कापक उपाय लिखे गये हैं।

२—धतूरे के पंचाग (पत्र-पुष्प-फल-जड-डण्ठल) मे से जो उपलब्ध हो सके उसे एवं मदार के पत्ते का सूखा चूर्ण चिलम की आग पर रख कर तमाखू के समान धूम्रपान करने से तुरन्त कफ निकलता है। केवल धतूरे का पत्ता भी यही काम करता है।

३—रेवन्द सार या उसारेरेवन का चूर्ण ३ रत्ती की मात्रा से उष्ण जल या उष्ण दूध से पिलाने से ३० मिनट के भीतर वमन और दस्त या दोनो मे से किसी एक के द्वारा कफ निकल जाता है। रोगी तत्क्षण आराम का अनुभव करता है। परन्तु सावधान! वात नाडियाँ अत्यन्त शिथिल हों, रोगी अत्यन्त क्षीण हो तो इसे न दें। मदार के पत्ते का उष्ण रस दो तोला पिलाने से वमन द्वारा कफ निकल जाता है। यह निरापद है।

४—कोष्ठ शुद्धि और वायु के अनुलोमन (नीचे की ओर जाना) पर अधिक ध्यान दें।

५—रोगी की साधारण शक्ति को बढाते रहे।

६—हृद्रोग, उदर रोग, पाण्डु रोग आदि के उपद्रव स्वरूप भी श्वास रोग होता है, इस ओर भी ध्यान दें। श्वास रोग की चिकित्सा के अतिरिक्त मूल रोग की चिकित्सा अनिवार्य है।

७—यह सर्वदा ध्यान रखें कि अजीर्ण न होने पाये। आम या दूषित कफ न बनने पाये। गर्मी के दिनो के अतिरिक्त शीतल आहार या शीतल विहार न होने पाये। शीतलता से आराम होने वाला सन्तमक श्वास प्राय. नहीं मिलता। मिले तो उसमे शीतल आहार विहार होगा। रोगी से गम्भीरतापूर्वक जाच करें कि उसे शीतल पदार्थों से आराम तो नहीं मिलता।

८—यह भी स्मरण रखिये कि चिकित्सा करने के लिये साधारणत: तमक श्वास में ही अवसर मिलता है और वह पुराना होने पर याप्य हो जाता है। पर विधिवत् चिकित्सा (वमन-विरेचन आदि सहित) का पूर्ण अवसर मिले तो उसे जड़ से आराम किया जा सकता है।

औषधियां :—

औषधियो मे हृदय और फुफ्फुस को मजबूत करने वाली औषधियां अवश्य रहनी चाहिये। कफ निष्कापक एवं वायु अनुलोमक भी रहनी चाहिये। साधारण

न्युमोनिया मे दोष-स्थान
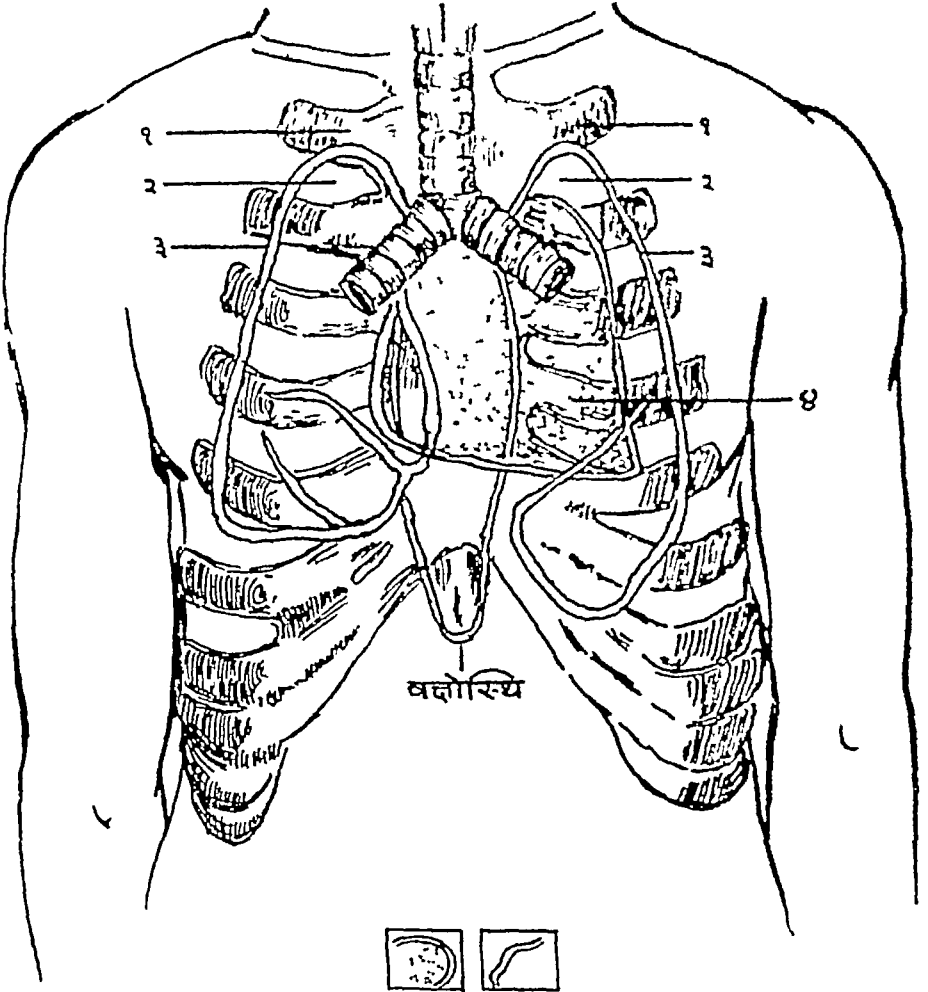
(पृष्ठ २६१ के सम्मुख)

१—पसली २—फुफ्फुस ३—फुफ्फुसावरण ४—हृदय

औषधियाँ ये हैं—इनमे से किसी एक का अथवा आवश्यकतानुसार अनेक का संयुक्त व्यवहार करें .—

बहेर्रा का चूर्ण ६ माशा, मधु से ।
सोठ मिर्च पीपर पीपरामूल का चूर्ण २ माशा, मधु से ।
यवक्षार २ माशा, घृत से ।
अपामार्ग का क्षार ३ माशा, घृत से ।
अडूसा के पत्ते का रस २ तोला मधु से ।
मयूरपुच्छ भस्म ४ रत्ती मधु से ।
भटकटैया के फल का चूर्ण १ माशा, भुनी हींग ४ रत्ती मधु से ।
मुलहठी का क्वाथ २ तोला सेंधा नमक एक माशा, मिश्री और घी से ।
श्वास कुठार रस १ रत्ती से २ रत्ती, आर्द्रक रस से ।
श्वास कास चिन्तामणि १ रत्ती से २ रत्ती, पिप्पली व मधु से ।
श्वास चिन्तामणि १ रत्ती से २ रत्ती, बहेर्रा चूर्ण मधु से ।
शृङ्ग्यादि चूर्ण एक माशा, उष्ण जल से ।

जलपानार्थ भार्गी गुड, वासावलेह, कण्टकार्यावलेह, च्यवनप्राश मे से किसी एक का एक तोला की मात्रा से प्रयोग कर उष्ण जल या बकरी का उष्ण दूध पिला दें । मार्गी गुड़ एक तोला के साथ उसमे की एक हरड भी खिला दें ।

भोजनोत्तर कनकासव डेढ़ तोला सम जल मिला कर पिला दें तो सर्वोत्तम है अन्यथा पिप्पल्यासव या द्राक्षासव मे से किसी एक को १ या २ तोले सम जल मिला कर पिला दें ।

पथ्य :—

बकरी का दूध सर्वश्रेष्ठ पथ्य है, गेहूं, अत्यन्त पुराना गुड, अरवा चावल, मूंग, कुलथी, परवल, भण्टा, वथुआ, चौराई, लहसुन, आदी, मुनक्का, खजूर, गम्भार, मिश्री, इलायची सरसो का तैल, गोमूत्र, उत्तम शराब मुर्गी तीतर-बटेर-लवा-हरिण-खरगोश का मांस भी दे सकते हैं ।

भोजन के पूर्व नमक आदी और अन्त मे सोठ मिश्री का चूर्ण ६ माशा खिलाकर उपर्युक्त कोई आसव पिला दें तो बहुत उत्तम होगा । फिर भोजन से दूषित कफ या आम नही बनेगा । वह अच्छी तरह पच जायेगा । शौच और अधोवायु साफ आती है, अजीर्ण नहीं होता, रोग मे भी लाभ होता है । रात मे नीद न आये तो दिन मे सोना चाहिये ।

न्यूमोनियां :—

इस रोग को लोग कफोल्वण सन्निपात, कर्कटक सन्निपात या श्वसनक ज्वर भी कहते हैं । साधारणतः पार्श्व शूल, कास, श्वास कष्ट, १०३–१०४ डिगरी ज्वर, मोह,

प्रलाप, पसीना निकलना, निद्रा-नाश होता है, कफ नहीं निकलता। कभी-कभी ग्रीवा में सफेद दाने निकल आते हैं और कभी-कभी थूक के साथ रक्त भी आता है।

इसमें कफोल्वण सन्निपात, कास श्वास आदि को ध्यान में रखते हुए इस अधिकार की औषधियों का व्यवहार करना चाहिये। साधारणतः महाज्वरांकुश, गोदन्ती भस्म, शृंग[1] भस्म, अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर, चन्द्रामृत रस कफ केतु का व्यवहार करते हैं। कास श्वास में लिखित कफ निष्कासक सभी प्रयोग किये जा सकते हैं। यदि नींद न आती हो तो ज्वरोक्त नींद के लाने के प्रयोग करें। थूक में रक्त आता हो तो अधिक उष्ण औषधि न दें। मुलहठी, एलादि वटी, मिश्री आदि मृदु द्रव्यों से ही कफ निकालें।

साधारण अनुपान पान, आदी, अडूसा, निमाड़ा आदि हैं।

पथ्य –

ज्वर कास श्वास के दृष्टिकोण से दें।

---

१ इसे प्रत्येक औषधि में मिला कर दें, उत्तम है। यह याद रहे जरा उष्ण वीर्य है।

उन्नीसवाँ अध्याय

स्वर भेद (गला बैठ जाना)

कारण और लक्षण –

अत्यन्त उच्च स्वर से बोलने, विष, उच्च स्वर से वेद पाठादि अध्ययन, कण्ठ में आघात आदि वायु को प्रकुपित करने वाले कारणो से कुपित हुए वात, पित्त, कफ स्वरवाही स्रोतो मे प्रतिष्ठित हो स्वर को नष्ट कर देते हैं। इसी को स्वर भेद कहते हैं जो छः प्रकार का होता है। १—वातज, २—पित्तज, ३—कफज, ४ सन्निपातज, ५—मेदोज एवं ६—क्षयज। इनमे सर्वाधिक वातज स्वर भेद होता है जो प्रायः उच्च भाषण एवं असमय प्रातराश (प्रातःकालीन जलपान) से होता है। इसमे अत्यन्त धीमी या गदहे के समान निष्ठुर आवाज निकलती है। रोगी का चेहरा कुछ रूखा और कालिमायुक्त होता है, मूत्र और पुरीष भी वात कोप के कारण कुछ काले हो जाते हैं।

वातिक स्वरभेद के बाद मेदोज स्वरभेद अधिक मिलता है जिसमें आवाज मुंह के भीतर ही रह जाती है। बोलने की चेष्टा करने पर बहुत देर मे अस्पष्ट आवाज निकलती है, गला मेद (चर्वी) के कारण लिपा रहता है प्यास अधिक लगती है। यह प्राय मेदस्वियो को होता है। प्राय' सभी लोग वातज एवं मेदोज स्वर भेद के रोगी देखते हैं। क्षयज स्वर भेद के रोगी यदा कदा दिखायी पडते हैं। यक्ष्मा की अन्तिम अवस्था मे होने वाला यह स्वर भेद असाध्य होता है। इसके बाद कफज स्वर भेद का नम्बर आता है। जिसमे गला कफ से रुका रहता है। रोगी थोडा सा और बहुत धीरे बोलता है। सूर्य के ताप से कफ के पिघलने के कारण दिन मे अधिक और आसानी से बोलता है पैत्तिक[1] स्वरभेद एव सान्निपातिक स्वर भेद बहुत कम मिलता है।

---

१ पैत्तिक स्वरभेद में बोलते समय गले में दाह होता है। नेत्र मुख मूत्र और पुरीष पीले हो जाते हैं। सान्निपातिक में तीनो दोषों के लक्षण मिलते हैं।

साध्यासाध्य—

क्षीण, वृद्ध, कृश का बहुत दिनो से उत्पन्न जन्मजात मेदोज एवं सान्निपातिक स्वर भेद अच्छा नही होता है।

अल्पकालीन वातज, पित्तज, कफज स्वरभेद साध्य होता है।

चिकित्सा—

वातज स्वरभेद मे घृत युक्त मधुर उष्ण भोजन खिलाना चाहिये। घी और गुड मिला कर भात अथवा घी से तर उष्ण हलवा खिलाना चाहिये। पीने के लिये हमेशा गरमागरम पानी पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये। कण्ठ पर घी से तर गरम-गरम हलुवे का लेप भी करना चाहिये। यह पाँच-सात दिन मे उपर्युक्त उपचार से अच्छा हो जाता है। यदि सम्भव हो तो चव्यादि चूर्ण एक माशा गुड मिला कर खिलाने के बाद गरम पानी पिला दें। प्रात. साय कल्याणावलेह २ माशा की मात्रा से खिला कर उष्णजल पिलायें। मुलहठी या शतावर अथवा दोनो से सिद्ध बकरी का उष्ण दूध, अभाव मे उष्ण गोदुग्ध शक्कर और मधु मिला कर पिलाने से बडा लाभ होता है। इसे अनुपान या पथ्य रूप मे भी दे सकते हैं।

सारस्वत घृत भी ६ माशा की मात्रा से उष्ण जल के साथ सेवनकिया जा सकता है।

मेदोज स्वरभेद तो असाध्य होता है। फिर भी कफज स्वर भेद की चिकित्सा जो आगे कही जायेगी, कीजिये। रोगी की चर्बी कम करने के लिये भरपूर उपाय करें। सामान्य चिकित्सा निम्नलिखित श्लेष्मज (कफज) स्वरभेद की करें।

कफज स्वरभेद मे उष्ण, कटु एवं क्षारीय द्रव्यो का व्यवहार करने से और पिप्पल्यादि चूर्ण ४ रत्ती से एक माशा की मात्रा से गो मूत्र के साथ पीने से बडा लाभ होता है। भृङ्गराज घृत ६ माशा की मात्रा से मधु से सेवन करने से भी लाभ होता है।

अजमोदादि चूर्ण ४ माशा की मात्रा से मधु घृत से देने से बडा लाभ होता है। बेर के पत्तो का कल्क घी मे भून कर सेंधा नमक मिला कर एक तोला की मात्रा से भी व्यवहार करें। पथ्य में बकरी का दूध विशेष हितकारी है। क्षयज स्वरभेद मे क्षय की चिकित्सा करते हुए कफज स्वरभेद की चिकित्सा करें।

पैत्तिक स्वरभेद मे मुलहठी, मिश्री और अडूसा का अधिक व्यवहार करें।

सान्निपात्तिक स्वर भेद में तीनो दोषो की सम्मिलित चिकित्सा करें। जो दोष अधिक हो उसकी चिकित्सा पर विशेष ध्यान दें।

सभी स्वरो भेद पर व्याघ्री हरीतकी ६ माशा से १ तोला की मात्रा से उष्ण जल से दें। रसेन्द्र गुडिका भी एक रत्ती की मात्रा से अडूसा के रस में दे सकते हैं।

लवंगादि वटी कुलञ्जन, मुलहठी और मिश्री चूसने मे लाभ होता है। कुलञ्जन आदि तीक्ष्ण द्रव्यो को अधिक चूसने से जिह्वा में कष्ट होने लगता है। ऐसी अवस्था मे केवल मिश्री या अन्य उपर्युक्त अवलेह आदि से काम चलायें। सभी स्वर भेदो मे साधारण पथ्य बकरी का दूध, मुनक्का, लहसुन, नमक, आदी, शराब, लाल चावल, मास रस, पान, घृत, मुर्गी और मयूर का मास दे सकते हैं।

अपथ्य :—

सभी अम्ल कषाय पदार्थ, अधिक बोलना और दिन मे सोना।

बीसवाँ अध्याय

अरुचि छर्दि और तृष्णा

शास्त्र में अरुचि (अरोचक), अनन्नाभिनन्दन, अन्नानभिनन्दन, भक्त-द्वेष एवं अभक्तच्छन्द ये शब्द एकार्थवाची के समान प्रतीत होने वाले मिलते हैं। चरक और सुश्रुत में सबका एक नाम अरोचक दिया गया है। पर उनका अलग-अलग यह तात्पर्य है :—

अरुचि :

भूख लगने पर भी स्वादिष्ट अन्न का स्वाद ठीक न लगना या भूख लगने पर भी भोजन ग्रहण करने मे असमर्थता।

अन्नानभिन्दन या अनन्नाभिनन्दन :—

इच्छित अन्न देने पर भी उसका व्यवहार न करना।

भक्तद्वेष : —

मन मे भोजन की कल्पना होते ही या उसे देखते ही अथवा उसका नाम सुनते ही रोगी को बहुत द्वेष हो जाना।

अभक्तच्छन्द :—

क्रोध, भय, शोक आदि कारणो से भोजन मे इच्छा न होना।

इसके शारीरिक और मानसिक दोनो कारण होते हैं। शारीरिक कारणो से वातज, पित्तज, कफज एवं सान्निपातिक अरोचक होता है। समस्त मानसिक कारणो से होने वाला आगन्तुक अरोचक होता है। इस प्रकार उसके कुल पाच भेद होते हैं। शारीरिक में दोषानुसार अर्थात् वातज मे हृदय मे पीडा, अम्ल पदार्थ खाने के समान कोठ-दांत और मुख कसैला होता है। पित्तज मे मुख नीम के पत्ते के समान तीता, खट्टा, उष्ण, विरस एवं दुर्गन्धित होता है। छाती या कण्ठ मे जलन तथा खट्टी डकार आती है। कफज मे मुख नमकीन, मधुर, लसीला, भारी, शीतल, बंधा हुआ एवं कफ से लिया हुआ

होता है। मुंह से बहुत कफ निकलता है। त्रिदोषज मे अनेक प्रकार की पीडा तथा मुंह में अनेक प्रकार के रस का अनुभव होता है। आगन्तुक अरोचक मे मन की व्याकुलता और जडता होती है।

चिकित्सा :—

इसकी चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखें।

१—किसी रोग के उपद्रव स्वरूप अरुचि है तो उसे दूर करने का प्रयत्न करें। इसी से अरुचि ठीक हो जायेगी। चाहे तो साथ मे दोषानुसार अरुचि की चिकित्सा जो उस रोग मे हानि न पहुँचाये, करें। मन को प्रसन्न रक्खें।

२—आगन्तुक अरुचि मे आगन्तुक कारणो को दूर करें।

३—दोषज मे दोषानुसार चिकित्सा करें।

४—कोष्ठशुद्धि अर्थात् नित्य मल एवं वायु के यथोचित रूप में निकलने पर ध्यान दें।

५—स्वाद जिह्वा से ज्ञात होता है। यदि जिह्वा में विकार हो तो उसे भी दूर करें। जिह्वा रोगो का वर्णन आगे मुख रोगो मे होगा।

वातिक अरुचि में :—

यवानी खाण्डव चूर्ण २ माशा नीबू के पानक[1] से, एलादि चूर्ण २ मा० इमली[1] के पानक से और हिग्वष्टक चूर्ण २ माशा उष्ण घृत से इनमे से किसी एक का व्यवहार करें।

पैत्तिक अरुचि में :—

सितोपलादि चूर्ण एक माशा मधु घृत से। लवंगादि चूर्ण १ माशा तक्र से। इनमें किसी एक का व्यवहार करें।

कफज अरुचि मे :—

धनञ्जय वटी २ रत्ती आर्द्रक शर्बत से, अग्निकुमार रस १ रत्ती आर्द्रक रस से और आमलक्यादि चूर्ण २ माशा लवग जल। इनमे किसी एक का व्यवहार करें।

त्रिदोषज अरुचि मे : -

कारव्यादि गुटिका २ माशा चूषणार्थ या उष्ण जल से, यवानी खाण्डव चूर्ण २ माशा नीबू के पानक से और धनञ्जय वटी २ रत्ती उष्ण जल मे से किसी एक का व्यवहार करें।

आगन्तुक अरुचि में :—

आगन्तुक कारणो को दूर करते हुए मन को प्रसन्न करने वाले शर्बत यथा

---

१ टि० नीबू का पानक —नीबू का रस एक भाग, चीनी छ भाग, यथोचित जल डाल कर २ या ३ तार की चासनी पाक करें। पाक करने के बाद १।८ भाग काली मिर्च और १।८ भाग लवण चूर्ण डाल दे।

इमली का पानक —पकी इमली का गूदा एक भाग जल ६ भाग चीनी ३ भाग डाल कर २-३ तार की चासनी के समान पाक करें। चाहें तो १।८ भाग लवण और १।८ भाग मिर्च चूर्ण डाल दें, तैयार है।

अनार का शर्बत, नीबू का शर्बत और अंगूर का शर्बत या द्राक्षासव मे से किसी का व्यवहार करें।

विशेष :—

पैत्तिक को छोडकर प्रत्येक अरुचि मे भोजन के पूर्व नमक मिली आदी खायें। भोजनोत्तर द्राक्षासव या कोई स्वादिष्ट रुचिवर्धक आसव अथवा अरिष्ट डेढ तोला की मात्रा मे सम जल मिला कर पीयें। सावधान! अहिफेन घटित योग न दें।

अनुपानो मे नीबू या इमली का पानक, अनार का शर्बत, तक्र या अन्यान्य स्वादिष्ट अग्निवर्धक अनुपान प्रयोग मे लायें।

पथ्य :—

स्वादिष्ट, मनोनुकूल, सुसंस्कृत (छौंके बघारें) और सुपाच्य भोजन ही पथ्य हैं। सात्विक सभी आहार निस्सन्देह होकर उपर्युक्त दृष्टिकोण से दिये जा सकते हैं। मासभक्षियों, लहसुन, प्याज खाने वालो को भी उसी दृष्टिकोण से इच्छित वस्तु दे सकते हैं।

काजी, रायता, चटनी, अचार, तक्र, पन्ना (आम, इमली, नीबू मे से किसी एक का) आदि भी दें।

शरीर व मन की स्वच्छता, स्वच्छ वस्त्र आदि उत्साहवर्धक चीजो पर भी ध्यान दें।

छर्दि (वमन)

छर्दि शब्द छद् और अर्द शब्दों के संयोग से बना है। छद् का अर्थ है ढकना एवं अर्द का अर्थ है पीड़ित करना। तात्पर्य यह है कि इस रोग मे मुख की ओर दौडता हुआ दोष वेग से मुख को ढकता है एवं अंगो को तोडने के समान होने वाली पीडा से युक्त कर देता है। इसलिए इसका नाम छर्दि पडा। इसे वमन, कै, उलटी आदि भी कहते हैं।

यह अत्यन्त द्रव, अति स्निग्ध मन को अप्रिय, अति लवण मात्रा में अधिक, आत्मा के प्रतिकूल एवं असमय मे किये गये भोजनो से तथा परिश्रम, भय घबड़ाहट, अजीर्ण, क्रिमि दोष से होती है। गर्भ के कारण गर्भिणी को तथा सभी को अत्यन्त शीघ्रता से भोजन करने और अन्यान्य घृणित कारणो से होती है। अरुचि के समान ही यह भी वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा आगन्तुक भेद से पांच भेद में बँटती है। सभी वमनो या छर्दियों के पूर्वरूप मे जी मिचलाना, डकार रुक जाना, मुँह से नमकीन पतला पानी गिरना और अन्नपान मे भीषण द्वेष होता है।

वातजा में :—

हृदय, नाभि, शिर, पार्श्व में पीडा, मुख का सूखना और स्वरभेद होता है। उद्गार शब्द अत्यन्त प्रबल होता है। बहुत कष्ट से एवं बडे वेग से दोष निकलता है पर अत्यन्त थोडा निकलता है।

पित्तजा में :—

मूर्च्छा, प्यास, दाह, चक्कर, सिर तालु एवं आंख में विशेष दाह होता है। मुख से निकला द्रव्य पीला, हरा, तीता, उष्ण होता है।

कफजा में :—

ऊंहाई, निद्रा, अरुचि, भारीपन, असन्तोष (अन्न खाने की अनिच्छा) मुंह में मीठापन, रोमाञ्च और अल्प पीडा होती है। मुंह से निकला द्रव्य चिकना, घना और मधुर होता है।

त्रिदोष जन्य में :—

शूल, भोजन न पचना, अरुचि, दाह, तृष्णा, श्वास और मोह होता है। रोगी लगातार प्रबल वमन से पीडित होता है। वमन का द्रव्य नमकीन, खट्टा, गाढ़ा, नीला और लाल होता है।

आगन्तुक छर्दि :—

घृणा, गर्भ, आम, असात्म्य, कृमियों से होने वाली छर्दि आगन्तुक छर्दि होती है। दोष प्रकोप के लक्षणों के अनुसार दोष का विवेचन कर लेना चाहिये। क्रिमिजन्य में शूल, जी मिचलाना और क्रिमिज हृद्रोग के लक्षणों के समान लक्षण मिलते हैं।

साध्यासाध्य :—

निरुपद्रव छर्दि साध्य होती है। क्षीण को लगातार होने वाली चन्द्रिका-रक्त-पूय से युक्त छर्दि असाध्य होती है।

छर्दि के उपद्रव :—

कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, मोह, हृद्रोग, आंखों के सामने अन्धेरा छाना ये छर्दि के उपद्रव हैं।

छर्दि की चिकित्सा :—

१— जिस समय छर्दि या वमन हो रही है उस समय रोगी की सम्भाल पर ध्यान दें। वह गिरने न पाये। उसकी पीठ, ललाट और छाती सहलाते रहें। छर्दि हो जाने पर पानी से कुल्ला करा मुंह स्वच्छ करा दें। तत्पश्चात् मुख शुद्धि कारक पदार्थ यथा पान, इलायची, लवंग, सौंफ, पीपरमेंट, कपूर या नीबू का अचार आदि में से किसी एक का प्रयोग कर रोगी को विश्राम करायें। तत्पश्चात् हृदय को प्रिय पदार्थ खाने को दें। यदि सम्भव हो तो हृदय को शक्ति देने वाली औषधि मुक्ता पिष्टी, स्वर्ण, प्रवाल, हरिताश्म[1] व्योमाश्म[1] में से किसी एक का प्रयोग मधु से करें।

---

१ देखिये हृद्रोग।

२—वारम्वार छर्दि क्रिमि, गर्भ, अम्ल-पित्त, विसूचिका आमाशयिक व्रण, हृद्रोग, मनोविकारो से होती है[1]। आमाशयिक व्रण एवं मनोविकारो को छोड कर शेष रोगो का वर्णन यथास्थान किया गया है। उनको समझ कर निदान करें। मूल रोग के जाने पर ही छर्दि मे स्थायी लाभ होगा।

३—अम्लपित्त उदरशूल पित्ताश्मरी, पित्तज्वर, विषम ज्वर (मलेरिया) मूर्च्छा, अपस्मार आदि रोगो मे रोग के उपद्रव स्वरूप छर्दि रोग प्रकोप काल मे वन्द नही होती इस लिये छर्दि की चिकित्सा के साथ मूल रोग के प्रकोप को समाप्त कीजिये नहीं तो विशेष लाभ नही होगा।

४—उपर्युक्त वातो को ध्यान मे रखते हुए अनुपान व्यवस्था करें। दोष का भी ध्यान रक्खें। यह याद रक्खें कि यथा सम्भव अनुपान स्वादिष्ट हो। पर इसी कारण दोषानुसार अनुपान न हो ऐसी वात न होनी चाहिये।

५—रोगी के पास सर्वदा मुखशोधक द्रव्य रहने चाहिए।

६—थोडी-थोडी वमन हो रही हो और फिर भी वमन शान्त न होती हो तो वमन कारक औषधि (देखिये पञ्चकर्म) से वमन करा देना चाहिये। दोष निकल जाने पर वमन शान्त हो जायेगी।

७—वमन किसी प्रकार न शान्त हो रही हो तो रोगी को विरेचन करा देना चाहिये।

८—वारम्वार होने वाली वमन मे वातज को छोडकर शेष मे लंघन हितकारी है। पोदीना सौंफ का अर्क या शीतल जल थोड़ा-थोडा पिलाते रहे।

९—वमन वारम्वार होती हो तो औषधि भी वारम्वार दें।

निम्नलिखित सामान्य औषधियो मे से किसी एक का अथवा आवश्यकतावश अनेक का मिश्रित व्यवहार करें:—

एलादि चूर्ण एक माशा, मधु और चीनी से।

संजीवनी वटी एक रत्ती, लवंग-इलायची-मधु से (वातजा मे विशिष्ट हितकर है)

आरोग्य वर्धिनी २ रत्ती, जल या सौंफ पुदीना अर्क से (श्लेषजा मे विशेष हितकर है)

रसेन्द्र २ रत्ती, मधु या सेव शर्वत अथवा अनार शर्वत से।

रस सिन्दूर १ रत्ती, धनियाँ, त्रिकुट और मधु से (कफजा मे)

---

१. कुछ लोगों को मोटर, रेलगाड़ी वायुयान आदि तेज सवारियों पर यात्रा करने से ऊँचे स्थान से तेज सवारी से नीचे की ओर आते समय वमन होती है।

ऐसी अवस्था में खाली पेट यात्रा करना चाहिये। आँख वन्द रक्खी जाय। साथ में नीवू रख लेना चाहिए वारम्वार या जो मिचलाते समय नीवू चूस लेना चाहिये। समय समय पर इलायची लवंग भी खा सकते हैं यात्रा प्रारम्भ करते समय हृदय को शक्ति देने वाली उपर्युक्त औषधियों में से किसी एक का सेवन कर ले।

वच्चों को दांत निकलते समय भी वमन होती है इसे वाल रोग में देखें।

मयूरपुच्छ भस्म १।२ रत्ती, मधु से बच्चो के दांत निकलते समय अथवा शीत लग जाने पर ।

पित्तपापड़ा का क्वाथ मधु से (पित्तजा मे विशेष हितकर है)

गुरुच का रस मधु से (पित्तजा में विशेष हितकर है)

हर्रा का चूर्ण १ माशा मधु से । इससे दोष नीचे की ओर जायेगा ।

पीपल और मिर्च का चूर्ण ४ रत्ती कैथ के रस से ।

बेल का हिम २ तोला, मधु से ।

बेल का चूर्ण २ माशा, मधु से ।

आमाशय में व्रण होने पर छर्दि होती हो तो उसमे ताम्र भस्म, वंग भस्म का प्रयोग करायें । कर्पूरासव या अहिफेनासव ५-१० बूंद की मात्रा से भी लाभ करता है यह पीड़ा को शान्त भी करता है ।

पथ्यापथ्य :—

धान के लावा के सत्तू का घोल मधु चीनी मिला कर देने से बड़ा लाभ होता है । बेल का शर्वत, नीबू का शर्वत, अनार-मौसम्मी का रस, नारियल का पानी भी हितकारी है । अरवा या साठी चावल का भात और मण्ड हितकारी है । मुनक्का, गम्भार, आंवला दे सकते है । खरगोश हरिण, तीतर-लवा का मास, गेहूँ की रोटी भी दे सकते हैं । असात्म्य घृणोत्पादक पदार्थ न दे ।

तृष्णा :—

स्वभावत तृष्णा या प्यास तो सभी को लगती है । परन्तु साधारण से अधिक लगने पर वही रोग हो जाती है । भोजन, परिश्रम, गर्मी, भय, रूक्ष स्निग्ध अम्ल, उष्ण पदार्थ आदि से होने वाली तृष्णा सर्व विदित है । हृद्राग, अधिक रक्त क्षय, धातु-क्षय, पित्त ज्वर, विसूचिका, अजीर्ण आदि मे भी तृष्णा होती है ।

चिकित्सा :—

विसूचिका की तृष्णा का उपाय विसूचिका में देखें । रोग के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न तृष्णा रोग शान्त होने से शान्त होती है । भय परिश्रम आदि से उत्पन्न तृष्णा मे कारणो को ध्यान में रख कर चिकित्सा करें । सामान्यत: शीतल जल पिलाने से तृष्णा शान्त होती है । अनार का रस तत्क्षण लाभदायी होता है । पित्तपापड़ा का क्वाथ, गुरुच, आंवला, गूलर, ईख का रस में से किसी एक का प्रयोग हितकारी है । धनियाँ का हिम, नीबू का शर्वत भी काम करता है । लालचन्दन भी पानी में घिस कर घोल कर पिलाने से लाभ होता है । केले का रस, तृण पञ्च मूल का क्वाथ भी काम करता है ।

सामान्य औषधियाँ :

रसादि चूर्ण : ३ रत्ती, बासी जल से ।

कुमुदेश्वर रस . १।४ रत्ती, लालचन्दन के क्वाथ या घृष्ट से।

रस सिन्दूर १।२ रत्ती, आम जामुन की गुठली के क्वाथ और मधु मे।

सूत शेखर ः १ रत्ती, आवला स्वरस या पित्तपापडा क्वाथ मे।

आमलकी रसायन ः १ माशा, आमलकी रस से।

आवले का चूर्ण २ मासा, आंवले के रस से।

आदि औषधियो में से किसी एक का अथवा आवश्यकतानुसार मिश्रित का प्रयोग करें। मुक्ता या प्रवाल की पिष्टी या भस्म भी तृष्णा को शान्त करती है।

पथ्य :—

अरवा या साठी चावल, मण्ड, ईख का रस, अनार, मौसम्मी, आंवला, सन्तरा, मुनक्का, खजूर, केला का फूल, नारियल का पानी, गाय या बकरी का दूध, लौआ, सफेद कोहडा, करैला आदि पथ्य हैं।

एकीसवाँ अध्याय

मूर्च्छा, भ्रम (चक्कर) तन्द्रा, सन्यास

मूर्च्छा, मूर्च्छाय, मोह और बेहोशी आदि शब्द मूर्च्छा के ही पर्यायवाची शब्द हैं। इसमे मुख्य कारण मन की दुर्बलता है। इसके सामान्य कारण निम्नलिखित हैं .—

अत्यन्त क्षीणता या दुर्बलता, दोषो का आधिक्य, विरुद्ध भोजन, मल-मूत्र-अधोवायु के वेग का अवरोध, शारीरिक आघात, मादक द्रव्य तथा विष का सेवन, भय, शोक एवं मानसिक आघात, रक्त दर्शन भी एक विशिष्ट कारण है। यद्यपि मूर्च्छा के वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मद्यज एवं विषज ये छ भेद है। परन्तु इन सबमे पित्तज सर्वोपरि होता है। दूसरी ओर मानसिक दोषो मे तमोगुण प्रधान हो जाता है।

इन सब कारणो से दोष संज्ञावाही नाडियो को ढक लेते हैं, जिससे मन उनमे से होकर ज्ञानेन्द्रियो मे नही पहुँच पाता। परिणामत. आँखो के सामने अन्धकार छा जाता है और सुख-दु ख का ज्ञान समाप्त हो जाता है। बस रोगी बेहोश होकर काष्ठ के समान गिर जाता है या सोया अथवा बैठा ही रह जाता है। कुल मिलाकर विषज और मद्यज को छोड़कर सब मूर्च्छाओ मे बेहोशी अवश्य रहेगी। मद्यज मे जब तब रोगी प्रलाप करता है अंगो को पटकता भी रहता है या सोता रहता है। विषज मूर्च्छा मे मद्यज मूर्च्छा के ही लक्षण मिलते हैं। प्यास भी इसमे लगती है। जिसका लक्षण मुँह सूखना या जीभ निकलना है। मद्यज और विषज मूर्च्छा तो मद्य और विष के प्रभाव तक ही रहती है। पर अन्य मूर्च्छाएँ तत्क्षण चिकित्सा करने से दूर होती हैं।

कुछ मूर्च्छा तात्कालिक होती हैं, अर्थात् एक बार होकर अच्छी हो जाती हैं पुनः नहीं आती। परन्तु कुछ का बारम्बार दौरा आता है। इनमें कोई दिन रात मे कई बार और कोई अधिक काल यहा तक कि महीना, दो महीना, छ महीना, साल भर का समय देकर आती हैं। यह काल मन की दुर्बलता एवं दोषो के आधिक्य पर निर्भर है।

सभी मूर्च्छाओ मे कम से कम मूर्च्छा के समय हृदय अथवा नाडी अत्यन्त दुर्बल रहती है। यहाँ तक कि उनकी गति कठिनाई से प्रतीत होती है।

चिकित्सा :—

चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान दें .—

१—मद्यज एवं विषज मूर्च्छा मे मद्य और विष की चिकित्सा के अनुसार काम करें।

२—भय, शोक या अन्यान्य मानसिक आघातो से उत्पन्न मूर्च्छा मे मनोवैज्ञानिक चिकित्सा करें। धैर्य, आश्वासन, इष्ट लाभ आदि का विवेकपूर्वक प्रयोग करें।

३—रक्त दर्शन से उत्पन्न मूर्च्छा मे तत्काल शीतल जल से मुँह पर छींटे मारें।

४—मद्यज और विषज[1] मूर्च्छा को छोडकर सभी मे तत्काल मुँह पर शीतल जल से छींटा मारे, पखा की हवा करें। रोगी को होश मे लाने के लिये तीक्ष्ण नस्य (कायफल, श्वास कुठार, नवसादर-चूना इत्यादि का) एवं तीक्ष्ण अञ्जन (चन्द्रोदयावर्त्ती या काली मिर्च आदि) का प्रयोग करें। नाक मे तीक्ष्ण धूँआ (गन्धक इत्यादि का) प्रविष्ट करायें। चिकोटी काटें। कान मे कोई चीज डालकर गुदगुदी या कुछ पीडा उत्पन्न करें। (सावधान ! कान मे चीज धँस न जाय) रोगी का दो-एक बाल नोचें। कुछ मिलाकर रोगी को तत्काल होश मे लाने के लिये उपर्युक्त उपाय करें। चिकोटी या बाल नोचने से दूसरे लोग असन्तुष्ट होते हैं। इसलिये लाचारीवश इन्हे करें और छिपाकर करें।

५—यदि रोगी पी सकें, तो हृदय को शक्ति देनेवाले सुगन्धित और शीतल पेय पदार्थ, दूध, शर्बत, फलो का रस आदि पिलायें।

६—रोगी खा स[illegible] तो मुक्ता, स्वर्ण, मकरध्वज, रस सिन्दूर आदि हृदय और शरीर को बल देनेवाली औषधि, दूध-मधु-फलो के रस या उत्तम आसव-अरिष्ट के साथ पिलायें। यदि रोगी के दाँत बैठे हैं तो चम्मच आदि के सहारे मुँह खोलें या दातो की सन्धि क छिद्रो से मुँह मे औषधि डाल दें। गाल मे दोनो जबडो के बीच के स्थान मे दोनो ओर अंगुली से कस कर दबाने से भी मुँह खुल जाता है।

७—यदि मुँह नही खुलता है तो सिर पर स्वच्छ चाकू से पच्छ मार कर या चीरा लगाकर सूचिकाभरण रस का व्यवहार करें। अभाव हो तो उपर्युक्त नस्य, अञ्जन, धूम एवं कान के प्रयोग पर ही निर्भर रहे। कुछ समय मे होश आने या वेग कम होने पर स्वत. रोगी मुँह खोल सकेगा। तब औषधि खिला दें।

८—यदि मूर्च्छा का दौरा आता हो तो स्थायी चिकित्सा पर अवश्य ध्यान दें। स्त्रियो को हिस्टीरिया, सभी लोगो को आक्षेपक, अपतानक, अपस्मार (मृगी), सन्निपात

---

[1] इन दोनों मूर्च्छाओं में भी मुँह पर शीतल जल छिड़का जा सकता है। पर विना मद्य या विष का प्रभाव नष्ट हुये लाभ की आशा नहीं। शीतल पेय पदार्थों से कुछ लाभ अवश्य होता है, क्योंकि ये मद्य और विष के प्रभाव को भी नष्ट करते हैं।

ज्वर आदि और धातु-क्षय के परिणामस्वरूप भी मूर्च्छा हो सकती है। ऐसी अवस्था मे तात्कालिक चिकित्सा करने के बाद मूर्च्छा समाप्त हो जाने पर मूल रोग को भी दूर करना चाहिये। सभी मूर्च्छाओ के बाद २-४ मात्रा हृदय को शक्ति देनेवाली औषधि या आहार अवश्य देना चाहिये।

९—दौरे वाली मूर्च्छा मे रोगी क्षीण नही हो तो एरण्ड का तैल, यष्ट्यादि चूर्ण आदि मृदु रेचको से कोष्ठ-शुद्धि अवश्य करायें। बराबर कोष्ठ शुद्ध रहे इसका भी ध्यान रक्खें। वायु को जीरकादि वटी, हिंग्वादि वटी, हिंग्वष्टक चूर्ण आदि से अवश्य अनुलोम करते रहे।

१०—रोगी को रोगानुसार ही अनुपान और पथ्य देना चाहिये। यदि रोग मे हानि न पहुँचे तो इसके लिये हृदय को शक्ति देनेवाले शीतल पदार्थो यथा फल का रस, दूध, आसव, अरिष्ट आदि का प्रयोग करें।

सभी मूर्च्छाओ के अनुपान मे ब्राह्मी, शंख पुष्पी, बाल-वच और मीठा कूठ का प्रयोग हो सकता है।

सामान्य औषधियाँ :-

निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा आवश्यकतानुसार कई का मिश्रित प्रयोग करें :—

रस सिन्दूर १ रत्ती, पिप्पली चूर्ण मधु से।

मुक्ता पिष्टी १।२ रत्ती, अनार स्वरस से।

त्रिफला चूर्ण २ माशा, मधु से। इसमें प्रातः आदी एक माशा गुड १ माशा भी मिलाकर सेवन करें।

मकरध्वज . १।२ रत्ती, मधु से।

पानी मे उबाला आँवला २ तोला, मुनक्का १ तोला, सोठ १ मासा। मधु के साथ।

चन्द्रोदय . १।२ रत्ती, मधु से।

वसन्त कुसमाकर : १ रत्ती, मधु से।

बृहत्कस्तूरी भैरव या कस्तूरी भैरव : १।२ रत्ती, मधु से।

विशेष :—

१ मुक्ता पिष्टी, अभाव मे प्रवाल भस्म २ रत्ती का व्यवहार हो सकता है।

२— यहाँ शीघ्रता के लिये अनुपान लिखा गया है। ब्राह्मी आदि मिले तो उनका प्रयोग हो सकता है। भोजनोत्तर अश्वगन्धारिष्ट को १॥ तोला की मात्रा से समजल मिलाकर व्यवहार करें। यह धातु-क्षय जन्य मूर्च्छा और स्त्रियो के हिस्टीरिया में विशेष हितकारी है।

पथ्य :—

अरवा या लाल चावल, पुराना जौ, धान के लावा का मण्ड, पुराना घी, मूँग,

परवल, अनार, नारियल, हर्रा, मौसम्मी, सन्तरा, मुनक्का, खजूर, पुराना कोहड़ा, हरिण आदि जंगली पशुओं का मांस रस। सिर पर शतधौत घृत का प्रयोग भी हितकारी है। पीने के लिये वर्षा जल दे सकें तो उत्तम है। छाया मे रोगी को रखें।

भ्रम :—

पित्त वायु एव रक्त के प्रकोप से रोगी को मालूम होता है कि वह चक्कर काट रहा है और धरती पर गिर पडता है। खडा रहने मे असमर्थ होता है। इसी को भ्रम या सिर घूमना कहते हैं।

यह धातु-क्षय, रक्त-क्षय, कोष्ठवद्धता, रक्त-दर्शन, हृद्रोग, पाण्डु, प्रदर आदि रोगों के परिणामस्वरूप होता है।

चिकित्सा मे कोष्ठवद्धता को दूर करें, मूल रोग को दूर करने का प्रयत्न करें। इसमे यवासा का काढा घृत मिलाकर पीने से वडा लाभ करता है। वृहत्कस्तूरी भैरव को छोडकर मूर्च्छा की सभी औषधिया लाभदायी हैं। मुक्ता पिष्टी तत्क्षण लाभ करती है। अनुपान और पथ्य आदि मूर्च्छा के समान है।

तन्द्रा :—

इन्द्रियो के विषयो का ठीक ज्ञान न होना, भारीपन, जम्हाई, सुस्ती एवं निद्रा से पीडित के समान इच्छा ही इस रोग का लक्षण है।

कफ की अधिकता, ओज-क्षय, धातु-क्षय से विशेष होती है। यदि कफाधिक्य है तो रस सिन्दूर, अभ्रभस्म आदि का प्रयोग करें। अनुपान या स्वतन्त्र रूप से आर्द्रक स्वरस, पिप्पली चूर्ण, मधु का व्यवहार लाभदायी है। बाल वच का चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा से विशेष हितकारी है। पथ्य भी कफ नाशक ही दें। धातु-क्षय या ओज-क्षय जन्य है तो धातुपुष्ट करें। कोष्ठवद्धता न होने पायें। दूध, फलो का रस, मांस रस विशेष हितकारी है।

सन्यास :—

मूर्च्छा और सन्यास मे इतना ही अन्तर है कि मूर्च्छा का वेग समाप्त होने पर वह अपने आप भी अच्छी हो जाती है पर सन्यास बिना उपाय के अच्छा नही होता। इसमे तत्क्षण चिकोटी काटना, तीक्ष्ण नस्य देना, तीक्ष्ण अञ्जन देना आदि क्रियाएँ करें एवं मूर्च्छा की औषधियाँ दें। तनिक देर न करें उपचार एक ही है। इसलिये मूर्च्छा या सन्यास में कौन है, इसके चक्कर में न पडे। पथ्य अनुपान आदि सभी मूर्च्छा के समान है।

मद की चार अवस्थायें

(पृष्ठ ३०७ के सम्मुख)

प्रथम मद, द्वितीय मद, तृतीय मद, चतुर्थ मद ।

बाइसवाँ अध्याय

मदात्यय (नशा), दाह, अंशुघात (लू)

मद के अत्यय अर्थात् नशा के आधिक्य को मदात्यय कहते हैं। विधिपूर्वक सेवन किया गया मद्य अन्न के समान ही हितकारी है। विधि विपरीत होने पर विष के समान अहितकर और मदात्यय कारक है। यह भी जान लीजिये कि विष के ही दशगुण[1] (लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल,[2] व्यवायी, आशु, रूक्ष, विकाशि, विशद) मद्य में भी पाये जाते हैं। जिनके कारण लघुता, कृशता, दाह, मूर्च्छा, प्यास, शीघ्र व्याप्ति, सूक्ष्मतम स्रोतो आदि में प्रविष्ट होना, रक्त में अम्लता, व्याप्ति के पश्चात् पाक, रूक्षता, ओज का शोषण एवं सन्धियो को शिथिल करना, क्लिनता (गीलापन) का शोषण आदि होता है।

अत्यन्त संक्षेप में मद्य पीने का विधान यह है --प्रसन्न मन होकर, स्निग्ध और मद्य से विपरीत गुणो वाले भोज्य द्रव्यों का सेवन करते हुये अपनी आयु, अग्नि और बल के अनुसार उचित मात्रा मे प्रकृति के अनुकूल मद्य मित्रो के साथ पीनी चाहिये।

मद्य पीने के पश्चात् जो मद[3] या नशा होता है, उसकी निम्नलिखित चार अवस्थाएं होती हैं:—

प्रथम मद मे :—

बुद्धि, स्मृति, प्रीति, सुख मे वृद्धि के साथ ही खाने, पीने, सोने की इच्छा मे भी वृद्धि होती है। पाठ करने, गाने एवं सुस्वर की शक्ति बढ़ जाती है।

द्वितीय मद मे :—

बुद्धि, स्मृति, वाणी और चेष्टा अस्पष्ट हो जाती हैं। रोगी आलस्य और निद्रा से युक्त हो जाता है। उन्मत्त के समान हो जाता है।

---

१ इन गुणों के सम्बन्ध में द्रव्यगुण प्रकरण में प्रकाश डाला गया है।

२ विष के गुणों में अम्ल के स्थान पर अनिर्देश्य रस अर्थात् अनिश्चित रस लिखा है।

३ मद या मदात्यय की सम्प्राप्ति का चित्र द्रव्यगुण (चतुर्थ अध्याय) में देखें।

तृतीय मद में :—

रोगी अगम्या (गुरुपत्नी, बहन, कन्या, पर-पत्नी आदि) से मैथुन करता है या अगम्य सवारी (दुष्ट घोड़ा, रद्दी साइकिल अन्य खतरनाक सवारी) पर चलता है। अभक्ष्य पदार्थों को खाता है। नामोल्लेखन का ज्ञान नष्ट हो जाता है। मद के आधीन होकर हृदय की गुप्त बातों को प्रगट कर देता है।

चतुर्थ मद में : —

रोगी कार्याकार्य के ज्ञान से रहित होकर टूटी लकड़ी के समान निष्क्रिय हो जाता है। मृतक से भी बुरा हो जाता है।

कतिपय विद्वान् उपर्युक्त चारो अवस्थाओं को न मानकर निम्नलिखित तीन ही अवस्थाएं मानते है :—

प्रथम मद पूर्वावस्था, द्वितीय एवं तृतीय मद मध्यमावस्था एवं चतुर्थमद अन्तिमावस्था। इसमें पूर्वावस्था सतोगुण, मध्यमावस्था रजोगुण एवं अन्तिमावस्था तमोगुण के आधिक्य से होती है।

दोषों के दृष्टिकोण से प्रायः मदात्यय में वात और पित्त के अधिक और कफ के कम लक्षण मिलते हैं। इस प्रकार वातिक मदात्यय में हिक्का, श्वास, शिरकम्प, पार्श्वशूल, अनिद्रा एवं अत्यन्त प्रलाप होता है। अन्तिम दोनों प्रमुख और अवश्य मिलेंगे। पैत्तिक मदात्यय में प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, चक्कर और हरा वर्ण होता है जिसमें प्यास, दाह मुख्य और अवश्यम्भावी हैं। श्लैष्मिक मदात्यय मे वमन, अरुचि, जी मिचलाना, तन्द्रा, गीलापन, भारीपन और शीतलता होती है। माधव निदानोक्त पानात्यय, परमद, पान विभ्रम चरक के दृष्टिकोण से सान्निपातिक मदात्यय के अन्तर्गत हैं।

असाध्य लक्षण :—

ऊपरी ओंठ का लटक जाना, अत्यन्त शीतलता परन्तु भीतर दाह, मुँह पर बिना तैल के चिकनाई, जिह्वा-ओठ-दांत का काला या नीला होना, नेत्र का पीला या लाल होना।

उपद्रव :—

हिक्का, ज्वर, वमन, कम्पन, पार्श्व शूल, कास और चक्कर।

विशेष - असाध्य लक्षणों एवं उपद्रवों से युक्त रोगी असाध्य होता है।

चिकित्सा :—

वातिक मदात्यय में पुरानी शराब काला नमक डालकर पिलाने से बड़ा लाभ होता है। पर पहले की पी गयी शराब पच गयी हो।

२—युवती या युवा का गाढ आलिंगन करने मे वातिक मदात्यय शान्त होता है।

३—गरम कपडा, गरम घर, गद्दा, तकिया आदि का व्यवहार लाभदायी होता है।

पैत्तिक मदात्यय मे :—

१—शक्कर मिला कर मूंग का यूष या शक्कर मिला कर मास रस पिलायें।

२—मुनक्का, आंवला, खजूर और फालसा इन चारो का रस बराबर मिला कर अथवा किसी एक का रस पाव भर पानी से बडा लाभ होता है।

३—अनार और आंवला का रस पावभर या अलग-अलग एक एक का रस पाव भर मात्रा मे देने से बडा लाभ होता है।

कफज मदात्यय में :—

१—लंघन बडा हितकारी है।

२—त्रिकटु मिलाकर शराव पिलायें।

३—लंघन नहीं करना है तो त्रिकुट या पञ्च कोल मिलाकर भोजन करना चाहिये।

४—शराव पीने के थोडी देर वाद नशा होने पर उसे वमन करा दें तो बहुत लाभ होगा।

सामान्य औषधियाँ :—

सभी मदात्ययो मे निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक अथवा आवश्यकता पडने पर कई का मिश्रित प्रयोग करें :—

१—मदात्यय भञ्जन रस ५ रत्ती, मधु से।

२—अष्टांग लवण १ माशा, उष्ण जल से। (श्लैष्मिक में विशेष हितकारी)

३—महाकल्याण वटी १ रत्ती, मिश्री, मधु या मक्खन से।

४—एलाद्यमोदक १ तोला धारोष्ण दूध या मूग के युष से।

५—शर्करा २ तोला, २ तोला घृत (शराव पीने के तुरन्त वाद) अधिक कार्यकारी है।

धतूरे का मद :—

इसमे शक्कर मिला कर गोदुग्ध पीये।

सोपाड़ी का मद :—

भरपेट शीतल पानी पीने से या नमक खाने से सोपाडी का मद उतर जाता है।

कोदो का मद :—

गुड मिलाकर सफेद कोहडे का रस पीने से उतरता है।

प्रत्येक मद्य मे :—

भोजनोत्तर श्रीखण्डासव डेढ तोला या द्राक्षासव डेढ़ तोला समजल मिलाकर पीने से बडा लाभ करता है।

पथ्य :—

श्लेष्मज मदात्यय (जो कि बहुत कम होता है) को छोडकर सबमें दूध व अनार का रस सर्वोच्च पथ्य है। श्लेष्मज मे लंघन के बाद दुर्बलता होने पर दूध देना चाहिए। दूध बकरी का हो तो उत्तम अन्यथा सोठ या पीपर पका गोदुग्ध दें।

वमन विरेचन प्रत्येक मे हितकारी होता है। वातज और पैत्तिक में नीद भी हितकारी है। सबमे मूंग, उरद, गेहूँ, परवल, चौराई, नीबू, फालसा, और हरिन-लवा-तीतर-बकरा-मुर्गा का मास भी दिया जा सकता है। धारागृह, भूघरा, चन्द्रमा की किरणें प्रिया का आलिगन, शीतल जल, चन्दन व स्नान आदि हितकर हैं।

अपथ्य :—

स्वेदन, घाम, आग, पान, घूम्रपान, नस्य ये अपथ्य हैं।

दाह् :—

मद्य पीने से, पित्त के प्रकोप से या अन्यान्य रोगो के परिणाम स्वरूप शरीर मे दाह या जलन भी होती है। इसमे मूलरोग दूर करना प्रथम कर्त्तव्य है। तात्कालिक उपचार में पित्तज्वर के सब उपचार किये जा सकते हैं। मुक्तापिष्टी १।२ रत्ती, प्रवाल ३ रत्ती, दुग्धपाषाण (संगजराहत या क्षीर पाषाण) का चूर्ण १ माशा बडा लाभ करता है। अनुपान या स्वतन्त्र रूप से गुरूच का रस या पित्तपापड का क्वाथ देने से बडा लाभ होता है।

चन्दन, शतधौत घृत, काञ्जी से घोला यव का सत्तू, कच्चा आम, आँवला में से किसी एक का लेप बडा लाभदायी है।

पथ्य मे अनार, दूध, चावल, आम-का पन्ना विशेष हितकर है। अन्यान्य मधुर फलो का रस भी दे सकते हैं। शीतल गृह, खस, केवडा, गुलाब भी हितकर है।

असाध्य लक्षण :—

मर्म पर चोट लगने से उत्पन्न दाह और शीताग से युक्त दाह असाध्य होता है।

अंशुघात या लू लगना :—

सूर्य के प्रखर ताप मे हुई अत्यन्त उष्ण हवा लग जाने का नाम ही अंशुघात या लू लगना है। यहाँ दाह या पित्तज्वर की ही चिकित्सा करें।

वातिक उन्माद

(पृष्ठ ३११ के सम्मुख)

रोगी उच्छृंखल है। उसका शरीर अत्यन्त रूक्ष होता है जो बालों आदि से विशेष परिलक्षित होता है।

तेईसवाँ अध्याय

उन्माद, अपस्मार और अतत्वाभिनिवेश

उन्माद, पागलपन, दिमाग गरम होना, सिर घूम जाना आदि शब्द प्रसिद्ध हैं। इसका मुख्य कारण विरुद्ध-दूषित एवं अपवित्र भोजन, देवता गुरु, ब्राह्मणो का अपमान, भय पूर्वक अथवा हर्ष पूर्वक मानसिक आघात और विषम चेष्टायें (बलवान से लडाई, अगो की विषम स्थिति आदि) हैं। सामान्य लक्षण है —बुद्धि का भ्रम मे पड जाना, मन की चंचलता, आँखो का व्याकुल होना (स्थिर न होना) अधैर्य, ऊटपटाग बोलना और हृदय की शून्यता अर्थात् आत्मज्ञान का अभाव।

उन्मत्त की विचित्र चेष्टाएँ होती हैं। बहुत प्रलाप और विभिन्न विकृत चेष्टाएँ करना तो साधारण बात है। बहुत से रोगी प्रलाप या विकृत चेष्टा एकदम न कर सर्वथा शान्त रहकर मौन ही रहते हैं। बहुत से आकाश की ओर या नीचे की ओर ही देखते रहते हैं, बहुत से खाना-पीना बन्द कर देते हैं। पागल कब क्या करेगा कहा नहीं जा सकता।

इसके भेद :—

इसके सात भेद होते हैं. १—वातिक २—पैत्तिक ३ श्लैष्मिक ४—सन्निपातिक ५—मानसिक ६—विषज ७—भूतज या ग्रहज। समस्त व्याधि का मुख्य प्रभाव मन पर पडता है और सबका मूल कारण मन की दुष्टि है, इसलिये सभी उन्मादो को मानसिक व्याधि कहा गया है, किन्तु कारण और चिकित्सा के दृष्टिकोण से उपर्युक्त सात भेद कहे गये हैं। आप दोषज, मानसिक, विषज और ग्रहज भेद से बाँट लें। इससे चिकित्सा समझने मे सरलता पडेगी। यदि गम्भीरतापूर्वक कारणो का पता लगाया जाय तो उपर्युक्त चारो मे से कौन उन्माद है, यह विदित हो जायगा। इसलिये सक्षेप मे इनका लक्षण लिखा जा रहा है।

दोषज मे वातिक उन्माद, रूक्ष अल्प, शीत भोजन, विरेचन, धातुक्षय व उपवास से होता है। इसका रोगी अनवसर हँसता, रोता, गाता, नाचता, बोलता और अगो को

चलाता है। शरीर रूक्ष, कर्कश और अरुण हो जाता है। भोजन पच जाने पर इसका प्रकोप होता है। पैत्तिक उन्माद अजीर्ण, कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण भोजन से होता है। इसका रोगी असहिष्णु, क्रोधी, दूसरो को डराने धमकाने वाला, दौड़ने वाला और उष्ण शरीर वाला होता है। श्लैष्मिक उन्माद अधिक भोजन और अत्यन्त आलस्य से होता है। इसका रोगी अत्यन्त कम बोलता और अत्यन्त कम चेष्टाएँ करता है। नारी या नर तथा एकान्त में प्रीति करने वाला एवं अधिक सोने वाला होता है। उसे वमन, लालास्राव (लार गिरना) भी होता है। नख, मूत्र, त्वचा और नेत्र आदि सफेद होते हैं। भोजन करते ही इसका प्रकोप होता है। सान्निपातिक मे तीनो दोषो के कारण एवं लक्षण होते हैं।

मानसिक मे धननाश, जननाश, भय, प्रियतमा से रमण की इच्छा आदि कारण होते हैं। इसका रोगी बेहोश की भाँति मन की गुप्त बातो को कह देता है। विचित्र बातें कहता हैं। मूढ़ होकर गाता है हँसता है और रोता है।

विषज विष सेवन के कारण होता है। इसमे रोगी की आँखे लाल, इन्द्रियाँ एव कान्ति क्षीण होती हैं। चेहरे से दीनता का भाव झलकता है। चेहरा साँवला पड जाता है। रोगी बेहोश भी होता है।

ग्रहज मे देवता, राक्षस, भूत-प्रेत, ब्रह्म, नाग, पित्त आदि का रोगी पर अनुराग या प्रकोप कारण होता है। जिस प्रकार दर्पण मे छाया प्रविष्ट होती है, मानवो में शीत और उष्णता का प्रवेश होता है पर प्रवेश के समय दिखायी नहीं पडता है। उसी प्रकार ग्रह या उनके अनुचर मानव शरीर मे आविष्ट होते हैं पर दिखायी नहीं पडते।

भूत-प्रेत आदि होते हैं। यह जापान स्थित हिरोशिमा एवं नागासाकी द्वीपो पर हुए अणु बम के आक्रमण के बाद प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया है। वहाँ पर मरी हुई लड़की, किसान, बैल की छाया को स्पष्टत. वैज्ञानिको, पत्रकारो एवं सेना के अधिकारियो ने देखा है। ये रोग करते हैं. इसमें मत भेद हो सकता है। लेखक के विचार से ये रोग करते हैं कैसे या किस प्रकार ? इसका भी उत्तर है जिसे अलग से समझाया जा सकता है। शकाओ का समाधान भी हो सकता है। इसी प्रकार वरदान और शाप की बात भी समझी जा सकती है। पर यह परस्पर विचार का या विस्तार से लिखने का विषय है जो यहाँ सम्भव नहीं।

ग्रहज उन्माद का सामान्य लक्षण यह है :—

रोगी को गुप्त और न सीखी हुई बातो का ज्ञान और उसका अमानुषी ज्ञान तथा कर्म। जिस ग्रह से रोगी गृहीत है उसकी भी समस्त चेष्टायें करता है या तद्वत् हो जाता है। उस उस ग्रह की तिथि या समय में रोग का प्रकोप भी होता है। यह स्मरण रक्खें, सभी उन्मादो का मूल कारण दूषित या दुर्बल मन है जो सत्व गुण की कमी से होता

एक मानसिक उन्माद

(पृष्ठ ३१२ के सम्मुख)

सामान्यत चिन्ता से व्याप्त मन वाला रोगी धीरे धीरे दुर्बल मन और दुर्बल तन होकर किसी दिन एकान्त स्थान में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेता है।

है। दुर्बल मन वालो पर जिस प्रकार प्रबल मन वालो का प्रभाव पडता है उसी प्रकार ग्रहो का भी पडता है।

उन्माद के असाध्य लक्षण :—

रोगी ऊपर या नीचे ही देखता रहे, क्षीण मास और क्षीण बल वाला हो, उसे नींद बिलकुल न आये तो वह असाध्य होता है।

विकृत नेत्र वाला, तेज चलने वाला, मुँह की लार को चाटने वाला, अधिक नींद वाला, बारम्बार गिर पडने वाला और कॉपने वाला रोगी असाध्य होता है। हाथी, पहाड पर से गिर कर पागल हुआ एवं तेरह वर्ष के बाद तक भी पागल रहने वाला रोगी असाध्य होता है।

चिकित्सा :—

उन्माद की चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिये .—

१—पञ्च कर्म के विधानानुसार इसमे वमन, विरेचन अवश्य कराइये। वामक और रेचक द्रव्य यदि बुद्धिवर्धक द्रव्यो या उन्माद नाशक द्रव्यो यथा ब्राह्मी, कूठ, शंख पुष्पी, वच आदि से तैयार करें तो उत्तम हो। इसी प्रकार स्नेहन स्वेदन के लिये भी ऐसे ही द्रव्यो का प्रयोग करें। सम्यग् विरेचन होने के बाद ही रोगी को अद्भुत लाभ होगा।

२—निस्सन्देह सभी उन्मादो मे मन विकृत हो जाता है। इसलिये आश्वासन, शान्ति, इष्ट लाभ, धैर्य, उत्तम वमन आदि उपायो एव अन्यान्य मनोवैज्ञानिक उपायो से मन को प्रकृतिस्थ करें। किसी भी स्थिति मे रोगी को चिढाना, उसे कौतूहल से देखना या मनोरञ्जन की सामग्री समझना, सामाजिक अपराध के साथ ही रोगी को हानि पहुँचाना है। उससे होने वाली हानि को यथासम्भव रोकते हुए उसे अपने ही समान समझने की चेष्टा करें। उसकी अधिक उपेक्षा या अपेक्षा दोनो ठीक नहीं।

३—यथा सम्भव उसे बन्धन और ताडन का शिकार न बनाये। यदि वह अन्य लोगो को मारे पीटे तब ऐसे ढंग से उसे नियन्त्रित रक्खें जिससे उसे नियन्त्रण का अनुभव न हो। असल मे ऐसे रोगी के लिए अधिक सतर्कता और उत्तम उपचार की आवश्यकता है।

ग्रहो यथा देवता, ब्रह्म, नाग, पितृ, गन्धर्व आदि से ग्रसित रोगियो के प्रति आदर का भाव रखे। जिस प्रकार वे देवता आदि प्रसन्न होते हैं वही उपाय यथा भोजन, वस्त्र, अलकार, माला आदि से रोगी को सन्तुष्ट करें।

यह भी याद रखना चाहिये कि जो रोगी आदर या मृदु भाव से आरोग्य लाभ नही करते उनके लिए डराना, धमकाना यहाँ तक कि सावधानी पूर्वक उसके प्राण सकट का भय दिखाना अद्भुत लाभदायक होता है।

४—विषज को छोड कर सभी उन्मादो मे बुद्धि, स्मृति को बढाने वाले द्रव्यो का व्यवहार करें। विषज मे विष तन्त्रोक्त उपायो का अवलम्बन करें। तत्पश्चात् बुद्धिवर्धन उपायो का अवलम्बन करें।

५—रोगी को उचित नींद[1] आये इसके लिये प्रत्येक सम्भव उपाय करें।

चिकित्सा :—

सर्पगन्धा (धवर बरुआ) नामक सुप्रसिद्ध औषधि का व्यवहार बहुत लाभदायी है। इसके चूर्ण को ४ रत्ती से एक माशा तक की मात्रा उष्ण जल से देने से नींद आती है। नींद के लिए अहिफेन (अफीम) घटित योग या केवल अहिफेन का भी प्रयोग किया जाता है। सही बात यह है कि अहिफेन का प्रयोग उन्माद की प्रारम्भिक अवस्था मे लाभदायक है। रोगी का चेहरा तमतमाया हुआ और लाल हो तब अफीम मत दीजिये। शेष सभी अवस्थाओ मे इसे दे सकते हैं। इसकी अधिकतम मात्रा एक रत्ती है। जो एक ही बार देनी चाहिये। अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर इसे दिन रात मे अधिकतम २ बार दे सकते हैं। अनुपान उष्ण जल ठीक है, याद रखिये, आर्द्रक और हींग अफीम के बल का नष्ट करते हैं। अफीम से हानि हो तो इसका प्रयोग करें अन्यथा अफीम के साथ इन्हे न दें।

औषधियाँ :—

निम्नलिखित औषधिया मे से किसी एक का अथवा आवश्यकता पडने पर कई का मिश्रित प्रयोग करें :—

उन्माद गज केसरी २ रत्ती गो घृत से।

उन्माद भञ्जन रस २ रत्ती ब्राह्मी स्वरस से।

चतुर्भुज रस १।४ रत्ती से १।२ रत्ती तक त्रिफला चूर्ण मधु से।

उन्माद गजाकुश १।२ रत्ती से १ रत्ती तक सफेद कोहडे के रस से।

सारस्वत चूर्ण १ माशा मधु घृत से। पैत्तिक मे अधिक न दें।

कफज मे विशेष हितकारी है।

सफेद कोहडे का रस ८ तोला मधु के साथ।

ब्राह्मी का रस ४ तोला मधु के साथ।

मोठा कूठ १ माशा शखपुष्पी के रस ४ तोला मे।

सर्पगन्धा चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक मधु के साथ।

---

[1]— स्वाभाविक नींद आने पर भी उन्माद अच्छा न हो तो असाध्य है।

ब्राह्मी घृत, पंचगव्यघृत, महाचैतस घृत, क्षीर कल्याण घृत आदि प्रसिद्ध घृतो में से किसी एक को एक तोला की मात्रा में मिश्री मधु मिलाकर प्रातः सायं दें। ऊपर से गरम जल या ब्राह्मी आदि बुद्धिवर्धक द्रव्यो का क्वाथ दें।

औत्नोत्तर सारस्वतारिष्ट १ तोला सम जल के साथ ले सकते हैं।

अनुपान :—

उन्माद मे सामान्य अनुपान ब्राह्मी, शंखपुष्पी, (शंखाहुली) सफेद कोहडा का रस, मीठा कूठ, चन्दन और पीतरना आदि है।

पथ्य :—

कच्ची या पक्की सफेद घुंघची मे पका दूध बडा लाभकारी है। यह नींद भी लाता है। केवल गाय का धारोष्ण दूध भी बडा लाभदायी है। पुराना[1] या नया घी भी उत्तम पथ्य है। गेहूँ अथवा चावल, मूँग, सफेद कोहडा, बथुआ, चौराई, परवल, लहसुन, मुनक्का खजूर, अञ्जीर, अनार, मौसम्मी, कैथ, आँवला, हर्रा, नारियल का पानी, कोयल-बया-तीतर का मास गधे या घोडे का मूत्र, सरसो के तेल की मालिश और नस्य बहुत लाभदायी है।

अपस्मार या मृगी

स्मार या स्मृति का नाश ही अपस्मार शब्द का अर्थ है। लोक में इसे मिर्गी कहते हैं। जो ऋग्वेद के सायण भाष्य के मृग्यु शब्द का अपभ्रंश है। वेदो मे इसका नाम श्वघ्नो भी आया है। श्वा कुत्ते को भी कहते हैं। श्वाग्रह को शान्ति (हिरण्य केशि गृह्यसूत्र) का इसमे उल्लेख भी मिलता है। कुत्ते की जीभ के चूर्ण का प्रयोग इसमें किया जाता है। वास्तविकता क्या है ? इसका पता अनुसन्धान करके लगाना चाहिये। यह अति प्रसिद्ध रोग है। इसमे समस्त चिकित्सा अनुपान, पथ्य, उन्माद की ही भाँति है। ताडना, बन्धन, भय आदि इसमे न करें। रोगी को जल, आग व ऊँचाई से दूर रखें। इसके सामने मनोद्वेगकारक बातें न करें। इसमे कुछ टोटके भी किये जाते हैं। कुछ न समझ में आने वाले प्रयोगो यथा फाँसी (जिसे लगा कर स्वयं मरा या अन्य को मारा जाता है) की रस्सी की भस्म को शीतल जल से पीना, चमगादड का पुरीष (मल) और बकरे के बाल की राख अथवा सफेद सरसो को बकरे के मूत्र मे पीस कर उबटन आदि का भी उल्लेख मिलता है। हमने इनका प्रयोग नहीं किया। वालवच ४ रत्ती या १ माशा की मात्रा से दिन रात मे ३ बार कई दिनो मधु से खाने एवं इसके सेवन के समय बहुत दिनो तक पथ्य रूप मे बराबर गो दूध भात खाने से बहुत ही लाभ होता है।

१—पुराना घी खाने में अस्वादु होता है पर औषधि से सिद्ध कर खाने का विधान है। तब शीघ्र समाप्त कर देना चाहिये। औषधि सिद्ध होने पर १ मास से अधिक होने पर प्रयोग न करे।

इसमें और उन्माद में यह अन्तर है :—

उन्माद	अपस्मार
१—दौरा के समय मुँह से झाग आदि पदार्थ नहा निकलता।	१—दौरा के समय मुँह से झाग आदि पदार्थ निकलता है।
२—दौरा के समय हाथ पैर नहीं पटकता।	२—दौरा के समय रोगी हाथ पैर पटकता है। यहाँ तक कि अंगो मे चोट तक आ जाती है।
३—कोई रोगी प्रलाप भी करता है।	३—रोगी प्रलाप नही करता, बल्कि कभी-कभी चीत्कार कर गिर जाता है।
४—रोगी यथासम्भव अंगो को वश मे रखता है।	४—रोगी का वश अंगो पर बिलकुल नहीं चलता।

अपस्मार और मूर्च्छा में यह अन्तर है :—

अपस्मार	मूर्च्छा
१—मुँह नाक से झाग निकलता है।	१—मुँह नाक से झाग नहीं निकलता।
२—एकाएक आक्रमण होता है।	२—धीरे-धीरे आक्रमण होता है।
३—रोगी हाथ-पैर आदि अंगो को पटकता हैं।	३—रोगी अगो को पटकता नहीं।
४—रोगी अशान्त रहता है।	४—रोगी शान्त रहता है।
५—जी नहीं मिचलाता और न आध्मान ही होता है।	५—बहुत रोगी में जी मिचलाना एवं आध्मान होता है।
६—शरीर उष्ण रहता है।	६—शरीर शीतल होता है।
७—इसका इतिहास मिलता है।	७—प्राय. इतिहास नही मिलता है।

स्त्रियो में हिस्टीरिया नामक रोग होता है। इसे बहुत से लोग योपापस्मार या स्त्री का अपरस्मार कहते हैं। इसपर स्त्री रोग मे प्रकाश डाला जायेगा।

अतत्वाभिनिवेश या गदोद्वेगः—

अतत्वाभिनिवेश का उत्तम वर्णन चरक चिकित्सास्थान अध्याय १० मे अच्छी तरह मिलता है। भैषज्य रत्नावली मे इसी को गदोद्वेग का नाम दिया गया है। इसमे वस्तुत रागी को न रोग ही रहता है और न वह स्वस्थ ही रहता है, न मरता है और न वह ठीक से जीता है। इसीलिये इस विचित्र रोग को महागद या महारोग भी कहा गया है।

इसमे रोगी तत्व या यथार्थता का बोध नही करता है। इसका उदाहरण यो समझिये। भर पेट खाये रहेगा पर वह कहेगा हमने कुछ भी नहीं खाया। स्वच्छ कपडे पहनने पर भी वह समझेगा कि गन्दा कपडा पहने है। घर मजबूत है पर वह कहेगा कि घर गिर पडेगा। कहने का मतलब यह है कि वह तत्व मे प्रविष्ट नहीं होता है। देखने मे साधारण स्वस्थ रहेगा। ध्यानपूर्वक आंखो को देखें तो उनमे कुछ स्थिरता और शून्यता प्रतीत होगी।

इसको चिकित्सा मे रोगी की बातो का समर्थन करना चाहिये, जिससे रोगी को मालूम हो कि उसकी बातो की उपेक्षा नही की जा रही है। उसे अनुभव कराने के लिये उसके द्वारा कथित रोग की चिकित्सा भी करनी चाहिये। याद रखें, उसके कथित रोग की चिकित्सा वास्तविक रोग के समान न होगी। अन्य दृष्टि से वह लाभकारी हो। पर रोगी को मालूम हो कि उसके द्वारा कथित रोग की ही चिकित्सा हो रही है।

वास्तविक चिकित्सा तो उन्माद के समान होनी चाहिये। पर ताडन, भय, बन्धन आदि नियन्त्रण करने वाले उपाय यहां न होगे। औषधियां, अनुपान, पथ्य आदि सभी उन्माद के ही करें।

चौबीसवाँ अध्याय

वात व्याधि या वायु के रोग

वायु के ज्ञात विकारो में से ८० विकारो का नामोल्लेख त्रिदोष प्रकरण मे किया गया है। इसके सभी विकारो की गणना, स्वरूप एवं विचित्रता का पूर्ण वर्णन करना असम्भव है। सामान्यतया पाये जाने वाले रोगो का ही संक्षिप्त पर ज्ञातव्य वर्णन इस पुस्तक मे होगा।

वातव्याधियो के कारण :—

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वायु से जितने भी विकार उत्पन्न हो सकते हैं उन सबके कारणो को दो ही भेदो मे बांटा जा सकता है। १—धातु-क्षय एवं २—मार्गावरण। ग्रन्थो मे उल्लिखित कारणो मे से रूक्ष, शीत, अल्प, लघु, आहार या उपवास, मैथुन, जागरण, दोष एवं रक्त का अधिक निकलना, कूदना, तैरना, अधिकमार्ग गमन, व्यायाम, धातुक्षय, चिन्ता, शोक, रोगो द्वारा हुये ह्रास आदि से धातुक्षय तथा वेगो को रोकना, आम, मर्मों (शिर, हृदय, मूत्राशय आदि १०५ मर्म) मे चोट, हाथी, ऊंट, घोडा आदि शीघ्रगामी सवारियो से गिरना आदि कारणो से मार्ग का आवरण होता है। आघातो से धातुक्षय भी होता है और उनसे फटी हुई शिरा या धमनी से निकले रक्त कण के वातनाडियो पर जम जाने से मार्ग का आवरण भी हो जाता[1] है। आघात स्पष्ट हो, यह आवश्यक नहीं। बहुधा वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि रोगी एव उसके अभिभावको को पता भी नहीं चलता। प्रायः जिस नाडी पर अवरोध होता है उसी से सम्बद्ध अंग या अंगों पर विकार का प्रकोप होता है। रोग का प्रभाव परम्परा से अथवा अन्यान्य सम्बन्ध से अन्य अंगो या सर्वाङ्ग पर भी दिखायी पडता है। अन्त में जाकर मार्गावरण से भी धातुक्षय होने लगता है। यहाँ और अन्यत्र सब जगह

---

१. स्थूलता या मेदोवृद्धि, अस्थि वृद्धि, विशिष्ट व्रणों एवं चोट आदि द्वारा वात नाड़ियों पर दबाव पडने से भी मार्ग का आवरण होता है।

धातुक्षय का तात्पर्य धातु का शरीर से बाहर निकलना, सूखना एवं न बनना तीनो से समझना चाहिये ।

कारणो पर विचार करते समय मार्ग के आवरण पर भी ध्यान देना उचित है ।

पूर्वरूप :—

इस व्याधि का पूर्व रूप ज्वरादि के समान बताया नहीं जा सकता क्योकि रोग का आक्रमण इतनी शीघ्रता से होता है कि पूर्व रूप पहचानने का अवसर ही नहीं रहता । तुरन्त लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं ।

लक्षण :—

कारण एवं स्थान की विशेषता से विशिष्ट लक्षण होते हैं । जैसे हृदय मे हृत्शूल एवं जानु मे क्रोष्टुक शीर्ष तथा आम से शोथ और जागरण से प्रलाप । इसलिये वात व्याधियों के सभी लक्षणो का उल्लेख असम्भव है क्योकि कारण एवं स्थान की विभिन्नता से अगणित लक्षण उत्पन्न होते हैं । पर अधिकाश जो लक्षण मिलते हैं वे ये हैं :—

हाथ, पैर एवं अँगुलियो की सन्धियो में संकोच या जकडन, हड्डियो का टूटना, सन्धियों की च्युति (अपने स्थान से सरक जाना या मुरुक जाना), रोमाञ्च, प्रलाप, हाथ-पैर-शिर का जकड जाना, लँगडापन, लूलापन, कुबडापन, सूजन, निद्रानाश, गर्भ-शुक्र व रज का नाश, फडकन, अंगो की सुप्ति (स्पर्श ज्ञान या संज्ञा का अभाव), शिर की त्वचा का फटना एवं उसमे फटने की-सी पीडा, नासिका में गन्ध शक्ति का नाश, आंख का टेढा होना, छाती मे रुकावट, अगो मे टूटने या सूई चूभने की-सी पीड़ा एवं उनका पटकना तथा बारम्बार थकावट आदि ।

चिकित्सा :—

समस्त वात व्याधियो के लिये एक चिकित्सा सूत्र बताना कठिन है । कारण स्थान एवं लक्षणो की विभिन्नता के आधार पर सबकी अलग-अलग चिकित्सा की जाती है । फिर भी सबमे सामान्य चिकित्सा विधि यह है :—

स्नेहन और अनुवासन बस्ति प्रमुख चिकित्सा कही गयी है, यहाँ तक कि समस्त चिकित्साओ में स्नेहन को आधी चिकित्सा बताया गया है । आमवात और उरुस्तम्भ के अतिरिक्त समस्त वात रोगो से सम्बद्ध रोगो मे प्रायः इसे किया जाता है । स्वेदन का भी उपयोग होता है । उपर्युक्त दोनो व्याधियो को छोडकर शेष मे स्निग्ध, मधुर, अम्ल और नमकीन आहारों का प्रयोग करना चाहिये ।

कुछ विशिष्ट रोगो का लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार है ।—

आक्षेपक, अपतन्त्रक और अपतानक :—

वायु को कुपित करने वाले कारणो मे विशेषत चोट लगना[1], गर्भपात[1], प्रसव विकार, रक्त[1] क्षय, रजोरोध या मासिक धर्म की विकृति, जीर्ण ज्वर या वातोल्बण सन्निपात, क्रिमि और शल्य क्रिया (आपरेशन) की त्रुटि आदि कारणो से वायु समस्त वातनाडियो मे कुपित होकर आक्षेपक रोग उत्पन्न कर देता है। परिणामतः हाथी पर आरुढ व्यक्ति के समान रोगी झूमता है। बारम्बार रोग का आक्रमण या झटका होने के कारण इसे आक्षेपक कहा गया है।

आक्षेपक की हो दो अवस्थाएँ अपतन्त्रक और अपतानक नाम से होती हैं। अपतन्त्रक मे वायु नीचे से ऊपर की ओर जाकर हृदय शिर और शंख को विशेष पीडित करता है। शरीर आगे या पीछे मुड जाता है, मूर्च्छा होती है, श्वास कष्ट होता है। आँखे बन्द हो जाती हैं, अथवा खुली रहती है अर्थात् पलकें नहीं गिरती। किसी-किसी रोगी के गले से कबूतर के कूँजने के समान कूँजने की आवाज निकलती है।

अपतानक मे दृष्टिस्तब्ध रहती है, खुलती नहीं, संज्ञा नष्ट हो जाती है। किसी-किसी रोगी मे गले से कूजने (कबूतर का शब्द) की ध्वनि होती है। हृदय जकड़े जाने पर बेहोशी एवं उसके मुक्त होने पर स्वास्थ्य लाभ होता है।

दोनो अवस्थाओ मे बारम्बार रोग का दौरा होता है। दौरा के समय रोगी को भीषण कष्ट होता है वह प्रायः बोल नही पाता। देह में तनाव अत्यधिक हो जाता है। दौरा समाप्त होने पर अत्यन्त शिथिलता और दुर्बलता हो जाती है। बुद्धि और स्मृति अत्यन्त दुर्बल हो जाती है। रोगी से बात करने या उसके द्वारा कुछ सोचे जाने पर भी दौरा हो जाया करता है। कुल मिलाकर रोगी की स्थिति देखने में बडी भयानक होती है।

रोग का हलका प्रकोप होने पर पर्याय क्रम (बारी-बारी) से केवल एक-एक अंग का तनाव मात्र ही होता है। अंगो मे तनाव के पूर्व बिजली का करेन्ट (झटका) मारने के समान रोगी को अनुभूति होती रहती है। अंगो मे ऐंठन भी होती है। वह होश मे रहता है। दौरा के बाद शरीर, बुद्धि और स्मृति की साधारणतः स्वाभाविक स्थिति होती है।

आक्षेपक, अपतन्त्रक और अपतानक में चिकित्सा :—

बृहद्वात चिन्तामणि एक रत्ती, मुक्ता पिष्टी १।२ रत्ती, पान का रस चवन्नी या अठन्नी भर और मधु में बारम्बार रोग के प्रकोप के अनुसार दिन रात में न्यूनतम चार बार, अधिकतम आठ बार दें। यदि ब्राह्मी मिल सके तो उसका रस लगभग २० बूँद

---

१ गर्भपात, अधिक रक्त क्षय और भयानक चोट लगने से हुआ अपतानक कष्ट साध्य या असाध्य होता है फिर भी हिम्मत न हारे, जवाब देकर चिकित्सा करे।

या क्वाथ दो तोला भी मिला दें। शीतकाल हो या शीतांग हो तो आदि का रस भी चवन्नी भर या अठन्नी भर मिला दें। अभाव में इन सभी अनुपानों मे से किसी एक का व्यवहार हो सकता है। रक्तपात मे आदी का व्यवहार न करें। मुक्ता पिष्टी न मिले तो केवल बृहद्वात चिन्तामणि से काम चलायें। अर्थाभाव मे दोनो की मात्रा आधी-आधी की जा सकती है। चिन्तामणि चतुर्मुख १ रत्ती निफला क्वाथ मधु से या योगेन्द्र रस १ रत्ती त्रिफला क्वाथ या दोनो के शर्बत से भी दे सकते हैं।

अत्यन्त अभाव मे महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती अथवा योगराज गुग्गुल को १ माशा की मात्रा से उपर्युक्त अनुपानो से दें।

नारायण तैल, प्रसारणी तैल, ऐरण्ड तैल, लहसुन पके सरसो के तैल मे से किसी एक का मर्दन करें। शराब का मर्दन धनुस्तम्भ या अंगो के तनाव, आदि मे बड़ा लाभदायी होता है।

तीनो रोगो मे एरण्ड तैल २ तोला या ३ तोला, पावभर उष्ण गोदुग्ध के साथ पिला कर अवश्य कोष्ठ शुद्ध करें। तीनो में एरण्ड तैल या नारायण तैल या प्रसारणी तैल की अनुवासन वस्ति (गुदा में पिचकारी) देने से लाभ होता है।

तीनो रोगों मे पीपर का चूर्ण डालकर दशमूल काढ़ा पिलाने के १५ मिनट बाद घृत पान करायें और २ घण्टा बाद एरण्ड के तैल २ या ४ तोला से विरेचन करा दें। इसके प्रयोग के बाद पृथक से एरण्ड तैल पिलाने की आवश्यकता नहीं है।

अपतन्त्रक मे उपर्युक्त सभी प्रयोग किये जा सकते हैं। परन्तु निरूहण वस्ति या वमन नही कराना चाहिये। इसमे लंघन (उपवास) का भी निषेध है। इसमें हर्रा, वालबच, रास्ना, सेंधा नमक और अम्लवेत का समभाग का चूर्ण २ माशा की मात्रा से आदी के रस और घी में खिलाने से बड़ा लाभ होता है।

कुशल वैद्य शुद्ध कुचिला[1] २ रत्ती और धतूरे[2] का शुद्ध बीज २ रत्ती मिलाकर पान के बीड़ा मे खिलाये। सावधान! यह जहर है अपनी बुद्धि से विचार कर कम मात्रा भी कर सकते हैं।

अपतन्त्रक मे श्वास कुठार या कटफल या काली मिर्च के अत्यन्त महीन चूर्ण को किसी नलिका द्वारा नाक में जोर से फूंक देने से (इस विधि को प्रधमननस्य कहते हैं) लाभ होता है।

दौरा समाप्त होने पर वात व्याधि अधिकार के अन्त में उल्लिखित पथ्य दे सकते हैं। यदि दौरा अत्यन्त शीघ्र (बारम्बार बीसो बार) आता हो तो पथ्य न दें परन्तु क्षुधा

१—कुचिला दो दिन गो मूत्र में भिगो कर उसे छील कर बीच में से चीर कर उसकी जीभी निकाल लें। तत्पश्चात्, गो घृत में भून कर (तड़क से टूटने योग्य होने पर) चूर्ण कर लें बस वह शुद्ध हो गया।

२—धतूरा का बीज २ दिनतक गोमूत्र में भिगो कर सुखा देने से शुद्ध हो जाता है।

लगने पर मीठा अचार या मौसम्मी का रस गरम कर मधु मिला कर दे सकते हैं। परवल का यूष, मुनक्का का काढा भी दे सकते हैं।

दण्डापतानक

कफ युक्त वायु शरीर को दण्ड के समान कडा कर देता है रोगी की सन्धियाँ विशेषतः पीठ और कमर मुड़ नहीं सकती इसी को दण्डापतानक कहते हैं।

चिकित्सा पथ्य आदि आक्षेपकवत् करें। अपतन्त्रक की पृथक लिखी चिकित्सा इसमें न करें :—

धनुस्तम्भ वायु के प्रकोप से शरीर धनुष के समान मुडने को धनुस्तम्भ कहते हैं। इसका भी दौरा हुआ करता है।

आक्षेपक के सभी कारण इसमे कारण होते हैं। शरीर बाहर मुडता है तो बाह्यायाम या बहिरायाम और भीतर मुडता है तो अभ्यन्तरायाम या अन्तरायाम कहा जाता है। बाह्यायाम अत्यन्त कष्ट साध्य या असाध्य होता है। चिकित्सा आक्षेपकवत् करें। प्रसारिणी तैल नारायण तैल, या सरसो का तैल मलें। शराब के मर्दन से भी तुरन्त लाभ होता है। पान के बीड़ा में १ या २ रत्ती अफीम खिला देने से भी तुरन्त लाभ होता है। आक्षेपक की समस्त चिकित्सा, अनुपान और पथ्य का व्यवहार करें। वृहद्वात चिन्तामणि मिल सके तो अवश्य दें।

पक्षवध (पक्षाघात) या लकवा

कुपित[1] वायु शरीर के किसी आधे भाग की सिराओ और स्नायुओ को सुखा कर तथा सन्धिबन्धनो को शिथिल कर शरीर के समस्त आधे[2] भाग को क्रियाहीन एव चेतनाहीन कर देता है इसी को एकाग रोग, पक्षवध, पक्षाघात, लकवा[3] या फालिज कहते हैं। इसी प्रकार सर्वांग रोग, सर्वांग वध या सर्वांग का लकवा भी होता है। इसमे हृदय अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। अतः रोगी बात करते-करते अनवसर रोया करता है। हृदय एवं नाडी की गति मन्द हो जाती है। जिस ओर रोग का प्रकोप होता है उसी ओर प्राय. नाडी मन्द रहती है। प्रकोप दूर होने पर यह स्थिति बनी रहती है लकवा की पूर्व रुपावस्था में नाडी कठिन प्रतीत होती है। यह अति प्रसिद्ध एवं प्रचलित रोग है। अत. विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं।

---

१ वायु को कुपित करने वाले कारणों में यहां गर्मी सूजाक, मस्तिष्कावरण शोथ, मस्तिष्क व्रण भी समझिये।

२ यहां अन्यन्तर पक्षम् शब्द का तात्पर्य शास्त्र चिन्तकों के लिए चिन्तनीय है। मासिक में एक ओर केन्द्र से उत्पन्न नाड़ी शरीर में दूसरी ओर के अग का सचालन करती है।

३ बहुत से यूनानी वैद्य केवल अर्दित को ही लकवा कहते हैं।

चिकित्सा :—

इसमें भी बृहद्वात चिन्तामणि मधु में, या रस राज १ रत्ती उष्ण गोदुग्ध या चीनी के शर्बत से या वात गजांकुश १ र० पिप्पली चूर्ण युक्त मंजीठ के क्वाथ या योगेन्द्र रस १ रत्ती त्रिफला कषाय या चीनी के शर्बत में देने से निस्सन्देह लाभ होता है। यदि इन्हीं औषधियों में मिलाकर या पृथक से हीरा भस्म १।८ रत्ती (अत्यन्त अभाव में १।१६ र०) दे सकें तो अद्भुत लाभ होगा। हीरा रहित औषधि की मात्रा प्रातः दोपहर सायं और रात में दें। हीरा या स्वर्ण युक्त औषधि प्रातः, सायं देना पर्याप्त है।

उपर्युक्त औषधियों के अभाव में महायोगराज गुग्गुल १ माशा की मात्रा से या योगराज गुग्गुल २ माशा की मात्रा या धातुगर्भ योगराज गुग्गुल १ माशा की मात्रा से प्रातः दोपहर सायं रात रास्ना[४]सप्तक क्वाथ या उष्ण दुग्ध से सेवन करायें। क्वाथ का व्यवहार साधारणतः प्रातः सायं कराया जाता है। कोई अनुपान न हो तो त्रिफला का क्वाथ या उष्ण जल से काम चलायें।

कुचिलादि वटी (शुद्ध कुचिला और काली मिर्च समभाग पानी से पीस कर १ रत्ती की गोली बना लें) प्रातः सायं पान के बीड़े में रख कर एक मास या दो मास तक खाने से भी लाभ होता है।

केवल माषादि क्वाथ (उड़द, केवांच की जड़, रेड़ की जड़ और वरियरा की जड़ प्रत्येक २ तो० लेकर आधसेर पानी में काढ़ा कर आध पाव शेष रक्खें) में ४ रत्ती भुनी हींग और ४ रत्ती सेंधा नमक डालकर प्रातः सायं पिलाने से भी लाभ होता है।

केवल शुद्ध पारा गन्धक सम भाग की कज्जली २ रत्ती की मात्रा से मधु के साथ प्रयोग करने के लिये भी शास्त्रों में निर्देश है। परन्तु इसपर हम विचार नहीं कर सके। चिकित्सक अनुभव कर विचार प्रगट करने की कृपा करें।

यदि गर्मी सूजाक का इतिहास मिले तो मल्ल चन्द्रोदय १।२ रत्ती या मल्ल सिन्दूर १।२ रत्ती अथवा मल्ल (संखिया) घटित कोई वातव्याधि नाशक औषधि अवश्य दें।

रोगी की कोष्ठ शुद्धि पर सर्वदा ध्यान दें। एरण्ड तैल के पान अथवा वस्ति द्वारा यह कार्य उचित है।

मर्दनार्थ, नारायण तैल कोई माष तैल (शास्त्रों में माष तैल और बृहन्माष तैल हैं) या कोई प्रसारिणी तैल का प्रयोग करें। इन तैलों की वस्ति भी दें, पीड़ा हो तो विष गर्भ तैल या महाविष गर्भ तैल मालिश कर रेंड़ का पत्ता बांध दें।

---

४ रास्ना, गुरुच, अमलतास की गुद्दी, देवदारु का बुरादा, गोखरू, रेंड़ का जड़ की छाल और गदहपुरना के क्वाथ का नाम रास्ना सप्तक क्वाथ है। इसकी प्रति मात्रा में सोंठ चूर्ण दो आना भर छोड़ लेना चाहिये।

विशेष :—

इसमे आगे लिखित अर्दित के सभी उपचार लाभदायी होते है। स्मरण रक्खें रोग अच्छा होने पर भी पुन. आक्रमण करता है। इसलिए कुछ न कुछ औषधि एवं पथ्य व्यवस्था बहुत दिनो तक चालू रक्खे। लोग कहते है कि तीसरी बार या इसके बाद का आक्रमण असाध्य होता है। अध्याय के अन्त मे लिखित वातव्याधि का साधारण पथ्यापथ्य करें। धातु क्षय से महा हानि होती है, इसे भी स्मरण रक्खें।

अर्दित

वायु मुख को अर्दित (पीडित) करता है। इसलिए इस रोग का नाम अर्दित पडा। अत्यधिक[1] उच्च स्वर से बोलने से कठिन पदार्थों को भक्षण करने, हसने, जम्हाई लेने, भार ढोने और विषम स्थान पर सोने से शिर-नासिका-ओठ-दाढी-ललाट और आँख की सन्धियो मे कुपित हुआ वायु मुख को पीडित कर देता है जिससे आधा मुख टेढा पड जाता है, ग्रीवा घूम जाती है, शिर हिलता है, वाणी रुकती है, नेत्र, नासिका अथवा मुख मण्डल में विकृति आ जाती है। जिस ओर रोग प्रकोप होता है उसी ओर ग्रीवा, दाढ़ी, दांत में पीडा होती है। इसे मुँह का लकवा भी कहते हैं।

चिकित्सा :—

पूर्वोक्त पक्षाघात या पक्षवध की समस्त औषधियो अनुपानो एवं पथ्यो का उपयोग यहाँ किया जा सकता है। अन्तर केवल यह है कि यहाँ मुखमण्डल को लक्ष्य कर स्नेह का वाह्य प्रयोग एवं स्वेदन भी होगा। पक्षाघातोक्त विष गर्म तेल को छोड कर सभी तैलो में किसी को नस्य रूप मे लेना एवं कान मे डालना पडता है। सम्भव हो तो नारायण तैल या माषादि तैल की शिरोवस्ति लें।

काला धतूरा का पत्ता, सफेद कनैर, अभाव में किसी कनेर की जड़ की छाल और सफेद गुन्जा प्रत्येक सवा दो तोला लेकर पानी में पीस कर कल्क बनायें। इस कल्क को पाव भर तिल तैल में मन्द आंच से पका कर जला दें। फिर छान कर तेल की मालिश करें। अत्युत्तम है।

औषधियाँ :—

वृहद्वात चिन्तामणि को १ रत्ती की मात्रा से मधु से प्रातः सायं खा लेने मे अत्यन्त लाभ होता है।

लहसुन २ तोला गाय के आधा सेर दूध और आधा सेर पानी में पका कर केवल दूध शेष रक्खें। इस दूध को प्रातः सायं एक मास सेवन करने से बडा लाभ होता है। यदि सहने की सीमा से अधिक उष्णता करे तो लहसुन कम कर दें।

---

१ अत्यधिक शब्द सभी कारणों के साथ लगेगा।

तिल्ली के तैल मे लहसुन का कल्क १ तोला मिला कर प्रातः सायं खाने से बडा लाभ करता है। चाहे तो कल्क को तिल तैल मे भून कर खिलायें। पर लाभ कुछ कम और स्वाद अधिक होगा।

लहसुन का चूर्ण ३ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपर, सेंधा नमक, सञ्चर नमक, प्रत्येक ३ माशा का चूर्ण प्रतिदिन प्रात:काल एक माशा की मात्रा से उष्ण गो दुग्ध के अनुपान से एक मास तक सेवन करने से बडा लाभ होता है।

तीन तोला सन का बीज पीस कर या चूर्ण कर मधु मे मिलाकर दिन रात मे एक बार एक मास तक खिलाने से बडा लाभ होता है। वालवच या मीठा वच एक छटांक, सोंठ, और स्याह जीरा प्रत्येक २ तोला लेकर चूर्ण बनाकर ३ माशा की मात्रा से प्रातः सायं सेवन करें, बडा लाभदायी है।

हनुग्रह या हनुस्तम्भ

अत्यन्त कठिन और रूक्ष पदार्थो को खाने, चोट लगने और गलत ढंग से जीभ छीलने मे हनुमूल (दोनो जबडो की सन्धि) मे कुपित वायु मुंह को लगातार खुला या लगातार बन्द कर देता है। यदि मुंह खुला रह गया तो बन्द नहीं होता और यदि बन्द हो गया तो खुलता नहीं।

चिकित्सा :—

किसी प्रसारणी तैल को कान में डालने, नस्य लेने एव शिरोवस्ति के रूप मे प्रयोग करें। हनुमूल मे इसका मर्दन भी करें। सेंक के बाद धीरे-धीरे क्रमशः जोर देते हुए, परिस्थिति के अनुसार जबडो को खोलें या बन्द करें। खुले मुंह वाले हनुस्तम्भ मे वैद्य हनुमूल को अंगूठो से दबाकर शेष अंगुलियों से नीचे से धीरे-धीरे दबाते हुए ऊपर की ओर मुंह बन्द करने की दिशा मे लायें। ऐसा बारम्बार करें। सावधान ! जल्दबाजी या एक बार ही अत्यधिक जोर करने की आवश्यकता नहीं। कभी-कभी खुले मुंह के रोगी के मुंह में अकस्मात जलती हुई लकडी डाल देने का भय दिखाने से लाभ होता है। पर सावधान ! उसका मुंह जले नहीं। एकाएक उसे भय हो जाये कि जलती लकडी मुंह मे घुस जायेगी। बस खट से मुंह बन्द हो जायेगा।

यदि सम्भव हो तो अादी को बारम्बार चबा कर थूकने एवं उष्ण जल से कुल्ला करने से लाभ होता है।

रोगी के सामने नमक, मिर्च डालकर नीबू चूसने से रोगी की लार निकलेगी, इससे लाभ होगा।

इसमें पक्षाघात एवं अर्दित की सभी चिकित्सा, अनुपान, पथ्य आदि लाभकारी है। दशमूल का क्वाथ भी पिलाने से बडा लाभ होता है।

मन्यास्तम्भ या गर्दन जकड़ना

कभी-कभी विषम स्थान पर सोने या तकिया से सिर इधर उधर हो जाने या अनुचित ढंग से ऊपर देखने से गर्दन जकड़ जाती है तब गर्दन इधर उधर घुमाने में कष्ट होता है। रोग साधारण है। शीघ्र अच्छा हो जाता है।

इसमें साधारण तैल या घी मल कर रेंड या मदार का पत्ता गरम कर बांध दें व ऊपर से सेंक करें। लाभ होगा।

मुर्गी के अण्डा का भीतरी भाग, घी और सेंधा नमक बराबर पीस कर गरम-गरम लेप कर गर्दन पर बांध दें, लाभ होगा।

पक्षाघात या अर्दित के तेलों को नस्य रूप में लेने, कान में डालने, मलने एवं शिरो-वस्ति लेने से लाभ होता है।

बृहद्वातचिन्तामणि या योगराज गुग्गुल या कोई पक्षाघात की औषधि खिला सकते है। इसमें प्रात. दोपहर सायं रात से अधिक बार औषधि न खिलायें।

गृध्रसी या साइटिका

स्फिक् प्रदेश (चूतड या नितम्ब) से प्रारम्भ होकर क्रमशः कटि के पिछले भाग, ऊरु, (रान) जानु (ठेहुनी), जँघा (पिण्डली) और पैर मे गृध्रसी (साइटिका) नामक वातनाडी जाती है। उसी मे वायु प्रकोप के कारण उपर्युक्त अंगो मे जकडन, सूई चुभने सी पीडा और फडकन होती है। वात कफ के प्रकोप के कारण रोगी तन्द्रा, भारीपन एवं अरुचि से पीडित रहता है। कुल मिला कर इसी का नाम गृध्रसी है।

यह वडा प्रसिद्ध रोग है। साधारणतः वात प्रकोपजन्य गृध्रसी अधिक मिलती है। और इसमे असह्य पीडा, साधारणत. समस्त पैर (ऊरू, जानु, जंघा, पैर) के पिछले प्रदेश मे होती है। जिससे रोगी चलने और पांव मोडने में असह्य कष्ट का अनुभव करता है। प्राय एक पांव मे ऐसा होता है। परिणामत. चलते समय दूसरी ओर रोगी झुक जाता है। कभी-कभी दोनो पैरो मे भी होता है। चारपाई पर लेटे रहने पर भी असह्य दर्द हो जाया करती है।

चिकित्सा :—

यह स्मरण रखिये कि इस रोग मे वायु या कफ के प्रकोप का कारण आम है और प्राय. रोगी को कोष्ठबद्धता रहती है। इस लिए विरेचन के लिए एरण्ड तैल २ तोला से ४ तोला तक, गो मूत्र, त्रिफला का काढा में से किसी के साथ प्रतिदिन प्रात. रोगी को पिलायें। यदि एरण्ड तैल पीने के एक दिन पूर्व वमन करा दें तो अत्यन्त लाभ होता है। विरेचन न्यूनतम ३ सप्ताह तक चलाने से अधिक और स्थायी लाभ होता है। पर रोगी के वलावल के अनुसार इससे कम दिनो तक भी चला सकते हैं।

अथवा प्रतिदिन तीन तोला रेंड के छिले हुए बीज को डेढ पाव दूध में पकायें। पकाते समय यथोचित चीनी डाल दें। इस खीर को लगभग ३ सप्ताह तक सेवन करायें। इसमे भी उपर्युक्त लाभ होता है। अथवा तीन तोला रेंड के छिले हुए बीज को १५ तोला गुड़ में घोट कर लड्डू बना लें। जी चाहे तो पाक कर लड्डू बना लें। इसे प्रतिदिन एक बार अथवा दिन भर मे कई बार खिलाकर उष्ण जल पिलायें। लगभग २१ दिन प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है। यह बड़ा स्वादिष्ट योग है।

एरण्ड तैल के अतिरिक्त निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का प्रातः दोपहर, सायं और रात प्रयोग करें। इन्हे एरण्ड तैल की औषधि से एक घण्टा पूर्व या पश्चात् दें —

त्रयोदशांग गुग्गुल २ माशा मृतसजीवनी सुरा, शराब, उष्ण जल, उष्ण दुग्ध, मांस रस में से किसी एक से दें।

महायोग राज गुग्गुल १ माशा रास्ना सप्तक क्वाथ से।

पथ्यादि गुग्गुल २ माशा (महानीम) बकाईन की छाल के रस से दें।

इन औषधियो मे वृहद्वात चिन्तामणि १ या १।। रत्ती मिला दें तो अत्यधिक लाभ होगा।

केवल महानीम (बकाईन) की भीतरी छाल का काढा ४ तोला म्योंढी की पत्ती का रस २ तोला या काढा ४ तोला, बकाईन का गोंद ६ माशा, दशमूल का काढ़ा ४ तोला में से किसी एक में भुनी हीग ४ रत्ती और पोहकर मूल का चूर्ण २ माशा डाल कर सेवन करने मे बड़ा लाभ होता है।

लहसुन को दही या मट्ठा मे घोट कर सुखा लें। फिर उसे २ तोला लेकर शुद्ध गुग्गुल १० तोला मे मिलाकर कुछ घी डाल कर कूट कर ३ माशा की गोली बना लें। यह भी उष्ण जल या उपर्युक्त काढो या रसो मे से किसी के साथ सेवन करने से लाभ दायी होता है।

गृध्रसी पर कोई प्रसारणी तैल खूब मलें। तत्पश्चात् मायफल के चूर्ण या म्योंढी के पत्तो से सेक करें। कमर एवं पूरे पैर के पिछले हिस्से में मर्दन व सेंक विशेष करें।

स्वेदन प्रकरण में उल्लिखित प्रस्तर स्वेद या अन्य स्वेद भी बड़ा लाभदायी है।

अंसशोषः—

विश्वाची, बाहुशोष और अवबाहुक :—

बाहु के पिछले भाग की वातनाडी में वात प्रकुपित होकर पूरी बाहु मे पीडा और क्रिया क्षय कर देता है। (विना पीडा के भी क्रिया क्षय होता है)। उसे विश्वाची कहते हैं। गृध्रसी की सभी औषधियां लाभ करती हैं। वृहद्वात चिन्तामणि को न भूलें

कोई माष तैल या नारायण तैल मर्दन करें एवं उसका नस्य लें। माष उरद को कहते हैं। इसमे या इसके साथ अन्य द्रव्यो को मिलाकर कई माष तैलो का निर्माण शास्त्रो में लिखा है।

कन्धे मे स्थित वायु कन्धे की वात नाडियो को सुखाकर बाहु को बेकाम कर देती है। इसे अंसशोष या बाहु शोष कहते हैं।

वहीं स्थित वायु वात नाडियो को संकुचित कर देती है। जिससे बाहु को फैलाने मे असमर्थता होती है। इसे अवबाहुक या अपबाहुक कहते हैं।

अंसशोष और अपबाहुक मे बृहद्वात चिन्तामणि या स्वर्ण घटित कोई वातव्याधि की औषधि दे सकते है। उसके साथ या अभाव में केवल वरियरा या उरद का क्वाथ, सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से बड़ा लाभ होता है चाहे वरियरा के क्वाथ मे ही उड़द का क्वाथ या यूष तैयार कर दे सकते हैं।

कोई प्रसारिणी तैल या कोई माष तैल का मर्दन एवं नस्य भी करें।

क्रोष्टुक शीर्ष

जानु (घुटना) में वायु और रक्त कुपित होकर क्रोष्टुक (स्यार) के सिर के समान सूजन कर देता है। इसमें तीव्र पीडा होती है। इसे बहुत से लोग भ्रम से आमवात या गठिया या सन्धिवात समझ लेते हैं। इनका अन्तर आमवात मे देखें।

बहुत से चिकित्सक इसे फोड़ा समझते हैं पर इसमे पूय नहीं होती। व्रण मे पूय पड जाने पर न निकलने से असह्य पीड़ा अथवा ८-१० दिन होने पर प्राण संकट में पड जाता है। पूयमयता के लक्षण यथा वारम्बार ज्वर और पसीना आना आदि होते हैं। पर क्रोष्टुक शीर्ष ४-६-१० मास तक भी प्राण संकट में नहीं डालता। पूयमयता के लक्षण भी नहीं मिलते।

ध्यान रखें इस रोग में व्याधि केवल जानु मे ही है प्रायः ऊरूस्वाभाविक रहता है पर पैर पतला पड जाता है। स्यार के सिर से तुलना करने पर वात समझ में आ जायेगी।

इसकी चिकित्सा अगले अध्याय में वर्णित वात रक्त के समान करें। गुरुच विशेष हितकारी है। कैशोर गुग्गुल ३ मासा गुरुच और त्रिफला के काढ़ा से प्रातः, दोपहर, साय और रात सेवन करें। कैशोर गुग्गुल के अभाव में कोई गुग्गुल या शुद्ध गुग्गुल सामान्य मात्रा ३ माशा से ६ माशा तक है) का व्यवहार करें। जानु पर पच्छ मार अथवा जोक लगाकर दूषित रक्त निकालें। वात रक्ताधिकार के तैल मर्दन करें।

प्रतिदिन एरण्ड तैल १ तोला से ३ तोला तक उष्ण गो दुग्ध के साथ पीकर विरेचन करें।

पाद दाह

पित्त और वायु मिल कर पैरो में चलते समय दाह उत्पन्न कर देते है। इसी को पाद दाह कहते हैं। इसमें मक्खन या सौ वार के धोये घी से मालिश कर आग पर सेकने मे लाभ होता है। कुछ दिनो तक करते रहने मे पुराना और उग्र पाद-दाह भी अच्छा हो जाता है। खाने के लिये वात रक्त की औषधिया और मर्दनार्थ वात रक्त नाशक तैलो का व्यवहार करें।

खञ्ज, पगु और कलायखञ्ज

खञ्ज मे कटि मे आश्रित वायु एक पैर को वेकाम कर देता है। पगु मे दोनो पैरो को वेकाम कर देता है। याद रखिये वाद मे अग सूखने लगते हैं।

कलाय खञ्ज मे चलते समय उठे हुये पैर काँपने लगते हैं। परिणामत शरीर भी काँपने लगता है। पैर की सन्धियाँ शिथिल हो जाती हैं।

चिकित्सा –

इन तीनो रोगो मे पथ्यादि गुग्गुल, महायोगराज गुग्गुल, त्रयोदशाग गुग्गुल मे से किसी एक का सेवन उचित अनुपान से करे। अभाव मे शुद्ध गुग्गुल खिलायें। स्निग्ध विरेचन, निरूहण और अनुवासन वस्ति का प्रयोग करें। कटि और पैरो मे स्वेदन करे। मर्दनार्थ किसी प्रसारिणी तैल, नारायण तैल या माष तैल का व्यवहार किया करें।

सावधान! अत्यधिक मटर और खेसारी से इन रोगो का प्रकोप होता है। अतः इनसे वचें।

पाचन संस्थान के वात रोग

इन रोगो मे घी मे भुनी हीग, भूना जीरा, काला नमक और लहसुन का प्रयोग करना न भूलें। ये वात को स्वाभाविक गति की ओर ले जाते हैं।

ऊर्ध्ववात उद्गार वाहुल्यः– इस रोग मे कफ अथवा आम से नीचे की ओर प्ररित वायु अत्यन्त उद्गार (डकार) उत्पन्न करता है। इस रोग मे पहले पञ्चकर्मोक्त विधान से २ या ३ वमन करा दें तो अत्यन्त उत्तम है उसके वाद या विना वमन कराये हर्रा ५ तोला, घी मे भुनी हीग ५ तोला, सोठ १० तोला, विधारा १० तोला, सेंधा नमक १॥ तोला और चित्ता १॥ तोला सवका चूर्ण २ या ३ माशा की मात्रा मे प्रातः, दोपहर, साय व रात उष्ण जल से लें। रेचन अधिक हो तो २ वार ही खायें।

अथवा निशोथ का गोदुग्ध मे वनाया कल्क ४ मा० मे अडूसा का रस मिला कर गरम कर प्रात., दोपहर, साय, रात उष्ण जल से पीयें। रेचन अधिक होने पर दो ही वार खाये।

कोष्ठगत वात, पक्वाशय गत वात, आध्मान, प्रत्याध्मान :-

इन सब के सामान्य लक्षण ये है --

मल-मूत्र–अधोवायु की रुकावट, शूल, आध्मान (पेट फूलना, और पेट मे गुड़-गुडाहट आदि शब्द। विशेष लक्षणो का वर्णन यहा अनावश्यक है।

इन सबकी चिकित्सा आगे लिखित पुरीषज और अधोवायुज उदावर्त के समान करना चाहिये। पर याद रखिये पहले गुदा मे फलवर्त्ती (साबुन की वत्ती, हीग की वत्ती, कोईना या महुआ के वीज के कल्क की वत्ती, ग्लीसरीन की वत्ती आदि) का प्रवेश कराये। इसके साथ ही अवसर मिले तो पेट पर दारु पट्क लेप[1] या अधोवायु या मल निस्सारक अन्यान्य लेप करे। इससे २० मिनट मे मल और अधोवायु नीचे की ओर जायेगे।

इससे लाभ न होने पर निरूहण वस्ति या एरण्ड तैल की अनुवासन वस्ति दें। निश्चय लाभ होगा।

इन सबसे लाभ न होने पर नाराच रस ? रत्ती नीबू के रस युक्त चीनी के शर्वत से या नारायण चूर्ण (पीपर, निशोथ, चीनी का समभाग चूर्ण) ६ माशा मधु मे अथवा किसी उचित (आयु और वल के अनुसार) विरेचन का प्रयोग कराये। याद रक्खें नारायण चूर्ण मृदु रेचक है, नाराच तीक्ष्ण रेचक है। मृदु रेचक निरापद है। कभी-कभी रोग अधिक उग्र होने पर सभी औषधियाँ असफल होती हैं वहा नाराच रस सफल होता है। वस्ति से लाभ न हो या उसकी व्यवस्था न हो सके तो फलवर्त्ती के साथ या उसके विना नाराच का प्रयोग कर देना चाहिये।

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला :-

नाभि के नीचे पत्थर के समान कड़ी, अचल या घूमने वाली गाठ हो जाती है जिससे मल-मूत्र अधोवायु रुक जाती है। यह अष्ठीला है। उदर मे पीडा हो तो वही प्रत्यष्ठीला कही जाती है। इसमें आगे लिखित गुल्म की चिकित्सा करनी चाहिये। हिंग्वादि चूर्ण भी बडा लाभ करता है।

विशेष –

उदर की रुकी हुई वायु निकालने के लिये जीरकादि वटी अतीव लाभदायी है। इसे दो गोली की मात्रा से उष्ण जल के साथ दिन रात मे ५-६ वार खिलाया जा सकता है।

१—देवदारु, कूठ, सोया सेंधा नमक, हींग प्रत्येक वरावर लें, यही दारु पट्क लेप है। अभाव में हींग या ग्रम लेकर मट्ठा या नीवू के रस में पीस कर गरम कर पेट पर लेप करें।

२—उपर्युक्त पाचन सस्थान गत वायु विकारो मे रोग प्रकोप के समय लघन कराये, तत्पश्चात् या रोग का दौरा समाप्त होने पर वायु को अनुलोम करने वाले एव मल मूत्र को निकालने मे सहायक द्रव्य यथा हीग, लहसुन, जीरा, अजवाइन, तक्र, गोदुग्ध, मुनक्का, अन्जीर, खाने वाला सोडा, परवल, पपीता, पुनर्नवा, मकोय, पुराना अरवा चावल, मूंग की दाल और गेहू की रोटी आदि का व्यवहार करायें।

स्फुट [फुटकर] वात व्याधियां

कटिशूल या त्रिकशूल :—

धातु-क्षय, शीत, परिश्रम, अस्थि शोथ, एव मोच आदि के कारण कमर मे कुपित वायु पीडा उत्पन्न कर देता है जिसे त्रिकशूल अथवा कमर की दर्द कहते है।

इसमे कारणो को दूर करने का प्रयत्न करे :—

१—वृहद्वात चिन्तामणि १ रत्ती की मात्रा से उत्तम काम करता है। साधारण अनुपान मधु है।

२—महा योगराज गुग्गुल ४ रत्ती या योग राज गुग्गुल २-३ माशा की मात्रा से बडा लाभदायी है अनुपान एरण्ड क्वाथ, रास्ना सप्तक क्वाथ, उष्ण जल और उष्ण दुग्ध मे से कोई एक है।

३—केवल शुद्ध कुचिला १ या २ रत्ती की मात्रा से नम्बर २ के अनुपानो से भी बडा काम करता है।

४—असगन्ध का चूर्ण ३-४ माशा समान मिश्री और घी मिला कर खाकर उष्ण जल या उष्ण दुग्ध पीने से धातु क्षय जनित कटि शूल मे विशेष हितकारी है।

५—दशमूल या लघुपञ्चमूल का क्वाथ भी बडा लाभदायी है। इनके क्वाथ या कल्क से पका दूध भी काम करता है। क्वाथ से वाष्प स्वेदन भी लाभ करता है।

६—नारायण तैल या माष तैल या प्रसारिणी तैल की मालिश करे। साथ मे खाने वाली कोई औषधि सेवन की जाय।

७—कटि शूल के रोगी चारपाई के नीचे आग रक्खें। उसकी गर्मी से आराम मिलता है। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि चारपाई में आग न लगे।

याद रखिये, रोगी को विश्राम आवश्यक है।

कम्पवात —

बहुत लोगो का हाथ काम करते समय कांपता है उसमे विजय भैरव तैल मर्दन करने से बडा लाभ होता है। अन्यान्य अगो के कम्पन मे भी इस तैल या अन्य वात नाशक तैल का मर्दन करे। साथ मे वात नाशक कोई औषधि भी खायी जाय तो अत्युत्तम है।

तूनी प्रति तूनी :-

मूत्राशय या मलाशय से नीचे की ओर कैंची से कटती हुई सी पीडा गुदा और लिंग को जाती है इसे तूनी कहते हैं। यदि गुदा और लिंग से मूत्राशय और मलाशय की ओर वैसी ही पीडा होती हो तो वह प्रतितूनी है। इसमे यवक्षार ४ रत्ती, भुनी हींग २ माशा उष्ण घृत से ४ बार खिलायें। अथवा स्नेह लवण १ माशे या २ माशे उष्ण जल से खिलायें।

बहुमूत्र या मूत्रावरोध :-

वायु के प्रकोप से मूत्र बारम्बार आता है या रुक जाता है। इन पर हम क्रमशः प्रमेह मूत्राघात एवं मूत्र-कृच्छ्र मे विचार करेंगे।

झिनझिनी और पाद हर्ष :-

झिनझिनी यह प्रसिद्ध रोग है। किसी भी अंग के बहुत देर तक दब जाने से वहाँ यह उत्पन्न होती है। फिर दबाव हट जाने से थोड़ी देर मे दूर भी हो जाती है। यदि बिना दबाव के ही बारम्बार उत्पन्न हो तो कठिन वातव्याधि जिसमे वह अङ्ग बेकार हो सकता है, की सूचना है। ऐसी अवस्था मे घी मे भुनी हींग ४रत्ती और पोहकर मूल का चूर्ण १ मा० दशमूल के क्वाथ २ तोला या ४ तोला से खिलाये। यह एक मात्रा है। इसे २४ घण्टे मे ४ बार तक खिला सकते हैं।

पैरो मे चलते समय रोमाच हो झिनझिनी हो और त्वक् शून्यता हो जाय तो उसे पाद हर्ष कहते हैं। उसमे भी झिनझिनी की ही चिकित्सा करे। साथ मे ईट को तपा कर काजी मे बुझा उसकी भाप से स्वेदन भी कर सकते हैं।

त्वग्गत वात :

त्वचा मे वायु का प्रकोप होने पर त्वचा जगह जगह फटने लगती है। वह पतला, शून्य, रूक्ष और काली हो जाती है। कही कही लाल चकते भी हो जाते हैं। इसमे अफीम मिला कर सरसो के तेल का मर्दन लाभदायी होता है।

अस्थिमज्जागत वात :-

इसमे अस्थियाँ और जोडों मे लगातार तीव्र पीडा होती है जिसके मारे नीद नही आती। मास-बल क्षय हो जाता है। इसमे भी अस्थिशोष या अस्थिक्षय (बोन्स टी० बी०) हो जाता है। इसकी विशेष चिकित्सा हम नही लिख सकेंगे। साधारण चिकित्सा यह है—

१-अधिकतम विश्राम २-स्नेह पान, ३-स्नेह की मालिश। सावधान! यदि कही हड्डी मे सूजन या फोडा प्रतीत हो तो वहाँ मर्दन न करें। स्नेह चुपड सकते हैं। तिल तैल पाव भर

मे पाँच तोला लहसुन जला कर काला कर लहसुन छान कर फेंक दे। इस तेल की मालिश करे और प्रतिदिन १ तोला पिला कर उष्ण जल पिलाये, बडा लाभ होगा।

शुक्रगत वायु :-

इसका वर्णन प्रमेह मे आगे होगा।

मांस मेदोगत वायु :-

इसमे सर्वदा थकावट प्रतीत होती है। डण्डे से चोट लगने के समान पीडा भी हुआ करती है। इसमे स्निग्ध विरेचन और निरूहण वस्ति लाभकारी होती है।

हृदय गत वात, रस गत वात और आमाशय गत वात –

सुगमता के दृष्टिकोण से हम हृद्रोग मे विचार करेगे।

रक्तगत वात :—

इस पर वात रक्त मे विचार होगा।

कर्णगत वायु :—

कानो मे कुपित वायु वहा तरह तरह के शब्द करता है। लहसुन ६ माशा, अफीम दो रत्ती को सरसो के तेल मे पका कर जला दें। फिर छने हुए तेल को कान मे प्रति दिन २ या ३ वार छोडे। वडा लाभ होगा। दशमूल तैल या नारायण तैल भी लाभदायी है।

वायु के आवरण :—

चरक सहिता और वाग्भट्ट सहिता मे वायु के क्रमश वीस और वाईस आवरण वताये गये हैं। सुश्रुत सहिता मे भी इन पर प्रकाश डाला गया है जो उच्चकोटि के गम्भीर विद्वानो एव चिकित्सको के लिये मननीय है। चिकित्सा मे अत्यन्त उपयोगी भी हैं। पर विस्तार भय से उनके विषय मे हम मौन रहेगे।

वातव्याधि के उपद्रव :—

विसर्प, दाह, अत्यधिक पीडा, अङ्गो मे रुकावट, मूर्छा और अग्निमान्द्य ये वात-व्याधि के उपद्रव हैं। ये यदि स्वतन्त्र या किसी रोग के लक्षण हो तो रोग कहे जायेंगे। तव साध्य हैं। यदि किसी वातव्याधि के पश्चात् उत्पन्न हो तो उपद्रव ही कहे जायेंगे।

वातव्याधि के असाध्य लक्षण —

उपद्रवो से युक्त सभी वातव्याधि असाध्य होती है। जिस वातव्याधि मे सर्वथा शून्यता हो जाय वह असाध्य हैं। शोथ, कम्पन, आध्मान और पीडा

से युक्त वातव्याधि असाध्य होती है। ये स्वतन्त्र साध्य हैं। केवल पीडा युक्त वातव्याधि को असाध्य मत मानिये।

धातुक्षय से कुपित स्वतन्त्र वात से उत्पन्न पक्षावात असाध्य होता है। वरमो वीत जाने पर पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक और अपतानक अत्यन्त परिश्रम से सिद्ध होते हैं। अन्यथा असाध्य होते है।

साध्य लक्षण :—

नवीन और निरुपद्रव वातव्याधि साध्य होती है। वल रहने पर भी साध्य हो सकती है।

वातव्याधि मे पथ्यापथ्य :—

विशेप व्याधि मे लिखित पथ्यापथ्य के अतिरिक्त सभी वातव्याधियो का साधारण पथ्यापथ्य इस प्रकार है —

पथ्य :—

गाय का दूध, वकरी का दूध, गाय या भैस का घी, पुराना अरवा चावल, गेंहू, तिल, परवल, महिजन, भरटा, लहसुन, उर्द या मूग, अनार, खजूर, मुनक्का, अजीर, आम, महुआ, फालसा, लघु और सुपाच्य मास, तेल-मर्दन, उष्ण जल, विश्राम और निश्चिन्तता आदि पथ्य है।

अपथ्य :—

रूक्ष अन्न, थकावट, परिश्रम, उर्द और मूग के अतिरिक्त सभी दाले (मूग और उरद भी वातकारक है पर अन्य दालो से कम), आलू आदि कन्द, पत्र शाक, शीत जल-स्थान और वायु, मैथुन, अजीर्ण, मार्गगमन, सोपाडी, गूलर और आघात आदि अपथ्य है।

वात रक्त

[illegible] व्याधि में कथित रक्त गत वात और वात रक्त में यह अन्तर है —

रक्त गत वात	वात रक्त
१—[illegible] रक्त द्वारा आवृत हुआ वायु है।	१—इसमें कारण कुपित वायु द्वारा दुष्ट रक्त है यह वायु प्रकोप प्रवृद्ध रक्त द्वारा मार्ग में प्रवृद्ध वायु के रुकने से होता है।
२—इसमें फुन्सियां अनिवार्य हैं।	२—फुन्सियां अनिवार्य नहीं हैं।
३—शोथ का अभाव।	३—प्राय शोथ अनिवार्य होता है।
४—[illegible]।	४—सामान्य पुष्टि।
५—भोजन करने के बाद अंगों में जकड़न।	५—भोजन करने से जकड़न का सम्बन्ध नहीं।
६—पूर्व रूप की अस्पष्टता।	६—पूर्व रूप की स्पष्टता।
७—[illegible] होता है।	७—प्रायः सुकुमारों को होता है।
८—किसी अङ्ग या सर्वाङ्ग में प्रकोप।	८—प्राय पैरों और हाथों में प्रकोप।

१—इसमें रक्त द्वारा वायु पर आवरण होता है तो दूसरे में आवरण न होकर प्रवृद्ध रक्त द्वारा प्रवृद्ध वायु का मार्ग में [illegible] होता है और [illegible] वायु से रक्त की दुष्टि होती है।

९—तीव्र पीडा।	९-वायु प्रधान मे अधिक शूल और शोष मे पीडा होती है।
१०–शीतलेप आवश्यक[2]।	१०-वायु और कफ प्रधान में शीत लेप से हानि, पित्त प्रधान मे लाभ।

रक्त गत वात एव वातरक्त का उपर्युक्त अन्तर छात्रो एव गम्भीर विचारक वैद्यो के लिये है। शेष जन इतना समझ लें कि वातरक्त प्राय. ऐसी सवारियो जिनमे पैर लटका कर बैठा जाता है पर अधिक चलने मे होता है या किसी कारणवश पैर अधिक देर तक लटकाना पडे या खडा रहना पडे तो होता[3] है।

अधिक देर तक नीचे की ओर रक्त और वायु का अधिक प्रवाह होने से पैरो में प्राय इसका प्रकोप शोथ के रूप मे होता है।

पूर्व रूप :—

स्वेद अधिक होना या सर्वथा न होना, कालापन स्पर्श का ज्ञान न होना, कटे स्थान मे अत्यन्त पीडा, सन्धियो की शिथिलता, आलस्य, सुस्ती, जानु, जघा, ऊरु, कमर, कन्धा, हाथ, पैर और सन्धियो मे कष्ट दायिनी पिडकाये, फडकन, सज्ञा शून्यता, भारीपन, खुजली होती है। सन्धियो मे बारम्बार पीडा एवं उसकी शान्ति, शरीर का वर्ण परिवर्तन और चकत्ते ये वात रक्त के पूर्वरूप हैं। चिन्हित पूर्व रूप देखते ही सतर्क हो जायँ नही तो अत्यधिक कष्ट का सामना करना पडेगा।

लक्षण :—

यह ज्ञातव्य है कि यह व्याधि वात और रक्त के दूषण से होती है। इसलिए इसमे दोनो के लक्षण मिलते हैं। वात प्रधान मे शूल फडकन, टूटने की सी पीडा, शोथ मे रूक्षता और कालापन, शोथ बढना-घटना, अगुलियो और सन्धियो मे सकोच, अङ्गो में जकडन, शीत से द्वेष एव शीत से वृद्धि, कम्पन, स्पर्श की जानकारी न होना ये लक्षण होते हैं। रक्त प्रधान मे अत्यन्त पीडा और चुनचुनाहट (अम्हौरी के समान) से युक्त शोथ होता है। यह स्निग्ध और रूक्ष उपायो से शान्त न होकर बढता है, इसमें खुजली और क्लिन्नता (गीलापन) होती है। पित्त प्रधान मे दाह, बदहोशी, पसीना, मूर्च्छा, प्यास, स्पर्श मे असहिष्णुता, पीडा, ललाई, पाक और बहुत उष्णता रहती है। कफ प्रधान में गीलापन, भारीपन, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा होती है।

२—रक्तगत वात की शेष चिकित्सा वात रक्त के समान होगी। वात प्रधान चिकित्सा यथा बृहद्वात चिन्तामणि आदि का प्रयोग करें। कैशोर गुग्गुल का प्रयोग भी हो सकता है। अनुपान में गुरुच का प्रयोग होगा पर इसमें रास्ना और एरण्ड अवश्य मिला दें। रास्ना, पुनर्नवा मजीठ राल मक्खन आदि का लेप करें। गुडुच्यादि तैल भी मला जा सकता है।

३—दूषित भोजन, दिवा शयन और रात्रिजागरण से भी होता है।

यह स्मरणीय है कि यह व्याधि पैरो की जड पकड कर और किसी किसी रोगी के हाथ की जड पकड कर (न अच्छा होने पर) चूहे के विष के समान शरीर मे अन्यत्र फैलती है। इसके उत्तान (त्वचा और मास मे आश्रित) एव गम्भीर (सधियो मे आश्रित) दो भेद होते हैं। उत्तान मे खुजली, दाह पीडा, तोद (सुई चुभने सी पीडा), ललाई होती है और गम्भीर[1] मे शोथ, जकडाहट, आन्तरिक असह्य पीडा, शोथ में लालिमा, दाह, फडकन और पाक होता है। यदि वायु और अधिक प्रकुपित होकर अस्थि मज्जा तक मे प्रविष्ट हो गया हो तो अगो का सकोच, टेढापन पगुता आदि कर देता है।

साध्यासाध्य :—

सभी वात रक्त कष्टसाध्य होते हैं। एक वर्ष वीत जाने पर याप्य (चिकित्सा-पथ्य चालू रहने पर आराम, अन्यथा कष्ट देने वाला) हो जाते है। असाध्य लक्षण ये है —शक्ति, मास, निद्रा, रुचि का नाश हो जाना, मूर्च्छा, प्यास, नशा, कम्पन, हिक्का, पगुता, टेढापन, फफोला इत्यादि। केवल वेहोशी होने पर भी रोगी असाध्य होता हैं। एक दोपज साध्य, द्विदोपज याप्य और त्रिदोषज असाध्य होता है।

चिकित्सा :—

याद रखिये, सभी वातरक्तो मे विरेचन और रक्त मोक्षण[2] (रक्त निकालना) अवश्य करना चाहिये। काष्ठौपधियो मे नीम की गुरुच सर्वश्रेष्ठ है। इसका अधिकतम स्वरस[3] दिन रात मे पाव भर तक ४ मात्रा मे या क्वाथ आधा सेर तक चार मात्रा में पीने से वडा लाभ होता है। सामान्यतः तिक्त रस की रक्त शोधक औषधियाँ यथा गुरुच, नीम, अडूसा, गोरखमुण्डी और मजीठ आदि लाभ करती है। सुप्रसिद्ध मन्जिष्ठाद्य क्वाथ (या वृहन्मन्जिष्ठाद्य क्वाथ) भी उत्तम लाभ करता है।

अनुपानो मे या स्वतन्त्र रूप से उपर्युक्त औपधियो का प्रयोग करें।

१ केवल दो हर्रा का चूर्ण समान गुड के साथ ३ वार खाकर ऊपर से गुरुच का क्वाथ पीने से वातरक्त नष्ट होता है।

२ केवल एरण्ड तैल १ तोला की मात्रा से गुरुच के स्वरस या क्वाथ में तीन वार पीने से वात रक्त नष्ट होता है।

१—उत्तान ही अच्छा न होने पर गम्भीर हो जाता है।

२—इसके लिये सुई जोंक सिगी आदि में से किसी उपाय का प्रयाग करें।

३—वरावर पानी में गुरुच पीस कर रस निकाले इसमें गुरुच का सत्व कम काम करता हैं पर स्वरस के अभाव में ३ माशा सत्व प्रति मात्रा में लामकारी होना है मात्राधिक्य से घवड़ाये नहीं, एक वार में पूरी मात्रा न निगल सके तो कई व र में निगले।

३ केवल गोरखमुण्डी का चूर्ण ४-६ माशा, घी ३ मा० और मधु ३ मा० मे मिला कर खाकर गुरुच का क्वाथ पीने से भी लाभ होता है।

४ करैले का रस २-४ तोला की मात्रा से तीन वार पीने से लाभ होता है। सबके अभाव मे दुग्ध भी अनुपान स्वरूप दे सकते है।

५ कैशोर गुग्गुल २ माशा, अमृताद्य गुग्गुल २ मा०, निम्बादि चूर्ण २ मा० रस माणिक्य २ रत्ती, महातालेश्वर रस १ र० और सर्वेश्वर रस २ रत्ती मे से किसी एक का प्रयोग उपर्युक्त काष्ठौपधियो मे से किसी एक के अनुपान या गुरुच स्वरस से करे।

भैपज्य रत्नावली मे उल्लिखित कोई गुडूची[3] तैल या पिण्ड तैल की मालिश करे।

भैपज्य रत्नावली के रास्नादि प्रलेप (रास्ना, गुरुच, मुलहठी, वरियरा को दूध मे पीस कर), तिल प्रलेप (तिल को भून कर दूध मे पीस कर) और एरण्ड वीजादि प्रलेप (रेड का वीज, गुरुच, सौंफ, जीरा, वरियरा को वकरी के दूध मे पीस कर) मे से किसी एक का लेप करे।

पथ्यापथ्य .—

यव, गेहू, अरवा-साठी चावल, गाय वकरी या भेंड का दूध, घृत युक्त मूग-मोथी-अरहर तथा मसूर की दाल, मुनक्का, अजीर व अनार ये पथ्य है। उपर्युक्त दालो के अतिरिक्त सभी दाले, जलीय और आनूप मास, विरुद्ध पदार्थ, दही, क्षार, मैथुन, अग्नि, दिवास्वप्न, मली, ईख, कान्जी, शराव, खटाई, कडुआ उष्ण गुरु पदार्थ अपथ्य हैं। नमक महाअपथ्य है

३—केवल पाव भर गुरुच का कल्क ? सेर गुरुच का क्वाथ, एक सेर गाय का दूध और एक सेर तिल तैल पका कर मर्दन करने से वड़ा लाभ होता है यह स्वल्प गुडूची तैल है।

ऊरु स्तम्भ (आढ्य वात), आम वात (गठिया)

ऊरु अर्थात् रान या जाघ (पूरा पैर नही) का स्तम्भ (जकडन या रुकावट) ही ऊरुस्तम्भ है। मूर्ख चिकित्सक केवल वात का रोग समझ कर वातव्याधि की चिकित्सा करते है जिससे रोग बढता जाता है। इसलिये इसका निदान अत्यन्त सावधानी से कर चिकित्सा करनी चाहिये। यद्यपि यह रोग बहुत ही कम देखने को मिलता है। इसमे अधिक शीत, उष्ण, कठिन, शुष्क, गीला, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष पदार्थों का सेवन करने, भोजन के अत्यन्त पच जाने[1] अथवा बिलकुल न पचने पर भोजन करने, अत्यधिक परिश्रम, क्षोभ, दिवाशयन और जागरण से आम सहित कफ और चर्बी से युक्त वायु पित्त को पराभूत कर दोनो ऊरुओ मे प्राप्त होता है एव उनकी अस्थियो को भीतर से स्तिमित (चिपचिपे) कफ से भर कर ऊरुओ को स्तब्ध कर देता है।

इस कारण ऊरु स्तब्ध, शीतल और अचैतन्य हो जाते है। रोगी अनुभव करता है कि जैसे दूसरे का पैर उसकी ऊरुओ मे जोड दिया गया है। वे भारी और अत्यन्त पीडा से युक्त होते है। रोगी चिन्ता, अङ्गो मे टूटने की सी पीडा, स्तैमित्य[2] तन्द्रा, वमन, अरुचि और ज्वर से पीडित रहता है। पैर अवसन्नता (शून्यसा), कष्ट से उठना एव अचैतन्यता से युक्त रहते है।[3]

इस रोग के पूर्व रूप--निद्रा, स्तैमित्य, ज्वर, रोमाच, अरुचि, वमन और टागो एव ऊरुओ मे अवसन्नता है।

१--यहां अत्यन्त क्षुधा होने पर या कई दिनों तक अन्न जल त्यागने पर खूब भोजन करने से तात्पर्य है।
२--गीले चमड़े से बधे छुये के समान।
३--रोग बढने पर शीतलता का यहां तक कि बरफ रख देने तक का बोध ऊरुओं पर नही होता।

चिकित्सा :—

सावधान ! इसमे पचकर्म का कोई कर्म नही करना चाहिए। स्नेहन भी न करें, सिर के अतिरिक्त प्रारम्भ मे किसी प्रकार भी स्नेह के व्यवहार से बीमारी बढेगी। इसमे सर्व प्रथम कफ, चर्बी और आम को नष्ट करने का प्रयत्न करे। इसके लिये सभी रूक्ष क्रम करना चाहिये। निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का सेवन करना चाहिये :—

१ शुद्ध गुग्गुल ६ माशा गोमूत्र से।

२ त्रिफला और कुटकी का सम भाग चूर्ण ३ माशा मधु या उष्ण जल से।

३ पीपर का चूर्ण १ माशा म्योंटी की पत्ती के काढा से।

४ सोठ का चूर्ण ३ माशा गोमूत्र से।

५ वर्धमान पिप्पली मधु या गुड मे।

६ षड् धरण योग (चित्ता, इन्द्र जौ, पाढा, कुटकी, अतीस, हर्रा सब का सम भाग चूर्ण) २ माशा। गोमूत्र या उष्ण जल मे।

७ षडूषण[1] ३ माशा मधु से।

भल्लातकादि[2] क्वाथ या पिप्पल्यादि क्वाथ[3] किसी वैद्य की सलाह से पीयें। इसके पीने के पूर्व मुँह के भीतर भलीभाँति घी पोत लें। धार के विरुद्ध शीतल जल वाली नदी या स्थिर जल के तालाब मे तैराक रोगी को तैरायें। तप्त बालू पर रोगी को चलायें या दौडाये।

ऊरुओ एव जघाओ पर मधु, सरसों और बाबी पर की मिट्टी (वल्मीक मृत्तिका) का उवटन करे। उवटन के पश्चात् इनका मोटा लेप कर वस्त्र से बाध भी दें। वल्मीक मृत्तिका के अभाव मे सहिजन की छाल या काली मिर्च का प्रयोग करें।

उपर्युक्त उपायो से कफ, आम और मेदा क्षीण होगा। इनके क्षीण होने पर वात प्रकोप की सम्भावना रहती है। इसलिये सैन्धवाद्य तैल या अष्टकट्वर तैल की मालिश करें। इनके अभाव मे सरसो का तैल काम मे लावें। मालिश के बाद स्वेदन करे।

पथ्यापथ्य —

जौ, कोदो, सावा, पुराना अरवा चावल, मूग, मसूर, कुलथी, परवल, करैला, गूलर, भटा, आदी, लहसुन, बथुआ, सहिजन, मकोय और गरम जल पथ्य हैं। गुरु, शीतल, चिकना द्रव्य, विरुद्ध भोजन, दिवाशयन और पन्च कर्म ये अपथ्य हैं।

१—पीपर पीपरामूल, चव्य चिता सोंठ और मिर्च।
इन दोनों में भल्लातक शुद्ध ही डाले।

आम वात य गठिया :—

अपक्व रसधातु का नाम आम है, इससे दूषित वात को आम वात कहा जाता है। यतः यह सन्धियो (जोडो या गाठो) मे अधिक कष्ट देता है। इसलिये लोक में इसे गठिया भी कहा जाता है। यह जान लीजिये कि रक्त वाहिनियो मे पक्व रस से वने रक्त के लिये ही स्थान है। अपक्व रस या आम कफ के समान लसीला और गुरु है, जिसे आप आव पडने या पेचिस मे निकले मल के साथ देख सकते हैं। यह आम रक्तवाहिनियो मे प्रविष्ट होकर शरीर मे व्याप्त होने लगता है। यह गुरु और लसीला होने के कारण, स्थान-स्थान पर रुकता है। विशेष कर वहा जहा सन्धिया है। जहा-जहा रुकता है वहा-वहा रक्त के प्रवाह मे रुकावट पडने लगती है। पर पीछे से आया हुआ रक्त वलपूर्वक इस रुकावट को हटाता है जिससे रक्त वाहिनियो मे अत्यन्त कष्ट होता है। सधियो या जोड़ो मे यह आम क्रमश अधिक सचित हो जाता है। परिणामत सन्धियो मे असह्य पीडा और सूजन होती है। यह रोग वहुत देखने को मिलता है। इसलिए इसके विषय मे अधिक न कह कर इससे मिलने-जुलने वाले रोगो से अन्तर वताना अधिक उचित होगा जो इस प्रकार है :—

सन्धिगत वात	क्रोष्टुकशीर्ष	आम वात
१ प्राय स्वतन्त्र होता है।	प्राय स्वतन्त्र होता है।	प्राय सहज या उपद्रव[1] स्वरूप होता है।
प्राय. सभी सधियो मे होता है।	केवल जानु मे होता है।	सभी सन्धियो मे विशेषतः पैरो व हाथो की सधियो मे होता है।
३ केवल वायु प्रकोप से होता है।	वात रक्त का प्रकोप होता है।	आम और वात का प्रकोप होता है।
४ सन्धियाँ शिथिल या स्तब्ध होती हैं।	जानु स्तब्ध हो जाता है।	सन्धिया स्तब्ध रहती हैं।
५ अन्त तक सधियो मे वेदना के साथ प्रवृत्ति नही होती।	अन्ततः जानु मे प्रवृत्ति (सञ्चलन) वद हो जाती है।	अन्त तक वेदना के साथ सन्धियो मे ही प्रवृत्ति।
६ शोथ सामान्य रहता है।	शोथ सामान्य रहता है।	शोथ मे चिकनाई रहती है।
७ शोथ के ऊपर नीचे के अग	शोथ के ऊपर नीचे	शोथ के ऊपर नीचे के

१—प्राय गर्मी, सुजाक या ववासोर रोग के उपद्रव स्वरूप आम वात देखने को मिलता है।

	साधारण होते हैं।	विशेषतः नीचे का अग अवश्य पतला होता है।	अग साधारण होते है।
८	एकवार होकर अच्छा हो जाता है।	प्राय एकवार होकर अच्छा हो जाता है।	एकवार अच्छा हो कर भी कईवार होता है।
९	अच्छा न होने पर गति-हीनता होती है।	अच्छा न होने पर पगु हो जा जाता है।	बीच-बीच मे आराम होने पर रोगी साधारण काम काज करता रहता है।
१०	स्नेहन अनिवार्य है।	स्नेहन और रक्त मोक्षण अनिवार्य है।	स्नेहन का प्रयोग अन्त मे होता है सो भी रूक्षता के साथ, प्रारम्भ मे पीने के लिये केवल एरण्ड तैल दिया जाता है।
११	लघन या कर्षण चिकित्सानही होती।	लघन या कर्षण चिकित्सा नही होती।	लघन या कर्षण चिकित्सा अनिवार्य है।
१२	असाध्य हो सकता है।	असाध्य हो सकता है।	याप्य हो सकता है।
१३	अत्यन्त कम रोगी मिलते हैं।	कम रोगी मिलते है।	बहुत रोगी मिलते है।

वात रक्त	आम वात
१ वात और रक्त दूषित होते हैं।	१ वात आम के साथ दूषित होता है।
२ कुष्ठ के लक्षण मिलते हैं। फुन्सिया, खुजली और क्लेद भी होता है। अगुलियो मे सकोच भी होता है।	२ कुष्ठ के लक्षण नही मिलते। फुन्सी आदि भी नही होती। अगुलियो मे सकोच नही होता है।
३ पीडा समस्त शरीर मे सम्भावित नही	३ समस्त शरीर मे यत्र तत्र पीडा सम्भावित है।
४ प्राय बालको मे नही होता।	४ बालको मे भी होता है।
५ प्रायः रोग के उपद्रव स्वरूप न होकर स्वतन्त्र होता है	५ प्राय. सहज[1] या उपद्रव स्वरूप होता है

[1]—जन्म के साथ होने वाले रोग सहज होते है।

६ लघन अनिवार्य नही ।	६ लघन या कर्पण अनिवार्य है ।
७ रक्त मोक्षण अनिवार्य है ।	७ रक्त मोक्षण का प्रश्न ही नहीं उठता ।
८ रूक्ष प्रयोग अनिवार्य नही ।	८ रूक्ष प्रयोग होते है ।
९ गुग्गुल से साधारण लाभ ।	९ गुग्गुल से विशेष लाभ ।
१० स्वेदन आवश्यक नहीं ।	१० स्वेदन आवश्यक है ।

यह स्मरणीय है कि सन्धिगत वात, वात रक्त एव आमवात प्राय ग्रीवा एव उसके ऊपर की सन्धियो मे नही होते । क्रोष्टुक शीर्ष तो जानु मे ही होता है ।

आमवात की चिकित्सा —

आमवात मे सर्वप्रथम यथासम्भव गहरा रेचन कराना चाहिये इसके लिये सामान्यत एरण्ड तेल का प्रयोग एक छटाक तक उष्ण जल से प्रात या साय (समय अनुकूल हो तो किसी समय) पिलाया जाता है । याद रखिये ! विरेचन से ही इसमे अत्युत्तम लाभ होता है । इसलिये यदि समय और परिस्थिति विपरीत हो तो भी उनके लिये उचित प्रबन्ध कर विरेचन करा ही देना चाहिये । विरेचन के पूर्व यदि वमन करा सकें तो अत्युत्तम है पर हमने आज तक बिना वमन कराये ही रोगियो को अच्छा किया है । प्रारम्भिक विरेचन के अतिरिक्त भी रोग के अच्छा न होने तक बीच-बीच मे विरेचन कराते रहना चाहिये । विरेचनार्थ एरण्ड तैल का ही सामान्यत प्रयोग होता है । पर इन्द्रायण की जड का चूर्ण ३ माशा, स्वर्ण क्षीरी (भडभाड) की जड का चूर्ण ३ माशा, निशोथ का चूर्ण ६ माशा या अन्य रूक्ष विरेचनो का प्रयोग किया जा सकता है । यहाँ विरेचक द्रव्यो के अनुपान मे कोई क्वाथ या उष्ण जल का प्रयोग करे । दुग्ध आदि स्निग्ध द्रव्यो का नही ।

स्वेदन आमवात मे अत्यन्त लाभ करता है । सामान्यत वालू की गरम पोट्टली से प्रत्येक जोड़ पर स्वेदन किया जाता है । वालू मे लहसुन, सोठ और प्याज मे से सब या कोई एक मिला दिया जाय तो उत्तम है । भैपज्य रत्नावली मे उल्लिखित सकर स्वेदन भी लाभ करता है ।

एरण्ड की छाल से युक्त दशमूल क्वाथ से वाष्प स्वेदन सर्वाङ्ग (शिरे को छोड कर) मे कर सकें तो बहुत ही उत्तम है ।

यथाशक्ति अधिकतम लघन करायें । न सह सकने पर रूक्ष आहार, साँवा, कोदो, मटर, आर्द्रक, बथुआ, पुनर्नवा, लहसुन और प्याज का व्यवहार करे । जौ और लाल चावल का भी व्यवहार हो सकता है ।

जगली पशुओ[1] एव पक्षियो का मास रस भी दिया जा सकता है। कुल मिला कर रुक्ष कटु, तिक्त, अग्नि दीपन और सुपाच्य आहार का सेवन करना चाहिये। पीने एव स्नान आदि के लिये सर्वदा उष्ण जल का ही व्यवहार करें।

दूध, घी, फल आदि पौष्टिक एव स्निग्ध पदार्थ त्याग दें।

सामान्य औषधियाँ —

योग राज गुग्गुल १ माशा से २ माशा तक, महा योगराज गुग्गुल ४ र०, सिंहनाद गुग्गुल १ माशा से २ माशा, हिंगुलेश्वर रस १ या २ र० आमवातारि रस ४ रत्ती, विडगादि लौह २ रत्ती और रसोन पिण्ड ४ माशा ये सामान्य औषधियाँ है। इनमे किसी एक का व्यवहार ३ या ४ वार करे। उपर्युक्त किसी गुग्गुल का प्रयोग अवश्य करे। रस, लौह या पिण्ड मे इसे मिला देने से अधिक लाभ होता है। वैश्वानर चूर्ण (हिंग्वाद्यचूर्ण) और शतपुष्पाद्य चूर्ण भी २-३ माशा की मात्रा से वडा लाभदायी है।

साधारण अनुपान —

रास्ना सप्तक क्वाथ, निशोथ क्वाथ, एरण्ड मूल क्वाथ, रसोनादि क्वाथ,[2] उष्ण जल और शराव पीने वालो के लिये शराव। यह याद रखिये! आमवात असाध्य नही साध्य या याप्य होता है।
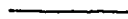
१—याद रखिये यहां गैंडा, भैंसा, सूअर आदि जगली पशु नहीं हैं। हरिन, खरगोश, शेर, कबूतर और तीतर जगली जानवर हैं। जो पशु जितना ही गति शील है उसका मांस उतना ही हितकर है।

२—भैषज्य रत्नावली का रसोनादि क्वाथ अर्थात् लहसुन, सोंठ म्योड़ी की पत्ती का क्वाथ।

सत्ताइसवाँ अध्याय

शूल, उदावर्त्त और आनाह,

शूल का तात्पर्य काटा होता है। शरीर मे कही भी काँटा चुभने के समान पीडा होने को शूल कहते है । यह प्राय प्रत्येक रोग मे और प्रत्येक स्थान पर हो सकता है। स्थान, कारण तथा परिस्थिति-भेद से इसके अनेक नाम यथा शिर' शूल, हृत् शूल, कटि शूल, पार्श्व शूल, अन्नद्रव शूल, परिणाम शूल, पित्त शूल इत्यादि हो जाते है । इस अध्याय मे वर्णित शूल के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर यह रोग का एक उपद्रव या लक्षण होता है। यहाँ यह एक स्वतन्त्र व्याधि के रूप मे है । यह स्मरणीय है कि शूल विना वायु के प्रकोप के कभी भी कही भी नही हो सकता। इसलिये जिस कारण से वायु प्रकोप हुआ है उस कारण या रोग को भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। साथ ही वायु को अनुलोमन अर्थात् अपनी स्वाभाविक गति मे लाने का प्रयत्न भी अवश्य करना होगा। इसके लिये स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन निरूहण वस्ति, अनुवासन वस्ति और नस्य का प्रयोग यथास्थान होता है। सामान्यत' नस्य का प्रयोग शिरोगत वायु यथा मूर्च्छा, प्रलाप, उन्माद, अपस्मार, भ्रम और शिर शूल इत्यादि मे होता है। प्रसव कराने एव प्रसव के वाद अपरा (खेडी) पातन के लिये भी झटका देने के उद्देश्य से कभी-कभी नस्य का प्रयोग होता है। शेप सभी शूलो मे चाहे वे कही भी हो नस्य के अतिरिक्त सभी कर्मों का प्रयोग किसी न किसी रूप मे करना पडता है अथवा वमन या अतिसार स्वत होकर शूल शान्त होता है। हृदय, चक्षु और अण्ड कोष पर स्वेदन नही किया जाता है। अनिवार्य आवश्यकता पडने पर इन स्थानो पर मृदु स्वेदन किया जाता है। इस अध्याय मे वर्णित शूलो के अतिरिक्त अन्यत्र सूक्ष्म वायु प्रकोप को दूर करने के लिये भक्षणार्थ सामान्यत रस घटित औपधियो, गुग्गलुवो और शृ ग आदि का प्रयोग होता है। अनुपानो की वात हम यहा नही करेंगे।

शास्त्रो मे, प्रस्तुत पुस्तक मे एव लोगो के कथनानुसार शूल नाम से साधारणत उदर अर्थात् आमाशय, ग्रहणी, छोटी आत, वडी आत, यकृत और प्लीहा मे होने वाले शूलो का वर्णन भासित होता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सब जगह इनके अतिरिक्त हृदय, वस्ति, पार्श्व, पीठ एव कमर मे होने वाले शूल का भी वर्णन है। इसलिये शूल नाम सुनने मात्र से केवल उदर शूल की ओर न दौड कर यह निर्णय कर लेना चाहिये कि शूल वस्तुत किस स्थान पर है। क्योंकि स्थान भेद से चिकित्सा मे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पडेगा।

आयुर्वेद के सभी ग्रन्थो (प्रस्तुत ग्रन्थ में भी) मे प्राय शूल नाम से वर्णित अध्याय मे निम्नलिखित दस (आठ-दो) प्रकार के शूलो का वर्णन है।

१–वातिक शूल —

यही शूल अधिकता मे होता है जो वात प्रकोपक कारणो विशेषत रूक्ष-शीतल आहार, अजीर्ण, मलमूत्रादि के वेगो को रोकने और शीतादि से होता है। इसमे शूल प्रवल होता है जो वारम्वार हो होकर शान्त हो जाया करता है। यदि स्थायी रूप से अच्छा नही हुआ तो सायकाल भोजन के पच जाने पर, वर्षा एव शीतकाल मे अधिक प्रकोप होता है। वायु प्रतिलोम होने के कारण यह शूल होता है। हृदय तथा आमाशय मे भी इसके कारण शूल होने लगता है।

इसकी चिकित्सा मे अवसर हो तो स्नेहन और स्वेदन का प्रयोग करें। कारवोलिक साबुन ३-४ तोला या यवक्षार ६ माशा ये युक्त उष्ण जल मे एरण्ड तैल २-३ तोला डाल कर जिस क्षण निरूहण वस्ति देगें, उसी क्षण उदर, आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रान्त्र, और वृहदन्त्र, का शूल नष्ट होगा। इसमे स्नेहन और स्वेदन दोनो हो जाता है यह सम्भव न हो तो गुदा मे ही साबुन अथवा अन्यान्य फलवर्ती का प्रयोग करे। पेट पर गरम पानी युक्त वोतल से सेक भी कर सकते हैं। हीग का लेप या पूर्वोक्त सुखरेचक लेप भी काम करता है। मिट्टी को जल मे घोल कर पाक से गाढा कर उष्ण लेप करने से भी वडा लाभ होता है। लेप से पूर्व पेटपर पतला कपडा रख दें तो उत्तम है।

यह याद रखिये कि कोई औषधि खाने को दें पर उसमे अथवा उसके साथ काला नमक और घी मे भुनी हीग का योग अवश्य रहे। केवल एक माशा काला नमक और ४ रत्ती हीग उष्ण जल से ३-४ वार खा लेने से एव गुदा मे हीग (अभाव मे साबुन) की वत्ती लगाने से भी शूल-शान्ति होती है। खानेवाला सोडा ४ रत्ती की मात्रा से किसी आसव, अरिष्ट या सिरका में डाल कर पिलाने से उद्गार शुद्धि से भी शूल-शान्ति होती है।

वातव्याधि मे लिखित जीरकादि वटी ४ रत्ती, पहले के प्रकरणो मे लिखित हिंग्वादि वटी ४ रत्ती, हिंग्वष्टक चूर्ण २ माशा, हिंग्वादि चूर्ण २ माशा, लवण भास्कर चूर्ण २ माशा, सौवर्चलादि गुटिका ४ रत्ती मे से किसी का प्रयोग ४-५ वार उष्ण जल या दशमूल क्वाथ या जौ के क्वाथ से करे। मद्यपायी शराब से भी पी सकते हैं। भैषज्य रत्नावली के शूल एव हृद्रोगाधिकार मे लिखित किमी हिंग्वादि गुटिका, हिंग्वादि वटिका या हिंग्वादि चूर्ण का व्यवहार उपर्युक्त अनुपानो से हो सकता है।

इसमे जल उष्ण ही पिलाना चाहिये। आहार भी स्निग्ध, उष्ण तथा लघु रहे।

२ पैत्तिक शूल —

यह पित्त प्रकोपक कारणो विशेषत· क्षार तीक्ष्ण उष्ण, अम्ल आहार और शराब से होता है। इसमें प्यास और दाह अवश्य होता है। पसीना भी हो सकता है। यदि स्थायी रोग हो गया तो भोजन पचते समय, दोपहर, आधी रात और शरद ऋतु मे विशेप प्रकोप होता है।

इसकी चिकित्सा और स्नान के लिये शीतल जल का ही प्रयोग करे। शतावर का रस, आवले का चूर्ण, यवक्वाथ और त्रिफला क्वाथ मे से किसी एक का प्रयोग मधु मिला कर ४-५ वार करे। विरेचन के लिये मुनक्का या अन्जीर या दोनो का क्वाथ, और निशोथ चूर्ण मे मे किसी का प्रयोग करें। आगे वर्णित अम्ल पित्त की औषधिया विशेपत मूत शेखर भी अच्छा लाभ करता है।

३ श्लैष्मिक शूल :—

यह शूल प्राय आमाशय और छाती मे कफ-प्रकोपक कारणो से होता है। इसमे जी मिचलाना एव अरुचि अवश्य होगी। यदि स्थायी हुआ तो भोजन करते ही, सूर्योदय, शिशिर और वसन्त ऋतु मे विशेप प्रकोप होता है। इसकी चिकित्सा मे क्षार, त्रिकुट, तथा हीग का प्रयोग अवश्य करें। वमन और लघन भी कराये। अनुपानो मे मधु, सिरका और आसव-अरिष्टो का प्रयोग करायें। छाती मे शूल हो तो शृंग भस्म २-३ रत्ती और पोहकरमूल का चूर्ण ४ रत्ती या एक माशा अवश्य खिलाये। छाती पर श्लेष्मज्वरोक्त लेप या पुराना घृत मालिश करें।

४,५ ६,७ द्वन्द्वज और सान्निपातिक शूल —

उपर्युक्त तीन दोषो से होनेवाले शूलो के अतिरिक्त द्वन्द्वज, (वात-पित्त, वात-कफ, पित्त-कफ) और सान्निपातिक शूल भी होते हैं। जिनमे उपर्युक्त तीनो दोपज शूल के दोपानुसार मिश्रित लक्षण मिलते हैं। चिकित्सा भी मिश्रित होती है।

८ आमशूल —

इस शूल मे विशिष्ट लक्षण है—आंतो में गुड़गुड़ाहट और आनाह, (आंतो की गति का रुक जाना)। शेष लक्षण कफज शूल के समान होता है। असह्यशूल इसमे होता है, जिसका कारण है आम और वायु। इसमे तुरन्त वमन करा सके तो उत्तम है। वमन कराने के बाद अथवा वमन बिना कराये ही निरूहण बस्ति दे दे। निरूहण के द्रव्य मे क्षार और एरण्ड का तैल कुछ अधिक रहना चाहिये। यदि विरेचन का अवसर हो तो एरण्ड तैल उष्ण जल से पिलायें। साथ मे चतुः सम चूर्ण (अजवाइन, सेंधा नमक, हर्रा, सोंठ का समभाग चूर्ण) २ माशा की मात्रा से निम्बु रस युक्त उष्ण जल या केवल उष्ण जल से या किसी सिरका या कांजी मे प्रातः दोपहर सायं और रात प्रयोग करे।

ग्रन्थो मे उपर्युक्त आठ शूलो के अतिरिक्त निम्नलिखित दो शूलो का वर्णन और है —

१ परिणाम शूल या पक्ति शूल :—

कुपित वायु से भोजन के पचते समय या पच जाने पर तीव्र शूल होता है। याद रखें! वात-पित्त-कफज शूल भोजन से सबद्ध दोष प्रकोप काल के अतिरिक्त अपने अपने दोष के अन्य प्रकोप कालो मे भी बढते हैं। इस विशिष्टता के साथ ही दोष के प्रकोप काल मे शूल वृद्धि के अतिरिक्त अन्य जो लक्षण मिलें उनमे कुपित दोष का निर्णय कर तदनुसार चिकित्सा मे कुछ परिवर्तन करना चाहिये।

परिणाम शूल की चिकित्सा यह है :—

क—शम्बूक भस्म (घोघा की खोल की भस्म) ४ रत्ती से १ माशा की मात्रा उष्ण जल से देने से तत्क्षण शूल शान्ति होती है। साधारण जन साधारण घोघा की खोल की राख बना लें।

ख—मलाई युक्त दही के साथ जौ और मटर का सत्तू भी उत्तम लाभ करता है।

ग—सात दिनो तक जौ का सत्तू मटर के यूष से खाने से भी परिणाम शूल नष्ट होता है।

घ—त्रिफला चूर्ण २-३ माशा मधु-घी से खाने से भी लाभ होता है।

२ अन्न द्रव शूल :—

यह शूल भोजन पचने के पूर्व, पचते समय और पच जाने पर किसी भी समय कष्ट देता रहता है। पथ्य हो या अपथ्य। किसी भी तरह शान्त नही होता। वमन होते ही

पित्त के निकल जाने पर शूल शान्त होता है। इसमे वमन अवश्य कराये। सूत शेखर रस का प्रयोग अनार स्वरस या मधु से करायें। खाने के लिये भी मीठे फलो का रस और वकरी या गाय का दूध दे।

सप्तामृत लौह २ रत्ती उष्ण गोदुग्ध या धात्री लौह ४ रत्ती से १ माशा तक उष्ण गोदुग्ध से वडा लाभदायी है। यदि धारोष्ण गो दूध दे तो उत्तम है। सभी शूलो की सामान्य औषधियाँ निम्नलिखित है :—

विशिष्ट शूलो मे विशिष्ट औषधियाँ वतलायी गयी है। उनका यथासम्भव प्रयोग करे तो उत्तम है अन्यथा निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का प्रयोग करें।

शूल गज केशरी १।२ रत्ती काला नमक तथा भूनी हीग चूर्ण मिला कर उष्ण जल से।

शूल वज्रिणी वटी ३ रत्ती शीत जल या वकरी के दूध से।

शूल हरण योग २ रत्ती उष्ण गोदुग्ध से।

शख भस्म, शख वटी, शख द्राव आदि भी यथोचित मात्रा और अनुपान से लाभ करते है।

पथ्य :—

शूल शान्त होने पर लघु सुपाच्य भोजन यथा मूग की खिचडी, पुराना चावल का भात, माड, परवल, सूरन, सहिजन, जामुन, मुनक्का, अनार, सेव, सन्तरा, मोसम्मी और गरम दूध आदि दे। वारम्वार होने वाले शूलो मे मधुर पर यथा सम्भव लघु आहार खीर, फल रस, दूध आदि पथ्य है।

अपथ्य: —

वारम्वार होने वाले शूलो मे नमक अपथ्य है। सभी शूलो में कटु, तीक्ष्ण, गुरु पदार्थ अपथ्य हैं। नीवू का रस, खट्टा अनार एव आवला के अतिरिक्त शेष अम्ल पदार्थ अहितकर है।

विशेष –

१ अजीर्णजन्य शूल मे केवल वेदना शामक औषधि न दें, कारण को दूर करे।

२ दौरा वाले शूलो में भी कारणो और मूल रोग को दूर करे। वारम्वार वेदना शामक औषधि के वल पर ही वेदना शान्त कर रोगी को वहका कर उसका जीवन नष्ट न करे।

३ हृत् शूल का वर्णन हृद्रोग और वस्ति शूल का मूत्रकृच्छ्र मे होगा। यदि शूल का वातव्याधि मे त्रिकगत वात के नाम मे देंगे।

उदावर्त

उदावर्त्त शब्द उद् अर्थात् उद्भूत एवं आवर्त्त अर्थात् घूमना शब्द से बना है। इसके अनुसार उत्पन्न वेगो को रोकने मे घिरी हुई वायु का इधर उधर घूमना ही उदावर्त्त का अर्थ है। वेग दो प्रकार के होते है। १ अधारणीय—इसके अन्तर्गत अधोवायु, मल-मूत्र, छींक, प्यास, क्षुधा, निद्रा, कास, थकावट से उत्पन्न श्वास (हफनी), जभाई, अश्रु, वमन और वीर्य के वेग कहे गये है। इन्हे रोकना नहीं चाहिये। २ धारणीय—इसके अन्तर्गत मानसिक-वाचिक-शारीरिक दुस्साहस, लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अत्यन्त रुचि और परद्रोह चिन्तन ये वेग कहे गये है। इन्हे अपने और समाज के हित के लिये रोकना चाहिये। अधारणीय वेगों को रोकने से विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ होती हैं। यहाँ हम केवल अधोवायु, मल और मूत्र के उदावर्त्त का वर्णन करेंगे।

वातज उदावर्त्त :—

अधोवायु के वेग को रोकने से अधोवायु—मूत्र और मल की रुकावट, पेट फूलना, सुस्ती और पेट मे पीडा होती है। उदर मे अन्यान्य वायु के रोग भी होते है।

वातज उदावर्त्त मे एरण्ड का तैल पेट पर मर्दन, एरण्ड तैल का पान, पेट पर स्वेदन, निरूहण और अनुवासन वस्ति तथा गुदा मे फलवर्त्तियो (हींग, साबुन, ग्लीसरीन, आदि की हींग विशेष हितकारी) का प्रयोग होता है। औषधियो मे जीरकादि वटी, हिग्वादि वटी, हिग्वादि चूर्ण, काला नमक और भुनी हींग का मिश्रित चूर्ण इत्यादि मे से किसी का प्रयोग उष्ण जल से करे। पुरीषज उदावर्त्त मे मल के वेग को रोकने से पेट मे गुडगुडाहट, शूल, काटने-सी पीडा, मल की रुकावट, उद्गार बाहुल्य होता है। किसी किसी रोगी को मुख से मल भी निकलता है। किसी भी रोग मे मुँह से मल निकलना असाध्य माना गया है।

इसकी चिकित्सा मे वातज उदावर्त्त की समस्त चिकित्सा एवं औषधियाँ दी जाती हैं। उनके अतिरिक्त विरेचन और अवगाहन (सहने योग्य उष्ण जल व उष्ण तैल मे इस प्रकार बैठना जिससे पूरा पेट डूबा रहे) का भी योग करना चाहिये। विरेचनार्थ नाराच रस २ रत्ती, इच्छा भेदी रस १ रत्ती, अश्वकचुकी रस १ रत्ती, पट्सकार चूर्ण २ माशा, निशोथ चूर्ण ३ माशा, कुटकी चूर्ण ३ माशा मे मे किसी एक का प्रयोग निम्बू रस युक्त चीनी के शर्बत से या किसी चूर्ण का प्रयोग उष्ण जल या मुनक्का क्वाथ या अन्जीर क्वाथ से करना चाहिये। उष्ण जल या उष्ण दुग्ध मे एरण्ड तैल ३-४ तोला का प्रयोग भी कर सकते हैं।

मूत्रज उदावर्त —

मूत्र का वेग रोकने से मूत्राशय एव मूत्र मार्ग मे शूल, मूत्र निकलने मे कष्ट, शिर मे पीडा, शरीर का आगे की ओर झुकाव एव वक्षणो (पेडू और रान की सन्धियो) मे रुकावट होती है इसकी चिकित्सा आगे वर्णित मूत्र कृच्छ्र एव अश्मरी के समान करनी चाहिये।

तीनों उदावर्त्तो में पथ्य मे उष्ण जल, परवल, लहसुन, वैगन, पपीता, पका कोहडा, टमाटर, वथुआ, मकोय, मूली, सूरन, पुनर्नवा, मुनक्का, फलो का रस, ईख, नारियल का पानी, शराव, काला नमक, भुनी हीग, घी के साथ अरवा चावल का भात, गेहू की दलिया आदि मल मूत्र और अधोवायु निकालने वाले आहार पथ्य है। यवक्षार २ माशा की मात्रा से प्रात॰ साय उष्ण घी के साथ एक सप्ताह तक देने से लाभ होता है। याद रक्खें ! मल मूत्र और अधोवायु सम्यग् रूप से निकलने पर ही पथ्य दें।

आनाह

आनाह आ और नाह दो शब्दो से वना है। जिसका तात्पर्य है अतडियो की गति का चारो ओर से वन्धन या रुकावट। इसमे क्रमश: सचित आम या मल कुपित वायु से वँध जाता है। वह यथोचित मार्ग से निकलता नही।

परिणामत आमज आनाह में प्यास, जुकाम, सिर मे जलन, आमाशय मे शूल और भारीपन, हृदय की जकडन एव उद्गार की रुकावट होती है। मल से उत्पन्न आनाह मे कमर और पीठ मे रुकावट, मूत्र, वायु और मल का न निकलना, शूल, मूर्च्छा, श्वास और पूर्वोक्त अलसक, आध्मान आदि लक्षण होते है। इसमे मल की वमन भी किसी-किसी रोगी मे होती है।

इसमे उदावर्त्त की ही चिकित्सा, औषधियो एव पथ्यो का प्रयोग होता है।

—

अट्ठाइसवां अध्याय

गुल्म या गोला

कोष्ठ मे वातादि दोप ग्रन्थि के रूप मे गुल्म करते है । जिसका उदर का दोनो पार्श्व (गर्भाशय भी) हृदय प्रदेश, नाभि और वस्ति पाच स्थान होता है। गुल्म ग्रन्थि या गुच्छा को कहते है । आजकल गर्भाशयवाले को छोडकर शेप को एब्डामिनल ट्यूमर[1] कहते है । भयानक और अधिक कष्टदायी गुल्म को लोग कैन्सर[2] भी समझते है । गुल्म घटने बढ़नेवाला, चल या अचल, गोल (अन्य आकार भी) होता है । यह सबको वातज, पित्तज या रक्तज, धातुज, कफज, द्वन्द्वज, (तीन), सन्निपातज-भेद से होता है । स्त्रियो को गर्भाशय मे आर्त्तव जन्य एक विशेप गुल्म होता है । जिसे रक्त गुल्म कहते हैं ।

सामान्य लक्षण :--

सभी गुल्मो मे अरुचि, कष्ट मे मल-मूत्र-वायु का निकलना, अन्त्र कूजन, आनाह और ऊर्ध्ववात (उद्गार बाहुल्य) सामान्यत होता है अन्तर्विद्रधि (पेट के भीतर फोड़ा) मे इसके लक्षण मिलते हैं । इसलिये निम्नलिखित प्रकार से तुलना कर लें ।

गुल्म	अन्तर्विद्रधि
१ गुल्म का निबन्धक (मूल) नही होता	१ इसका मूल रक्त मास आदि मे रहता है

१ इन शब्दो के आधार पर ही निदान करना, ठीक नहीं । इनकी चिकित्सा तो आयुर्वेद के ही आधार पर होनी चाहिए । आज की भाषा में यदि यह रोग सामने आये तो विचार कीजिये कि गुल्म है या नहीं ।

२—इसमे दोष (रक्तज और आर्त्तवज को छोडकर) की ही ग्रन्थि वनती है।	२—इसका माँस और रक्त आश्रय होता है।
३—इसका पाक नही होता। कुछ का होता भी हो तो धीरे धीरे।	३—प्राय: सबका पाक होता है। प्रारम्भ होने पर पाक मे शीघ्रता होती है।
४—घट वढ सकता है।	४—क्रमश प्रकोप वढता जाता है।
५—वारम्वार हो सकता है।	५—वारम्वार नही होता है।
६—नष्ट न होने पर शीघ्र मारक नही।	६—नष्ट न होने पर वडा कष्टदायी या मारक होता जाता है।
७—काय चिकित्सा के अन्तर्गत है।	७—शल्य चिकित्सा के अन्तर्गत है।
८—विम्लापन (विलीन करना) की चेष्टा नही होती। लेखन क्रम कर निकाला जाता है।	८—विम्लापन करने की चेष्टा होती है लेखन क्रम भी होता है।

चिकित्सा :—

सभी गुल्मो की चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिये।

१—किस दोष से गुल्म का अधिक सम्वन्ध है, इसका निर्णय पहले करे। वातिक गुल्म की पीडा घूम फिर कर अनेको स्थान पर अर्थात् कभी नाभि के नीचे, कभी ऊपर और कभी किसी ओर रहती है। भोजन के पच जाने पर प्रकोप अधिक और भोजन करते ही शान्ति होती है। पैत्तिक गुल्म मे फोडे के समान भयानक और असह्य पीडा होती है, भोजन पचते समय विशेष प्रकोप होता है। ज्वर, दाह, प्यास आदि भी होती है। श्लैष्मिक गुल्म अत्यन्त कठोर, उठा हुआ और मन्द पीडा वाला होता है। गर्भाशय के गुल्म का पृथक वर्णन होगा।

२—सभी गुल्मो मे वायु को अनुलोम करने की विशेष चेष्टा होनी चाहिये, इसके लिये दोषानुसार स्नेहन और स्वेदन तथा विरेचन भी वरावर करना होगा। जैसे वातज गुल्म मे एरण्ड तेल, पैत्तिक गुल्म मे निशोथ, मुनक्का, अजीर, अमलतास आदि से और कफज गुल्म मे तीक्ष्ण और क्षार यथा यवक्षार युक्त वात नाशक विरेचनो जैसे एरण्ड तेल आदि से विरेचन करना होगा।

३—पित्त गुल्म को छोडकर सबमे क्षार का प्रयोग हो सकता है, पर श्लैष्मिक मे कुछ अधिक और वात मे कुछ कम होना चाहिये। याद रखिये ! यदि गुल्म के साथ हृदय में कष्ट हो तो क्षार का सर्वथा न प्रयोग करे अथवा न्यूनतम प्रयोग करे। इस सबध मे आगे वर्णित हृद्रोग प्रकरण देख ले।

४—वात गुल्म मे एक तोला शराव मिलाकर दो तोला एरण्ड तैल अथवा छटाक उष्ण दुग्ध मे दो तोला एरण्ड तैल प्रतिमात्रा के हिसाव मे दो वार पिलाने से वडा लाभ होता है।

सोलह तोला लहसुन को कूच कर चौसठ तोला दूध व चौसठ तोला पानी मे पका कर केवल दूध वाकी वचावें। इस दूध को छान कर एक छटाक के हिसाव से वारम्वार पीने से वडा लाभ होता है।

पैतिक गुल्म मे —

निशोथ का चूर्ण ३ माशा त्रिफला क्वाथ से या हर्रा का चूर्ण गुड मिलाकर अथवा मुनक्का का काढा गुड मिलाकर वडा लाभ करता है। आवले का क्वाथ भी शक्कर मिलाकर दिया जा सकता है।

कफज गुल्म मे वात गुल्म के प्रयोगो को ही करे। यदि उनमे २४ घण्टे के लिये यवक्षार २ माशा या सोठ ४ माशा मिला दे तो उत्तम है।

सामान्य औषधियां —

सभी गुल्मो मे निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा मिश्रित का व्यवहार करे।

कोई हिंग्वादि गुटिका[1] ४ रत्ती अजवाईन के क्वाथ या उष्ण जल से। पैत्तिक मे न दें।

कोई हिंग्वादि चूर्ण १ माशा, अजवाईन के क्वाथ या उष्ण जल से। पैत्तिक मे न दें।

काकायन गुटिका ४ रत्ती, उष्ण जल या उष्ण दूध या मद्य या कान्जी से।

गुल्म कालानल रस २ रत्ती, हर्रा क्वाथ से।

दन्ती हरीतकी[2] उष्ण जल या उष्ण दुग्ध से।

गुल्म कुठार रस[3] १ रत्ती, यवक्षार २ रत्ती सज्जी क्षार २ रत्ती आदी का रस एक भर मिला कर मधु के साथ।

प्रवाल पञ्चामृत २ रत्ती मधु या मुनक्का क्वाथ से (पैतिक गुल्म एवं कास श्वास यक्ष्मा आदि मे अत्यन्त हितकर) न० पै० भूनी हींग २ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती और काला नमक १ माशा उष्ण जल से वातज और कफज गुल्म मे विशेष हितकर है।

१—एक हिंग्वादि गुटिका और हिंग्वादि चूर्ण ग्रन्थ के अन्त में लिखा है।

२—यह हर्रा युक्त अवलेह है, मात्रा १ हर्रा और एक तोला अवलेह है।

३—पैतिक में केवल मधु या मुनक्का क्वाथ अथवा निशोथ क्वाथ से द।

भूनी हीग २ रत्ती, सज्जी खार ४ रत्ती उष्ण जल से। वातज और कफज गुल्म मे न० पै० वज्रक्षार १ माशा वात कफ गुल्म मे उष्ण जल के साथ।

यदि सम्भव हो तो वातकफ गुल्म से हवुपाद्य घृत, त्र्यूपणाद्य घृत, क्षीर षट्पलक घृत और रसोनाद्य घृत मे से किसी एक को ६ माशा की मात्रा से उष्ण जल से ले। या केवल शुद्ध घृत एक तोला यवक्षार चार रत्ती मिला कर ले। पैत्तिक गुल्म मे द्राक्षाद्य घृत विशेष हितकर है। भोजनोत्तर कुमार्यासव डेढ तोला की मात्रा से सम जल मिला कर देने से लाभ होता है।

रक्त गुल्म या गर्भाशय का गुल्म

पुन याद रखिये! धातु रक्त से भी गुल्म उदर गुहा मे कही भी हो सकता है। जिसके लक्षण पैत्तिक गुल्म के समान होते है, चिकित्सा भी पैत्तिक गुल्म के समान होती हैं, पर यह गुल्म प्राय नही दिखायी पडता। इसलिये इस पर विशेप प्रकाश डालना उचित नही। गर्भाशय का गुल्म दूपित रक्त से होता है। रक्त गुल्म के नाम से यही प्रसिद्ध है।

नवीन[1] प्रसव या गर्भपात होने पर या मासिक धर्म के समय अनुचित आहार विहार करने से कुपित वायु रक्त को रोक कर गर्भाशय मे गुल्म कर देता है। यह धीरे धीरे सचित होकर वहुत वडा हो जाता है। चिकित्सा करने से कट कट कर निकलता है। आपरेशन करने से वर्रे के छत्ते या विविध आकार का निकलता है। इसके लक्षण गर्भ के समान ही होते हैं। यहाँ तक कि स्तनो मे दूध भी आ जाता है। वहाँ कालिमा भी हो जाती है। पेडू मे गर्भ के समान उभार भी होता है। इस लिये निम्नलिखित प्रकार से अन्तर करे।

गर्भ	रक्त गुल्म
१—गुल्म और उदरके अन्य स्थान पर गेरू के घोल मे भिगो कर निचोड कर रखा हुआ दो कपडो का टुकडा समान समय मे सूखता है।	१—रक्त गुल्म पर का कपडा देर से सूखता है।
२—६-७ मास मे गर्भ के अग स्पष्ट होते है।	२—इसमे अग प्रत्यग नही मालूम होंगे केवल पिण्ड प्रतीत होगा।

१—प्रसव के वाद डेढ मास तक के काल को नवीन प्रसव कहते हैं।

३–६-७ मास मे गर्भ इधर उधर हटाने से अपने स्थान से नही हटता ।	३–दाहिने बायें हटाने मे गुल्म हटता है ।
४–फीटल[1] हार्ट साउण्डस्कोप मे ४ मास के गर्भ से हृदय का शब्द गर्भिणी के पेडू पर से सुनाई पडता है ।	४–कोई शब्द सुनाई नही पडता ।

इतना अन्तर के वाद भी निर्णय न होने पर १० मास के वाद चिकित्सा करे । तव तक कोई विशेष हानि न होगी, गर्भ होगा तो प्रसव हो जायगा । गुल्म होगा तो निकलने मे और सरलता होगी ।

रक्त गुल्म की चिकित्सा

रक्त गुल्म मे सर्वोपरि प्रयत्न गर्भाशय से रक्त को निकालने का करना चाहिये । इसके लिये मासिक धर्म कराने वाले समस्त उपचार किये जाते हैं । प्राय उष्ण द्रव्यो एवं क्षारो का विशेष प्रयोग होता है । योनि मार्ग मे मासिक धर्म खोलने वाली फलवर्त्ति भी धारण करायी जाती है। निम्नलिखित औषधियो में से किसी एक का अथवा अनेक का सयुक्त व्यवहार करे :—

सोठ, मिर्च, पीपर, यवक्षार समभाग चूर्ण २ माशा मद्य से,

सोठ, मिर्च, पीपर, भुनी हीग समभाग चूर्ण २ माशा काली तिलि क्वाथ

रज प्रवर्त्तनी वटी ४ रत्ती वास के पत्ते के क्वाथ से

काली मिर्च का चूर्ण २ माशा आवले के रस से ।

सर्वेश्वर रस १ र० त्रिफला क्वाथ से ।

पन्चानन रस १ २ रत्ती से १ रत्ती तक आवले के रस या इमली के रस से अत्युग्र है ।

गुल्मवज्रिणी वटिका १।२ रत्ती से १ रत्ती तक आवले के रस या इमली के रस ।

साधारण अनुपानो मे वास की पत्तियो का क्वाथ, तिल्ली का क्वाथ पुनर्नवा स्वरस आदि काम करते हैं ।

इनके अतिरिक्त साधारण गुल्म मे कहे हुये सभी क्षारो का प्रयोग हो सकता है । भोजनोत्तर कुमार्यासव या वृश्चीराद्यरिष्ट डेढ तोला की मात्रा से सम जल मिलाकर प्रयोग करे ।

१—यह यन्त्र अतिसाधारण और बहुत कम मूल्य का यन्त्र है चिकित्सकीय औजारों की दूकानों पर से आसानी से खरीद कर अत्यन्त आसानी से प्रयुक्त होता है ।

योनी मे तीक्ष्ण और क्षारीय पदार्थों की वर्तिया भी धारण करायी जा सकती है। जिनमे कुछ ये हैं :—

१— इन्द्रायण की जड का कल्क कपडे मे लपेट कर उसकी मोटी वत्ती।

२— पलास की राख व भूनी हुई काली तिल्ली को गुड की चासनी मे मिलाकर वनायी हुई वत्ती।

३— रज प्रवर्त्तनी वटी।

यह याद रक्खे कि रक्त गुल्म मे धैर्य से काम लेना चाहिये २-३ मास तक भी आरोग्य लाभ मे लग सकते है। कभी कभी ऐसा होता है कि रक्त अत्यधिक निकलने लगता है। तव रुग्णा अत्यन्त दुर्वल हो जाती है। ऐसी अवस्था मे आगे वर्णित रक्त प्रदर की चिकित्सा करनी चाहिये।

सभी गुल्मो पर पथ्य :—

अरवा या साठी चावल, गेहू, जौ, मूग, कुलथी, वैंगन, वथुआ, पपीता, अगस्त्य, सहिजन, मूरन, फालसा, मौसम्मी, अगुर, गाय वकरी का दूध, लहसुन, आदी, शराव, गुड, सेंधा नमक, ये सभी गुल्मो मे पथ्य हैं। अनार खजूर रक्त गुल्म को छोड कर शेष मे दे सकते हैं।

अपथ्य :—

वात कारक पदार्थ यथा मटर, चना, विरूद्ध भोजन, आलू, अरुई, वेगावरोध, रात्रिजागरण, परिश्रम, मैथुन आदि अपथ्य हैं।

——

उन्तीसवां अध्याय

हृद्रोग

हृदय के सभी रोगो को हृद्रोग के नाम से कहा गया है। यह अत्यन्त उष्ण गुरु कषाय तिक्त आहारो, परिश्रम, चोट, अध्यशन (अजीर्ण पर भोजन), चिन्तन एव मल-मूत्र-अधोवायु-वमन-हिक्का-श्वास आदि के वेगो को रोकने से स्वतन्त्र रूप मे होता है। इसके अतिरिक्त अधिकाश रोगो के परिणाम स्वरूप भी होता है। शास्त्रो मे इसके मुख्यत वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज एव क्रिमिज ये पाच भेद कहे गये हैं। जिनके लक्षण एव चिकित्सा इस प्रकार हैं —

वातिक हृद्रोग :—

इसका मुख्य लक्षण हृदय मे विविध प्रकार की पीडा है। हृदय की गति या धडकन भी बढ जाती है। प्रकोप लगातार नही रहता। रुक रुक कर होता है। प्राय दो बजे दिन, दो बजे रात और भोजन के पच जाने पर अधिक होता है। आमाशय या हृदय गत वात अथवा वायु के प्रतिलोम होने से यह होता है।

इसकी चिकित्सा मे स्नेहन कर स्नेह[1] और सेंधा नमक युक्त दशमूल क्वाथ पिला कर वमन करा देना अतीव लाभदायी होता है। वमन के सम्बन्ध मे पचकर्मोक्त वमन प्रकरण अवश्य पढ ले। वायु का प्रतिलोम करने के लिये गुदा मे हीग का धारण तत्क्षण लाभदायी होता है। किसी हिग्वादि चूर्ण या हिंग्वादि वटी या जीरकादि

१—यहाँ गोघृत से तात्पर्य है। उसे अर्जुन की छाल या बरियारी के कल्क क्वाथ से सिद्ध कर लें तो उत्तम है। ब्राह्मी या सारस्वत घृत सर्वोत्तम है।

वटी अथवा हिंग्वष्टक चूर्ण का प्रयोग हितकर होता है। पर यह याद रखें! हमारे अनुभव से इसमे क्षार अहितकर होता है। इसलिये क्षार विहीन योग दे तो उत्तम है। प्राय सभी हिंग्वादि चूर्ण या हिंग्वादि वटिकाओ मे क्षार पडा रहता है। ऐसे योगो को उष्ण घृत मे मिला कर देने से हानि नही के बराबर होती है। यह भी याद रक्खें! कि वृत या वायु को अनुलोम करने वाली किसी दवा के अनुपान मे उष्ण जल पीना लाभदायी होता है।

हृदय के शूल के लिये हरिण या बारहसिगा की सीग का भस्म ४ रत्ती अथवा पोहकर मूल का चूर्ण १ मा० से २ मा० की मात्रा से घृत के साथ खाने से अत्युत्तम लाभ करता है।

बृहद्वात चिन्ता मणि १ रत्ती की मात्रा से अर्जुन की छाल के चन्दन ४ माशा या रूद्राक्ष के चन्दन २ माशा के साथ वातज हृद्रोग की अत्युत्तम एव तत्क्षण कार्यकारी औषधि है। इसमे यदि मोती पिष्टी १।२ रत्ती और शृ ग भस्म २ रत्ती मिला दे तो अनुपम लाभ करेगा। दोनो अनुपानो को मिलाकर भी प्रयोग करा सकते हैं। प्रात, साय, अर्जुन की छाल या वरियरा के कल्क और क्वाथ से सिद्ध घृत १ तोला उष्ण जल से सेवन कर ले तो उत्तम है।

पैत्तिक हृद्रोग :—

इसमे अत्यधिक प्यास लगती है। मुख सूखा रहता है। कभी कभी इतना प्रकोप हो जाता हैं कि रोगी मु ह से पानी का गिलास हटाना नहीं चाहना। दाह और हृदय मे चूषणवत् पीडा भी होती है। कभी-कभी मूर्च्छा और पसीना भी होता है। रक्त पित्त के प्रकोप और कोरामिन (एलोपैथी औषधि) के अत्यधिक प्रयोग से भी यह होता है।

चिकित्सा :—

तुरन्त पाव डेढ पाव मीठे अनार का रस पिला दें। अभाव मे ग्लूकोज, ईख, मुनक्का, खूजर, चीनी, गुलकन्द मे से किसी का शर्वत पिला दे।

मुक्ता (मोती) पिष्टी १।२ या १ रत्ती की मात्रा अनार या उपर्युक्त किसी अनुपान से देना अनिवार्य और तत्क्षण कार्यकर होता है। इसके अभाव मे प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी २ या ४ रत्ती का प्रयोग हो सकता है। इनके साथ सूत शेखर १ रत्ती का प्रयोग हो तो अत्युत्तम है।

श्लैष्मिक हृद्रोग :—

इसमे हृदय मे जकडाहट होती है। अरुचि, अग्नि मान्द्य, मुख मे मीठापन, कफ का अधिक निकलना एव भारीपन भी होता है।

चिकित्सा :—

इसमे नीम के काढा से वमन अवश्य करा दे। आदी या पिप्पली का प्रयोग विशेष हितकारी होता है। पीपरामूल और छोटी इलायची का समभाग चूर्ण १ माशा की मात्रा मे गो घृत के साथ वडा लाभ करता है। पिपरामूल के अभाव मे पीपर या सोठ भी दे सकते हैं।

रस सिन्दूर १ रत्ती, कृष्णाभ्र भस्म १ रत्ती, मकरध्वज १ रत्ती और वृहत्कस्तूरी भैरव १।२ रत्ती से १ रत्ती तक मे से किसी एक का व्यवहार आर्द्रक स्वरस और मधु मे वडा लाभदायी होता है। वृहत्कस्तूरी भैरव के साथ किसी एक को मिलाकर व्यवहार करने से भी अधिक लाभ होता है।

त्रिदोषज हृद्रोग :—

इसमे तीनो दोषो के लक्षण मिलते है। तीनो दोषो की सम्मिलित चिकित्सा भी होती है पर दोष के न्यूनाधिक्य के अनुसार उसकी चिकित्सा भी न्यूनाधिक होगी। प्रारम्भ मे लघन अवश्य करा लेना चाहिये।

क्रिमिज :—

त्रिदोषज हृद्रोग मे तिल्ली, दूध, गुड आदि क्रिमि उत्पादक पदार्थ अधिक खाने से हृदय मे क्रिमि पड जाते है तव उनके काटने से हृदय मे असह्य पीडा होती है। जी मिचलाना, अधिक थूकना, अरुचि और नेत्रो के वाहर कालिमा एव शोथ होता है।

चिकित्सा—इसमे तीन दिन तक दही और तिल्ली से युक्त मास और भात खिलाना चाहिये। तत्पश्चात् विडग क्वाथ के अनुपान से विरेचन औषधि पिला कर विरेचन करा दे। वडा लाभ होगा। मास से घृणा करने वालो के लिये मास आवश्यक नही। विरेचन के वाद कुछ दिनो तक विडग और मीठा या सुगन्धित कूठ का सम-भाग चूर्ण २ या ३ माशा की मात्रा मे गोमूत्र अभाव मे विडग के क्वाथ से सेवन करे। कूठ न मिले तो केवल विडग के चूर्ण २ माशा से काम चलाये।

आज-कल हाई ब्लड प्रेशर और लोब्लड प्रेशर वडा प्रसिद्ध हो रहा है। प्रथम मे हृदय पर रक्त का अधिक दवाव एव दूसरे मे कम दवाव पडता है, दोनो मे

घवड़ाहट, वेचैनी, अनिद्रा आदि होती है। इसका दौरा भी होता है। मानसिक आघातो का इनपर प्रभाव पडता है। प्रथम मे वातिक हृद्रोग की औषधिया और अनुपान अधिक काम करते है। उनमे शुद्ध कुचिला एक रत्ती या कुचिलादि वटी १ रत्ती मिला देने से अधिक लाभदायी है। सर्पगन्धा (धवरवरुआ) चूर्ण १ माशा की मात्रा मे अर्जुन के चन्दन से बडा लाभदायी सिद्ध हुआ है। गुलकन्द भी एक तोला की मात्रा मे उत्तम लाभ करता है।

द्वितीय मे श्लैष्मिक हृद्रोग की औषधिया आदि लाभदायी है। सभी हृद्रोग मे स्वर्ण भस्म १।२ रत्ती, माणिक्य भस्म १।४ रत्ती, हीरा भस्म १।८ रत्ती अकीक भस्म १।२ रत्ती मे से किसी एक का मिश्रण औषधि के साथ कर दे तो अत्यन्त उत्तम है जिनमे ये न मिले हो उनमे मिला सके तो उत्तम है अन्यथा परेशान न हो।

प्रभाकर वटी २ रत्ती विश्वेश्वर[1] रस एक रत्ती, त्रिनेत्र रस १ रत्ती मे से किसी एक का प्रयोग अर्जुन की छाल के चन्दन से सभी हृद्रोगो मे किया जा सकता है।

सभी हृद्रोगो मे पथ्य :—

बकरी का दूध सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। श्लैष्मिक त्रिदोषजन्य एव क्रिमिज मे इसमे मीठा न डाले। शेष मे डाल सकते हैं। वातिक पैत्तिक और दौर्वल्य मे अनार, मौसम्मी, गाजर का रस लाभदायी है। मुनक्का, खजूर, अजीर भी दे सकते है। मास रस, पुराना चावल, परवल, पुराना कोहडा, पान, तक्र सबमे हितकारी है। पैत्तिक के अतिरिक्त सबमे कस्तूरी, आदी, लहसुन भी दे सकते हैं।

सभी हृद्रोगो मे पथ्य :—

वेगावरोध, अनिद्रा, चिन्ता, परिश्रम, दुर्बलता, मैथुन, भेंड का दूध और विरुद्ध पदार्थ आदि सभी हृद्रोगो मे अपथ्य है।

१--इसमें हीरा का प्रतिनिधि वैक्रान्त है, नाड़ी या हृदय की क्षीणता या दुर्बलता में उत्तम काम करता है।

तीसवां अध्याय

मूत्रकृच्छ, मूत्राघात और अश्मरी

मूत्रकृच्छ मे मूत्र कृच्छता (कष्ट) से परन्तु पर्याप्त मात्रा मे निकलता है। मूत्राघात में मूत्र निकलने मे कष्ट कम होता है परन्तु रूकावट अधिक होती है अर्थात् वह विलकुल नही निकलता या वहुत कम निकलता है। अश्मरी का अर्थ है पथरी, इसके कारण भी प्रवल मूत्रकृच्छ और मूत्राघात दोनो होता है।

मूत्रकृच्छ -

अत्यन्त तीक्ष्ण-रूक्ष-अम्ल-उष्ण पदार्थ, मद्य, मैथुन, साईकिल-घोड़ा आदि पीठ की सवारियो के अत्यधिक सेवन से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और त्रिदोषज मूत्र-कृच्छ होता है। जिसमे दोषानुसार मूत्र के लक्षण और पीडा होती है इन सवमे मूत्रल औषधिया दी जाती हैं जो प्राय शीतल, द्रव, अतीक्ष्ण, अकटु, एव अम्लता-रहित होती है। प्राय मधुर होती हैं। यदि उसमे क्षार का सयोग हो तो अत्युत्तम है, जिनमे कुछ ये है —

१—चन्दन का तैल[1] या इत्र १० वूंद युक्त चीनी, अनुपान शीतल जल

२—कलमी शोरा ६ माशा चीनी ६ माशा, अनुपान शीतल जल।

३—यवक्षार ६ माशा युक्त गुड ६ माशा, शीतल जल के साथ।

४—शतावर के तीन छटाक रस में एक छटाक चीनी डाल कर।

१—मैसूर गवर्नमेंट फैक्टरी का उत्तम है सम्भव हो तो सील वन्द पूरी छोटी शीशी ले लें अन्यथा फुट-कर लेकर काम चलायें इसके अभाव में चन्दन पानी में खूब घिस कर उसका घोल पानी में वना कर पिलाये।

५—तृण पन्च[1] मूल एक छटाक का कल्क, ईख या चीनी के शर्बत से।
६—छोटी इलायची का चूर्ण एक माशा, गोमूत्र या केले के तना या जड के रस से।
७—दारु हल्दी का कल्क ६ माशा, आवला के रस से।
८—एलादि चूर्ण ३ माशा, गुड़ युक्त तण्डुलोदक से।
९—त्रिनेत्र रस २ रत्ती शीतल जल के साथ।
१०—प्रवाल भस्म ४ रत्ती, चावल के धोवन।
११—गोखरु का चूर्ण ४ माशा, चावल का धोवन से।
१२—म्यौडी का वीज ६ माशा, मट्ठा से।
१३—श्वेत पर्पटी[2] ६ रत्ती, मट्ठा या शीतल जल से।
१४—चन्द्रप्रभा वटी ४ रत्ती, गोखरु क्वाथ से।
१५—चन्द्रकला रस ४ रत्ती, वरुण क्वाथ से।

उपर्युक्त दोषज ४ मूत्र कृच्छ्रो के अतिरिक्त शुक्र के मार्ग मे रुकने से (जिसमे शुक्र के साथ कष्ट से मूत्र आता है) मल के वेग को रोकने से (मूत्रकृच्छ्र के साथ पेट फूलना और वात की पीडा भी होती है), अश्मरी से एवं अभिघात या व्रण से इस प्रकार चार और मूत्रकृच्छ्र होता है। जिसमें शुक्र मे चन्द्रप्रभा, चन्द्रकला या शुद्ध शिलाजीत ४ रत्ती मे से किसी एक को विशेष रूप से प्रयुक्त कर सकते हैं। पुरीपज (मल वेगावरोध) मे क्षारो का प्रयोग विशेष हितकर है। इन दोनो मे उपर्युक्त दोषज मूत्रकृच्छ्रो की प्रत्येक औषधि दी जा सकती है। अभिघातज या क्षतज मूत्रकृच्छ्र मे क्षतज अधिकतर मिलता है। जो गर्मी, सूजाक के कारण मूत्रवाही सस्थान मे व्रण हो जाने से होता है। मूत्र के व्रण मे लगने से वडा कष्ट होता है। इसमे यवक्षार के अतिरिक्त दोषज मूत्रकृच्छ्र की सभी औषधियाँ[3] दी जा सकती है परन्तु व्रण का शोधन और रोपण भी आवश्यक है इसके लिए त्रिफला के आध पाव काढा मे १ माशा गेरु एव चार रत्ती तूतिया घोलकर उसी से मूत्रमार्ग या योनिमार्ग (जहाँ व्रण हो) मे उत्तर वस्ति[4] द्वारा दो तीन वार प्रक्षालन

१—कुश, कास, सरपत, छोटा कुश, ईख की जड़ को तृण पन्चमूल कहते है।

२—मन्द आँच पर चीनी मिट्टी के पात्र में दो भाग कलमी शोरा को एक भाग जल में डाल कर घोल वना ले। घोल वन जाने पर एक भाग फिटकरी का चूर्ण डालकर चलाये। जव यह सव गाढा हो जाये तव उसे गोवर पर विछे हुए केले के पत्ते पर डाल कर ऊपर से केले का पत्ता रख कर लकड़ी की पट्टी से दवा दें। पर्पटी तैयार है। रसतन्त्र सार में ढाई भाग नवसादर पाँच भाग फिटकरी और ४० भाग कलमी शोरा को एकत्र गरम कर पूर्वोक्त विधान से पर्पटी वनाने का विधान लिखा है, यह अधिक उपयोगी है।

३—चन्दन का इत्र तत्क्षण काम करता है।

४—देखिये पञ्चकर्मोक्त वस्ति प्रकरण।

करने से बड़ा लाभ होता है। यदि धोते समय घाव पर यह घोल अधिक उछराये या लगे तो ऊपर से कुछ पानी घोल मे मिला दें। याद रखिये, इन मूत्रकृच्छ्र मे तीक्ष्ण विरेचन एव रक्त शोधक भी आवश्यक होता है। प्रतिदिन शौच की शुद्धता भी आवश्यक है। घाव ऊपर हो तो उस पर त्रिफला की भस्म अथवा कनेर की पत्ती का चूर्ण, घी या गरी के तेल या वेसलीन मे मिला कर लगायें। नमक खाना बन्द कर दें। गर्मी, सुजाक का वर्णन चौतीसवें अध्याय मे विशेष है।

अश्मरी :—

यकृत मे पित्त एव मूत्रवाहक सस्थान (किडनी या गुर्दा, गवीनी, मूत्राशय) मे मूत्र के पदार्थ शर्करा (वालू के छोटे कणों) के रूप में क्रमश सचित होकर छोटे-छोटे ढेले का रूप धारण कर लेते है। जो अश्म (पत्थर) के समान कडे होते है। इसीलिये इसे अश्मरी या पथरी कहते है। पित्ताश्मरी मे खाने के साथ मधुर रसो का प्रयोग विशेष होता है। वेहद कष्टदायक होती है। इसमे पित्त की वमन, दाह, प्यास, ज्वरादि भी होता है। रोगी पीला हो जाता है। इसकी चिकित्सा अत्यन्त कुशल चिकित्सक ही करें। शेष लोग उपर्युक्त पित्ताश्मरी के चिकित्सा सूत्र के साथ ही पैत्तिक शूल की चिकित्सा[1] कर काम चला सकते हैं।

मूत्रवाहक सस्थान की अश्मरी जब मूत्राशय मे मूत्रद्वार पर आकर अटक जाती है तब मूत्र निकलने मे असह्य कष्ट होता है। इधर-उधर गतिशील कर देने से जब मूत्र द्वार से दूसरी जगह हट जाती है तो मूत्र सुख पूर्वक निकलता है। मूत्र प्राय: कभी कभी दो धारो मे निकलता है। औषधि से छोटे टुकडे या शर्करा के रूप मे अश्मरी कट-कट कर निकलती है। यह बच्चो को अधिक होती है। शुक्राश्मरी बडो को होती है। सभी अश्मरियो मे निम्नलिखित औषधि मे से किसी एक का अथवा सयुक्त का व्यवहार करे—

१ पाषाण भेद का चूर्ण ४ माशा, गोखरू क्वाथ के साथ।
२. यवक्षार ६ माशा, गोखरू क्वाथ के साथ।
३. पाषाण वज्र रस १ रत्ती, गुड युक्त[2] इन्द्रायण मूल और कुलथी क्वाथ मे
४ त्रिविक्रम रस ½ रत्ती और नीबू की जड का चूर्ण जल मे।
५ वेर[3] पत्थर की पिष्टी ४ रत्ती, गोखरू क्वाथ से।

१—पित्ताश्मरी में राजकीय औषधि योग संग्रह का रोहतकारिष्ट एक एक तोला की मात्रा से समान जल मिलाकर एक एक घण्टा पर वेदना शान्ति होने तक देने से बड़ा लाभदायी होता है। इसके अभाव में भैषज्य रत्नावली का व्यवहार करे।

२—मलबद्धता न रहने पर इन्द्रायण न दें।

३—ठीक वेर के आकार का पत्थर बाजार में मिलता है जिसे सगयहूद या हजरत जहूर कहते हैं।

त्रिकण्टकाद्य क्वाथ दुरालभादि क्वाथ और वीरतर्वादि क्वाथ वडा लाभदायी है। इनमे से किसी एक का व्यवहार अनुपान या स्वतन्त्र रूप से करना चाहिये।

मूत्राघात —

इसमे वायु या पौरुष ग्रन्थि की सूजन आदि के कारण सचित हुआ मूत्र रुका रहता है। इसमे पेडू पर चूहे की लेडी और पलाश के फूल का गरम लेप वडा लाभदायी होता है। इसके अतिरिक्त पेडू पर स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये। और, निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा सयुक्त का व्यवहार करें।

१ काला नमक १ माशा शराव के साथ।
२ भटकटैया (कटेरी) का रस २ तोला, मट्ठा से।
३. गोखरु का काढा एक छटाक मधु डाल कर।
४ रस सिन्दूर १.२ रत्ती, काजी और सेंधा नमक (पौरुप ग्रन्थि की सूजन मे नमक न दे) मे
५ शुद्ध शिलाजीत ४ रत्ती शक्कर मधु या मधु युक्त दशमूल क्वाथ से।
६ इलायची मोठ का सम भाग चूर्ण १ माशा, अनार रस से।
७ सोडा वाटर पीने से भी मूत्र निकलता है। मूत्र मार्ग मे कपूर का टुकडा रखने से भी मूत्र निकलता है।

यह सब उपाय मूत्राशय गत मूत्र रुकने पर है। जिसका विशेप लक्षण सञ्चित मूत्र मे पेडू का फूलना है। यदि मूत्राशय फूला न हो या पेडू प्रदेश मे विशेष कष्ट न हो तो समझिये कि वृक्क मूत्र नही छान रहा है। ऐसी स्थिति मे विसूचिका मे मूत्र निकालने के उपायो मे इसका उपाय देखें।

उष्णवातः—

मूत्राघात के इस भेद मे रक्त-युक्त मूत्र या रक्त ही आता है। जिसके निकलते समय अत्यन्त जलन होती है। मूत्र अत्यन्त पीला भी आता है। इसमे भी क्षार को छोड कर दोपज मूत्रकृच्छ्र की सभी औषधियाँ दी जा सकती हैं। यह भी याद रखिये कि सभी मूत्राघातो मे मूत्रकृच्छ्र की औषधियाँ दी जा सकती है। पथ्य भी वही होगे। केवल वातज मूत्राघात मे शीतल औषधि, अनुपान और पथ्य न दे। मधुर और स्निग्ध पथ्य दें।

इकतीसवाँ अध्याय

प्रमेह और बहुमूत्र

प्रमेह (प्र = प्रकृष्ट+मेह = वर्षा) शब्द का अर्थ है अत्यधिक वर्षा। जिसका तात्पर्य यहाँ यह है कि मूत्र मार्ग से अधिक मूत्र या अन्य द्रव्यों का निकलना। यद्यपि इसका प्रधान कारण कफ कारक पदार्थ, बैठने सोने का अत्यधिक सुख, निश्चिन्तन, दही, मास, दूध, घी, नया अन्न, गुड़, शक्कर, मिश्री आदि का अत्यधिक सेवन है। तथापि अपतर्पण (बैठने सोने का कम सुख, उपवास या कम भोजन, व्यायाम, परिश्रम एव चिन्तन) से भी यह होता है। इसलिये चिकित्सक को कारण का ठीक निर्णय कर तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। कफज प्रमेह १०, पित्तज ६ और वातज ४ होते हैं। ये क्रमश साध्य, याप्य और असाध्य होते है। अन्ततोगत्वा अच्छा न होने पर सभी प्रमेह वातज (मधु मेह) हो जाते हैं। मूत्र के वर्ण एव अन्यान्य लक्षणो से दोष का निर्णय सरलता से हो जाता है। कफज मेह मे परिश्रम, यात्रा, चिन्तन और रूक्ष आदि वातकारक पदार्थों का सेवन करना चाहिये। अपतर्पण जन्य मे बकरी का दूध, फलो का रस, मास रस, विश्राम, निश्चिन्तन आदि सेवन करना चाहिये। यह स्मरण रखिये कि ऐसे ढग से इनका सेवन किया जाय कि कफ बढने न पाये। इनके लिये इन्हे कफ नाशक पदार्थों से सिद्ध या सयुक्त कर देते हैं। कुल मिला कर प्रमेहो मे कफ पित्त और वायु दोष होते है तथा मेद, रक्त, शुक्र, जल, वसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज एव मास ये दूष्य होते हैं। जहाँ तक लक्षणो का प्रश्न है सभी प्रमेहो मे मूत्र बहुत अधिक मात्रा एव कुछ मलीन आता है। यह लक्षण प्रारम्भ में ही उत्पन्न हो जाता है।

विशेष लक्षण ये हैं —

श्लेष्म प्रमेह :—

१—उदक या अम्बु मेह मे जल के समान स्वच्छ अत्यधिक मूत्र आता है। २—इक्षु मेह मे ईख के रस के समान मधुर। ३—सान्द्रमेह मे समस्त गाढा। ४—सुरामेह मे ऊपर स्वच्छ नीचे गाढा, शराव के समान गन्ध वाला। ५—पिष्ट मेह मे उर्द की पीठी के समान। ६—शुक्र मेह मे शुक्र मिश्रित। ७—सिकतामेह मे वालू के समान छोटे-छोटे कणो से युक्त। ८—शीत मेह मे अत्यन्त शीतल, मधुर और अधिक। ९—शनैर्मेह मे वहुत धीरे धीरे। १०—लाला मेह मे लाला या लार के समान तारो वाला मूत्र निकलता है।

पित्तज मेह :—

१—क्षार मेह मे क्षार के घोल[1] के समान। २—नीलमेह मे नीला। ३—काल मेह मे रोशनाई के समान काला। ४—हारिद्र मेह[2] मे हल्दी के समान पीला और जलता हुआ। ५—माञ्जिष्ठ मेह मे मजिष्ठा के जल के समान गुलावी और ६—रक्त मेह[3] मे रक्त के समान वर्ण वाला मूत्र आता है।

वातज मेह :—

१—वसा मेह मे चरवी के समान। २—मज्जा मेह मे मज्जा के समान। ३—क्षौद्र मेह या मधु मेह मे मधुर[4] और रूक्ष। २—हस्तिमेह मे हाथी के मूत्र वेग के समान विना किसी रुकावट के मूत्र आता है।

चिकित्सा :—

प्रमेहो की चिकित्सा मे निम्नलिखित वातो का ध्यान रखें —

१ कोष्ठवद्धता को दूर करें, नित्य शौच हो, इसका ध्यान रक्खें।[5] २ अग्नि दीप्त रखें, अजीर्ण से वचें। ३ कम से कम इतना परिश्रम अवश्य करें कि भोजन

१—इतना क्षार मूत्र में रहता है कि रोगी जमीन पर जहां मूत त्याग करता है वहा जमीन क्षार के कारण मुरमुरी गोवरौरा मलकोट या दीमक द्वारा चाली हुई सी हो जाती है।

२ व ३—हारिद्रमेह का पाण्डु या पित्तज अन्य रोगों जिनमें मूत पीला आता है से इतिहास एव लक्षणों के द्वारा तथा रक्त मेह का रक्त पित्त या उष्ण वात से इतिहास और अन्य लक्षणों द्वारा अन्तर कीजिए।

४ व ५—इसमें रक्त में भी मधुरता आ जाती है जिससे इसमे होने वाली प्रमेह पिड़कायें अत्यन्त भयानक होती हैं। इसमे और अन्य मधुर मूत वाले मेहों मे यही अन्तर है।

५—इसके लिये निम्नलिखित चूर्ण अत्युत्तम हैं —सनाय ४ तोला मुना काला दाना ४ तोला, सौफ २ तोला, काला नमक डेढ तोला को चूर्ण कर ले मात्रा ३ मासे ६ माशा तक दे।

पचता रहे और भूख लगती रहे तथा मोटापन न आने पाये, अति आलस्य से बचें। ४ मैथुन से बचे, यथासम्भव किसी प्रकार वीर्यपात न होने पावे। ५ मेदस्वियों या स्थूल पुरुषों को प्रमेह होने पर परिश्रम, मार्ग गमन, मल्ल युद्ध आदि का व्यवहार करावे। कृश (पतले) पुरुषों को प्रमेह होने पर विश्राम, निश्चिन्तता एवं पुष्टिकारक एवं सुपाच्य पदार्थों का सेवन करायें। ईख के पदार्थों से रोगी को बचावें। मेदस्वी को कोई मधुर पदार्थ न दे। कृश को मधुर पदार्थ देना अनिवार्य हो तो रस नाशन की व्यवस्था करते हुए दें अर्थात् उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, आदि में से कोई अवश्य मिलायें या पकाये। पर याद रखें! पुराना मधु (अभाव में लाचारी होने पर पुराना गुड) के अतिरिक्त सभी मधुर पदार्थ सभी प्रमेहों में हानिकारक[1] हैं। ६ रोगी से धरती पर एक सफेद स्वच्छ शीशी में मूत्र त्याग करा कर दोनों की परीक्षा कर ले कि उपर्युक्त बीसों मेहों में से कौन-सा प्रमेह है। प्रत्येक प्रमेह की अलग अलग विशिष्ट औषधि भैषज्य रत्नावली के प्रमेह प्रकरण में लिखी है। सामान्य औषधियों से काम न चलने पर विशिष्ट औषधि का प्रयोग करें। औषधियों का सेवन आवश्यकतानुसार न्यूनतम २१ दिन, ४२ दिन या २ मण्डल (९८ दिन) तक और पथ्य का सेवन न्यूनतम एक वर्ष तक करना चाहिये।

सामान्य औषधियां

१ त्रिफला चूर्ण ४ मा०, मधु।

२ आंवला हल्दी सम भाग चूर्ण ३ माशा, गुर्च का रस।

३ शुद्ध शिलाजीत १ माशा, मधु एक तोला।

४ हल्दी का चूर्ण १ माशा से दो माशा तक, सेमल की छाल के रस और मधु से।

५ सेमल की जड या छाल का चूर्ण ३ माशा घी एक तोला, मिश्री छः माशा, जायफल चार रत्ती।

६ काली मिर्च का चूर्ण १ माशा निर्मली का घृष्ट[2]।

७ पका केला मधु के साथ।

१—अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर पावभर गोदुग्ध, पावभर पानी और १ तो० ईसबगोल का दाना अभाव में ईसबगोल की भूसी पकाकर खीर बनाले। इस खीर में ६ माशा दुग्ध पाषाण (संगेजराहत या सेलखड़ी) का चूर्ण ६ माशा डालकर खिला सकते हैं।

२—पानी में कोई वस्तु चन्दन के समान घिसने से घृष्ट तैयार होता है।

८ गेहूँ आधा पाव का रस[1] मिश्री मिला कर।

९ जौ का सना आटा,[2] सोंठ चूर्ण और मधु।

१० वरगद के सूखे फल का चूर्ण ८ माशा, गोदुग्ध से।

११. गूलर के सूखे कच्चे फल का चूर्ण ८ माशा, गोदुग्ध से।

१२ जामुन और आम की गुठली का चूर्ण ३ माशा, जल के साथ।

१३. त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण ६ माशा मधु एक तोला के साथ।

१४. नीम की भीतरी छाल[3] का रस मिश्री मिला कर।

१५ अडूसा और गुरुच का स्वरस दो तोला मधु मिला कर।

१६ शुद्ध गन्धक ४ माशा से ६ माशा तक समयुक्त गुड और गोदुग्ध से।

इनके अतिरिक्त अभ्र भस्म २ रत्ती, वगभस्म २ रत्ती, चन्द्रप्रभा[4] वटिका पाँच रत्ती, हरिशकर रस[5] २ रत्ती, मेघनाद रस ३ रत्ती, वगेश्वर दो रत्ती मे से किसी एक का सेवन हो सकता है। सामान्य औषधियो मे उल्लिखित किसी एक को अनुपान के रूप मे व्यवहार कर ले। साधारण अनुपान मधु है। ये सभी भैषज्य रत्नावली मे लिखित हैं।

वसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती हमारे विचार से सर्वश्रेष्ठ अमीरी औषधि और चन्द्रप्रभा सर्वश्रेष्ठ गरीबी औषधि है। इसका तात्पर्य यह नही कि पूर्वोक्त औषधियाँ या साधारण औषधियाँ काम नही करती। वे भी लाभदायी हैं।

भोजनोत्तर देवदार्वरिष्ट डेढ तोला सम जल के साथ पी सकते हैं।

स्वप्नदोष

किसी पुरुष या स्त्री को मैथुनेच्छा का अत्यधिक चिन्तन करने, उष्णकटु पदार्थ खाने, अजीर्ण, अनिद्रा आदि से स्वप्न मे ही शुक्र या वीर्य निकलता है। बस यही स्वप्नदोष या स्वप्नमैथुन है। यह अति प्रसिद्ध और प्रचलित रोग है। इसकी चिकित्सा मे कोष्ठशुद्धि का ध्यान रक्खें। प्रमेह की चिकित्सा मे ध्यान देने योग्य बातो मे नम्बर १ का सनाय वाला चूर्ण इसके लिये उत्तम है। भोजनोत्तर द्राक्षासव डेढ तोला सम जल मिला कर पीयें निम्नलिखित औषधियाँ उत्तम लाभ करती है।

१ प्रात काल एव दोनो समय भोजन के बाद एक-एक पका केला मधु से खाने से लाभदायी है।

१—रात में भीगे हुए गेहूँ को पानी में पीस कर छान लें।

२—गरिष्ट मालूम हो या नापसन्द हो तो जौ की रोटी यथेच्छ मात्रा में मधु के साथ खाय।

३—पांच तोला छाल को पानी में रात में भिगो कर प्रात पीसकर रस छान ले।

४—पौरुष ग्रन्थि के शोथ और मधुमेह में भी हितकर है।

५—इसे एक रत्ती से प्रारम्भ कर तीन रत्ती तक बढा सकते हैं। कतिपय लोगों में २ रत्ती से ६ रत्ती तक भी प्रयुक्त होती है।

२ मिश्री ४ तोला, हल्दी २ तोला, शीतल चीनी १ तोला, कपूर[1] दो माशा और अफीम[2] चार रत्ती का चूर्ण २ माशा की मात्रा से रात को सोते समय खाकर जल पी लें। अत्युत्तम है।

३ मुलहठी का चूर्ण १ तोला, मक्खन १ तोला, मधु ६ माशा, मिला कर खा ले। ऊपर से मिश्री युक्त दूध पी ले। बड़ा लाभदायी है। ३ मास तक सेवन करने से मैथुन की शक्ति बढती है। उपर्युक्त औषधियाँ पेशाब के साथ शुक्रपात होने मे भी लाभदायी हैं।

प्रमेह में पथ्य —पथ्य का साधारण सकेत पहले लिख चुके है। उनका ध्यान रखते हुये, सावा, कोदो, नेवार, अरवा चावल, जौ, कुलथी, मू ग, चना, अरहर, तक्र करैला, सहिजन, गूलर, लहसुन, जामुन, कैथ, खजूर, लवा, तीतर-बटेर-खरगोश-हरिण का मास और पैदल चलना आदि पथ्य है।

१—बरास नामक कपूर लें। इसे बाजार में भीमसेनी के नाम पर बहुत से लोग ४० रु० से ६० तोला तक बेचते हैं जबकि यही बरास नाम से २ रु० ३ रु० तोला मिल जाता है।

२--अफीम को आदी के रस में घोलकर सुखाकर मिलाये।

बत्तीसवां अध्याय

उदर रोग

अतिसार, ग्रहणी रोग, प्रवाहिका आदि भी उदर के ही रोग हैं। पर इस अध्याय में उदर के ऐसे रोगो का वर्णन किया गया है जिनमे किसी प्रकार का शोथ (सूजन) या अवरोध (रुकावट) हो जाता है। ये मन्दाग्नि, अजीर्ण, मलिन आहार एव मल सञ्चय से होते हैं।

समस्त उदर रोगो के सामान्य लक्षण ये हैं—वायु, मल और जल को वहन करनेवाले स्रोतो मे रुकावट होने से इनकी (वायु आदि की) रुकावट, पेट का फूलना, मन्दाग्नि, दुर्बलता, चलने मे भी असमर्थता, सुस्ती और अगो मे शोथ।

उदर रोगो के भेद —

वातोदर—इसमे वायु का विशेष प्रकोप होता है। जिससे हाथ पैर नाभि पेट मे शोथ, पसवाडो-उदर-कमर-पीठ मे पीडा, सन्धियो मे पीडा, पेट का कभी अकस्मात फूल जाना या अकस्मात पचक जाना और उसमे गुडगुडाहट होती है। वायु पीडा और शब्द करता हुआ इधर-उधर घूमता है। मल एकत्र होता है। त्वचा, नख, मुँह आदि काले पड जाते हैं। पेट फूलने पर काली सिराओ से व्याप्त होता है। अगुली से ठोके जाने पर उदर से फूली हुई मशक के समान भद्द भद्द शब्द निकलता है।

वातोदर की चिकित्सा —

दशमूल का क्वाथ अवश्य दें। इसमे गोमूत्र २ तोला, एरण्ड तेल २ तोला, शिलाजीत ४ रत्ती मे से किसी एक को मिला दें।

त्रिफला क्वाथ मे गोमूत्र दो तोला अथवा मट्ठा मे पीपर १ माशा और सेंधा नमक १ माशा मिलाकर पिलाना भी लाभदायी होता है।

एरण्ड तैल या पुराना घी से स्नेहन कर एरण्ड तैल से विरेचन व अनुवासन करायें। दस्त होने के वाद पेट अवश्य वांध दें।

पथ्य मे ऊटनी का दूध सर्वोत्कृष्ट है। अभाव मे बकरी का दूध दें।

यदि उपलब्ध हो तो सामुद्राद्य चूर्ण ३ माशा या हिंग्वष्टक चूर्ण २ माशा गरम घी से भोजन के पहले ग्रास मे मिला कर दें।

पित्तोदर :—

पित्तोदर मे ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, चक्कर, अतिसार, मुख मे कड़वापन और पसीना होता है। त्वचा, नख, नयन आदि पीले होते हैं। उदर हरा होता है और वह पीली या ताम्र वर्ण की सिराओं से व्याप्त रहता है। स्पर्श मे कोमल होता है। इनसे अति शीघ्र जलोदर होता है।

पित्तोदर की चिकित्सा :—

बलवान रोगी को निशोथ ६ माशा और एरण्ड तैल दो तोला को अजीर या मुनक्का पके दूध के साथ देकर विरेचन करायें। दुर्बल रोगी को एरण्ड तैल की अनुवासन वस्ति या कुछ गरम गोदुग्ध की वस्ति देकर विरेचन करायें। विरेचन के पश्चात् निम्नलिखित उपाय करें —

१—तक्र मे चीनी और मिर्च छोड़ कर पिलायें। या २—वृहत्पञ्चमूल मे सिद्ध दूध पिलायें। या ३—पिठिवन, बरियरा, भटकटैया, पीपर की लाल और सोंठ मे पका दूध पिलायें।

कफोदर :—

इसमे अंगो मे सुस्ती शोथ और भारीपन होता है। रोगी निद्रा, जी मिचलाना, अरुचि, श्वास, कास से पीडित रहता है, त्वचा, नख आदि श्वेत होते हैं। उदर निश्चल, कठिन, स्निग्ध, भारी, देर तक फूला हुआ और सफेद रेखाओं से व्याप्त रहता है।

कफोदर की चिकित्सा—इसमे कटु, क्षार युक्त भोजन करायें। गोमूत्र और रोहितकारिष्ट का भी प्रयोग करें।

यवक्षार ४ रत्ती और एरण्ड तैल या त्रिकटु, सेंधा नमक, जीरा, अजवाईन का चूर्ण ३ माशा अथवा त्रिकटु का चूर्ण ३ माशा को कुलथी के काढा या मट्ठा से दें।

४—सन्निपातोदर या दूष्योदर—असाधु व्यवहार वाली स्त्रिया पुरुष को अपने वश मे करने के लिये नख, लोम, पुरीष, मूत्र से युक्त अन्नपान दे देती हैं। या शत्रु गरविष[1] का प्रयोग कर देते हैं। अथवा दूषित जल या दूषी विष[2] का सेवन हो गया है तो कुपित रक्त तथा तीनो दोष भयानक और सभी दोषो के लक्षणो से युक्त उदर रोग करते हैं। यह ठंढी हवा और बदली से विशेष प्रकुपित होता है। दाह, बेहोशी,

१—धीरे धीरे सञ्चित होने वाला और प्रभाव करने वाला विष।
२—घाम, अग्नि, औषधि या मन्त्र द्वारा कमजोर किया हुआ विष।

सिराओं से व्याप्त असाध्य यकृद्दाल्युदर एवं प्लीहोदर
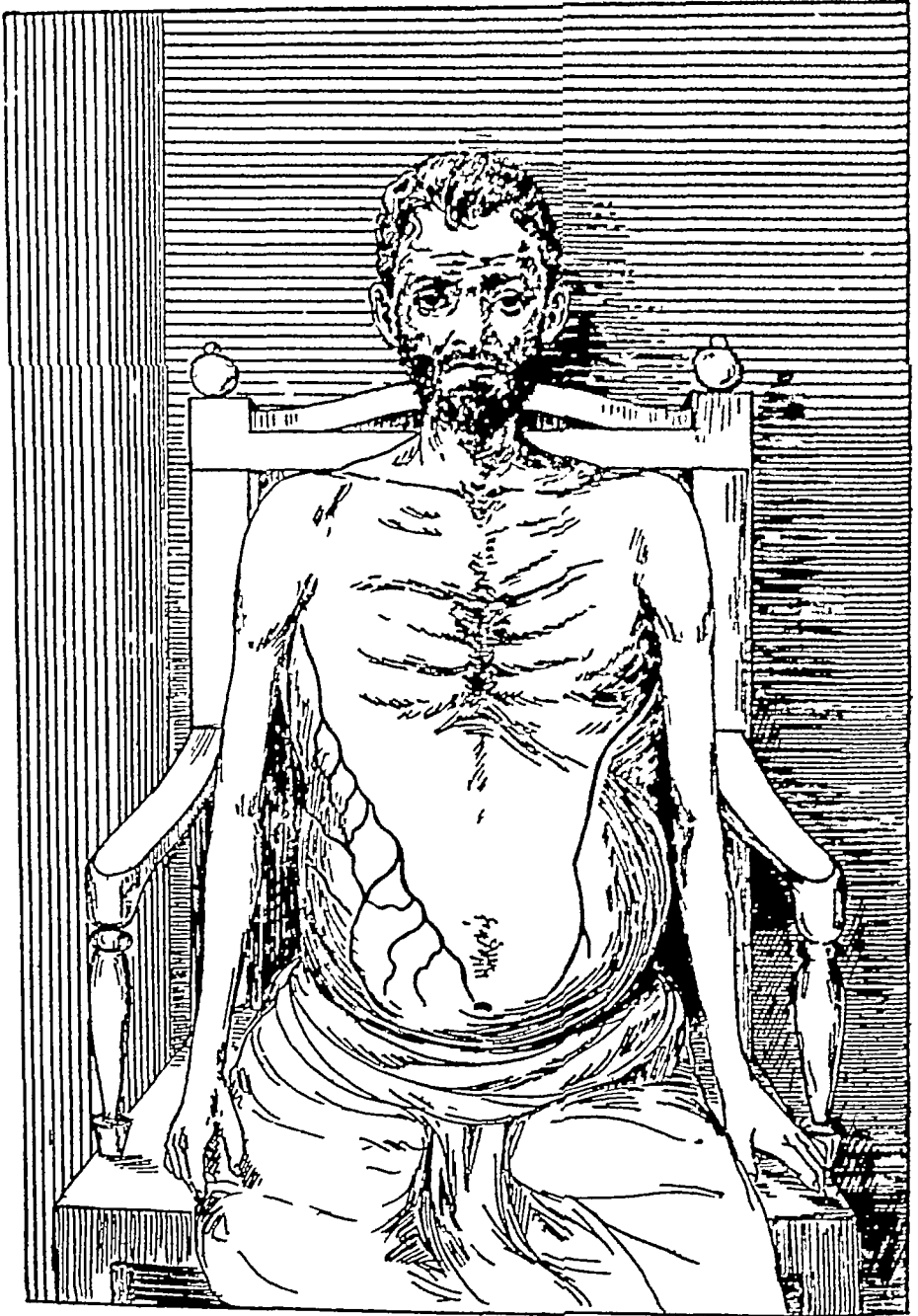
(पृष्ठ ३७३ के सम्मुख)

उदर प्रदेश में नीली सिराओं की स्पष्टता

पीलापन, कृशता और प्यास भी हो जाती है, रक्त दूष्य होने के कारण इसे दूष्योदर भी कहते हैं।

चिकित्सा :—

दूष्योदर मे दोषो की प्रधानता के अनुसार तीनो दोषो की सम्मिलित चिकित्सा करें।

४—प्लीहोदर या वरवट—छाती के नीचे उदर मे बायें ओर प्लीहा नामक अग रहता है। जिसे स्प्लीन, वरवट या तिल्ली भी कहते है। लगातार अभिष्यन्दी (लसीला और भारी होने के कारण रसवाही स्रोतो को रोकने वाले एव स्रोतो मे चिपक जाने वाले दही आदि) और विदाही (आलू मिर्चा आदि) पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य की प्लीहा मे शोथ हो जाता है। वायी ओर उदर मे छाती की अन्तिम पसली के नीचे दवाने मे वहा कडा मालूम पडता है। अग्निमान्द्य, मन्द ज्वर, दुर्बलता और पीलापन भी हो जाता है। वस इसी को प्लीहोदर, वरवट या तिल्ली वढ जाना कहते हैं।

चिकित्सा—

इसकी चिकित्सा मे रेचक और लेखन औषधियो का प्रयोग होता है। नित्य शौच शुद्ध होता रहे, इनका ध्यान रखना चाहिये। निम्नलिखित कोई एक प्रयोग करें —

१—यवक्षार, नवसादर, सज्जीखार मे से किसी एक को ४ रत्ती की मात्रा से मूली के रस १ तोला मे सेवन करने से प्लीहोदर अच्छा होता है।

२—शरफोका 'शरपुखा' की जड ४ माशा या ६ माशा की मात्रा से गाय के मट्ठा मे ३१ दिन सेवन करने से अत्युतम लाभ होता है।

३—स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी भडभाड) का स्वरस १ तोला मधु मिला कर दो सप्ताह पीने मे वड़ा लाभ होता है।

४—गाय के दूध मे ७ दिन तक भीगी हुई पीपर का चूर्ण एक माशा प्रात दोपहर (भोजनोत्तर) और सायकाल मधु के साथ सेवन करने से नई वरवट मे लाभ-दायी है। (पीपर भिगोने मे प्रतिदिन पहला दूध फेंक कर दूसरा दूध डालना चाहिये)

५—शख भस्म ४ रत्ती, मुक्ता शुक्ति भस्म ४ रत्ती, कौडी भस्म ४ रत्ती में से किसी एक को मधु, गोदुग्ध, मट्ठा या नीवू के रस मे सेवन करने से लाभ होता है।

६—मदार के पत्ते या हरड़ अथवा पीपर वलावल के अनुसार पुराना गुड के साथ खाने से भी लाभ करता है।

७—समुद्र फेन ६ माशा और मिश्री केवल प्रात उष्ण जल से वडा लाभ करती है।

८—केवल गोमूत्र २ तोला की मात्रा से प्रात साय सेवन करने से भी लाभ होता है।

निम्नाकित ग्रौषधियो मे से किसी एक का सेवन भी लाभदायी है —

वज्रक्षार, १ माशा गोमूत्र या मट्ठा से यकृदरि लौह ३ रत्ती मधु से, लोकनाथ रस ३ रत्ती मधु व पीपर से, शख द्राव २ बूद चीनी से, यकृत्प्लीहारि लौह १ माशा शरपुखा स्वरस से। भोजनोत्तर रोहितकारिष्ट, कुमार्यासव ग्रौर लोहासव मे से किसी एक को दो तोला की मात्रा से समजल मिला कर देने से विशेष लाभ होगा।

विशेष—

खाने वाला सोडा २ या ४ रत्ती की मात्रा से प्लीहोदर की किसी भी ग्रौपधि मे मिला देने से लाभ वढ जाता है।

यकृद्दाल्युदर[1] या लीवर—यकृत् या लीवर या जिगर प्लीहा के सामने उदर मे दाहिने ग्रोर होता है। इसके वढने के कारण, लक्षण, चिकित्सा, ग्रनुपान ग्रौर पथ्यापथ्य सभी प्लीहोदर के समान ही होते है।

बद्धगुदोदर—

ग्रातो मे लसीले ग्रन्न, वाल, ककड, मल की कडी गाठ या ग्रन्यान्य कारण से रुकावट होकर धीरे-धीरे मल सन्चय हो जाता है। परिणामत मल नही निकलता है या थोडा थोडा कष्ट से निकलता है। नाभि ग्रौर हृदय के वीच मे उदर मे विशेष वृद्धि होती है। १५ दिन के वाद यह ग्रसाध्य होता है।

चिकित्सा—

इसकी चिकित्सा मे सर्व प्रथम क्षार, एरण्ड तैल, नमक, गोमूत्र युक्त उष्ण जल से निरूहण वस्ति ग्रवश्य दें। केवल एरण्ड तैल की ग्रनुवासन वस्ति भी दें। दोनो वस्तियो को वारी वारी से दिन मे एक वार या ग्रावश्यकतानुसार २-३ वार दे। वस्ति दान के पूर्व पेट पर एरण्ड तैल की मालिश करके स्वेदन कर लें तो उत्तम है।

ग्रौपधियो मे कुटकी क्वाथ देना न भूले। प्लीहोदर मे कहा गया कोई क्षार, यथा यवक्षार, सज्जी क्षार, वज्रक्षार, नवसादर तथोक्त मात्रा से इसी क्वाथ मे मिला दिया जाना चाहिये।

पुरीषज उदावर्त्त की सभी ग्रौपधिया इसमे दी जा सकती हैं। उग्र उदावर्त्त मे पूर्वोक्त नाराच रस की २ रत्ती या ३ रत्ती की मात्रा निम्बू रस युक्त चीनी के शर्वत से ग्रथवा सेहुण्ड का दूध ३ या ५ बूद की मात्रा से उष्ण जल या उष्ण गोदुग्ध मे दे।

१—दोष यकृत को दलित या विदलित कर देते है इस लिए इसे यकृद्दाल्युदर कहते हैं प्लीहोदर के समान ही यह होता है इस लिए इसकी अलग गणना कर उदर रोगों को ८ से ९ नहीं किया गया।

विशेष—बद्धगुदोदर मे एक या दो दिन मे ही वस्ति दान और कुटकी या नाराच या मेहुएड दूध का प्रयोग करने से निश्चित लाभ होता है। तत्पश्चात् एक सप्ताह तक क्षारो आदि का प्रयोग करें। वस्तिदान न्यूनतम एक सप्ताह तक करें।

७—क्षतोदर, छिद्रोदर या परिस्राव्युदर—अन्न के साथ व्यवहृत अथवा बाहर से आया हुआ काटा या नुकीला कोई पदार्थ आतो मे क्षत कर देता है जिससे जल के समान स्राव गुदा से निकलता है। नाभि के नीचे उदर विशेष फूलता है। सूई के चुभने सी पीडा होती है। यह औषधि चिकित्सा से असाध्य होता है। शल्य चिकित्सा द्वारा किसी का साध्य हो सकता है। इसकी चिकित्सा कफोदर के समान करें। अर्थात् कटु, क्षार, गोमूत्र आदि का सेवन करें। लेखक को इसका रोगी आज तक नही मिला। इसलिये इसकी चिकित्सा पर अधिक प्रकाश डालना सम्भव नही। इसमे गोदुग्ध का ही पथ्य उचित है।

जलोदर या उदकोदर—

सभी उदर रोग बढ जाने पर जलोदर हो जाया करते हैं। इसमे अन्त्रावरण कला मे पानी आ जाता है। परिणामत पेट फूल जाता है। उस पर चिकनाई आ जाती है। अगुली से ठेपन करने से जल से भरी हुई मशक के समान शब्द होता है। एक जगह दबाने से दूसरे स्थान पर भीतर से लहर जाने सी प्रतीति होती है। जिस करवट रोगी सोता है उस ओर उदर मे जल के फैल जाने से उधर अधिक वृद्धि होती है। यह अतिप्रचलित है। यह हृद्रोग, वृक्क रोग के परिणाम स्वरूप एव स्नेहन वस्ति और विरेचन के बाद तत्क्षण शीतल जल पीने से भी होता है।

चिकित्सा—

रोगी को नित्य इच्छा भेदी[1] या नाराच को चीनी के शर्बत मे देकर विरेचन करायें। मूत्रल औषधि श्वेत पर्पटी या नवसादर या यवक्षार भी २-४ रत्ती की मात्रा से प्रयोग करें। रोगी को गोदूग्ध के अतिरिक्त अन्य पथ्य न दें। प्यास भी गोदुग्ध से ही बुझायें। जल एक दम न दें। गदह पूरना का रस या इसका अर्क दिया जा सकता है। रस अधिक लाभदायी है।

जलोदरारि रस (ताम्रयुक्त जलोदरारि रस या ताम्र रहित जलोदारारि रस मे से किसी) का २-३ बार प्रयोग करने से भी उग्र विरेचन होता है। विरेचन से पेट पचक जाने पर पेट को कपडे से कस कर बाध देना अच्छा होता है। लाभ अधिक होने पर विरेचक औषधि कम कर दें। जलोदर का प्रकोप कम होने पर केवल एक बार विरेचक औषधि दे।

वारिशोषण रस २ रत्ती मरिच चूर्ण और मधु से दिन रात मे ३ बार देने से जल सुखाता है और हृदय को शक्ति देता है।

---

१ भैषज्य रत्नावली के उदररोग विकार मे तीन इच्छाभेदी है। उसमें शुद्ध सूतस्य से प्रारम्भ होने वाले योग को छोडकर शेष किसी का प्रयोग करें। बाजार से दवा खरीदने वाले जो इच्छा भेदी मिले वही प्रयोग करें।

अत्यन्त अधिक जलोदर बढ जाने पर श्वास कष्ट होने लगता है। हृदय पर दबाव पडने से रोगी घबडाता है। तब शल्य चिकित्सक उदर मे छेद कर जल निकाल कर तत्क्षण आराम पहुचाते है। यहाँ इस पर प्रकाश न डाला जायेगा। हा, यह याद रक्खे कि एक बार जलोदर अच्छा हो जाय तब तो ठीक अन्यथा बार बार जल का पेट मे आ जाना असाध्य लक्षण है। उदर मे छेद कर जल निकालना केवल तात्कालिक लाभ लाचारी वश किया जाता है। इसके बाद भी जल आ जाय तो ईश्वर ही रक्षक है।

सभी उदर रोगो मे पथ्य—विशेष उदर रोगो मे पथ्य कहा गया है। उनके अतिरिक्त अन्य उदर रोगो मे निम्नलिखित पथ्यापथ्य है :—

नमक सर्वथा न दें। एकाएक छोडने मे तकलीफ हो तो क्रमश कम करें। दही, घी (उदर रोग की औषधियो से सिद्ध घी को छोड कर) न दें। गुरु पदार्थ और अजीर्ण से बचें।

गोदुग्ध सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। मट्ठा, जामुन का सिरका, गेहूँ, जौ, पुराना शरवा चावल, परवल, लहसुन, आर्द्रक, गोमूत्र, ऊँटनी का दूध, हरीतकी, पुनर्नवा, पपीता व मूली आदि पथ्य हैं।

सभी दाले अहितकर हैं। न काम चलने पर मूंग या कुलथी का थोडा व्यवहार होता है।

———

जलोदर मे जल निकालने का स्थान

(पुष्ठ ३७६ के सम्मुख)

तैंतीसवां अध्याय

शोथ रोग

दोषज शोथ—

पञ्चकर्म, रोग और अभोजन से कृश एव दुर्बल लोगो द्वारा क्षार अम्ल तीक्ष्ण उष्ण गुरु पदार्थों का सेवन, दही, अपक्व भोजन, मिट्टी, शाक, विरुद्ध भोजन, दुष्ट भोजन, गरविष, बवासीर, निश्चेष्टा, शोधन के योग्य होने पर भी अशोधन, दोषों द्वारा मर्मो (हृदय आदि) मे विकार, गर्भपात एव पञ्चकर्म का गलत प्रयोग या पञ्च कर्म के बाद गलत उपचार ये निज (दोषज) शोथ के कारण है। इसमे दाह और पीडा कुछ कम रहती है।

आगन्तुज शोथ—

भिलावा, केवाच आदि विषैली वस्तुओ या इनकी हवा का स्पर्श, विषैले प्राणियो के शरीर मल-मूत्र, नख, दात या इनकी हवा का स्पर्श, समुद्री वायु और ठण्ढी वायु का स्पर्श आदि आगन्तुज शोथ के कारण होते हैं। इसमे अत्यधिक दाह और पीडा होती है।

दोनो शोथो मे सामान्यत सूजन या अगो मे उभार, भारीपन एव सिराओ (रक्त वाहिनियो) मे पतलापन अवश्य होता है।

दोषज मे वातिक मे शोथ की अस्थिरता, त्वक शून्यता, दिन मे प्रकोप, दबाने से दब कर पुन उभर जाना, पैत्तिक मे लालिमा (आखो मे भी लालिमा) अत्यन्त दाह व पाक, प्यास, ज्वर, पसीना तथा कफज शोथ मे स्थिरता, निद्रा, रात्रि मे प्रकोप एव दबाने से दबना आदि विशिष्ट लक्षण होते हैं।

दोषज शोथ की चिकित्सा— इसमे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखें।

१ — रोग के उपद्रव स्वरूप शोथ हो तो साथ ही मूल रोग की चिकित्सा अवश्य करें। याद रक्खें, अतिसार और ग्रहणी विकार मे शोथ उत्पन्न होना असाध्य लक्षण है।

२—मल शुद्धि की ओर खूब ध्यान दें। मूत्र भी अधिक निकलना चाहिये। दोषानुसार विरेचनार्थ औषधिया विरेचनाधिकार मे लिखी है। उनका प्रयोग करे।

३—पथ्यापथ्य पर विशेष ध्यान दे। नमक का तनिक भी व्यवहार किसी प्रकार न हो। चिकने पदार्थ घी तैल आदि भी हानिकारक है। यदि काम न चले तो तनिक सा घी छौकने बघारने के काम मे ले सकते है। गाय और बकरी का दूध सर्वश्रेष्ट पथ्य है। भैंस का दूध न दें। सभी रसदार और गूदे दार पर सुपाच्य फल परवल, करैला, पत्र शाक, गाजर, पपीता, मूली, सूरन, गेहू, जौ, पुराना अरवा चावल, सोठ, आटी, मट्टा और मधु पथ्य है। मूग, मसूर, अरहर, कुलथी की दाल भी दी जा सकती है। पुर्ननवा (गदह पुरना) और काकमाची (मकोय) का शाक विशेष हितकारी है। पाण्डु और उदर रोग का पथ्यापथ्य भी शोथ मे लागू हो सकता है।

सामान्य औषधियाँ —

काष्ठौषियो मे पुनर्नवा (गदहपुरना) और मकोय को न भूलें। यथा सम्भव इन दोनो का अथवा एक की व्यवस्था अवश्य करें। इनका स्वरस अधिक लाभ करता है। पर वह कुछ शीतल होने से कास-श्वास भी कर देता है। ऐसा होने पर उसे उष्ण कर ठण्डा कर मधु मिला कर दें। मधु न मिले तो उष्ण ही दें। मधु मिलाने पर भी कास श्वास बढे तो काढा बनाकर दें। पीने के लिये भी पानी के स्थान पर इनका अर्क या काढा दें। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी औषधि के अनुपान या स्वतन्त्र और पथ्य के रूप मे इनका व्यवहार अवश्य होना चाहिये। चाहे किसी दोष या रोग के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न शोथ है।

रसौषधियो मे लौह या मण्डूर को न भूलें।

इन्ही उपर्युक्त लौह या मण्डूर और पुनर्नवा या मकोय के साथ दोष का विचार करते हुये निम्नलिखित औषधि का व्यवहार करें :—

वातिक शोथ मे दशमूल क्वाथ और सोठ।

पैत्तिक शोथ मे :—निशोथ और परवल की पत्ती का क्वाथ, पित्त पापडा या नीम छाल अथवा त्रिफला का क्वाथ

कफज शोथ मे —सोठ, आर्द्रक, पीपर मे से किसी एक का चूर्ण। गोमूत्र भी लाभ करता है।

पुनर्नवादि मण्डूर ३ रत्ती या शोथकालानल रस एक रत्ती या दुग्धवटी १।२ रत्ती या पाण्डु प्रकरण मे उल्लिखित किसी लौह या मण्डूर को पुनर्नवा और

मकोय के रस मे दें। उपर्युक्त दोपोक्त औपधियो पर ध्यान दें। दुग्धवटी का उत्तम अनुपान गोदुग्ध है। इस दुग्ध मे पुनर्नवा पका दे।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ

गदहपुरना, नीम की छाल, परवल पत्ती, सोठ, कुटकी, गुरुच, देवदारु का बुरादा और हर्रा मे से प्रत्येक को चार-चार आना भर लेकर पाव भर पानी मे पका कर ४ तोला शेप रहने पर ६ माशा मधु मिलाकर पीयें, यह एक मात्रा है। यह शोथ नाशन के लिये सर्वश्रेष्ठ क्वाथ है। सम्भव हो तो इसे स्वतन्त्र या अनुपान स्वरूप से व्यवहृत कर सकते हैं। दिन रात मे जितनी मात्रायें (अधिकतम चार मात्रा) पिलानी हो सबको उपर्युक्त अनुपात से इकट्ठा ही बनाया जा सकता है। यह उदर रोग, पाण्डु, श्वास और पार्श्वशूल युक्त शोथ मे भी लाभदायी है। भैपज्य रत्नावली का पथ्यादि (हर्रा, हल्दी, भारगी, गुरुच, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदारु और सोठ का क्वाथ) भी उदर, हाथ, पैर और मुख की शोथ को अविलम्ब नाश करता है।

भोजनोत्तर पुनर्नवाद्यरिष्ट या पुनर्नवासव मे से किसी एक का व्यवहार डेढ तोला की मात्रा से सम जल मिलाकर ले सकते हैं। सूजन पर गरम गोमूत्र या पुनर्नवा और नीम की छाल के गरम काढा से सिंचन करने से भी लाभ होता है। पुनर्नवा, देव दारु, सोठ, सहिजन और सरसो को किसी अम्ल रस मे पीस कर गरम लेप भी किया जा सकता है। पुनर्नवाद्य तैल या शुष्कमूलाद्य तैल का मर्दन भी लाभकारी[1] है।

आगन्तुक शोथ की चिकित्सा :—

इसमे आघात, विषैले पदार्थों आदि के स्पर्श आदि मूल कारणो की भी चिकित्सा अनिवार्य है। चोट पर हल्दी, प्याज, मुसब्बर आदि का लेप करना चाहिये। भिलावे, केवाच या विपयुक्त कीटो के स्पर्श से हुये शोथ पर शतधौत घृत या शतधौत मक्खन लगाने से तत्क्षण लाभ होता है। यदि इसमे थोडा कपूर और तिल पीस कर मिला दिया जाय तो उत्तम है। गोदुग्ध मे पीसी तिल्ली का लेप भी लाभ करता है। मुलहठी भी इसमे पीस दी जाय तो उत्तम है।

आगन्तुक शोथ मे पथ्यापथ्य कारण के अनुसार होना चाहिये। दूध और फलरस अधिक हितकारी है। साधारण अवस्था मे दोपज शोथ का पथ्यापथ्य चल सकता है।

असाध्य लक्षण —

किसी रोग के उपद्रव स्वरूप न उत्पन्न हुआ (स्वतन्त्र) शोथ पैर से प्रारम्भ

---

१ श्लेष्मज शोथ में तैल मर्दन न करें। आज तक बिना तैल मर्दन के ही हमने शोथ नष्ट किये हैं। शोथ नष्ट होने पर सामान्य तैलमदन की आवश्यकता पड़ने पर इन तैलों का व्यवहार किया जा सकता है।

होने पर पुरुष को, मुख से प्रारम्भ होने पर नारी को और गुप्त स्थान से प्रारम्भ होने पर दोनो को मार देता है। यह स्मरणीय है कि दोषज स्वतन्त्र शोथ बहुत कम मिलता है।

विशेष उपद्रव—

वमन, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार और दुर्बलता ये शोथ के सात उपद्रव हैं इनसे युक्त शोथ असाध्य होता है।

———

चौतीसवां अध्याय

वृद्धि, गलगण्ड, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद

वृद्धि —

इसका तात्पर्य अण्डकोष वृद्धि से है। कुछ ग्रन्थो मे इसी को व्रघ्न कहा गया है। यह वायु, पित्त, कफ, रक्त, चर्वी, मूत्र और अन्त्र के कारण होती है। सबमे मूल कारण वायु ही है। वातजा मे वायु से भरी मशक के समान स्पर्श एव अकारण पीडा होती है। पैत्तिक मे दाह, उष्णता, पाक से युक्त एव लाल अन्ड कोष होता है। कफजा मे अन्डकोष भारी, खुजली युक्त, कठिन, और अल्प पीडा वाला होता है। रक्तजा मे अण्डकोष काले फफोलो से व्याप्त और पित्तजा के लक्षणो से युक्त होता है। मेदोजा (चर्वी से उत्पन्न) मे कफ के लक्षण मिलेगें पर यह कोमल होगी। मूत्रजा मे मूत्र भर जाने मे जल भरी हुई मशक के समान अण्डकोष होता है। अन्त्रजा मे वृहदन्त्र का एक खण्ड, जिसे अन्त्रपुच्छ या उपान्त्र कहते है, अण्डकोष मे आ जाना है।

इन सातो अण्डवृद्धियो मे वातजा मूत्रजा और अन्त्रजा प्राय मिलती हैं। इस लिये इन पर अधिक प्रकाश डाला जायगा।

वातजा —

इसमे प्राय एक (कभी-कभी दोनो) अण्डकोष अकस्मात् फूल जाता है और अकस्मात् पिचक जाता है। बच्चो मे आसानी से देखा जा सकता है। बडो मे विशेषतः युवको (२० वर्ष मे ४२ वर्ष तक) मे भी मूत्रजा वृद्ध के पूर्व देखा जा सकता है। इसकी चिकित्सा मे एरण्ड तैल २ तोला से युक्त उष्ण गोदुग्ध प्रतिदिन प्रातः

पीयें। या लहसुन दो तोला के कल्क और आध मेर जल से पका हुआ गोदुग्ध आध सेर प्रतिदिन प्रातः पीयें। अथवा शुद्ध गुग्गुल ४ मा० एक तोला एरण्ड तैल और आध पात्र गोमूत्र प्रतिदिन दो बार पीयें। इन तीनो उपचारो से ५-७ दिन मे ही लाभ होगा। पर एक मास तक सेवन करना चाहिये। साथ ही एरण्ड तैल और दशमूल क्वाथ या नारायण तेल की वस्ति भी लेनी चाहिये।

रस सिन्दूर १।२ रत्ती, मृगशृ ग भस्म २ रत्ती, शुद्ध कुचिला १ रत्ती, सब मिला कर एक मात्रा के हिसाब से प्रति दिन ३ बार तीन सप्ताह तक घृत से लेने से बडा लाभ होता है।

अन्डकोषो मे शूल —

प्रायः अण्ड कोषो मे शूल हो जाया करता है। इसमे बकरी के दूध मे गेंहूं पीस कर कुछ गरम-गरम लेप करने से लाभ होता है यदि कुछ (२-४-६ रत्ती) अफीम इसमें मिला दिया जावे तो उत्तम है।

मूत्रजा वृद्धि —

यह प्राय २० वर्ष से ४० वर्ष तक की आयु मे होती है। पाश्चात्य भाषा मे इसे हाईड्रोसील कहा जाता है। यद्यपि फोता बढना या अण्डकोष वृद्धि सोतो वृद्धियो का नाम है पर फोता बढने से जनसाधारण इसीको समझ बैठते है। चिकित्सको को इस भ्रम मे सावधान रहना चाहिये। इसकी चिकित्सा शल्यकर्म (आपरेशन) द्वारा सरल है। भ्रम मे वातजा वृद्धि की चिकित्सा कर सकते हैं। पर बाद मे बिना आपरेशन के लाभ नही।

अन्त्रजा वृद्धि —

यद्यपि हार्निया किसी भी अग के स्वस्थान मे च्युत होकर छिद्र द्वारा बाहर निकलने को कहते है। पर यह नाम लोक मे अन्त्रजा वृद्धि या अन्त्रवृद्धि के लिये ही प्रचलित है। क्योकि अधिकाश अन्त्र की ही च्युति होती है। इसमे बृहदन्त्र (बडी आत) का उपान्त्र या अन्त्रपुच्छ नामक एक खण्ड अण्ड कोषो मे आ जाता है। रोगी असह्य पीडा से तडपता है। पुनः जब अनुभवी लोगो द्वारा दबा कर अण्ड कोषो मे अपने स्थान पर वापस कर दिया जाता है तो आराम हो जाता है। ऐसा बारम्बार होता रहता है। जिससे बचने के लिये कुण्डल बन्धनी या पेटी Truss धारण करना पडता है यदि उपान्त्र अण्डकोषो मे मुड गया तो भगवान ही रक्षक है।

---

१ पित्तजा और रक्तजा में चन्दन मुलहठी, कमल और खस का गोदुग्ध में पीस कर लेप करे या प च वल्कल (बरगद गूलर, पीपल, पकड़ी और पारस पीपल की छाल (को गोदुग्ध में पीस कर घी मिला कर लेप करें। पारसी पीपल न मिलने पर सिरिस की छाल लें। साथ में विचार कर पित्तनाशक अन्य क्रम भी कर लें तो उत्तम है और कफजा और मेदोजा में वच सरसों को जल मे पीस कर कुछ गरम लेप करें। साथ त्रिफला का काढा गोमूत्र डाल कर पिलाये।

इसकी चिकित्सा मे नित्य कोष्ठ शुद्धि होना आवश्यक है। इसके लिये एरण्ड तैल उष्ण दूध मे पीना सर्वश्रेष्ठ है। प्रारम्भ मे वातजा वृद्धि की चिकित्सा की जा सकती है। यदि शल्य कर्म करा ले तो सबसे उत्तम है।

सभी वृद्धियो पर सामान्य औषधिया —वृद्ध वाधिका वटिका ४ रत्ती जल से या वातारि रस (वृद्धि रोग) ४ रत्ती की मात्रा से सोठ युक्त एरण्ड की जड के क्वाथ से सेवन करने से अत्युत्तम लाभ होता है।

वृहत्सैन्धवाद्य तैल (वृद्धि रोगोक्त) की अनुवासन वस्ति भी हितकारी है।

पथ्य —

पुराना अरवा चावल, गेहूँ, जौ, मूग, अरहर, मसूर, सहिजन, परवल, गुलर, करैला, लहसुन आदि शराव, मट्ठा, गोदुग्ध, घी, उष्ण जल, वकरा, हरिण, खरगोश का मास ये सव पथ्य हैं पर सुपाच्य हैं।

अपथ्य —अजीर्ण, वेगावरोध, (मल मूत्र वायु का वेग रोकना) और गरिष्ठ पदार्थ अपथ्य हैं अन्त्र वृद्धि वाले मैथुन, व्यायाम और अधिक मार्गगमन पैदल न करें।

गलगण्ड (घेंघा) गण्डमाला

गलगण्ड एक अति प्रसिद्ध और प्रचलित रोग है। जिसमे गले मे वाहर की ओर वडी या छोटी टिकाऊ सूजन हो जाती है। रोगी को सामान्यत[१] पीडा विशेप नही होती। हा उसका सौदर्य नष्ट हो जाता है। साधारणत यह अच्छा नही होता। पर प्रयत्न करने के लिये निम्नलिखित कोई औषधि खिलायें।

१—चावल के पानी मे पीस कर निकाला हुआ कचनार की छाल का स्वरस प्रति मात्रा दो तोला मे सोठ चूर्ण २ माशा डालकर दो तीन वार खिलायें।

२—अमलतास की जड को चावल के पानी मे पीस कर रस निकाल कर दो तोला की मात्रा से मधु डाल कर पिलायें।

३—जलकुम्भी, सेंधा नमक, पीपर का समभाग चूर्ण एक तोला की मात्रा से उष्ण जल मे पिलायें।

४—मण्डूर को भैंस के मूत्र मे एक मास तक रख कर उसका पुट देकर भस्म वना लें। यह भस्म २ रत्ती की मात्रा से मधु से खिलायें।

५—सुप्रसिद्ध कान्चनार गुग्गुल एक माशा की मात्रा से ३ वार गोरखमुन्डी या खैरसार अथवा हर्रा के क्वाथ से सेवन करें।

---

१ हजारो में दो एक रोगी को कुछ पीड़ा और खुजली भी होती है।

निम्नलिखित औषधियो में से कोई लेप करें

१—सरसो, सहिजन का बीज, सन का बीज, तीसी, जौ और मूली का बीज प्रत्येक बराबर खट्टा मट्ठा या खट्टा दही मे पीस कर कुछ गरम लेप करे। सबमे प्रयुक्त हो सकता है। पर नये मे विशेष लाभकारी है।

२—देवदारु और इन्द्रायण की जड को जल मे पीस कर उष्ण लेप करें।

३—बडे पत्ते वाले (अभाव मे साधारण) पलास की जड, चावल के धोवन मे पीस कर लेप करें।

४—लाल (अभाव मे साधारण) एरण्ड की जड को चावल के धोवन मे पीस कर लेप करें।

उपर्युक्त प्रयोग के साथ निम्नलिखित कोई नस्य ले तो अधिक लाभ होगा —

१—कायफल का चूर्ण[1] २—सिहोर की छाल के कल्क और क्वाथ से सिद्ध सरसो का तेल, ३—निम्ब तैल, कडुई तरोई, तितलौकी और गजपीपर का चूर्ण इनमे से किसी एक मे मधु मिला कर।

गण्डमाला और अपची[2]

गण्डमाला या कण्ठमाला सुप्रसिद्ध है। इसमे गले मे बाहर की ओर फोड़े निकलते हैं। एक उत्पन्न होता है, दूसरा पकता है, तीसरा सूखता है। इस प्रकार वर्षों क्रम बना रहता है। सावधानी से चिकित्सा न करने पर रोगी क्षीण होता जाता है। इसे पाश्चात्य भाषा मे ग्लैन्ड्स टी० बी० या ग्रन्थियों का क्षय कहते हैं। इसमे निम्नलिखित कोई औषधि खिलाये —

१—कचनार की छाल के क्वाथ एक छटाक मे सोठ दो आना या चार आना भर डाल कर २—वरुण की जड का क्वाथ एक छटाक मधु डाल कर, ३—लज्जावन्ती का रस २ तोला, ४—इन्द्रायण की जड को गोमूत्र मे पीस कर निकाला हुआ स्वरस दो तोला, ५—श्वेत अपराजिता को गोमूत्र में पीस कर निकाला हुआ स्वरस २ तोला। ६—गोरखमुन्टी के पत्तो का स्वरस २ तोला। ७—पीपर का चूर्ण ६ माशा मधु ८ माशा। ८—गलगण्ड मे खायी जानेवाली औषधि नम्बर ५।

निम्नलिखित कोई लेप करें

१—गलगण्ड का लेप १,२—अमलतास की जड को चावल के धोवन मे पीस

---

१ इस चूर्ण को गलगण्ड पर रगड़ने से एव इसे मधु में मिला कर गले के भीतर जिह्वा मूल पर लगाने से भी लाभ होता है।

२ गण्डमाला की विकृत अवस्था अपची है।

कर ३ सफेद अपराजिता की जड को गोमूत्र मे पीस कर। ४—सहिजन की छाल और देवदारु को काजी मे पीस कर।

निम्नलिखित कोई नस्य लें —सिहोर की छाल के क्वाथ और कल्क से सिद्ध सरसो का तैल, २–म्यौडी के पत्ते का रस और कलिहारी के विप के कल्क से सिद्ध सरसो का तैल, ३–कुन्दरु, कनेर और म्यौडी के क्वाथ एव कल्क से सिद्ध सरसो का तैल[१]।

पथ्य :—

गलगण्ड और गण्डमाला का पथ्यापथ्य पूर्वोक्त वृद्धि के समान ही है। पर इसमे रूक्ष पदार्थं कोदो, वाजडा आदि विशेष खिलायें। दूध की आवश्यकता हो तो वकरी का दूध दे, भैंस का दूध और घी न दे। क्षीणता मे धातुपात से वचें।

ग्रन्थि और अर्वुद

शरीर मे कही बढे हुए दोपो द्वारा गाठदार प्राय न पकने वाली गोल और ऊँची सूजन हो जाती है। इसके भीतर एक थैली के भीतर दोप सञ्चित होता है। शल्य कर्म द्वारा थैली सहित दोप निकाल लिया जाता है। शल्य कर्म मे थैली फट या कट जाने पर वहा से दोष निकल जाता है और थैली पचक जाती है फिर इस थैली को शरीर से पृथक करने मे कुछ कठिनाई पडती है। इसे अधिकाश चिकित्सक पाश्चात्य भाषा मे सिस्ट और इस कोप को कैपस्यूल कहते हैं। ग्रन्थि के समान ही दोपो, दूष्यो एव लक्षणो से युक्त अर्वुद होता है। अधिकाश पाश्चात्य चिकित्सक इसे ट्यूमर कहते हैं। ग्रन्थि की अपेक्षा इसकी जड गहरी होती है। यह अपेक्षा कृत वडा होता है। इन दोनो मे दोप वात, पित, कफ, और दूष्य रक्त, मास, मेदा होता है। इनकी चिकित्सा मे हमारी प्रगति नही के वरावर है। इसलिये अधिक प्रकाश न डाल कर केवल निम्नलिखित लेप लिख रहे हैं :—

१—हल्दी, लोध, घर का धूआ और मैंनसिल का चूर्ण मधु मे मिला कर लेप करे।

२—मूली और हल्दी की भस्म एव शख चूर्ण का लेप करे।

१—सहिजन का वीज, मूली का वीज, तुलसी का वीज, सरसो, जौ और कनेर की जड को तक्र, मे पीस कर लेप करें।

उपर्युक्त लेपो मे से किसी एक का प्रयोग करे। कितना लाभ होगा कहा नही जा सकता। प्रारम्भ मे ग्रन्थि पर स्वेदन और व्रण शोथ नाशक लेप (तूतमलगा,

---

१ इस तेल को पीये नहीं, नस्य के द्वारा दो चार वूद तेल गले के नीचे उतर जाय तो कोई हानि नहीं।

नालुका आदि व्रण को बैठाने वाले) भी करें तत्पश्चात् उपर्युक्त लेप करें। न लाभ होने पर शल्य क्रिया द्वारा ठीक करे। पथ्य श्लीपद के अन्त मे देखें।

श्लीपद

शिला अर्थात् पत्थर के समान कठोर एव भारी पद होने से श्लीपद और फील (हाथी) के समान भारी एव मोटा पाव होने से इसे फीलपाव या हस्तिपाद कहते हैं। इसी दृष्टिकोण से इसे एलीफाईन्टिस भी कहते हैं। कीटाणु के दृष्टिकोण से इसे फाइलेरिया कहते हैं। यह अति प्रसिद्ध रोग है। इसमे लसीका वाहिनियो मे अवरोध हो जाता है जिससे वक्षण (पेडू और जाघ की सन्धि) मे स्थित ग्रन्थि मे शोथ के साथ ज्वर और अगो मे पीडा होती है। पैर मे सूजन, कठोरता और भारीपन हो जाता है। सूजन प्राय बनी रहती है पर उसके प्रकोप का दौरा हुआ करता है। जिससे हर दौरा के समय ज्वरादि हो जाया करता है। बहुत धीरे २ बढता है। पर प्रायः जीवन भर टिकाऊ होता है। उत्तम चिकित्सा और सुदृढ पथ्य व्यवस्था से बहुत लाभ होता है। पर प्राय जड नही जाती। लसीका वाहिनियो मे अवरोध होने से लटकने वाले अगो मे लसीका का विशेष सचय होता है। इस लिये यह प्राय पैरो मे ही होता है। उसके बाद अण्डकोषो और हाथो का भी नम्बर आता है। नाक कान योनि मे भी क्वचित् देखा जाता है। इससे अधिक लोग परिचित हैं इसलिये लक्षणो और भेदो पर प्रकाश न डाल कर चिकित्सा लिखेगें।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखें—

१—कफ को क्षीण करने का सर्वोपरि प्रयत्न करें। इसके लिये लघु, रूक्ष, कटु और उष्ण आहार करें।

२—लघन (उपवास) यथा सम्भव करें। पर यह अधिक दिन तक सम्भव नही है इसलिये भोजन लघु और कम मात्रा मे काम चलाने के लिये ही करें।

३—दूध, घी, मेवा आदि पुष्टिकारक पदार्थ न सेवन करें।

अत्यन्त अधिक दौर्बल्य मे काम न चलने पर सोठ या पीपर पका कर बकरी का दूध लिया जा सकता है।

४—नित्य कोष्ठ शुद्धि होती रहे इसके लिये कभी-कभी विरेचन ले लेना श्रेयस्कर है।

५—यदि सम्भव हो तो रुग्ण अग की जड यथा पैर मे होने पर वक्षण एव हाथ मे होने पर काख मे रक्त मोक्षण करायें।

६—जो दोष उग्र हो उसको नाश करने वाली औषधि भी मिला कर दें। पर याद रखें कफ नाशक उपाय या औषधि साथ मे अवश्य होगी।

वातिक व श्लैष्मिक के उपाय प्राय समान ही है। वातिक मे थोडा स्नेहन की आवश्यकता पडती है। आवश्यकता पड़ने पर वहा पीने के लिये एरण्ड तैल एव लगाने के लिये पुरातन घृत का प्रयोग करें, कफ वढ न सकेगा। पैत्तिक मे कान्जी का प्रयोग करें। शेष औषधिया साधारण ही रहेगी।

निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक का अथवा सयुक्त का व्यवहार करें।

१—सिहार की छाल के काढे मे गोमूत्र डाल कर न्यूनतम दो मास तक पीये। २—दो तोला एरण्ड तैल, दो तोला हर्रा चूर्ण पाव भर गोमूत्र दिन रात मे एक वार पीयें, इससे दस्त होता है। एक सप्ताह के वाद मात्रा आवश्यकतानुसार कम कर एक मास तक पीये। ३—एक तोला हल्दी और दो तोला गुड काजी के साथ सेवन करे। ४—एरण्ड तेल मे भूजा हर्रा ३ माशा की मात्रा से गोमूत्र के साथ सेवन करें। ५—पान का कल्क ६ माशा गरम जल से पीने से लाभ होता है।

नित्यानन्द रस ३ र० की मात्रा से शीतल जल से वडा लाभ करता है। यदि इसका अनुपान सिहोर की छाल का काढा कर दिया जाय तो अत्युत्तम है। सम्भव हो तो इसी मे गोमूत्र भी मिला दें। इसे अधिकतर वैद्य लोग व्यवहार करते हैं। पिप्पल्यादि चूर्ण १ मा० काजी से, श्लीपद गजकेसरी १ र० उष्ण जल से भी लाभदायी है।

निम्नलिखित लेपो मे से किसी एक को उष्ण कर लगावें।

१—सोठ सरसो और पुनर्नवा को गोमूत्र मे पीस कर।

२—सफेद मदार की जड काजी मे पीस कर।

३—सोठ पुनर्नवा और राई को गोमूत्र मे पीस कर।

४—धतूर की जड, एरण्ड की जड़, म्यौडी, गदहपुरना, सहिजन की छाल और राई को पानी मे पीस कर।

पथ्य —मधु सर्वोच्च पथ्य है, पुराना अरवा साठी चावल, जौ, कुलथी, परवल, भण्टा, सहिजन, करैला, आर्द्रक, मिर्च, लहसुन, मूली, सूरन, पपीता, वथुआ, चौराई, पुनर्नवा आदि पथ्य है। दूध विना किसी तरह काम न चलने पर वकरी का दूध सोठ पका कर ले सकते है।

अपथ्य —सभी कफकारक यथा गुरु, मधुर (मधु को छोडकर), लसीला और अभिष्यन्दी पदार्थ यथा उर्द, घी, दूध, गुड, चीनी, खोवा, भैंस का दूध, विन्ध्याचल और सह्याद्रि पर्वत से निकली नदियो का जल आदि अपथ्य है।

चौतीसवां अध्याय

उपदंश, फिरंग और पूय मेह

उपदंश (ध्वजभंग), फिरंग (गर्मी, आतशक या सिफलिस) और पूय मेह (सोजाक या गोनोरिया) ये तीनो रोग मैथुन से सम्बन्ध रखने वाले है, इस लिए इन्हे मैथुनजन्य, कामजन्य रोग या यौन रोग कहते है। चिकित्सा करने के पूर्व इनका अलग अलग निदान अवश्य समझ लेना चाहिये।

उपदंश[1]—उपदंश मे प्राय लिंग मे दंश (व्रण) हो जाते है। बाद मे उनमे पाक होने पर पूय पड जाती है। व्रणो मे दाह एवं पीडा विशेष होती है। खुजली भी होती है। वंक्षण (पेडू और जांघ की सन्धि) ग्रन्थि (बाघी अर्थात् फोडा) भी कभी-कभी निकल आता है। इन अंगो के अतिरिक्त सर्वांग मे कुछ रोग नहीं होता पर जीर्ण उपदंश मे सर्वांग मे शीतला जैसे दाने निकलते हैं। किसी-किसी रोगी को लिंग के भीतर प्रारम्भिक भागो मे भी होता है। पर बाहर की ओर अधिकांश होता है कभी-कभी अनेक व्रण न होकर एक ही व्रण या शोथ हो जाता है। रोग मे पाक होने पर यदि त्वरित चिकित्सा न हुई तो सड कर लिंग अण्ड या भग नष्ट हो जाते है।

यह रोग दूषित (अस्वच्छ, अधिक या नोकीले बाल से युक्त, शुष्क, ऋतिकाल मे मैथुन से रहित) और रोग से पीडित योनि मे मैथुन करने, अतिमैथुन, ब्रह्मचर्य और और अस्वच्छता से होता है। याद रखिये कि यह रोग बिना स्त्री प्रसंग के भी होता है।

फिरंग — यह रोग सर्वप्रथम अपने देश के लोगो को फिरंगिनी (पुर्त्तगाल की स्त्री) के संसर्ग से हुआ। ऐसा भाव प्रकाश का मत है। उसके पूर्व के ग्रन्थो मे इसका नाम नही मिलता। अब तो यह अति प्रसिद्ध और व्यापक हो गया है। इस रोग

१ उप का अर्थ समीप होता है। योनि या लिंग के समीपस्थ दंश को उपदंश कहते हैं शास्त्रों में लिंग में होने का अधिकतर निर्देश हैं। पर स्त्रियों की भग में भी यह होता है।

लिंग पर उपदंश

भगोष्ठों पर उपदंश

मे ग्रसित रोगी के साथ मैथुन करने से ही यह होता है। अन्य कारण से नही। प्रारम्भ मे केवल प्रजनन सस्थान (विशेषत योनि और लिंग) पर ही रोग का आक्रमण होता है बाद मे समस्त शरीर आक्रान्त हो जाता है। नेत्र रोग, आमवात, मृगी, उन्माद और कुष्ठ तक हो जाता है। एक ही पीढ़ी नही कई पीढियो तक इस रोग या इससे होने वाले अन्य रोगो की परम्परा बनी रहती है।

इसमे लिंग, योनि या भग मे बाहर या भीतर व्रण होता है। जिसमे दाह पाक खुजली होती है, पूय निकलता है। पेशाब करने मे कडक या कष्ट और जलन होती है उसके साथ या उसके बिना मूत्र मार्ग से पूय निकलता है स्त्रियो को योनिमार्ग से भी पूय निकलता है। आगे चल कर शरीर मे अन्यत्र दाने या व्रण या फफोले होते हैं।

पूय मेह —यह रोग दूषित या रोग ग्रस्त योनि मे ससर्ग के बिना नही होता। इससे मूत्रमार्ग या योनिमार्ग और गर्भाशय मे व्रण हो जाता है। जिसमे दाह पाक होता है। परिणामत. पूय आने लगता है। पेशाब मे कडक (कष्ट) भी होता है। इस रोग मे प्रजनन सस्थान के भीतर ही व्रण होता है। शरीर मे बाहर कही नही होता। पर पूय के किसी प्रकार आख मे लग जाने से भयानक नेत्राभिष्यन्द (नेत्रो मे ललाई, उष्णता और असह्य पीडा) तथा नाक मे लग जाने से भी कष्ट होता है। शरीर के भीतर ही इसका विष स्नायुओ, सन्धियो, हृदय और मस्तिष्क मे शोथ उत्पन्न कर नाना प्रकार का कष्ट देता है। इस रोग या इसके उपद्रव की परम्परा भी कई पीढियो तक चलती है।

पूय मेह नाम पडने पर भी प्रमेहो मे इसकी गणना नही करनी चाहिये। प्रमेह और पूय मेह मे सबसे बडा अन्तर यह होता है कि वह दोषज है। भीतर से उत्पन्न होता है और यह आगन्तुज है। बाहर से आता है। प्रमेह का सम्बन्ध धातुओ से पहले ही हो जाता है। इसका धातुओ से बाद मे सम्बन्ध होता है।

अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात भी दोषज हैं। भीतरी कारणो से होते हैं। हजारो मे एक मूत्रकृच्छ्र चोट लगने से भी होता है। अब तीनो का सक्षिप्त अन्तर यो समझिये.—

उपदंश	फिरंग	पूयमेह
१—बिना स्त्री ससर्ग के भी होता है।	१—स्त्री समर्ग के बिना नही होता।	१—स्त्री ससर्ग बिना नही होता।
२—लिंग और भग के समीप व्रण होता है।	२—सर्वांग मे व्रण होता है।	२—लिंग या भग के भीतर व्रण होता है।

१ जीर्ण होने पर समस्त शरीर में शीतला के से दाने निकलते हैं।

३—पीढियो तक परम्परा नही चलती ।	३—पीढियो तक परम्परा चलती है ।	३—पीढियो तक परम्परा चलती है ।
४—व्रण या शोथ और तज्जन्य सडन के अतिरिक्त अन्यान्य मृगी, कुष्ठ आदि रोग नही होता ।	४—अन्यान्य रोग भी उपद्रव स्वरूप होते हैं	४—अन्यान्य रोग भी उपद्रव स्वरूप होते हैं ।
५—दाह और कडक कम होती है ।[1]	५—दाह और कडक अत्यधिक होती है ।	५—दाह और कडक अत्यधिक होती है ।
६—भीतर से पूय कम निकलता है ।	६—भीतर से भी पूय निकलता है ।	भीतर से पूय निकलता है ।

उपदंश, फिरंग और पूय मेह का चिकित्सा सूत्र

१—मैथुन करने के बाद लिंग या भग मे तनिक भी जलन, खुजली या कडक मालूम हो तो तुरन्त उसे धोकर स्वच्छ कर लें । सम्भव हो तो क्रिमिनाशक घोल यथा नीम की पत्ती का काढा, कनेर की पत्ती का काढा या फेनाइल युक्त जल से धोयें । अभाव मे गरम जल से भी धो सकते हैं यह याद रक्खें मैथुन के अधिकतम एक घण्टा के भीतर ही स्वच्छता आवश्यक है ।

२—साधारण स्नेहन, स्वेदन करा कर विरेचन करा दे विरेचन मे न्यूनता न हो । प्राण सकट या अन्यान्य अतिविरेचन के उपद्रवो को वचाते हुए गहरा विरेचन करायें इसमे जयफल के योगो से विरेचन अधिक लाभ दायी होता है ।

३—मूत्रल औषधियो का व्यवहार करें, इसके लिये निम्नलिखित मे से किसी एक का प्रयोग करें:—

क.— कलमी शोरा ५ र०, राई ५ र०, मिश्री २ माशा का चूर्ण जल से दिन रात मे २ या ३ वार दें ।

ख —गेंदे की पत्ती २ तोला पानी मे पीस कर छान कर चीनी या मिश्री दो तोला मिला कर २-३ वार पिलायें ।

ग —मूली के पत्ते का स्वरस आधा सेर मे दो माशा कलमी शोरा मिला कर पिला दें ।

पथ्य मे कच्चा गो दूध मे वरावर पानी मिला कर खूब पिलायें दिन रात मे आधा सेर से लेकर डेढ सेर तक दूध का व्यवहार हो सकता है ।

---

१ रक्तज और पित्तज में दाह भी होता है ।

४—मूत्र रुकने या उसमें कडक होने पर उपर्युक्त किसी मत्रल औपधि का व्यवहार अवश्य करें। इसके अतिरिक्त चन्दन का इत्र १० बूंद चीनी या मिश्री मे मिला कर दिन रात मे दो वार तक दे सकते है।

मूत्रमार्ग मे तनिक सा कपूर या कलमी शोरा रखने से भी मूत्र उतरता है। पर केवल इसके भरोसे न रहे।

निम्नलिखित कोई लेप पेडू और नाभि पर कर सकते हैं—

क—कलमी शोरा एक तोला, चूहे की लेडी २ तोला पानी मे पीस कर गरम कर।

ख—पलाश का फूल पानी मे पीस कर गरम कर।

ग—सफेद कोहडे मे (अभाव मे हरे या पीले कोहडे) का बीज पानी मे पीस कर गरम कर।

घ—रेवन्दचीनी एक तोला और सौंफ एक तोला को पानी मे पीस कर।

ङ—रोगी को गरम पानी मे इस प्रकार बैठाये जिसमे उस का पेडू तक शरीर डूबा रहे।

५—लिंग या भग पर सूजन होने पर :—

उस पर नीम की पत्ती का काढा की भाप ले। काढा की उष्णता सहने योग्य गरम काढे मे अग को डुवाये रहे।

याद रखें, न्यूनतम एक घण्टा तक अगो का सेक करना चाहिये। ७-८ दिन ऐसा करने पर भयानक सूजन भी घट जाती है।

६—वाहर के व्रणो पर —

नीम की पत्ती या कनेर की पत्ती के अथवा खैरसार के काढे से धोये और सेक प्रतिदिन दो या तीन वार करें।

निम्नलिखित कोई मलहम लगायें :—

क—त्रिफला की का काली भस्म २ भाग, मधु १ भाग मिला कर।

ख—खैर ४ भाग, सिन्दूर ४ भाग, कपूर एक भाग मिलाने भर डिठोहरी का तेल या पीली वेसलीन।

ग—रसौत २ भाग, मधु २ भाग।

घ—खैर और मोम समभाग।

ट —करन्जाद्यघृत, भूनिम्वादि घृत, जम्ब्वाद्य तेल और कोपातकी तैल मे से किसी एक को लगाने से भी वहुत लाभ होता है।

७—पिचकारी —भीनर के व्रणो मे या भीतर से पूय आने पर पिचकारी का प्रयोग करना अनिवार्य होता है। मूत्रमार्ग के लिये साधारण कान धोने की पिचकारी से काम चल जाता है। काच की वाजार मे मिलती है ध्यान रक्खें नोक पर जरा भी फूटी न हो नही तो क्षत वढेगा।

योनि मार्ग के लिये भी उपर्युक्त पिचकारी का प्रयोग हो सकता है पर इसके लिये काच के टेस्टट्यूव की वनी खास पिचकारी वडे वड़े नगरो के मेडिकल स्टोरो मे विकती है।

पिचकारी मे निम्नलिखित किसी एक द्रव्य का व्यवहार करें :—

क —त्रिफला के एक पाव क्वाथ मे अशुद्ध तूतिया दो माशा व गेरु चार माशा मिलाकर वोतल मे रखदें। इससे ५-६ वार पिचकारी लगाये।

ख —हर्रा २ माशा, रसौत १ माशा, कत्था १ माशा को डेढ़ पाव पानी मे रात मे भिगो दें। सवेरे मल कर छान कर पिचकारी लगायें।

ग —मेहदी की पत्ती ३ तो०, रसोत २ तोला, गेरु २ तोला को १ सेर या डेढ सेर जल मे क्वायकर आधा शेष रख कर छानकर वोतल मे रख दें। पिचकारी मे प्रयोग करे। इसी मे काढा करते समय नीम, नीबू और इमली की पत्ती प्रत्येक दो तोला मिला कर दे तो अत्यधिक लाभ होगा। पर प्रत्येक द्रव्य के हिसाव से काढा करते समय आधा पाव जल वढा दें।

नोट—पिचकारी के द्रव्यो मे यदि अफीम ४ रत्ती मिलादें तो कष्ट वहुत ही कम हो जाता है। यदि पेशाव मे रक्त आता हो तो फिटकिरी २ माशा या १ माशा अवश्य द्रव्य मे मिला दें। यदि द्रव्य के भीतर जाने पर छरछराहट, भीतर तेज लगना, अधिक हो तो तूतिया और फिटकिरी कम कर दें या काढा मे गरम जल कुछ अधिक मिला दें।

व्रघ्न या वाधी '—तीनो रोगियो के लक्षण पेडू और जाँघ की सन्धि मे एक फोडा हो जाता है। यदि वह नया हो और वढ़ने की सम्भावना हो तो निम्न-लिखित कोई लेप लगायें।

क—चीता की जड पानी मे पीसे कर गरमकर (यदि पानी मे न पीस कर नीवू के रस मे पीसें तो विशेष लाभ होगा)।

ख—नागफनी को वीच से चीरकर उसके चीरे हुए हिस्से पर आम्मा हल्दी का चूर्ण डाल कर गरमा कर वाध दें।

ग—वरगद का दूध लगायें।

घ—गेहूं को भेड के दूध मे पीस कर गरम कर लगायें। पीडा मे विशेष लाभदायी होता है

नोट—यदि सम्भव हो तो प्रारम्भ मे जोक लगवा कर रक्त निकलवा दें तत्पश्चात् निम्ब पत्र का कल्क बाध दें। व्रध्न न बैठे तो उसे निम्नलिखित किसी एक लेप से पका कर फोड दें या आपरेशन कर दे।

क—तीसी को पानी मे पीस कर जरा हलदी का चूर्ण मिला कर पका कर लेप करें, ऊपर से धतूरे या पान का पत्ता बाध दें।

ख—गेहूं के आटे का गरम लेप।

ग—प्याज के कल्क मे हल्दी और घी मिला कर कुछ गरम कर।

व्रध्न के फूट जाने या चीरे जाने के पश्चात् पूय अच्छी तरह निकालें और नीम या कनेर की पत्ती के काढा वा तूतिया के घोल अथवा गरम पानी से धोकर स्वच्छ कर उपर्युक्त करन्जाद्य तैल, भूनिम्बाद्य घृत और जम्ब्वाद्य तैल मे से किसी एक को लगाये। कुछ न मिलने पर कपूर मिला कर घी या मोम लगायें। केवल कनेर की सूखी पत्ती का चूर्ण घी या पीली वेसलिन मे मिला कर लगाने से भी लाभ होता है।

प्रतिदिन दो बार स्वच्छना एव मलहम आदि का प्रयोग करें —

६—खाने की औषधिया —निम्नलिखित औषधियो मे से किसी एक को खिलायें —

(क) रस शेखर १ र० या वरादि गुग्गुल ४ र० मे से किसी एक को दिन मे तीन वार त्रिफला गुरुच, नीम की छाल और परवल की पत्ती के क्वाथ से पिलायें। अत्युत्तम लाभ होगा। केवल क्वाथ ही गजब काम करता है।

(ख) मेंहदी के पत्तो का स्वरस एक छटाक, आधा छटाक मिश्री मिला कर।

(ग) गुरुच के काढे मे रेडी का तेल मिला कर पिलाये। साधारण मात्रा एक छटाक काढा मे एक तोला एरण्ड का तेल। प्रतिदिन एक बार।

(घ) गोरखमुण्डी और नीम की गुरुच प्रत्येक एक एक तोला लेकर ४ तोला पानी मे पीस कर स्वरस निकाल कर मधु मिलाकर प्रतिदिन तीन चार वार पिलाये।

(ङ) शुद्ध रस कपूर १।८ र० (एक चावल के वरावर) गुड के भीतर रख कर गोली वना लें इसे मेहदी के पत्ते के स्वरस, निम्ब पत्र क्वाथ, गुरुच क्वाथ और उष्ण जल मे से किसी एक के साथ निगल जाय। प्रतिदिन एक वार ७ या ११ दिन

तक सेवन करें। सावधान रहे। मसूढो या मुंह मे अन्यत्र न लगे। सीधे गले मे डाल कर निगल जाय।

१०—अशुद्ध रस कपूर या पारा का सेवन करने से या अनियोग मे मसूढे गल जाते हैं, दात गिर जाते है। तालू और समस्त शरीर मे छेद होने लगता है। मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।

जहाँ रस कपूर या पारा का विकार विदित होने लगे वहाँ शुद्ध गन्धक ४ रत्ती की मात्रा से प्रतिदिन ३ वार मधु से खिलायें।

कुक्कुर द्रुम (कुकरौधा) पारा या रस कपूर के दोष और उपर्युक्त तीनों बीमारियो की सभी फुन्सियो इत्यादि मे अत्युत्तम लाभ करता है। इसका स्वरस २ तोला मिश्री मिलाकर दिन रात मे ३ वार पिलायें। सारे शरीर पर केवल रस मलें। सोमराजी तैल भी मर्दन करने से लाभ करता है। मुँह में छाले आदि पडने पर वारम्वार जामुन, आम, वेर, नीम, अमरुद की पत्ती के क्वाथ से कुल्ला करें। कुल्ला करने के वाद खैर लगायें।

या जामुन, पीली कटसरैया और आवला के पत्र के क्वाथ से कुल्ला करें। कटसरैया न मिले तो परेशान न हो। या चमेली का पत्ता और त्रिफला के काढा में मधु मिलाकर कुल्ला करें।

कचनार की छाल का क्वाथ तीन चार वार पीने से भी वडा लाभ करता है।

११—चिकित्सा मे ध्यान देने योग्य वातें .—

(क) सर्वदा कोष्ठ शुद्ध करते रहे।

(ख) रक्त शुद्ध करने वाली औषधिया अवश्य दें।

(ग) पारा या रस कपूर का प्रयोग ७ या ११ दिन से अधिक न करें। इनसे होने वाली हानियों से सतर्क रहे। हानि प्रारम्भ होते ही रोक दें और तुरन्त उनका उपचार करें।

(घ) पारा या रस कपूर से भिन्न खाने वाली औषधियों का सेवन पूर्ण आरोग्य लाभ होने यहा तक कि ४-५ मास तक कराते रहे। अधिक दस्त कराने वाली औष-धियो को भले ही वीच मे रोक दें।

(ङ) इन रोगो के उपद्रव स्वरूप होने वाले रोगो मे इनका (उपदश, और फिरग पूयमेह का) ध्यान रखें इनकी भी कुछ न कुछ औषधि देते रहे।

अपथ्य :—

पूर्ण आरोग्य होने (न्यूनतम ६ मास) तक मैथुन न करें। उष्ण, अम्ल, कटु और गरिष्ठ चीजें यथा आलू, मिर्चा, खटाई, भण्टा, अरुई, उरद इत्यादि न खायें। नमक यथा सम्भव अधिकतम काल तक छोड दें। सम्भव न होने पर थोडा-थोडा सेंधा नमक व्यवहार कर सकते हैं। रोगी के वस्त्रो इत्यादि का दूसरे लोग प्रयोग न करें। नही तो वे भी पीडित हो जायेंगे।

पथ्य —

जौ, पुराना अरवा चावल, मूंग, परवल, मूली, करैला, सहिजन, गूलर, मधु, कूये का जल, हरिण कबूतर तीतर बटेर खरगोश का मास।

छत्तीसवां अध्याय

कुष्ठ एवं विसर्प

कुष्णातीति कुष्ठम् अर्थात् जो शरीर की धातुओ को नष्ट करे उसे कुष्ठ कहते हैं।

कारण —

मधु-घृत, दूध-मछली आदि विरोधी एव अधिक द्रव स्निग्ध गुरु आहार, वमन और अन्यान्य मल मूत्र आदि अधारणीय वेगो को रोकना, अत्यधिक भोजन के पश्चात् व्यायाम एव अति सन्ताप का सेवन करना, धूप, थकावट, भय से पीडित होने पर तुरन्त ठण्डा पानी का वाह्य एव आभ्यन्तरिक व्यवहार, कच्चा (अपक्व या अल्पपक्व) आहार, अजीर्ण होने पर भोजन, पञ्च कर्म मे अपथ्य, नया अन्न, दही-मछली-नमक-अम्ल का अत्यधिक सेवन, अजीर्ण मे मैथुन, दिवाशयन, ब्राह्मण-गुरु का तिरस्कार, पाप कर्म (ब्रह्महत्या भ्रूण हत्या आदि), अगम्यागमन,बेईमानी, निर्बल एव सीधेसादे लोगो का उत्पीडन आदि कुष्ठ के कारण होते हैं।

दोष-दूष्य :—

इस रोग मे वात पित्त कफ दोप और त्वचा रक्त मास लसीका दूष्य हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कुष्ठ की चिकित्सा मे इन सातो का गम्भीर ध्यान देना चाहिये। यद्यपि अलग-अलग कुष्ठो मे अलग-अलग दोप एव दूष्य की प्रधानता या अधिकता रहती है तथापि गौण (अप्रधान) या न्यून रूप से अन्य दोप दूष्य भी कारण होता है। कुष्ठ के कारणत्व मे सबका परस्पर सम्बन्ध होता है। इसलिये मुख्य की चिकित्सा करते हुये दूसरो का भी ध्यान रक्खे।

विसर्प मे भी दोप दूष्य ये ही होते हैं पर दोनो मे इस प्रकार अन्तर होता है।

कुष्ठ	विसर्प
१ सामान्य दोष क्रम कफ पित्त वात	१ सामान्य दोष क्रम पित्त वात कफ
२ सामान्य दूष्य क्रम लसीका रक्त मांस, त्वचा।	२ सामान्य दूष्य क्रम लसीका रक्त मास।
३ देव और गुरु का अपमान, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, बेईमानी आदि भी कारण	३ देव और गुरु का अपमान आदि कारण नही।
४ त्रिदोषज	४ एक दोष मे भी होता है।
५ चिरस्थायी, वश परम्परा एव जन्मान्तर मे भी जानेवाला।	५ अस्थायी, वश परम्परा एव जन्मान्तर मे न जानेवाला।
६. सभी धातुओ पर चिरस्थायी दुष्प्रभाव	६. किसी धातु पर चिरस्थायी दुष्प्रभाव नही।
७. चिरस्थायी, घृणित एव सक्रामक।	७ अस्थायी, घृणित एव असक्रामक।
८ कष्ट साध्य या असाध्य।	८. सुखसाध्य या कष्टसाध्य।

कुष्ठ के पूर्व रूप :—

त्वचा का अत्यन्त चिकना या रूक्ष होना, स्वेद का आधिक्य या अभाव, वर्ण परिवर्तन, दाह, खुजली, शून्यता, सूई चुभने की पीडा, वर्रे काटने के समान चकत्ते, चक्कर, व्रणो की शीघ्र उत्पत्ति परन्तु देर तक उनकी स्थिति तथा उनमे अत्यधिक शूल, व्रणो के भर जाने पर उनमे रूक्षता, तनिक कारणो से व्रणो का कोप, रोमाच और रक्त मे कालापन ये कुष्ठ के पूर्व रूप हैं। इसी अवस्था मे तत्क्षण चिकित्सा कीजिये नही तो कष्टसाध्यता आ जायगी।

भेद एवं लक्षण :—

कुष्ठो के भेदो मे शास्त्रो मे तनिक सा मतभेद है इसके कारणो एव सामन्जस्य पर विचार न कर चरक चि० ७ के आधार पर वर्णन होगा। सात महाकुष्ठ ये है। वस्तुत इन्ही को लेप्रोमी कहते है —

नाम	साध्यता	दोष	मुख्य लक्षण
कापाल	कष्ट साध्य	वात	त्वचा का काला या गुलाबी वर्ण, रूक्षता, कठिनता, अधिक तोद।

औदुम्बर		पित्त	पीडा, दाह, खुजली, कपिल वर्ण के रोम, गूलर के समान वर्ण ।
मण्डल	कष्ट साध्य	कफ	श्वेत लाल रग के स्थिर, गीले, चिकने, उठे हुये एव परस्पर मिले हुये चकत्ते ।
ऋष्यजिह्व		वातपित्त	कठिन, किनारे पर लाल बीच मे सावला, पीडा युक्त, रोभू हरिण की जिह्वा के समान
पुण्डरीक		कफपित्त	श्वेत लाल किनारो वाला, लाल कमल के समान, ऊँचा उठा हुआ और लालिमा से युक्त ।
सिध्म (सेहुआ)			यह प्राय छाती पर होता है ।
काकण	असाध्य	त्रिदोष	लाल घु घची के समान वर्ण, पाक और तीव्र वेदना ।

ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ हैं जिन्हे आज कल त्वग्रोग कहा जा सकता है —

नाम	दोष	मुख्य लक्षण
एक कुष्ठ	वात कफ	स्वेदाभाव, अधिकस्थान मे व्याप्ति, मछली की चोइया (शकल) के समान ।
चर्म कुष्ठ	वात कफ	हाथी के चमडे के समान मोटा ।
किटिभ	वात कफ	सावला, खरदरा एव कठोर ।
वैपादिक	वात कफ	तीव्र वेदना एवं हाथ पैरो का फटना (बेवाई के समान) ।
अलसक	वात कफ	खुजली युक्त लाल वर्ण के गण्ड (गाठो के समान)
द्रदु मण्डल (दाद)	कफ पित्त	खुजली युक्त लाल वर्ण की पिडकाये ।
चर्मदल	कफ पित्त	शूल, खुजली एव रक्त वर्ण से युक्त फफोले जो फट कर स्त्राव बहाते हैं एव कपडे आदि से स्पर्श मे भी असह्य होते हैं ।
पामा (खेसरा)	कफ पित्त	छोटी-छोटी स्राव-खुजली-दाह से युक्त बहुत सी पिडकायें ।
कच्छू	कफ पित्त	तीव्र दाह युक्त फोडे के समान हाथ एव नितम्ब मे होने वाली पामा ।

'विस्फोट	कफ पित्त	पतली त्वचा सावले या लाल वर्ण वाले फफोले।
शतारु	कफ पित्त	लाल या सावले दाह युक्त बहुत से व्रण।
विचर्चिका	वात पित्त	सावले वर्ण की खुजली युक्त, बहुत स्राव वाली पिडका।

दोपानुसार कुष्ठ के लक्षण—वात से—खरदरापन, रूक्षता, सावलापन या गुलावी वर्ण।

पित्त से—उवाल के समान पीडा, दाह, लालिमा, स्राव

कफ से—क्लेद (गीला पन), घनापन, चिकनापन, खुजली, शीतलता और भारीपन।

दो दोषो से होने वाले मे दो एव तीन दोषो से होने वाले मे तीन दोष के लक्षण मिलेगें।

श्वित्र या किलास :—

यह कुष्ठ के ही कारणो से उत्पन्न होता है उसी के समान इसकी चिकित्सा भी होती है। पर यह सक्रामक नही होता और न वश परम्परा मे चलता है। यह दो प्रकार का श्वेत और गुलावी होता है। दोपो का आश्रय रक्त, मास एव मेद मे होने पर भी उनमे विकृति न होकर त्वचा मे ही विकृति होती है। केवल वात या पित्त एक दोष ही कारण होता है। इसे आज कलल्यूकोडर्मा या श्वेत चर्मा कहा जाता है। कुष्ठ और किलास मे यह अन्तर है।

कुष्ठ	किलास
१. त्रिदोपज	१ एक दोषज।
२ सप्त धातुगत दोष	२ रक्त मास मेद गत दोप।
३ सातो धातुओ का नाश	३ धातुओ का नाश नही।
४ क्रिमिजन्य	४ क्रिमि से सम्वन्ध नही।
५ सक्रामक	५ सक्रामक नही।
६ वश परम्परा मे चलने वाला	६ वश परम्परा मे नही चलता।

साध्यता —

कुष्ठ स्थान के बाल काले हो, चकत्ते एक दूसरे से मिले न हो, आग से जलने से उत्पन्न न हो और नवीन हो तो वह किलास साध्य होता है।

असाध्यता —

साध्यता के विपरीत लक्षणो वाले तथा गुप्त स्थान, हाथ, पैर, ओठ मे हुआ असाध्य होता है।

सप्तधातुगत कुष्ठ—विभिन्न धातुओ मे गये कुष्ठ के निम्नलिखित लक्षण होते हैं।

वातकफाधिक होने पर साध्य	त्वचागत—विवर्णता, रूक्षता, शून्यता, स्वेदाधिक्य, रोमाञ्च रक्तगत—खुजली, पूय। मांसगत—मुख का सूखना, कर्कशता, पिडकायें, फफोले, तोद (सुई चुभने सी पीडा) तथा स्थिरता।
असाध्य	मेदोगत—अगुलियो का गलकर गिरना, गतिक्षय, घाव का बढना, उपर्युक्त तीनो धातुओ मे उत्पन्न कुष्ठ के लक्षण। अस्थि मज्जागत—नासिका का गलकर बैठना, आखो मे लालिमा, घाव मे क्रिमियो का पडना, स्वर नाश। शुक्र और रज गत—सन्तान मे भी कुष्ठोत्पत्ति।

कुष्ठ का चिकित्सा सूत्र

१—अल्प या केवल त्वग्गत कुष्ठ मे पच्छ मार कर तथा महान् या अन्य धातुगत कुष्ठ मे सिरा वेध कर रक्त निकालें।

२—बहुत मे दोष वाले कुष्ठ मे प्राणो की रक्षा करते हुये अधिकतम शोधन करे। वाताधिक्य मे कुष्ठ नाशक औषधियो से सिद्ध घृत मिला कर सशोधन करें। पित्ताधिक्य मे रक्तमोक्षण और विरेचन करायें। कफाधिक्य मे वमन करायें।

३—लवण परित्याग करें, गेहूं सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। अपथ्य एव रोगो के कारणो से बचें।

४—तिक्त रस की काष्ठौषिधा एव पथ्य अधिक हितकर हैं। रक्त शोधक एव क्रिमि नाशक उपचार साथ मे अवश्य करें।

५—आभ्यन्तरिक चिकित्सा के साथ वाह्य लेप तैल मर्दन आदि न भूलें।

६—सूर्य की उपासना, धार्मिक कृत्य, शुद्ध मनोवृत्ति और यथा सम्भव तपश्चर्या करे। याद रक्खें दूषित मनोवृत्तियो से भी रक्त दूषित होता है। जल्दीबाजी से काम न चलेगा। वरसो चिकित्सा व पथ्य करते रहें।

७—क्रिमिनाशक घोलो से कुष्ठ की स्वच्छता पर ध्यान देते रहे। शरीर पर अन्यत्र या दूसरे शरीर सक्रमण से बचाव करें।

८—कुष्ठ पर चारो ओर से आक्रमण करें। संशोधन, खाने की औषधि, स्वच्छता, लेप, तैलादि, उपासना और पथ्य आदि सब पर पर्याप्त ध्यान दें।

९—कुष्ठ मे नीम वडी हितकारी है। इसकी अन्तर्छाल का काढा एक छटाक से २ छटाक या पत्तो का स्वरस एक तोला से दो तोला तक प्रातः साय पिलायें। अन्तर्छाल का चूर्ण १ माशा से ३ माशा तक या पञ्चाग का चूर्ण १ माशा से ४ माशा तक दे। पत्रचूर्ण की भी यही मात्रा है काढा से स्नान करायें और घाव धोये।

१०—नीम की छाल और कडुये परवल के पत्तो का क्वाथ भी सभी कोढो मे लाभकारी है।

सभी प्रकार के कुष्ठ की सामान्य औषधियां

दोष एव कुष्ठ के भेद के अनुसार औषधिया दी जाय तो उत्तम है। पर निम्न-लिखित औषधियो मे से किसी एक अथवा सयुक्त से वडा लाभ होता है —

रस माणिक्य १ र०, घृत+मधु।

माणिक्य रस १ र०, सहपान घृत-मधु, अनुपान पका कर ठण्ढा किया दूध या बकरी का ताजा दूध या तालाब का जल।

महातालकेश्वर १।२ र०, सहपान घृत-मधु, अनुपान पका कर ठण्ढा किया हुआ दूध या वकरी का ताजा दूध या तालाव का जल।

कोई सर्वेश्वर रस १।२ र०, वाकुची देवदारु चूर्ण-एरण्ड तैल। त्वक् शून्यता मे विशेष हितकारी है।

पञ्च निम्ब चूर्ण ३ मा०, दूध या गोमूत्र।

कुष्ठारि ३ माशा, मधु।

कुष्ठकालानल रस निम्ब की छाल का क्वाथ।

गलत्कुष्ठारि रस २ र०, घृत मधु।

पञ्चतिक्तगुग्गुल ३ मा०, वाकुची क्वाथ।

निम्नलिखित क्वाथ मे से किसी एक का व्यवहार स्वतन्त्र या अनुपान रूप से करें —

लघुमन्जिष्ठाद्य क्वाथ, वृहन्मन्जिष्ठाद्य क्वाथ, निम्ब के पचाग (छाल, पत्र, फूल, वीज, जड) का क्वाथ, पटोलादि क्वाथ (चक्रदत्त)।

गुरूच स्वरस, गूलर स्वरस, कुडैया की छाल का रस, नीम का मद भी वडा लाभदायी होती है। वागुची चूर्ण एक तोला प्रति मात्रा के हिसाव से प्रात ८ बजे उष्ण जल से सेवन कर तीन घण्टे तक धूप मे वैठने से दो सप्ताह से छ सप्ताह के भीतर सभी कुष्ठो मे निस्सन्देह अत्युत्तम लाभ करता है।

पथ्य केवल गोदुग्ध भोजनोत्तर खदिरारिष्ट २ तोला प्रति मात्रा पीने मे बड़ा लाभ होता है।

कुछ लेप —

चरक के कुष्ठघ्न ६ प्रलेपो मे से किसी एक का व्यवहार लाभदायी होता है। उनके अतिरिक्त कुछ लेप ये है।

मैनशिल, पत्र हरताल, मरिच और मदार का दूध सब पीस कर सरसो का तेल मिलाकर प्रतिदिन दो बार लेप करें।

२—चकवढ का बीज, करन्ज का बीज और कूठ को गोमूत्र मे पीसकर लेप करे।

३—चार तोला सेंधा नमक और चार तोला तवकिया हरताल को सेहुण्ड के डण्डे को पोला कर उसी मे भर कर सेहुण्ड के डण्डे से ही बन्द कर कपडमिट्टी कर कसोरों के सम्पुट मे बन्द कर भस्म कर दे, इस भस्म मे सरसो के तेल मिला कर कुष्ठ के व्रण मे लगायें। इससे व्रणों मे से मृत कीट निकलेंगे एव घाव अच्छा होगा। भैषज्य रत्नावली के बृहन्मरिचादि या मरिचादि तैल, सोमराजी तैल या बृहत्सोमराजी तैल, श्वेत करवीराद्य तैल, कुष्ठराक्षस तैल मे से किसी एक का मर्दन करें।

कतिपय विशेष कुष्ठों की चिकित्सा

श्वित्र :—बागुची का चूर्ण एक तोला खैरसार और आवले के काढे से पीने से एक मास मे बडा लाभ होता है।

मकोय, चकवढ, कूठ व पिप्पली को बकरी के मूत्र मे पीस कर लेप करने से बडा लाभदायी होता है।

बाकुची ८ तोला, तवकिया हरताल २ तोला, मैनसिल ३ माशा, चीताकी जड ३ माशा को गोमूत्र मे पीस कर लेप करें।

सेहुण्ड, मदार, चमेली, करन्ज और धतूरा के पत्तो को गोमूत्र मे पीस कर लेप करने से श्वित्र एव उसके व्रणो पर बडा लाभदायी होता है। श्री श्यामसुन्दराचार्य कृत रसायन सार के परिभाषा प्रकरण मे उल्लखित प्रतिसारणीय क्षार श्वेत या रक्त वर्ण के कुष्ठ पर लगायें। इसके लगाते ही श्वेत या लाल चमडा उतर जायेगा। उसके बाद तवकिया हरताल, चित्ता, कासीस, त्रिफला और गन्धक समभाग को पानी मे पीस कर सात दिन तक लेप करें। श्वेत या लाल कुष्ठ अच्छा होगा।

सिध्म—यवक्षार एव गन्धक को सरसो के तेल मे पीस कर २४ घण्टे मे २-३ बार लगायें।

या कूठ, चकवड, सेंधा नमक, विडग और सरसो को कान्जी मे पीस कर लेप करें।

अथवा हल्दी और कदली क्षार को पानी मे पीस कर लेप करें।

पामा—गोवर, हलदी और सेधा नमक को मधु मे पीस कर लेप करें।

सिन्दूर, रसौत, मोम, गुग्गुल और तूतिया सम भाग लेकर जल मे पीस कर कल्क बनाये। कल्क से चौगुना सरसो का तेल और तैल का चौगुना जल डालकर पकायें। तैल शेष रहने पर छान लें। यह तैल पामा और खुजली पर तुरन्त अत्युत्तम काम करता है।

गन्धक को सरसो के तेल मे मिलाकर लेप करने से भी लाभ होता है।

दद्रु—गन्धक को मिट्टी के तेल मे घोटकर दाद पर लगाये। तत्पश्चात् दो घण्टे तक दाद के ऊपर घाम लगने दें। कष्ट तो होगा लेकिन तीन दिन मे दाद जड से अच्छा होगा।

या पानी मे चौकिया सोहागा पीस कर लगायें। विना कष्ट के धीरे धीरे लाभ होगा।

या पारा गन्धक की कज्जली को मृदु पाक (पकने पर कीचड जैसा रहे, खर न होने पाये) करें। फिर उसे ठन्डा कर आधा सेर सरसो के तेल और एक सेर धतूरे के पत्तो का स्वरस मे पकायें। जब जलीयाँश जल जाय तब कीचड के समान के तेल को लेकर रख दें। इस तेल को शरीर पर लगा कर त्रिफला के क्वाथ से वाष्प स्वेद करें। दाद आदि सभी कुष्ठ नष्ट होते हैं साथ मे शुद्ध गन्धक आदि खाने की औषधि दे।

७ फिटकरी की भस्म ६ माशा १ छटाँक सरसो के तेल मे मिला कर कपडा मे भिगो कर उसकी वत्ती बनालें। वत्ती को जला कर उसका तेल टपकावें। जो तेल टपकता जावे उसे भी वत्ती पर डालते जाय, तेल टपकना बन्द होने पर वत्ती को भी जल जाने दे। फिर जली हुई वत्ती और ४ मा० तूतिया को तिल तैल मे मिलाकर खुजली विशेपत वालो वाले स्थान की दाद पर लगाने से वडा लाभ होता है।

चकवड के वीज को मूली के रस मे पीस कर लेप करने से भी दाद नष्ट होता है।

गन्धक, सुहागा और चकवड का वीज के महीन चूर्ण को चकवड के रस मे भावना देकर झरबेर के समान गोली बना लें। गोली को नीवू के रस मे घोट कर दाद मे लगा कर दो घण्टे तक घाम मे दादवाला अग रखे। दवा को एक दिन का अन्तर देकर लगायें।

कनेर या मकोय का पत्ता मट्ठा मे पीस कर लेप करने से भी दाद नष्ट होता है।

खुजली—आमला सार गन्धक ८ मा०, खुरासानी अजवाईन ८ माशा, कपूर ८

माशा और तूतिया ४ मा० का महीन चूर्ण सौ बार धुले हुये घी मे मिलाकर खुजली पर मलें और एक घण्टा घाम मे बैठें। तत्पश्चात् गाय का ताजा गोबर मल कर नहा लें। नहाने के बाद बदन सुखा कर कपूर युक्त चमेली का तेल मलें। ३-४ दिन मे खुजली चली जायेगी।

या आवला सार गन्धक, कपूर और तूतिया का समभाग महीन चूर्ण शतधौतघृत मे मिलाकर खुजली मे मलें और एक घण्टा घाम मे बैठें। तत्पश्चात् स्नान कर लें। कुछ दिनो मे खुजली चली जायेगी।

० सूखी हुई इन्द्रायण के फल की काली राख सरसो के तेल मे मिला कर लगाने से भी बडा लाभ होता है।

नोट—उपर्युक्त खुजली के योग सूखी और गीली दोनो खुजलियो मे लाभदायी है।

विपादिका—राल, तिल तैल और मधु का लेप करने से विपादिका नष्ट होती है। राल को पिघलाकर तैल-मधु मे मिलायें।

जायफल पीस कर लेप करने से विपादिका नष्ट होती है। मोम पिघला कर लगाने से विपादिका नष्ट होती है। याद रक्खें कि किसी भी दवा को लगाने के पूर्व विपादिका को गरम जल से धो कर स्वच्छ कर सुखा लें। इस प्रकार प्रतिदिन स्वच्छ विपादिका पर सरसो का तेल ही लगाने से लाभ होता है। दिन मे फुर्सत न हो तो रात को यह व्यवस्था कर सो जाय।

सभी कुष्ठ रोगों पर पथ्यापथ्य

वातरक्त के सभी पथ्यापथ्य कुष्ठ पर भी लागू होते हैं।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पथ्य है —

प्रति १५ दिन पर वमन, प्रति एक मास पर विरेचन, प्रति तीन महीने पर नस्य और प्रति ६ माह पर रक्त मोक्षण आवश्यक है।

पुराना अरवा चावल, पुराना गेहूँ, जौ, मूँग, अरहर, मसूर, परवल, करैला, मकोय, नीम, नीम का तैल, सभी तिक्त (नीम की तरह तीते, कडुवे नही), गोदुग्ध, गोघृत, गोमूत्र, कत्था, ताडफल, ककडी, खीरा, खरगोश, हरिण तीतर-वटेर कबूतर मधु पथ्य हैं।

याद रक्खें। कुष्ट संक्रामक रोग है, रोगी के संसर्ग से साधारणजन दूर रहे तो अच्छा है। उसका शरीर, बिस्तरा व शैया, वस्त्र, वर्त्तन, प्रश्वास, गहना, माला, जूता, खडाऊ और उसके साथ मैथुन सभी सक्रमण के कारण हैं जिससे दूसरो को भी रोग होगा। इस मामले मे नम्रतापूर्वक दृढता रक्खें।

पर परिचारक, कलपद (कम्पाउण्डर) और चिकित्सक सक्रमण से बचाव रखते हुये पूरी सेवा करें।

विसर्प

एक स्थान पर फुन्सिया निकल, वडी तेजी से चारो ओर फैलने लगती हैं। इसी को विसर्प या परिसर्प कहते है। इसके दोष दूष्यो का नामोल्लेख तथा कुष्ठ और इसके अन्तर का वर्णन कुष्ठ के प्रारम्भ मे किया गया है। खट्टा, तीखा, खारा तथा उष्ण आदि पदार्थो के सेवन करने से रक्त-मास-त्वचा-लसीका दूषित हो जाते हैं। जिससे ज्वर के साथ फुन्सिया निकलती है और वे वडी तेजी से फैलने लगती हैं। यह सात प्रकार का होता है –

वातिक मे —१—वात ज्वर के समान सभी पीडायें होती हैं। शोथ, फडकन, तोद, रोमाञ्च, थकावट, टूटने की सी पीडा होती है। इसमें रास्ना, नीला कमल, देवदारु, लाल, चन्दन, वच मुलहठी को गोदूध मे पीस कर घी मिला कर लेप करें। इन्ही चीजो की पोटली बनाकर गरम कर सेकना भी चाहिये।

पित्तज विसर्प मे —पित्त ज्वर के लक्षण मिलते है। विसर्प वडी तेजी से फैलता है। इसमे असह्य दाह, लालिमा भी होती है। इसमे कमल, खस, हल्दी, दारुहल्दी, चन्दन, वरगद, पकडी की छाल, एव पद्म काष्ठ को गाय के दूध मे पीस कर लेप करें।

३—कफज विसर्प मे —कफ ज्वर के समान लक्षण होते हैं, चिकनाई अधिक होती है। इसमे कनैर की जड, त्रिफला, जवासा, खस, अनन्त मूल को वकरी के दूध मे या गोमूत्र मे पीस कर लेप करें।

४—आग्नेय विसर्प मे :—वात पित्त के भयानक लक्षण मिलते हैं। दाह इतना प्रवल होता है जैसे सारे शरीर पर दहकते हुये कोयले छीट दिये गये हो। वहा काला नीला दाग पड जाता है। फफोले पड जाते हैं। रोगी मूर्छित हो जाता है। अतिसार, कास, चक्कर और अग्निमान्द्य से पीडित रहता है। इसमे पित्त को शान्त करने का उपचार करना चाहिये, रास्ना कमल, सेवार, कसेरू, सिघाडा को पीस कर घी मिला कर लेप करें।

५—ग्रन्थि विसर्प मे —कफ वात ज्वर के लक्षण मिलते है। तीव्र ज्वर के साथ गोल, लम्वी, खर, छोटी, वडी, लाल ग्रन्थियो की माला उत्पन्न होती है। शेष लक्षण साधारणत. आग्नेय विसर्प के ही होते हैं। इसमे वात कफ को शान्त करें।

६—कर्दम विसर्प —इसमें कफ पित्त के लक्षण मिलते हैं, ज्वर के साथ जकडन अगो मे अवसन्नता, शिर मे पीडा, निद्रा, तद्रा, अरुचि, चक्कर, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य आदि होते हैं। अत्यन्त पीली व लाल पिडकाये होती है। शोथ चिकना, मलिन और भारी होता है। अन्त पाक होता है, छूते ही फट जाता है। मास झडने से शरीर कीचड के समान गीला होता है। सिरा एव स्नायुयें दिखायी पडने लगती हैं। सडन की सी दुर्गन्ध आती है इसमें कफ पित्त को शान्त करना चाहिये।

७—सान्निपातिक विसर्प मे—तीनो दोषो के उग्र लक्षण मिलते है और तीनों दोषों की सम्मिलित चिकित्सा होती है।

साध्यासाध्यता :—वात, पित्त कफ से होने वाले विसर्प साध्य होते हैं। सान्निपातिक और मर्म पर होने वाले विसर्प असाध्य होते है। पित्तज विसर्प मे सारा शरीर काला हो जाय तो असाध्यता होती है।

सामान्य चिकित्सा

१—तुरन्त वमन विरेचन कराये। वमन के लिये नीम-परवल की पत्ती, मैनफल, इन्द्रयव और पिप्पली का प्रयोग करे। विरेचन के लिये निशोथ और त्रिफला का प्रयोग करे। वमन विरेचन के लिये स्नेहन, स्वेदन मे अधिक समय बरबाद न करें।

२—पञ्चवल्कल—बरगद, गूलर, पीपल, पकटी, पारसी पीपल की छाल के क्वाथ से सेचन करे और इसके कल्क से लेप करें। इसमें लाल चन्दन मिला दें। पारसी पीपल न मिले तो सीरिस की छाल का प्रयोग करे।

३—दशाग लेप—सीरिस, मुलहठी, लाल चन्दन, छोटी इलायची, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और सुगन्धवाला को गुरुच के रस या पानी मे पीस कर घी मिला कर लेप करे। यह दशाग लेप सभी प्रकार के पीडा वाले शोथो मे लाभदायी होता है।

४—गाय के शतधौत मक्खन मे शुद्ध आवला सार गन्धक एक तोला, फिटकरी एक तोला और रस कपूर ६ माशा मिला कर लेप करने से अत्यन्त लाभ होता है।

५—भैषज्य रत्नावली का अमृतादि क्वाथ, भूनिम्बादि क्वाथ लाभदायी हैं। सब से उत्तम क्वाथ, भूनिम्बादि (चिरायता, अडूसा, कुटकी, परवल की पत्ती, त्रिफला, नीम और चन्दन का) है।

६—नवकषाय गुग्गुल १ मा० को प्रात, दोपहर, साय, रात उपर्युक्त किसी काढे या गुरुच के रस मे दें

७—पञ्चतिक्त घृत ६ माशा या वृषाद्यघृत ६ माशा की मात्रा से प्रात साय गुरुच के गरम रस या उष्ण जल से लें।

पथ्य—मूग, मसूर चना, मृग-खरगोश का मास, मक्खन, घृत, मुनक्का, अनार, करेला, आवला, खैर, कपूर, तिल्ली, चन्दन और सभी तिक्त पदार्थ।

अपथ्य—सभी उष्ण, नमकीन, कटु, अम्ल और विदाही पदार्थ, व्यायाम, मैथुन, मद्य, सिरका, दही, घाम, आग, दिवाशयन और प्रवात।

———

सैतीसवां अध्याय

जलपित्ती (शीतपित्त) उदर्द कोठ

ठण्ढी वायु के स्पर्श से शरीर मे मधुमक्खी या वर्रे काटने के समान दिदोरे पड जाते हैं। जिनमे खुजली और दाह वहुत होती है। किसी-किसी को जी मिचलाना व वमन भी होता है। जरा सी उष्णता से दिदोरे शान्त हो जाते है। फिर उभड आते हैं। २-३ दिन से अधिक प्रकोप नही होता। किसी-किसी रोगी मे ५-७ वार दौरा होता है। इसी को लोक मे जलपित्ती कहते हैं। इसमे वात दोष अधिक होता है।

वडे-वडे लाल खुजली वाले उठे हुए चकत्ते पड जाय तो यही उदर्द है। इसमे कफाधिक्य होता है।

ठीक वमन न होने एव उदीर्ण वमन के पदार्थ के न निकलने से उदर्द के समान ही कोठ नामक व्याधि होती है। यदि वारम्वार हो तो उसी को उत्कोठ कहा जायगा।

सामान्य चिकित्सा—तीनो मे तुरन्त वमन विरेचन कराकर कोष्ट शुद्धि करे।

सरसो का गरम तेल खूव मल कर उष्ण जल से स्नान करें। शीतपित्त आदि शान्त होगे।

सरसो का तेल मलकर कम्वल ओढकर घाम मे वैठ जाय, पसीना भीतर ही पोछते रहें। शीत पित्त आदि शान्त होगें।

दूव और हल्दी पीस कर लेप करने या सेंधा नमक घी से मालिश करने से भी लाभ होता है।

निम्नलिखित औषधियो से किसी को खिलायें —

(१) ६ मा० अजवाइन को १ तो० गुड से खाकर उष्ण जल पीयें।

(२) आवला का चूर्ण ६ मा० १ तो० गुड से खाकर उष्ण जल पीयें।

(३) सोठ मिर्च पीपर और मिश्री ममभाग का चूर्ण ३ मा० उष्ण जल से खायें।

(४) आदी का रस २ मा० पुराना गुड ६ मा० मिलाकर या त्रिफला ३ मा० मधु २ मा०या नीम की पत्ती ६ मा० और आवला ६ मा० प्रति मात्रा के हिसाब से २-३ वार खाने से वडा लाभ होता है।

(५) भैषज्य रत्नावली के आर्द्रक खण्ड ६ मा० या हरिद्रा खण्ड ६ मा० को प्रात सायं जलपान के रूप मे उष्ण जल से सेवन करें।

उदर्द, कोठ या उत्कोठ मे जरा अधिक तत्परता से स्थायी चिकित्सा करें।

पथ्य—तिक्त रस यथा करैला, नीम गुरुच, तितलौकी, तीता परवल, कच्ची हल्दी, पोय, पुराना चावल, मूंग, कुलथी, मधु, सरसो का तेल, अनार, हरिण-खरगोश-वटेर-तीतर, पीने नहाने आदि मे उष्ण जल, शरीर को कपड़े से ढके रहना।

अपथ्य—शीत जल, शीत वायु, गुड-शक्कर-चीनी, दूध के पदार्थ, दिवाशयन, उष्णता, खटाई, घाम, मैथुन, गुरु पदार्थ और कब्जीयत।

नोट :—औषधियो एवं अनुपान मे घी दूध आदि अपथ्य के पदार्थ पडे हो तो कोई हानि नहीं। परन्तु आहार रूप मे इन्हे न लें।

——

अड़तीसवां अध्याय

अम्लपित्त

इसमे विदग्ध (अम्ल) पित्त रोग का कारण होता है। इसलिये रोग का नाम अम्ल पित्त पड़ा। विरुद्ध, दूषित, अम्ल, विदाही और पित्त प्रकोपक आहार करने से पित्त जो पहले से सचित रहता है, विदग्ध हो जाता है। बस यही अम्ल पित्त रोग का कारण है। इसमे ये लक्षण होते हैं —

भोजन का न पचना, थकावट, मचली, तीती और खट्टी डकार, भारीपन, हृदय-कण्ठ मे दाह और अरुचि। इसके दो भेद होते है—(१) ऊर्ध्वग और (२) अधोग। ऊर्ध्वग मे कफ का सम्बन्ध होता है। इसमे हरा-पीला, नीला-काला-लाल-तनिक-लाल अत्यन्त खट्टा-मासधोवन के समान-अत्यन्त लसीला और स्वच्छ वमन होता है जिसका स्वाद नमकीन तीता तथा कटु होता है। इन्ही रसो की डकार भी आती है। कण्ठ-हृदय-पेट मे जलन, शिर मे पीड़ा, हाथ पैर मे जलन और उष्णता, तथा अत्यन्त अरुचि होती है। इससे खजली, चकत्ते और असख्य फुन्सिया भी हो सकती हैं।

अधोग मे प्यास, दाह, मूर्च्छा, चक्कर, बदहोशी, मिचली, चकत्ता, अग्निमान्द्य, रोमाच, पसीना और पीलापन होता है। यह अम्लपित्त बहुत कम देखने मे आता है।

अधिकतर ऊर्ध्वग ही होता है। जिसमे प्राय भोजनोत्तर वमन, खट्टे डकार, उदर मे शूल और गला मे जलन होती है।

सामान्य चिकित्सा —

तिक्त और मधुर रस अत्यन्त लाभकारी होता है। नीम की गुरुच, करैला, परवल की पत्ती, नीम की पत्ती मे से किसी एक के २ तोला स्वरस मे मधु १ तोला मिला कर प्रात दोपहर सायं और रात देने से निश्चय लाभ होता है। पर भोजन भी मधुर ही यथा खीर, दूध आदि चलेगा। अर्थात् नमक, कटु और अम्ल पदार्थ मत

दें। यह क्रम तत्काल लाभदायी होगा। भोजनोत्तर कुमार्यासव २ तो० की मात्रा से देने से लाभ की मात्रा वढ जायगी।

सामान्य औषधिया—

मण्डूर भस्म २ र० और शख भस्म २ र०

लौह भस्म १ र० व शख भस्म २ र०

अम्लपित्तान्तक रस १ र०

पानीयभक्त वटी २ र० काजी से

क्षुधावती गुटिका २-३ र० जल या काँजी

अम्लपित्तान्तक लौह धनिया हर्रा सौंफ के काढे से

अविपत्तिकर चूर्ण १ मा० से ३ मा०

पचनिम्बचूर्ण १ माशा मधु के साथ

सूत शेखर १ र०

लीलाविलास—आवला के रस मधु या सफेद कोहडा के रस मधु के साथ

नोट —१ जिन रसो का अनुपान नही लिखा गया है उन्हे सामान्य चिकित्सा मे लिखित किसी औषधि विशेषत गुरुच के रस और मधु से दें।

२ सूतशेखर भीषण और जीर्णतम अम्ल पित्त मे भी तत्क्षण लाभ करता है। लीलाविलास उसके अभाव मे दें।

३. प्रारम्भ और वीच-वीच मे तिक्त और मधुर औषधियो द्वारा वमन विरेचन करा दें तो अधिक लाभ होगा। वमन सम्भव न हो तो मुनक्का, अजीर अमलतास जैसी मृदु और पित्तनाशक औषधियो से विरेचन अवश्य कराये।

पथ्य—गो दूध और अनार सर्वोत्तम पथ्य है। चावल दूध की खीर, अगूर, मौसम्मी, मुनक्का, अजीर, आवला, चीनी, मिश्री, मधु भी पथ्य हैं। सत्तू का मीठा घोल, पुराना चावल, गेहूँ, जौ और सभी तिक्त पदार्थ यथा करैला-परवल-तितलौकी एव आदी सफेद कोहडा भी दिया जा सकता है। सभी पदार्थ शीतल हो।

अपथ्य—उष्ण, अम्ल-कटु-लवण रस वाले पदार्थ भयानक अपथ्य हैं। दही, मद्य, तेल, उरद, विरोधी और पित्त प्रकोपक पदार्थ अपथ्य हैं।

——

उनचालीसवां अध्याय

शीतला [चेचक]

रोमान्तिका, मसूरिका, विस्फोट

शीतला रोग भारत मे अति प्रचलित और प्रसिद्ध है

कारण—व्यक्तिगत रूप से कटु-अम्ल-लवरग-क्षार-विरुद्ध तथा दूषित आहार एवं मटर-शाक आदि से होता है। सार्वजनिक रूप मे ऋतु परिवर्तन, ऋतु विकृति, दूषित देश-जल-वायु और संक्रमरग द्वारा होता है। तव पूरे जनपद मे व्याप्त हो जाता है।

इसके तीन भेद होते हैं —

(१) रोमान्तिका—इसे लोक मे दुलारो या ढाई दिना माता कहते हैं। इसलिये कि इससे अत्यन्त न्यून कष्ट होता है। मृत्यु तो होती ही नही। साधारणत ढाई दिनो मे अच्छी हो जाती है। कफ पित्त से रोमकूप के समान ऊंची होती है। इसीलिए रोमान्तिका नाम है। अत्यन्त नन्हे नन्हे लाल दाने होते है। रोगी को ज्वर, कास और अरुचि भी होती है। प्राय ५ वर्ष तक के वच्चो मे होती है।

(२) मसूरिका—मसूर के दाने के आकार के दाने होने के कारण इसका नाम मसूरिका पडा। इसमे दोपानुसार वात पित्त कफ से क्रमश काले गुलावी, पीले लाल, सफेद दाने होते हैं। पित्त और रक्त से अधिकतर होती है। जिसमे अत्यधिक दाह, प्यास और ज्वर होता है। आखो मे लालिमा, अतिसार, अगों मे टूटने की सी पीडा और अरुचि भी होती है। वायु से कम होती है जिसमे दानो के अतिरिक्त कम्पन, वेचैनी, सुस्ती, तालु-ओठ-जिह्वा मे शोष (सूखना) होता है। कफ वाली के दानो मे खुजली होती है। रोगी को आलस्य, निद्रा, भारीपन, मचली आदि होती है। यह वहुत ही कम होती है। यदि मसूरिका सान्निपातिक हो तो दानो मे दुर्गन्धित स्राव होता है। गले मे दानो के हो जाने से गला रुक जाता है। रोगी प्रलाप,

अरुचि, बेचैनी, जकडन आदि से पीडित होता है। यह मसूरिका बड़ी भयानक और दुश्चिकित्स्य होती है।

(३) विस्फोटक—इसमे अग्नि से जलने के समान बड़े-बड़े फफोले पड़ जाते हैं तथा मसूरिका के ही विभिन्न दोषो के लक्षण बड़े भयानक रूप मे होते हैं।

पूर्वरूप—सभी शीतलाओ के पूर्व रूप मे ज्वर होता है। चेहरा तमतमाया हुआ और बरौनिया खडी होती हैं। अरुचि और बेचैनी भी होती है।

सामान्य चिकित्सा :—

शीतला मे भारतीय जनसाधारण औषधि का निषेध करते हैं। परन्तु सभी चिकित्सा ग्रन्थो मे इसकी औषधियो का निर्देश है। इसलिये औषधि करनी ही चाहिए। जनसाधारण औषधि का निषेध इसलिये करते है कि इसमे अत्यन्त पवित्र और शीतल या अनुष्ण या कदुष्ण (कुछ उष्ण) औषधिया देनी चाहिये। इसके विपरीत दी गयी औषधि हानि करती है। आयुर्वेद मे इस रोग की लिखी सभी औषधिया उपर्युक्त तथ्य का विचार कर लिखी हुई हैं। इसलिये उनका व्यवहार करना चाहिये। जनता भी उसी की प्रचलित औषधियो यथा कपूर, निम्बपत्र, चन्दन, घी, गुलाबजल आदि का व्यवहार करती है। जो उचित है। दो दिन के बाद कोष्ठ शुद्धि पर ध्यान देना चाहिये।

उपर्युक्त तथ्य के अतिरिक्त निम्नलिखित बातो का ध्यान चिकित्सा मे करना चाहिये —

(१) रोग मे प्राय उष्णता या दाह अधिक होता है इसलिए शीतल क्रिया करनी चाहिये। पर इतनी शीतलता न हो कि कास श्वास उभड जाय। दाना निकलने के प्रारम्भ के दो दिनो मे शीतल क्रिया न हो तो उत्तम है। नही तो दाने सम्यक् न निकलेंगे। चिकित्सा सूत्र न० ५ के उपाय दाना निकालने के लिये प्रारम्भ मे करें।

(२) आख, कान, हृदय और मस्तिष्क की सुरक्षा पर अवश्य ध्यान दें। आख मे गुलाबजल तीन चार बार, कानो मे काहू या गुलाब का इत्र प्रतिदिन कम से कम २ बार अवश्य छोडे। इससे आखो एव कानो मे दाने न निकल सकेंगे। यदि निकलेंगे भी तो प्रकोप कम होगा। आख कान सुरक्षित रहेंगे। मस्तिष्क पर पुरातन गो घृत की मालिश कम से कम २ बार करें। इससे प्रलाप आदि न होगा। छाती पर पुराना घी कम से कम चार पाच बार मलें। यदि उसमे कपूर मिला दे तो उत्तम है। कास श्वास मे आराम होगा। कफ नही सूखेगा न रुकेगा। पुराना घी से तात्पर्य कम मे कम १० वर्ष के गोघृत से है।

(३) निम्ब पत्र से हवा करें। रोगी के चारो तरफ निम्ब पत्र एव सुगन्धित पुष्प खूब रक्खे। कमरा स्वच्छ रक्खें। कपूर वासित जल से फर्श प्रतिदिन धोयें या ऐसा जल छिडकें।

४—यदि रोगी को दाह व प्यास अधिक होती है तो लाल चन्दन पानी मे घिस कर पिलायें। निम्ब पत्र स्वरस भी मिश्री मिला कर दिया जा सकता है। वासी जल मधु मिलाकर पीने से भी दाह और दाने नष्ट होते है। कास श्वास हो तो इसे वन्द कर दें। याद रक्खे, प्रत्येक अवस्था मे छाती पर पुराना घी की मालिश होती रहेगी।

५—आख-कान-नाक-मु ह के अतिरिक्त स्थानो मे अधिकतम दाने निकल जाय तो उत्तम है। दाने कम निकले या निकल कर समा जाय तो भैषज्य रत्नावली का निम्वादि (नीम की छाल, पित्तपापडा, पाढ, परवल की पत्ती, कुटकी, अडूसा की छाल, यवासा, आवला, खस, लालचन्दन, सफेद चन्दन) क्वाथ शक्कर डालकर न्यूनतम २ वार या अधिकतम ४ वार पिलाने से वडा लाभ होता है।

स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती कचनार की छाल के क्वाथ से भी ३-४ वार देने से दाने निकल आते हैं।

६—दानो मे जव पानी पडने लगे तो रोगी के विस्तरे पर उपलो या वन कण्डो की स्वच्छ महीन राख विछा दे। फूटे हुए दानो पर ऊपर से उपलो की स्वच्छ राख या पचवल्कल (वरगद, गूलर, पीपल, पकडी, पीपल, पारसीक पीपल के अभाव मे शिरीष की छाल) का स्वच्छ और अत्यन्त महीन चूर्ण छिडकिये। इससे दाने सूखेंगे। यदि अस्व-च्छतावश दानो मे क्रिमि पडने की सम्भावना हो तो चन्दन के चूर्ण, लोहवान आदि से धूपित करें।

यदि दानो या समस्त शरीर को धोने की आवश्यकता हो तो खदिराष्टक (खैरसार, हर्रा, वेहर्रा, आवला, निम्वपत्र, परवल की पत्ती, गुरुच और अडूसा की पत्ती) क्वाथ का प्रयोग करे इस क्वाथ मे अर्धावशिष्ट जल लें। यदि चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ को ३-४ वार पिलावें तो दानो के शीघ्र सूखने एव शुद्ध होने मे उत्तम लाभ होगा।

७—मु ह मे दाने पडे तो खैरसार के काढे से वारम्वार कुल्ला करायें। गीला खैर लगायें। आख मे दाने पडने पर गुलाव जल छोडते रहे या पुनर्नवास्वरस छोडें।

८—दाने जव सूखने लगते है तो उनके खुरण्ट से रोग के सक्रमण का अधिक भय रहता है। उस समय अधिक सतर्क रहे। खुरण्ट को खोज कर जला दें। रोगी और उसकी शय्या के वस्त्र वदलते समय ध्यान रक्खें खुरण्ट इधर उधर न गिरने पायें।

९—दानो के सूख जाने पर मु ह और सर्वांग मे भद्दे गड्ढे पड जाते हैं। उनपर गधी का दूध मला जाय तो दाग मिट जाते हैं। इसके अभाव मे छिले मसूर और खरवूजा के वीज की गिरी को पानी मे पीस कर उवटन करें। नागरमोथा खौलाये हुए पानी से मुँह धोयें या स्नान करें।

१०—शीतला के जनपद व्यापी प्रसार की सम्भावना मे नीम के वीज, रुद्राक्ष

(अभाव मे वहेरी का वीज) और हल्दी का सम भाग चूर्ण १ माशा की मात्रा से प्रात साय शीतल जल से सप्ताह भर खिलाने से शीतला होने की सम्भावना नहीं रहती। उस समय जो गधी का दूध पीयेगा उसे भी शीतला न निकलेगी। ८ वर्ष के ऊपर वालो के लिये इसकी सामान्य मात्रा आधा सेर है।

स्कन्द पुराण मे गधा पर स्थित शीतला देवी की आराधना का इस रोग मे विधान है। जो भारतीय जनता मे प्रचलित है। वहुत स्थानो पर रोग के उग्र प्रकोप मे घोबियो द्वारा उपासना आदि की जाती है, उसका यही रहस्य है। पशुओ के चिकित्सक कहते है कि गधा को शीतला की वीमारी नही होती।

११—शीतला के उपद्रवो की चिकित्सा तत्तद्रोग के अनुसार करनी चाहिये। पर शीतला को दृष्टिकोण मे रखना चाहिए।

१२—यदि वात या कफज शीतला हो (जैसा कि वहुत कम होता है) तो शीतोपचार न करें। या शीतल औषधियो मे इन दोषो की औषधिया मिला दें।

१३—हृदय की सुरक्षा के लिये मुक्ता पिष्टी १/२ र० या प्रवाल भस्म १ रत्ती या २ रत्ती अवश्य दें। ये तीनो दोषो से उत्पन्न शीतला मे दिये जा सकते है। इनमें रससिन्दूर १-२ र० मिला देने से शीतलता का दुर्गुण नही होता।

१४—शीतला के वाद कुछ लोगो को दाह होता रहता है उन्हे धनिया और जीरा का हिम (दोनो को २ तोला लेकर चौगुने पानी मे भिगोकर रात मे रख दे सवेरे मलकर पानी छान लें) देने मे वडा लाभ होता है।

शीतला की सामान्य औषधिया—
इन्दुकलावटी १ र० तुलसी स्वरस
दुर्लभ रस १ र० घृत मधु
सर्वतोभद्र रस १ र० दोषानुसार

भोजनोत्तर एलाद्यरिष्ट १॥ तो० समान जल मिलाकर देने से पथ्य पच जायगा। कोई हानि न होगी।

पथ्य—कुछ लोग रोगी की इच्छानुसार पथ्य देते हैं। ऐसा न कर रोग, दोष एव रोगी की अवस्थानुसार पथ्य देना चाहिये।

साधारण पथ्य ये हैं—यदि ज्वर उग्र है, रोग का प्रकोप है तो उसके अनुसार पथ्य करें। लघन या दोषानुसार ज्वर का पथ्य दें। मौसम्मी का गरम रस और मुनक्का का क्वाथ निरापद पथ्य है। दाह उग्र हो तो मीठा अनार उत्तम है। ज्वर कम हो या न हो तो पुराना सफेद चावल, मूग, मसूर, जौ, अरहर, परवल, करैला, कुछ घृत और गधी का दूध अभाव मे गाय का दूध और शान्त वातावरण, ये पथ्य हैं। कास श्वास हो तो मधु और मुलहठी का प्रयोग अवश्य करें।

अपथ्य—मैथुन, तेल, दूषित जलवायु, विरुद्ध भोजन, आलू, मटर, शाक, नमक। लाचारी मे अत्यल्प सेंधा नमक दे सकते है। कटु, अम्ल पदार्थ, वेगावरोध, क्रोध और अशान्ति अपथ्य है।

——

चालीसवां अध्याय

क्षुद्र रोग

जिन रोगो का वर्णन संक्षिप्त (अति लघु रूप मे) किया गया है उन सभी का नाम क्षुद्र रोगो मे ले लिया गया। यद्यपि अग्निरोहिणी आदि क्षुद्ररोगो मे कथित रोगो का वर्णन कुछ विस्तार से है पर वे अपवाद हैं। जिस प्रकार 'छाता वाले जाते हैं, इसमे अधिकाश छाता वाले हैं और दो चार बिना छाता वाले भी रहते है, परन्तु कहा जाता है कि छाता वाले जा रहे हैं। कुछ लोग क्षुद्र का अर्थ परिशिष्ट, कुछ लोग भयकर और नीच तथा कुछ लोग क्षुद्रो अर्थात् बालको का रोग अर्थ लगाते हैं। पर ये तीनो अर्थ गलत हैं। यह ज्ञातव्य है कि चरक ने किसी रोग को न तो क्षुद्र सज्ञा दी है और न इस नाम से कोई प्रकरण ही लिखा है।

माधव निदान मे ४३, सुश्रुत मे ४४, वाग्भट्ट मे ३६ क्षुद्ररोगो का वर्णन है परन्तु हम अत्यन्त प्रचलित और अनिवार्य क्षुद्र रोगो का ही वर्णन यहा करेंगे—

पाषाणगर्दभ—इसमे हनुसन्धि (कर्णमूल) मे दोनो ओर या एक ओर कुछ कडी सूजन हो जाती है। यह स्थिर मन्द पीडा वाली तथा चिकनी होती है। इसमे और टान्सिल (गले की ग्रन्थि) की सूजन मे जो अन्तर होता है उसे मुख रोग मे वर्णन करेंगे।

पाषाणगर्दभ मे पत्थर से सेक कर नालुका लेप या सुप्रसिद्ध धतूरा का लेप (बिलोडोना प्लास्टर) लगायें। कुछ न मिलने पर हल्दी प्याज चूना का ही गरम लेप करें। चूना कम मात्रा मे डालें। किसी भी लेप को २४ घण्टे के बाद बदल दें। नमक के गरम घोल से गलगला कर कुल्ला करें। ४-५ दिन मे अच्छा होता है।

चिप्प और कुनख—नखो मे वायु पित्त कुपित होकर उनके अन्तर्गत मास मे दाह पाक और पीडा उत्पन्न करते हैं। परिणामत नख कुछ मोटे और अत्यन्त भद्दे हो जाते हैं। उनके भीतर का मांस भी कुछ सूज जाता है। इसे चिप्प कहते हैं। नख के ऊपर (नख और त्वचा के बीच या नखसन्धि मे) ही जब दाह व पाक होता है तो नख

खरदरे, सूखे, काले और असुन्दर हो जाते हैं। इसे कुनख या अगुलिवेष्ट या कुलीन कहते हैं। पजाब मे इसे चन्दरा कहते हैं।

चिप्प मे नख के नीचे के मास का स्वेदन कर उसे जरा खरोच कर सरसो का तेल लगा कर उस पर राल का चूर्ण छिड़क कर बावे। प्रतिदिन ऐसा करते रहे। हा नख के नीचे के मास को रोज खुरचने की आवश्यकता नही। कभी कभी उसके वढ जाने पर खुरच दें। वढे हुए नख को भी काटते रहे। लौह पात्र में हल्दी के रस मे घिसी छोटी हर्रे का लेप भी लाभकारी है। नख के भीतर चौकिया सोहागा का चूर्ण भर कर बावने से भी लाभ होता है।

पाददारी (बेवाय)—नगे पाव अधिक चलने से वायु पैरो मे विवाई कर देता है। इनमे पैर की त्वचा फट जाती है। कुष्ठ मे कथित विपादिका और इसमे यह अन्तर है कि उसमे रक्तादि सर्व शरीरगत धातुये दूषित होती हैं। तीनो दोष कारण होते है। पैर मे कई स्थानो पर त्वचा फटती है। शीघ्र अच्छी नही होती। परन्तु इस विपादिका मे केवल स्थानीय पादतल की त्वचा दूषित होती है। दोष केवल वायु होता है। एक-दो या तीन स्थान पर फटती है। यह शीघ्र अच्छी होती है।

रात मे गरम पानी से पूरे पैर को विशेषत विवाई को धोकर सुखा कर सरसो का तेल लगा जरा सेक कर सो जाय। दिन मे भी इसी प्रकार करते हुए अपना काम करे। पैरो मे मोजा या जूता पहने रहे। घर मे खडाऊ या चट्टी पहनें। स्वच्छ विवाई मे जरा पिघली मोम भरने से भी लाभ होता है। ४-५ दिन मे वह अच्छी हो जायगी।

कदर (गोरखुल)—ककड़ी द्वारा पादतल के पीडित होने या काच आदि धस जाने पर वहा गाठ सी पड जाती है। चलने फिरने मे उस पर दबाव पडने पर वडा कष्ट होता है।

इस गाठ को नोकीले चाकू से जड से काटकर निकाल कर तप्त सरसो के तेल या तप्त लौह शलाका से जला कर व्रण के समान मरहम पट्टी करे। याद रखिये, काट कर विना इसकी जड निकाले लाभ न होगा। क्योकि यह गठीली जड ही भीतर मास मे धस कर कष्ट देती है।

अलसक (अ गुलियो का सडना)—अ गुलियो के भीतर के हिस्से के बराबर गीले रहने और दूषित कीचड के लगने से वहा सडन उत्पन्न होकर खुजली होती है। इसे अलसक कहते हैं। याद रखिये, अजीर्णाधिकार मे कथित उदर रोग का अलसक सर्वथा भिन्न है।

इस रोग मे रात सोते समय अगुलियो के भीतरी हिस्से को गरम पानी से धोकर कपडे से पोछ कर सुखा कर सरसो का तेल लगा दें। दिन मे भी ऐसा करें। ४-५ दिन बराबर उक्त हिस्से को स्वच्छ कर सुखाकर सरसो का तेल लगा दें।

उसके भीगने पर तुरन्त सुखायें। घर मे चट्टी या खडाऊ का प्रयोग करें। वाहर
जूते का प्रयोग करें।

इन्द्रलुप्त (चाईंचू ग्रा)—मोछ दाढी मे कही-कही कफ द्वारा रोम कूपो के ढक
जाने से वाल झड जाते है। वहां की त्वचा चिकनी सी हो जाती है। यह सिर मे
हो तो खालित्य और सारी देह मे हो तो रुह्या कही जाती है।

निम्बू की फाक पर नमक छिडक कर उससे प्रारम्भ मे एव वीच-वीच मे
(न्यूनतम सप्ताह मे एक वार) इन्द्रलुप्त खालित्य या रुह्या के स्थान को रगड दें।
यहाँ तक कि वहा कुछ रक्त छरछरा जाय। तव उस स्थान पर हाथी दात की
काली राख (अधिक आंच देने से भस्म सफेद होकर वेकार हो जायगी) १।४ भाग
और रसौत ३।४ भाग वकरी के दूध मे घोट कर लगायें। दिन रात मे ३ वार
अवश्य लगायें। इसे प्रति दिन लगाना चाहिये। वडा लाभ होता है।

अरुंपिका (रूसी)—अत्यन्त नन्ही-नन्ही अनेक मुख वाली स्राव युक्त फुन्सिया
कफ रक्त और क्रिमि के प्रकोप से होती है। इसका स्राव सूखने पर रूसी की
तरह छूटता है।

इसमे भैपज्य रत्नावली (क्षुद्ररोगाधिकार) का द्विहरिद्राद्य तैल (हल्दी, दारु
हल्दी, चिरायता, निम्ब की छाल, हर्रा, वहर्रा, आवला और लाल चन्दन के वुरादे
का कल्क, कल्क के चौगुना काली तिल्ली का तेल, तेल का चौगुना जल पका कर तैल
शेप रहने पर छान ले) वडा लाभदायी है।

पलित—क्रोध, शोक और श्रम से असमय मे ही वाल पक जाते हैं। इसे पलित
कहते हैं। इसमें स्निग्ध पदार्थों का सेवन एव मस्तिष्क को शीतल उत्तम तैलो से तृप्त
रखना चाहिये। हर्रा २ तो०, वेहर्रा २ तो०, आवला २ तो०, पक्व लौह १ तो० और
आम की गुठली का गुद्दा ५ तोला इन सव को पानी मे लोहे के वर्तन मे पीस कर
रात भर उसी मे पडा रहने दें। प्रतिदिन इसका लेप करने से वडा लाभ होता है।
समस्त वालो को छूरे से सफाचट कराकर इस लेप को लगायें। प्रति ४-५ दिन पर
पुन सफाचट करा दें। लेप वरावर लगता रहेगा। इस प्रकार १५ दिन मे लाभ
होगा। सुप्रसिद्ध भृ गराज तेल सतत साल भर लगाने से लाभ होता है।

युवानपिडिका (मुहासा)—कफ वायु के प्रकोप से जवान पुरुषो एव स्त्रियो के
मु ह पर छोटी-छोटी फुन्सिया होती हैं जिन्हे युवान पीडिका या मुख दूषिका कहते हैं।

इसमे रात मे सोते समय अशुद्ध कुचिला को पानी मे घिस कर सारे मुँह पर
या मु हासो पर लेप कर दें। प्रात गरम पानी से धो डालें। ४-५ दिन मे लाभ
होगा। याद रक्खें कुचिला एक जहर है। मुँह मे न जाने पाये।

या कुचिला को २४ घण्टे पानी मे भीगने दें। फिर कुचिला फेंक दें। उस पानी

मे सफेद घु घची और लाहौरी नमक पीस कर लेप करें और गरम पानी से धोयें। वडा लाभ होता है।

न्यच्छ (झाँई) और व्यग—समस्त मु ह पर यत्रतत्र काला पतला दाग पड जाता है उसे न्यच्छ कहते है। एक जगह मु ह पर गोला वही दाग पडे तो व्यग कहा जाता है। युवानपिडिका की ही चिकित्सा यहा भी करें। इसमे नीवू के रस मे पीली कौडी पीस कर लेप करें। या जायफल कालीमिर्च और लाल चन्दन समभाग पानी मे पीस कर कुछ दिन लेप करे। वड के अ कुर और मसूर को गोदुग्ध मे पीस कर लेप करने से वडा लाभ होता है। मजीठ को मधु से लेप करने से भी लाभ होता है।

नोट—युवानपिडका, न्यच्छ, व्यग सव पर एक दूसरे के लेप काम करते है। पर विशिष्ट चिकित्सा उस रोग मे विशेप लाभ करेगी।

अहिपूतनक (चूना लगना)—इसका वर्णन वाल रोग मे होगा।

वृपणकच्छू (काछ लगना)—अण्डकोपो के आसपास जाघ की सन्धि मे वहा की गन्दगी, पसीना या लगोट आदि के घर्पण से खुजली होने लगती है। यहा गरम पानी से स्वच्छता करे। सरसो का तेल लगाये। वहा लगोट आदि रगड करने वाले वस्त्र न पहने। राल, कूठ, सेधा नमक और सफेद सरसो का उवटन भी वहा लाभकारी है।

कक्षा विद्रधि (कखौरी)—कांखो मे वारम्वार कई फुडिया निकलती हैं। जो अति प्रसिद्ध है। वडा कष्ट देती हैं। ४-५ या दोनो काखो मे लगातार पारी-पारी से निकलती है। इसे तुरन्त सेक कर, गरम चादी का रुपया वाध कर या नालुका लगा कर या वेलोडोना प्लास्टर लगा कर वैठायें। न वैठे तो पका दे और फूटने पर व्रण के समान चिकित्सा करे।

गुदभ्र श (काच निकलना)—रूक्ष और दुर्वल देह वाले प्राणी को अत्यधिक प्रवाहण (मल निकालने के लिए काखना) एव अतिसार से गुदभ्र श हो जाता है। इसमे गुदा की वालिया वाहर निकल आती हैं। गुदमैथुन भी इसमे एक कारण होता है।

इसमे गाय या चूहे की चर्वी लगा कर भीतर गुदा को प्रविष्ट करा कर ऊपर से इमे चुपड कर लगोट कस कर वधवा दे। वडा लाभ होगा। चर्वी के अभाव मे घृत का प्रयोग करे।

किसी प्रकार गुदाप्रविष्ट कर शराव चुपड कर वाधने से भी कुछ लाभ होता है।

क्षुद्ररोगो मे पथ्यापथ्य—अनेक प्रकार के अनेक रोगो का वर्णन यहा होने से सवका पथ्यापथ्य वताना असम्भव है। दोप एव व्याधि के दृष्टिकोण से अपने विवेक के आधार पर पथ्यापथ्य का निर्धारण कर लें।

——

एकतालीसवां अध्याय

शालाक्य तन्त्र के रोग

मुख, नासिका, कान और आंख के रोग

यद्यपि उपर्युक्त रोगों की गणना काय चिकित्सा के बाहर है तथापि आये दिन उनसे प्राणी पीडित होते ही रहते हैं। इसलिये चिकित्सक के अभाव मे काम चलाने के लिये उनमे मे अति प्रचलित रोगो का वर्णन अति सक्षेप मे होगा —

मुख रोग

ओठ का फटना-वायु के प्रकोप से ओठ फट जाते है। उनमे पीडा भी होती है। ऐसी अवस्था में ओठों एव नाभि मे बरावर ३-४ दिन तक घी लगाते रहे।

शीताद-इसमें दात के मसूड़ो से अकस्मात् रक्त निकलता रहता है। मसूडे दुर्गन्धित, काले, क्लिन्न और मुलायम हो जाते हैं। अन्तत वे शीर्ण हो कर गिरने लगते हैं। इसमे मुंह को बरावर स्वच्छ रखे। फिटकिरी के गरम घोल से दिन रात मे ७-८ बार कुल्ला करें। आगे लिखा वज्रदन्ती मजन अतीव लाभकारी है।

दन्तवेष्ठ (पायोरिया) — इसमे मसूडो मे से पूय और रक्त निकलता रहता है। दांत हिलने लगते हैं। इसमे भी शीताद वाली चिकित्सा हितकारी है। हा दिन रात मे २-३ बार नमक के गरम घोल से भी कुल्ला करना चाहिए।

शौषिर रोग (मसूडे मे सूजन) — मसूडो मे अत्यन्त पीड़ा करने वाली सूजन हो जाती है। इसमे मे लार गिरता रहता है। इसमे भी नमक और फिटकिरी के गरम घोल से बारम्बार कुल्ला करना चाहिए। तत्पश्चात् लवग का तेल या लवगादि सुवा (कपूर, पीपरमेन्ट, अजवाइन को सम भाग लेकर शीशी मे बन्द कर दें। १ दिन के भीतर सब गल कर द्रव हो जायगा उसी मे लवग का तेल १ भाग डाल दे) का फाहा लगाये। कपूर और अकरकरा का चूर्ण मलने मे भी दन्तशूल नष्ट होता है।

क्रिमिदन्तक (खोढरा) क्रिमि द्वारा दात भक्षित होता रहता है। दात मे काला काला गड्ढा पट जाता है। यदा कदा वहां असह्य दर्द होती है।

खोढरा के भीतर हलके नमक के तेजाव का फाहा लगा दे । सब क्रिमि खोढरे के भीतर ही जल जायगे । पीडा तुरन्त शान्त होगी । लार गिराये । यदि तेजाव या लार के लग जाने से इधर उधर छाले पड जाय तो तनिक चिन्ता न करें । विना पीड़ा के छाले शान्त हो जाते है । मलाई के समान त्वचा भी उतरे तो चिन्ता न करे । हा ! यह अवश्य ध्यान रक्खे कि खोढरे (कोटर) के अतिरिक्त अन्यत्र तेजाव न लगने पाये । तेजाव न मिलने पर खोढरा मे हीग भर दे ।

स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) एवं छोटी कटेरी के बीजो को मदार या सेहुण्ड के दूध मे पीस कर कोटर मे भर देने से भी कीडे मर जाते है ।

दन्त हर्ष (दातो मे पानी लगना)—वायु के कारण पानी लगने पर दातो मे असह्य कष्ट होता है । मसूढे से रक्त निकलने के कारण भी ऐसा होता है ।

इसमे सेधा नमक और सरसो के तेल से मजन ४-५ बार करे एवं नमक और फिटकिरी के गरम घोल से ४-५ बार कुल्ला करे । सरसो के तेल को मुह मे कुछ देर तक धारण कर हिलाते रहे तत्पश्चात थूक दे । बडा लाभदायी है ।

वज्रदन्ती (दन्त मंजन)—१-त्रिफला, त्रिकुटा, तूतिया, पाचो लवण, पतग ।
वज्रदन्त कर देत हैं, माजूफल के सग ।

हर्रा, वेहर्रा, आवला, सोठ, मिर्च, पीपर, भूनी शुद्ध तूतिया, सेधा नमक, काला नमक, विड नमक, समुद्र नमक, खारा नमक, पतग और माजूफल प्रत्येक वरावर लेकर कपडछान चूर्ण कर लें । वहुत उत्तम दन्त मजन है ।

नोट—(१) तूतिया को कटाही मे भूने । भूनते-भूनते वह सफेद हो जाय तो उसे शुद्ध समझे । तूतिया से पहले चक्कर आने लगता है । घवडाये नही, आगे चल कर अभ्यास हो जाता है । यह याद रखे मजन निगले नहीं । तूतिया अनुकूल न पडे तो अत्यन्त न्यून डालें ।

(२) पतग का चूर्ण जल्दी नही होता । उसे जलाकर चूर्ण करे ।

(३) केवल कोयला २ भाग और सेधा नमक १ भाग को कपडछान कर ले, यह उत्तम मजन है ।

(४) उत्तम खडिया मिट्टी ३ भाग सेधा नमक १ भाग भी उत्तम मजन है ।

(५) तम्बाकू का जला (जट्ठा) या वादाम के छिलके का कोयला ३ भाग और सेधा नमक १ भाग भी उत्तम मजन है ।

(६) मौलसिरी की छाल का चूर्ण भी उत्तम मजन है ।

(७) भैषज्य रत्नावली का दशन सस्कार चूर्ण भी उत्तम मजन है ।

(८) सुवनी भी एक उत्तम मजन है । पर यह भी प्रारम्भ मे चक्कर आदि कष्ट देती है जो वाद मे ठीक हो जाता है ।

कण्ठशुण्डी और तुण्डिकेरी
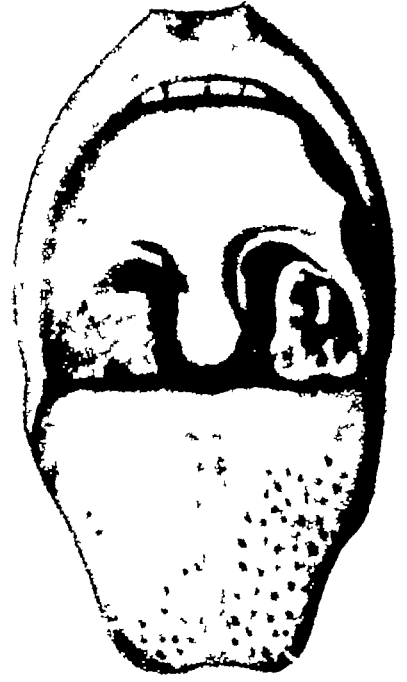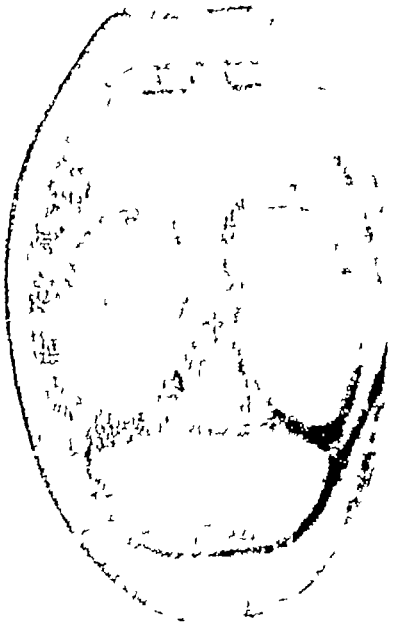
मुख पाक या मु ह में छाले पडना—अधिकतर कोष्ठवद्धता से यह होता है। विरेचन से बड़ा लाभ होता है। ग्रहणी रोग, रस कपूर के विकार एव पूयमेह-उपदश-फिरग मे भी ऐसा होता है। इन रोगो की चिकित्सा करते हुए मुख पाक की चिकित्सा करे। फिटकिरी के गरम घोल से ६-७ वार कुल्ला कर चौकिया सोहागा का लावा १ भाग फिटकिरी १ भाग और मधु ३ भाग का फाहा वारम्वार लगायें।

कत्था भी छालो पर वडा लाभ करता है।

कण्ठशुण्डी या गलशुण्डी (घण्टी)- मु ह के भीतर महराव के ठीक वीच मे ऊपर की ओर रहती है। यह सूज कर गले मे लगने लगती है तो खासी आदि आती है। कभी कभी सोते समय अधिक कष्ट हो जाता है। इसमे नमक और फिटकिरी के गरम घोल से खूव गलगला कर ५-७ वार कुल्ला करें। मुखपाकोक्त मधु वाला फाहा लगायें।

निम्नलिखित उपायो से घण्टी वैठती है —

(१) ताजा भूना चना (छिलका युक्त) खाने से।

(२) कडी रोटी खाने से।

(३) शुद्ध राख या चौकिया सोहागा का लावा चिकित्सक अपनी उ गली पर रखकर उससे घण्टी जोर से ऊपर की ओर दवा दें। खून आ जाय तो उत्तम। घण्टी वैठ जाने पर उसके सव उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

तुण्डिकेरी (टान्सिलाइटिस) -महराव मे घण्टी के दोनो ओर दो गाठे होती हैं। उनके सूजने या पकने पर कास श्वास ज्वर आदि होता है। युवावस्था के पूर्व अधिकाश लोगो मे होता है। वच्चो मे वहुत देखा जाता है। इसमे भी फिटकिरी एव नमक के गरम घोल मे ५-७ वार गलगलाकर कुल्ला कराये। मुखपाकोक्त मधु वाला फाहा लगाये। वाहर नालुका या वेलाडोना का लेप करे। वहा से क भी करे। पाषाणगर्दभ और इसमे यह अन्तर है-

पाषाणगर्दभ	तुण्डिकेरी
१—कनपटी की लालाग्रन्थि मे शोथ कनपटी के मामने होता है।	महराव (टान्सिल) मे शोथ। यह अधो हनु के नीचे गले के दोनो ओर स्पर्श से विदित होती है।
२—कडा शोथ होता है।	मृदु शोथ होता है।
३—एक वार होकर अच्छा हो जाता है।	वारम्वार होता है।
४—श्वास नलिका पर प्रभाव नही डालता।	श्वास नलिका पर प्रभाव डालता है।

५—इससे प्राय कास श्वास कष्ट नही होता।	कास श्वास कष्ट इससे होता है ।
६—थूक और अन्न पान निगलने मे कष्ट नही होता।	थूक और अन्न पान निगलने मे कष्ट होता है।
७—शस्त्रोपचार की आवश्यकता नही	पाक होने पर शस्त्रोपचार की आवश्यकता होती है।

रोहिणी (डिफ्थीरिया)--गले मे कुपित पित्त-कफ मास और रक्त को दूषित कर गला को रोकने वाले अकुरो से व्याप्त कर देते है। परिणामत. अत्यन्त शीघ्र प्राण-पखेरू उड जाते है। गला मे सफेद झिल्ली भी पड़ जाती है । ज्वर १०० से लेकर १०४ डिग्री तक हो जाता है।

तत्क्षण अच्छे चिकित्सक की शरण जाये । उसके अभाव मे केवल मनस्तोष के लिये निम्नलिखित चिकित्सा करे —

१---गले मे दोनो ओर से जलीका द्वारा रक्तमोक्षण करे । अन्य उपाय से रक्त-मोक्षण न करे ।

२---कटफल का नस्य देकर छीक लाये ।

३---केवल हर्रा या त्रिफला या कायफल का काढा पिलाये ।

४—कायफल का घनक्वाथ गले मे झिल्ली या अकुरो पर लगाये । यह गल-शुण्डी, तुण्डिकेरी सब पर हितकारी है। या मुखपाकोक्त मधु वाला फाहा लगाये ।

५---माजूफल पानी मे घिसकर लगा सकें तो दाने शीघ्र मुर्झा जायगे ।

६—हृदय को शक्ति देने वाली औषधि मकरध्वज, मुक्ता, स्वर्ण आदि अवश्य दें।

सभी मुख रोगो के लिये—

कालक चूर्ण---घर का धूआ, यवक्षार, पाढ, सोठ, मिर्च, पीपर, रसौंत, तेजबल, हर्रा, बहेरा, आवला, अगर, चिता सब का सम भाग चूर्ण ही कालक चूर्ण है। यह उत्तम दन्त मन्जन है। मधु के साथ लगाने से मुखपाक कण्ठशुण्डी और तुण्डिकेरी, (टान्सिलाइटिस) मे भी लाभदायी है ।

पीतक चूर्ण---शुद्ध मैनसिल, यवक्षार, शुद्ध तबकिया हरताल, सेंधा नमक, दारु हल्दी और दाल चीनी को सम भाग कपडछान चूर्ण कर मधु और घृत मे मिलाकर मुह मे धारण करने से मुखरोग नष्ट हो जाते है। इसे निगले नही । सहकार वटी या खदिर वटिका भी मुह मे रखने से मुख रोग नष्ट होते हैं ।

मुखरोगो मे पथ्य—लघन, लघुभोजन, मूग, परवल आदि। मसूढे मे दर्द होने पर घृत युक्त मूग का यूप दे अपथ्य समस्त कफकारक पदार्थ यथा दही, मलाई, रबडी भात आदि ।

नासा रोग

प्रतिश्याय, (जुकाम)—यह एक अति प्रचलित और प्रसिद्ध रोग है। जिसमे आमावस्था मे नासिका से पानी के समान पतला स्राव, अधिक छीक, क्षुधानाश, ज्वर, देह विशेषत सिर मे पीडा, कास, भारीपन, नासिका मे अवरोध आदि लक्षण होते हैं। पक्वावस्था, (दोष के पक जाने पर) मे गाढा स्राव, छीक मे कमी, कास मे कमी, ज्वर की मृदुता, देह और सिर मे पीडाशान्ति, क्षुधा, व लघुता हो जाती है। नासिका खुल जाती है। जिसमे नासा से श्वास के आवागमन मे कष्ट नही होता। कास भी कम हो जाता है।

प्रतिश्याय सामान्यत वेगो को रोकने, अजीर्ण, अत्यन्त भाषण, ऋतु की विषमता या परिवर्तन, अत्यन्त जागरण, शीतल जल, ओस, मैथुन और धूआ से होता है। बारम्बार प्रतिश्याय होना धातु क्षय का एक लक्षण है। इससे बचना चाहिये। क्योंकि प्रतिश्याय के अच्छा न होने पर कास और कास अच्छा न होने पर यक्ष्मा हो जाता है।

चिकित्सा—कारणो से बचिये।

आमावस्था मे लघन कराये। सहने योग्य अधिकतम उष्ण जल अधिकतम मात्रा मे बारम्बार पिलायें। इससे बडा लाभ होता है।

औषधि के रूप मे गोदन्ती भस्म ४ र०, रससिन्दूर १-२ र० (इसके स्थान पर कृष्णाभ्रभस्म १-२ र० दे सकते हैं) प्रवाल भस्म १ र० और टकण भस्म (चौकिया सोहागा का लावा) १ र०को आर्द्रक स्वरस अठन्नी भर या चवन्नी भर के साथ दे। ऐसी मात्रा प्रात दोपहर साय और रात को दे। एक या दो दिन मे दोष पच जायगा और आराम मालूम पडेगा। कोई औषधि न हो तो केवल सह्य योग्य अधिकतम उष्ण जल ही अधिकतम पीये। लघन करे। आर्द्रक मिल जाय तो उसका सेवन करें। सिर की पीडा मे दालचीनी, लवग मे से किसी एक अथवा दोनो का लेप करले। खासी के लिये मरिचादि वटी या व्योपादि वटी चूसें। मिश्री, मुलहठी भी चूसी जा सकती है।

पक्व प्रतिश्याय मे छीक लाये। सिर पर तेल रक्खे। पसीना लाये। कटु पदार्थ आदी, सोठ, हिंगु आदि से युक्त लघु भोजन करे। आम प्रतिश्याय की औषधियो मे ही मृत्यु जय १ र० या रामबाण १ र० मिला कर दे।

नोट—प्राय प्रतिश्याय मे वायु और कफ का प्रकोप होता है। इसी दृष्टिकोण से यहा सारी चिकित्सा लिखी गयी है। यदि पित्त का प्रकोप है तो शीतल जल, मुलहटी इत्यादि का सेवन करे।

पुराने प्रतिश्याय या बारम्बार होने वाले प्रतिश्याय मे २-३ मास तक सितोपलादि चूर्ण १ माशा, टकण भस्म २ र०, मुलहठी चूर्ण ४ र०मिला कर प्रातः साय मधु से सेवन करें। मैथुन या धातुपात से बचे। औषधियो के अभाव मे सोठ, मिर्च

पीपल, छोटी इलायची का दाना प्रत्येक ८-८ माशा, पुराना गुड १६ तोला मिलाकर रख दें। प्रतिदिन रात को सोते समय २ माशा खाकर उष्ण जल पी लें। बकरी का दूध भी पुराना या वारम्बार होने वाले प्रतिश्याय मे लाभ करता है।

कुछ लोग प्रतिश्याय को ही पीनस कहते है। पर यह सर्वथा भिन्न रोग है, जिसका विवेचन यहा अभीष्ट नही।

प्रतिश्याय मे पथ्य—प्रारम्भ मे लघन, तत्पश्चात् मू ग, परवल, आदी, लहसुन, मलाइ युक्त दही मधु मिलाकर, मधु, गुड, उष्ण जल, बकरी का दूध।

अपथ्य—वेगावरोध, दिवाशयन, चिन्ता, अधिक द्रव भोजन, शर्बत आदि और भूमिशय्या।

कर्ण रोग

कर्ण शूल-कान की पीडा के कारणो मे कुछ ये है —

(१) कान मे मल का आधिक्य और उसका किसी द्रव पदार्थ से फूल जाना।

(२) कान मे फुन्सी।

(३) कान मे किसी वस्तु का घस जाना या अन्य आघात।

(४) कान मे क्रिमि पड जाना।

(५) कान मे वायु का प्रकोप प्रतिश्याय और शिरो रोग के कारण भी हो सकता है।

चिकित्सा—कारणो को निम्नलिखित या अन्यान्य उपायो से दूर करे —

(१) कान का मल यदि मृदु न हो तो कान मे सरसो का तेल या तिल्ली का तेल छोडकर मृदु करे। इसके लिये क्षार तैल, अपामार्ग क्षार तैल और सर्जिकाद्य तैल भी उत्तम हैं। उपर्युक्त तेलों मे से किसी एक का व्यवहार करने से १२ घण्टे या २४ घण्टे मे मैल मृदु हो जायगी। उसे सावधानी से निकाल ले। वडा सुन्दर हो यदि गरम पानी से धोकर निकालें। इसके लिए कान धोने वाली पिचकारी जो वाजार मे काच की पाच-सात आने की या धातु की मिलती है, प्रयोग करे। कान मे नीबू का रस छोडकर ऊपर से कौडी की भस्म छोडने से मैल मे क्षारीय क्रिया होकर वह तुरन्त मृदु हो जाता है। वस उसे धोकर निकाल दीजिये।

याद रक्खे। कान धोने के वाद उसे रूई के फाहा मे अच्छी तरह सुखा कर पुनः उपर्युक्त तेलो में से कोई तेल छोड दे।

२—कान की फुन्सी को भी उपर्युक्त तैलो मे से किसी से स्निग्ध करे। वाहर से कान को सेके। कान के चारो ओर वाहर वालुका का लेप करे। कुछ शान्ति मिलेगी परन्तु फुन्सी के वह जाने या वैठ जाने पर ही पीडा नष्ट होगी। फूट जाने पर पूय को गरम पानी से धोकर या योंही। रुई के फाहे से अच्छी तरह सुखा दें।

३—कान मे किसी वस्तु के धस जाने जाने या आघात हो जाने पर धसी हुई वस्तु को बाहर करने के बाद कुछ गरम सहने योग्य सरसो का तेल, तिल्ली का तेल, नारायण तेल, दशमूल तेल (इनमे कोई एक, क्रमश उत्तम) छोडे । ऊपर से सेक करे । वालुका हल्दी प्याज या महुआ अथवा अन्य वातनाशक लेप करे ।

(४) कान मे क्रिमि पड जाने पर सहने योग्य गरम सरसो का तेल गरम जल, म्योंडी की पत्ती का रस, हुरहुर की पत्ति का रस, गोमूत्र आदी का रस मे से कोई छोडकर रुई के फाहे से क्रिमि निकाल ले । इस पर भी क्रिमि न निकले तो गरम पानी या नीम की पत्ती के काढे से कान धो दे । याद रक्खे कान मे से क्रिमि निकल जाने पर उसमे पडे द्रव को सुखाकर न० ३ के किसी तैल को अवश्य कान मे छोड दें ।

(५) कान मे वायु का प्रकोप हो तो कोई वातनाशक तैल छोडे । कारण को दूर करे ।

कर्ण शूल नाशक सामान्य औषधियां —

(क) आर्द्रक, म्योडी, लहसुन, करेला और तुलसी मे से किसी के सहने योग्य गरम रस मे सेधा नमक मिलाकर कान मे छोडे ।

(ख) बकरी के दूध मे सेधा नमक मिलाकर छोडे ।

(ग) मदार के पके (पीले) पत्ते पर घी पोतकर जरा सेक कर उसका सहन योग्य गरम रस कान मे छोडे ।

नोट .—यदि अफीम १ रत्ती प्राप्त हो तो उसे उपर्युक्त औषधियो मे मिला देने से शूल तत्क्षण शान्त हो जाता है ।

कर्ण नाद और कर्णक्ष्वेड—वायु के प्रकोप से कान मे भाति-भाति के शब्द होने लगते हैं जिसे कर्णनाद कहते हैं। केवल वासुरी के समान शब्द होने को कर्णक्ष्वेड कहते है ।

इन दोनो मे कर्ण शूल की न० ५ की औपधियो का व्यवहार हो सकता है । उनके अतिरिक्त अपामार्गक्षार तैल, या स्वर्जिकाद्य तैल भी छोडने से लाभ होता है ।

आर्द्रक स्वरस ६ मा०, मधु ३ मा०, सेधा नमक १ र० और तिल्ली का तैल ३ मा० सबको मिलाकर छोडने से भी लाभ होता है ।

सोठ को पानी मे पीसकर उसका रस गार ले । उस रस मे गुड़ मिलाकर नस्य लेने से बडा लाभ होता है।

कर्णस्राव (कान का बहना)—कान मे फुन्सी हो जाने से जो कान बहता है वह फुन्सी सूख जाने पर अच्छा हो जाता है। उसमे कान धोकर सुखाकर फिटकिरी

के लावा का महीन चूर्ण कान में छोड़कर किसी नलिका में फूंक मार कर उसे भीतर भलीभाति प्रविष्ट कराये ।

कान के पर्दा मे छेद हो जाने से अतिकाल तक कान बहता है। उसमें भी उपर्युक्त उपाय अत्यन्त लाभकारी है। जम्ब्वाद्य तैल भी लाभकारी होता है।

कान मे स्राव होने से खुजली भी होती है उसमें भी उपर्युक्त तैल लाभ करता है। लेकिन कान को पोछकर उसे छोड़िये। कर्ण स्राव को उपर्युक्त फिटकिरी का लावा से ठीक करे। पर खुजली हो तो जम्ब्वाद्य तैल छोड़ दे ।

वहिरापन—यह कान मे मैल भर जाने से अस्थायी रूप और कान मे छेद हो जाने एव वायु के प्रकोप से स्थायी रूप मे हो जाता है। कारण का ध्यान रख कर चिकित्सा करे। अपामार्ग क्षारतैल, स्वर्जिकाद्य तैल और दशमूल तैल मे से किसी एक का व्यवहार करे ।

आख की पीडा और ललाई—इसमे निम्नलिखित कोई औषधि डाले :—

(क) गुलाव जल २ तो० मे रसौत ४ माशा फिटकिरी का लावा ४ र० और अफीम ४ र० घोटकर भली भाति कपडे से छान कर आख मे छोडने से अत्यधिक लाभ होता है।

(ख) स्त्री के दूध मे रसौत घिस कर अंजन करने से लाभ होता है यदि दारु हल्दी प्राप्त हो तो उसे भी इसमे घिस देने से अधिक लाभ होगा।

(ग) केवल स्त्री का दूध भी लाभदायी है।

(घ) त्रिफला का सहने योग्य गरम काढा भी आख मे डालने से लाभ होता है।

निम्नलिखित कल्को मे से किसी को आख पर रखकर वाव दें —

(१) नीम की पत्ती का कल्क। (२) त्रिफला का कल्क। (३) रेंड की पत्ती, जड और छाल का कल्क। (४) रसौत का गुलाव जल मे वनाया कल्क।

नेत्र के ऊपर किये गये लेप को विडालक कहते हैं। निम्नलिखित विडालक भी लाभदायी हैं —

(१) फिटकिरी का लावा ४ चना के वरावर अफीम चने की एक दाल के वरावर स्त्री के दूध मे घोट कर कुछ गरम कर।

(२) रसौत को गुलाव जल मे घोटकर।

(३) भैंस के दूध की मलाई।

नोट :—याद रक्खें! आख की पीडा की दवाओ मे यदि कुछ (१ र० २ र० तक) अफीम मिला दी जाय तो अधिक लाभकारी होगा।

रोहा या ग्राख की खुजली—(१) रोहो पर चिकनी तूतिया पानी मे भिगोकर घिसने से लाभ होता है।

(२) भैपज्य रत्नावली की लेखनी चन्द्रोदया वर्त्ती, ग्यूपणाद्या वर्त्ती और हरीतक्यादिवर्त्ती मे से किसी एक को पानी मे घिसकर ५-७ वार लगायें।

(३) कुलथी का शुद्ध ग्राटा भी रोहो पर रगडने से वडा लाभ होता है। (कुलथी को पानी मे भिगोकर छिलका छुडा कर सुखा दें) फिर कुलथी को पीस कर ग्राटा वनायें।

(४) पुनर्नवा की जड को स्त्री के दूध मे घिस कर लगायें।

रतौधी—जिस रोग मे रात को दिखायी नही पडता उसे रतौधी या रात्र्यन्ध कहते हैं। इसमे निम्नलिखित किसी ग्रौषधि का प्रयोग करें —

(१) गदहपुरना की जड को काजी मे घिसकर ४-५ वार लगायें। या पलास की ताजी छाल का स्वरस डालें।

(२) रसौत को स्त्री के दूध मे घिस कर लगायें।

(३) नील कमल या श्वेत कमल की केशर गाय के गोवर के रस मे घिसकर लगायें।

(४) प्याज या ग्रार्द्रक का स्वरस ग्राखो मे डालें।

(५) शफरी (सउरी) को ग्रन्तर्धूम जलाकर मधु मे घोटकर लगायें।

(६) हींग या चौकिया सुहागा को मधु से घिसकर लगायें।

निम्नलिखित पथ्यों का सेवन भी करें तो उत्तम है —

(१) भगरैया ग्रौर रोहू मछली का ग्रण्डा कांजी मे सिद्धकर।

(२) वाजरे का भात।

नाखूना, पुष्प (फुल्ली माडा)—निम्नलिखित कोई उपाय करें।

(१) लेखनी चन्द्रोदयावर्त्ती पानी या वकरी के दूव मे घिस कर ५-६ वार लगाने से वडा लाभ होता है।

(२) वहेरा की गुठली को स्त्री के दूध मे घिसकर लगायें।

(३) गदहपुरना की जड को घी मे घिस कर लगायें।

(४) समुद्रफेन ग्रौर मिश्री का ग्र जन लगायें।

मोतियाविन्द—यह ग्रापरेशन से शीघ्र नष्ट होता है। यदि यह सम्भव न हो तो लेखनी चन्द्रोदया लगायें। उपर्युक्त फुल्ली माडा की ग्रौषधियां भी लाभकारी हैं।

नेत्रो से पानी बहना—(१) गदहपुरना की जड़ का मधु मे घिसकर लगायें या (२) बब्बूल के पत्तों का काढा कर छान ले । फिर उस काढे को पका कर गाढा करे । यह बब्बूल के पत्तो का घनसत्व हुआ । इसमे मधु मिलाकर लगाने मे अपूर्व लाभ होता है ।

नेत्र रोगों की सामान्य औषधियां :—

(१) त्रिफलाचूर्ण २ माशा, घी २ मा०, १ मा० मधु के साथ प्रात सायं खाने से नेत्र के सभी रोगों मे लाभ करता है । त्रिफलाद्य घृत या महात्रिफलाघृत भी बडा लाभकारी है ।

(२) त्रिफला के काढे से आख धोने एवं उसे आख मे डालने से सभी नेत्र रोगो मे लाभकारी है ।

(३) चन्द्रोदय अंजन, कोकिलावर्त्ती, नयनसुखावर्त्ती, सुखावती वर्त्ती, सौगताजन मे से किसी एक का व्यवहार सभी नेत्र रोगो मे लाभकारी है ।

(४) सप्तामृत लौह १ या २ र० मधु घृत से प्रात साय खाने से बड़ा लाभकारी है।

नोट —उपर्युक्त सभी सामान्य औषधियां दृष्टि भी बढाती है । दुर्बलता या वृद्धता के कारण दृष्टि मन्द हो तो घी, दूध और बादाम आदि खाना चाहिये । शोक एव चिन्ता आदि नही करना चाहिये। नेत्र रोगों मे आखो की स्वच्छता पर भी ध्यान दें । नेत्र रोगियो का कोष्ठ सर्वदा शुद्ध रहे, इसका ध्यान रक्खे ।

वयालिसवा अध्याय

शिरो रोग

यहा शिरो रोग से तात्पर्य शिर शूल से है। अति प्रचलित और कष्टदायी शिरो-रोग ये हैं —

अर्धावभेदक (अधकपारी)-रूक्ष भोजन अजीर्ण होने पर भी भोजन, पूर्वी वायु, ओस, मैथुन, वेगावरोध, परिश्रम और व्यायाम के अत्यधिक सेवन से यह होता है जिसमे सिर के आधे भाग मे तीव्र वेदना होती है। यह आगे वढकर आख या कान को नष्ट कर देता है।

चिकित्सा—

इस रोग मे स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। विरेचन हो जाने पर १ दिन विरेचन का पथ्य देकर उष्ण और स्निग्ध भोजन कराये। खाने और पीने की औषधिया सामान्य औषधियो मे लिखी हैं। निम्न-लिखित मे से किसी एक नस्य का प्रयोग कई वार कराये —

(१) केशर को घी मे भून कर वरावर मिश्री मिलाकर अत्यन्त महीन चूर्ण कर नस्य ले।

(२) घी मे अत्यन्त महीन घिसे हुए सेधा नमक का नस्य ले।

ऊषा काल मे नाक से मिश्री घुला हुआ दूध या घी या नारियल का पानी अथवा शीतल जल पीने से वडा लाभ होता है। इन ऊषापानो मे क्रमश हीनगुण है। अर्थात् दूध सर्वोत्तम और जल सवसे हीनगुण है।

सूर्यावर्त्त

इसमे प्रात काल सूर्योदय के साथ ही उत्पन्न पीडा सूर्य की वृद्धि के साथ ही क्रमश वढती हुई मध्याह्न मे सर्वाधिक और असह्य हो जाती है। मध्यान्ह से सूर्य के

ढलने के साथ ही पीडा कम होकर सूर्यास्त मे समाप्त हो जाती है। रात मे बिलकुल नही रहती। इसका कारण पित्त है जो इसमे प्रबल होता है। वात अप्रधान रहता है।

चिकित्सा

इसमे बकरी का दूध और भगरैया का रस समभाग लेकर धूप मे गरम कर नस्य लेने से अत्यन्त लाभकारी है।

दूध मे तिल्ली पीस कर नस्य लेने से भी लाभ होता है।

पथ्य मे दूध और घी मिलाकर पिलाये। घृतयुक्त यथा घेवर, हलुआ आदि पदार्थ खायें। यह ध्यान रक्खें कि कोष्ठ नित्य शुद्ध होता रहे।

खाने और लेप की औषधि आगे देखें :—

अनन्तवात (सबल वायु)—प्रकुपित वात, पित्त, कफ, ग्रीवा की मन्या नाडियो को पीडित कर सिर के पिछले भाग मे पीडा कर देते हैं। जो अविलम्ब नेत्र, भृकुटि और कनपटी मे स्थिर हो जाती है। पीडा असह्य होती है। आँखें भी लाल हो जाती हैं। बीमारी का बारम्बार दौरा होता रहता है। और, बहुत से नेत्र रोग उत्पन्न करता है।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा निम्नलिखित प्रकार करें :—

(१) घी मे भुनी हुई केशर के समभाग मिश्री के महीन चूर्ण से नस्य लें।

(२) घी मे भुनी हुई केशर को बकरी के दूध मे पकाकर मिश्री मिलाकर पिलायें।

(३) आख मे नेत्रशूल नाशक औषधि का प्रयोग अवश्य करें। पूर्ववर्णित नेत्र की पीडा और ललाई नाशक योग न० १ उत्तम है। उसके अभाव मे अन्य प्रयोग करे।

(४) नासिका मे सुप्रसिद्ध षडविन्दु तैल का नस्य ४-५ बार ले।

(५) सिर पर षडविन्दु तैल रक्खे और कान मे भी डालें।

(६) शिर शूल नाशक लेप भी करे। यदि शिरोवस्ति धारण कर सके तो उत्तम है।

शखक—दूषित रक्त पित्त और वायु शख प्रदेश (कनपटी या कच्चा) मे मिलकर वही असह्य पीडा कर देते हैं। विष के समान तीव्र वेग वाला यह रोग अविलम्ब गला को अवरुद्ध कर तीन दिन मे प्राण नष्ट कर देता है। तीन दिन के बाद रोगी के जीवित रहने पर भी जवाब देकर चिकित्सा करनी चाहिये।

इसकी चिकित्सा इस प्रकार करे —

(१) सिर पर बकरी का दूध खूब रक्खे। इसके अभाव मे शीतल जल रक्खें।

(२) दूध की मिश्री का नस्य लें।

(३) दूध घी मिश्री खिलाये।

४—नीम की पत्ती, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, कमल और मुलहठी बकरी के दूध या पानी में पीस कर सिर और कनपटी पर लेप करें।

सभी शिर शूलों की सामान्य चिकित्सा .—

प्रचलित और प्रसिद्ध शिर शूलो की अलग अलग चिकित्सा लिखी जा चुकी है। यह स्मरणीय है कि शिर.शूल सामान्यत वायु के प्रकोप से ही होते हैं। अत सबमे स्निग्ध उष्ण पदार्थो का व्यवहार होता है। स्निग्ध पदार्थों द्वारा कोष्ठ शुद्धि और शिरोविरेचन (छीक लाने वाले) नस्यो का व्यवहार भी करना चाहिये। अधिक छीक शिरोरोगो मे अपथ्य है। इसलिए केवल थोडा सा दोष निकालने के लिए ही इनका प्रयोग करें। विशेषतः कफज शिर शूल मे नवसादर चूना, कायफल, सु घनी, नकछिकनी, कुलजन और श्वासकुठार रस ये सब नस्य लेने से छीक लाते हैं। इनमे से किसी एक का प्रयोग करना चाहिये। २४ घण्टे मे बीच बीच मे २-३ बार स्निग्ध नस्य यथा षड्बिन्दु तैल, घी, दूध आदि को आवश्यकतानुसार लेना चाहिये। कान मे भी षडबिन्दु तेल छोड़ना चाहिये। सिर पर लवग, दालचीनी या मुचकुन्द के फूल का लेप करना चाहिये। सिर पर गरम पुरातन घी भी बहुत काम करता है। इसकी मालिश करने के बाद इसे महुआ के पत्ते पर पोतकर गरम कर बाध दें तो अधिक लाभ होगा। औषधि रूप मे खाने के लिए नारदीय लक्ष्मीविलास[1] २ र०, महालक्ष्मी-विलास २ र०, शिर शूलाद्रिवज्ररस २ र० मे से किसी एक का व्यवहार प्रात दोपहर साय और रात करें। अनुपान मे *शाङ्र्गधर सहिता का पथ्यादि* (हर्रा, बेहर्रा, आवला, चिरायता, हल्दी, नीम की छाल, गुरुच का क्वाथ गुग्गुल या गुड मिलाकर) दे सकें तो उत्तम है। अन्यथा बकरी का दूध या गरम जल अथवा मधु मे से कोई अनुपान दें। पथ्यादि क्वाथ स्वतन्त्र भी काम करता है।

नस्य मे या पीने के लिये दशमूल का काढा, घी और सेधा नमक मिला कर प्रयुक्त हो सकता है। दशमूल तैल का नस्य, पान और कर्णपूरण मे प्रयोग हो सकता है। रोगी को नीद आ जाय तो सर्वोत्तम। इसके लिये पूरी व्यवस्था करें। शिर शूल की औषधियो से आराम के साथ नीद भी आती है। पुराना घृत सिर पर रखने से और सर्पगन्धा चूर्ण ४ र० उष्ण जल से खिलाने से नीद आती है।

पथ्य—साधारणतया घृत युक्त पदार्थ यथा घृतपूर (घेवर) मधु मस्तक, सयाव (हलुआ) देना चाहिये। इनकी रचना आयुर्वेद के ग्रन्थो मे लिखी है। मलाई, रबडी, दूध, घी भी खिलायें। याद रक्खें इनका व्यवहार बहुत दिनो तक करने से लाभ होगा। उपर्युक्त अर्धावभेदक, सूर्यावर्त एव अनन्त वात प्राय धातु क्षय से होते हैं।

१—इसमें भाग पड़ती है। अत यदि अतियोग से भांग के लक्षण प्रगट हों तो उसकी चिकित्सा करें। घबड़ाए नहीं। अधिकतम इनका प्रयोग १५ दिन तक चलाए। शूल अच्छा होने पर न दे या कम दें।

इसलिये उपर्युक्त पथ्य के साथ ही धातु क्षय से वचें। कभी-कभी मैथुन करने से दुर्बलो को जो शिर शूल हो जाता है उसमे भी उपर्युक्त व्यवस्था करनी चाहिये।

कफ के प्रकोप से जो शिर शूल होता है उसका उपचार प्रतिश्यायवत् करें।

जहा ताप आदि उष्ण कारणो से पैत्तिक शिर शूल हो वहा सिर पर शतधौत घृत, मक्खन, धनिया, गुलाबजल, सिरका और शीतल तैल रखना चाहिये। खाने के लिए मुक्ता पिष्टी, प्रवाल भस्म मे से कोई दे। अनुपान गुलकन्द का शर्वत, सौंफ का शर्वत, धनिया का शर्वत, गुलावजल आदि दे।

सामान्य पथ्य—पुराना अरवा चावल, साठी चावल, मूग, परवल, करैला, वथुआ दूध, घी, मलाई, मट्ठा, अनार, आवला, आम, नारियल, काजी व कपूर, आदि।

अपथ्य—मैथुन, वेगावरोध, अजीर्ण, अनिद्रा, विरुद्ध भोजन और अधिक छींक आदि।

——

तैंतालीसवां अध्याय

स्त्री रोग

पुरुषो को जो रोग होते हैं सामान्यत वे ही स्त्रियो को भी होते हैं। चिकित्सा भी दोनो की समान होती है। केवल सुकुमारता, गर्भावस्था आदि का विशेष विचार स्त्रियो मे करना पड़ता है अर्थात् औषधि की मात्रा एव उग्रवीर्यता आदि का विशिष्ट ध्यान इसलिए भी करना पडता है कि वह स्त्री की सुकुमार प्रकृति के कारण हानि-कारक तो नही होगी ? गर्भावस्था के कारण वह स्त्री या गर्भ के लिए भी हानि-कारक तो नही होगी ?

स्त्रियो के प्रजनन सम्बन्धी अगो मे पुरुषो की अपेक्षा विशेषता है। आशय भी स्त्रियो मे तीन (स्तन्याशय या दुग्धाशय दो और गर्भाशय एक) अधिक होते हैं। इन विशेषताओ के कारण उनमे कुछ विशिष्ट रोग ऐसे होते हैं जो पुरुषो मे नही होते। यह ज्ञातव्य है कि विशिष्ट रोगो का प्रभाव स्तन्याशय, गर्भाशय और प्रजनन सम्बन्धी अन्य विशिष्ट अगो (डिम्ब प्रणाली, डिम्बाशय आदि पर पडना अवश्यम्भावी है) के साथ ही समस्त शरीर विशेषतः मस्तिष्क, वात नाडियो, ज्ञानेन्द्रियो के साधन (आख, कान आदि)पर भी पडता है। इसलिये स्त्रियो के रोगो पर विचार करते समय इन बातो का ध्यान रखना अनिवार्य है।

स्त्रियों के प्रचलित विशिष्ट रोग ये हैं—

१—हिस्टीरिया, २—प्रदर, ३—सोमरोग, ४—योनिव्यापत्तिया (वन्ध्यात्व सहित) ५—योनिकन्द, ६—मूढगर्भ, ७—सूतिका रोग, ८—स्तन रोग, ९—स्तन्य दुष्टि १०—मक्कल्ल शूल। इन सभी का उत्तम और सुबोध वर्णन यहा सम्भव नही है। इस लिये सुबोधगम्य और प्रचलित रोगो का सक्षिप्त वर्णन ही यहा होगा। रजोरोध और बाधक भी स्त्री रोग है जिसका वर्णन यहा होगा।

हिस्टीरिया

यह शब्द ग्रीक भाषा के हिस्टेरा शब्द से बना है। इसका तात्पर्य है गर्भाशय। यूनानी मे इस रोग को इख्तनाक उल रहम (रहम = गर्भाशय, उल = की, इख्तनाक = ऐंठन या पीडन) कहते हैं।

कारण एव लक्षण—रजोरोध, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, रक्त की न्यूनता, गर्भाशय या अपरा (जरायु या अलप या खेरी) के विकार, मानसिक आघात (शोक-निराशा-निष्ठुर व्यवहार, कामवासना की अतृप्ति) आदि कारणो से यह प्राय युवतियो को होता है। प्रौढा, विधवाओ या पति सुख वचित स्त्रियो मे भी कभी कभी होता है। कामवासना की अतृप्ति से होनेवाला वासना की पूर्ति होने पर दौरा नही करता। उसमे बाधा हो जाने पर पुन दौरा करने लगता है। गर्भ धारण करने या प्रसव के बाद दौरे समाप्त हो जाते हैं। ऐसा होने पर भी १ प्रतिशत रुग्णाओ मे दौरा नहीं समाप्त होता। तब यह याप्य (पथ्य और चिकित्सा होने पर कष्ट न होना इनके बन्द होने पर कष्ट का होना) हो जाता है।

इस रोग मे आध्मान (अफरा), अकस्मात या अनवसर रोदन, प्रलाप (चिल्लाना) श्वास कष्ट, बुद्धि विभ्रम (दूसरो पर मिथ्या आरोप लगाना या अपने को व्यर्थ दोषी समझना अथवा परिस्थिति को ठीक ठीक न समझना) आदि लक्षण होते है। बहुत सी स्त्रियो मे श्वास कष्ट और बेहोशी ही होती है। शेष लक्षण बेहोशी के समय नही होते। उसके दूर होने पर बहुतो मे शेष लक्षण भी होते हैं। कभी कभी समस्त शरीर मे कम्पन भी होता है। इस रोग से मृत्यु नही होती पर इसका दौरा बारम्बार आया करता है। इसे योषापस्मार (स्त्रियो की मृगी), गर्भाशयोन्माद, अपतन्त्रक भी कहा जाता है। कुछ लोग भ्रमवश इसे भूतजन्य समझ कर भूतोन्माद कहते हैं।

इसका दौरा होने से पूर्व बारम्बार डकार, चिडचिडापन, श्वास कष्ट, हृदय की धडकन, रुदन और चेहरा की अधिक तमतमाहट या उदासी आदि लक्षण उत्पन्न होते है।

अपस्मार और हिस्टीरिया मे यह अन्तर है :—

अपस्मार	हिस्टीरिया
पुरुष स्त्री सबको होता है।	केवल स्त्रियो मे ही होता है।
सभी अवस्थाओ में होता है।	युवावस्था से आरम्भ होता है।
काम वासना से सम्बन्ध नही।	प्राय. काम वासना की अतृप्ति से होता है।

यौन रोगो से भी सम्वन्ध होता है।	यौन रोगो से सम्वन्ध नही होता।
जल, आग, ऊचाई, गहराई आदि के प्रभाव से भी दौरा होता है।	जल आदि से दौरा का सम्वन्ध न होकर प्राय मानसिक अशान्ति होता है।
आध्मान नही होता।	प्राय आध्मान होता है।
मुह नाक से झाग आदि निकलती है।	मुंह नाक से झाग आदि नही निकलती है।
प्राय चीत्कार कर अचानक रोगी वेहोश होता है।	विना चीत्कार किये रोगिणी धीरे धीरे वेहोश होती है।
रोगी प्रलाप नही करता। शरीर आघात से ध्वस्त होता है।	मूर्छा न हो तो रोगिणी प्रलाप करती है। शरीर ध्वस्त नही होता।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा मे निम्नलिखित वातो का ध्यान रक्खे —

(१) कोष्ठवद्धता और अजीर्ण के कारणो से वचें। यदि ये हो ही जांय तो इन्हे तत्काल दूर करें। घी मे भुनी हुई तलाव हींग, काला नमक और एलुआ (मुसव्वर) सम भाग लेकर पानी या नीवू के रस मे, भीगी बडी मटर के समान गोलीया वना ले। एक एक गोली प्रातः साय लेने से कोष्ठवद्धता, अजीर्ण और आध्मान मे वडा लाभ होता है।

(२) आध्मान हो तो गुदा मे मटर के वरावर हीग घुसा दें। न० १ मे लिखी हुई औषधि दें।

(३) रजोरोध या मासिक धर्म मे विकार हो तो उसे ठीक करें। इसका उपचार इसी अध्याय मे आगे लिखा हुआ है।

(४) कामवासना उत्तेजित करने वाली पुस्तकें, नाटक, सिनेमा एव वातावरण का उपयोग न करें। कामवासना उत्पन्न होने पर उसे शान्त करने की सलाह दें।

(५) मानसिक अशान्ति न उत्पन्न होने दें। उत्पन्न होने पर तुरन्त शान्त करें।

(६) शक्तिवर्धक आहार आवश्यक है। पर अजीर्ण न हो।

(७) वुद्धि को वढाने वाली औषधिया यथा वालवच, शखपुष्पी, ब्राह्मी आदि भी किसी न किसी रूप मे देना चाहिये। हृदय को शक्ति देने वाली औषधि यथा मुक्ता-पिष्टी, सुवर्ण भस्म, मकरध्वज, प्रवाल आदि भी खिलाना चाहिए। ये क्रमश कम गुण वाले हैं।

(८) दौरा के समय वेहोशी होने पर होश मे लाने के लिये नस्य और (नौसादर-चूना, कटफल चूर्ण, प्याज का रस, त्रिकटु, श्वासकुठार आदि मे से किसी एक का

उपयोग कर छींक लाये) मुह पर शीतल जल के छींटे दें। सिर पर शतधौत घृत या मक्खन या घीकुआर का गुदा रखें। प्रलाप आदि हो तो सान्त्वना दें। मीठे वचन बोले। रुग्णा की इच्छा के विरुद्ध बात न करें। उसकी स्वीकृति मे अपनी स्वीकृति दें। चिढाये नही। दौरा समाप्त होने पर आपकी मिथ्या स्वीकृति का कोई तात्पर्य नही।

(९) रोगी को दौरा न रहने पर भी वातानुलोमक औषधिया यथा हीग, काला नमक आदि एव वातानुलोमक आहार यथा मूली, सूरन, लहसुन आदि का व्यवहार करते रहे।

(१०) अपस्मार की औषधियो, अनुपान एव पथ्य का व्यवहार हो सकता है। वृहद्वातचिन्तामणि भी उपयोगी है। वालवच या ब्राह्मी का प्रयोग अवश्य करें।

विशेष औषधि यह है —

मार्जार कस्तूरी (जुन्देवेदस्तर) एक रत्ती की मात्रा से दिन भर मे तीन वार मधु घृत या ब्राह्मी स्वरस मे देने से वडा लाभ होता है। इसके अभाव मे कस्तूरी १।४ र० की मात्रा से उसी अनुपान से दें।

मार्जार कस्तूरी, घृतमर्जित हीग, शुद्ध कुचिला, जटामासी और वालवच समभाग लेकर ब्राह्मी (अभाव मे शखपुष्पी या शखाहुल) के स्वरस मे घोट कर एक एक रत्ती की गोली बनायें। इसे २४ घण्टे मे ४-५ वार मधुघृत या ब्राह्मी स्वरम अथवा शखपुष्पी स्वरस मे देने से वडा लाभ होता है।

केवल वालवच और काली मिर्च समभाग चूर्ण कर ६ र० की मात्रा से खट्टे दही या मट्ठा मे कुछ दिनो तक प्रतिदिन तीन वार देने से भी वडा लाभ होता है।

प्रदर

विरुद्धभोजन, अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, शोक, दिवाशयन, अधिकभार, आघात तथा कृशताकारक पदार्थो के सेवन से यह रोग होता है। प्रदर द्वारा अधिक धातु निकल जाने से दुर्वलता, चक्कर, प्यास, दाह, पीलापन, तन्द्रा और वातजन्य अन्यान्य रोग भी होते हैं।

योनि (न कि मूत्रमार्ग) से वारह वर्ष से पचास वर्ष तक की आयुवाली स्त्रियो को प्रति मास ४-५ दिन तक रक्त निकलता है। इसे सामान्य भाषा में आर्त्तव, रज, रजोधर्म और मासिक धर्म कहते हैं। इस काल को ऋतुकाल एव इससे युक्त स्त्री को रजस्वला या ऋतुमती कहते हैं। इन शब्दो मे विद्वानो मे मतभेद है पर यहा सामान्यत लोक मे प्रचलित शब्द दिये गये हैं। यदि ५ दिन से अधिक रक्त निकलता रहे या महीने मे एक वार से अधिक रक्त आ जाय तो यही रक्त प्रदर या असृग्दर कहा

जाता है। महीना यहा २८ दिन का होता है। वहुत सी स्त्रियो को वहुत दिन विता कर अर्थात् डेढ-डेढ या दो-दो मास पर भी होता है। पर यह रोग है। यद्यपि असृग्दर का तात्पर्य रक्त प्रदर ही होता है पर यह चार प्रकार का होता है।

कफज (श्वेत प्रदर)

इसमे कुछ पीला, मास धोवन के समान और लसीला स्राव योनि से निकलता है। इसी को अधिकांश विद्वान श्वेत प्रदर मानते है। लोक मे भी इसी को श्वेत प्रदर कहा जाता है। यह वडा ही कष्ट साध्य या असाध्य होता है। इससे नारी वडी क्षीण हो जाती है। हाथ पैर मे जलन, कटि एव सर्वांग मे पीडा रहती है। द्रव पदार्थ वरावर न निकल कर रुक रुक कर निकलता है। वहुत सी स्त्रियां उसे धातु कहती है। वहुत सी स्त्रियो मे पेडू या गर्भाशय मे एक गाठ हो जाया करती है जिससे रिस रिस कर यह स्राव निकलता है। इसकी चिकित्सा मे निम्नलिखित वातो का ध्यान रक्खें —

(१) कोष्ठ शुद्धि पर ध्यान दें। स्निग्ध और मधुर वस्तुओ से कोष्ठ शुद्धि हितकर है।

(२) फिटकिरी के घोल से योनि को २-३ वार प्रति दिन धोयें। यदि पचवल्कल (वरगद, गूलर, पीपर, पकडी और पारिस पीपल की छाल) मिल जाय तो उसके काढे मे फिटकिरी का घोल अधिक हितकर हैं। पारिस पीपल न मिलने पर सिरिस की छाल लें। धोने का विधान उत्तर वस्ति के समान करें। न धो सके तो उपर्युक्त द्रव्यो मे भीगा फाहा योनि मे धारण कराये। पचवल्कल क्वाथ के स्थान मे त्रिफला क्वाथ का उपयोग भी हो सकता है।

(३) शुक्रमेह की सभी औपधियाँ विशेपत वसन्त कुसुमाकर, वंग भस्म, चन्द्रप्रभावटी आदि इसमे भी काम कर सकती हैं। अनुपान और पथ्य भी उसी के समान करे। इमली की चीया का स्वरस एक उत्तम अनुपान है।

(४) कुछ विशिष्ट औपधियाँ ये हैं इनमे से किसी एक का प्रयोग करे —

(क) लोध पठानी का चूर्ण ६ माशा रात मे सोते समय गो दुग्ध से ४८ दिन पिलाये।

(ख) लोध पठानी का चूर्ण ६ माशा काकजवा के स्वरस २ तो० और मधु मे प्रात साय खिलाये।

(ग) कपास की जड ६ माशा को तण्डुलोदक मे पीस कर प्रात साय दे।

(घ) भिण्डी की जड और पिण्डालू का समभाग चूर्ण ६ मा० की मात्रा से मिश्री युक्त पावभर गोदुग्ध से प्रात साय सेवन कराये।

(ङ) नागकेशर ३ माशा को मट्ठा मे पीस कर ३ दिन पीने से लाभ होता है।

पथ्य—गोदूध, अनार, केला, मोसम्बी, आंवला, पुराना अरवा चावल, मूंग की दाल, गेहू या जौ की रोटी, परवल, करैला, भिण्डी, नेनुआ।

अपथ्य—दिवाशयन, मैथुन, उष्ण-कटु-अम्ल-तीक्ष्ण पदार्थ, तैल, कामोत्तेजक वातावरण।

पित्तज व वातज प्रदर, जिनमे स्पष्टत लाल या गुलाबी रक्त निकलता है, लोक मे रक्त प्रदर कहा जाता है। पित्तज मे पीला, नीला, काला, लाल उष्ण रक्त तीव्र वेग से आता है। दाह ज्वर भी होता है। वातज मे गुलाबी, फेनयुक्त, मासधोवन के समान रूक्ष रक्त आता है। वायु की समस्त वेदनाये पीडा आदि भी होती हैं।

सन्निपातज प्रदर मधु, घी, तवकिया, हरताल, मज्जा के समान और सडी हुई गन्ध वाला होता है। यह असाध्य होता है।

सभी प्रदर अच्छा न होने पर क्षय का रूप धारण करते हैं। अगो विशेषत कटि मे पीडा होती है। प्राय चिकित्सा भी एक ही प्रकार की होती है। रक्तप्रदर मे निम्नलिखित बातो का ध्यान रक्खे —

(१) श्वेत प्रदर का सारा चिकित्साक्रम अनुपान पथ्यापथ्य यहा लागू हैं। न० १ और २ का प्रयोग अवश्य करे।

(२) रक्त पित्त की समस्त औषधिया चिकित्साक्रम, अनुपान, पथ्यापथ्य भी यहा लागू है।

(३) विशिष्ट औषधिया ये हैं। इनमे किसी एक का अथवा आवश्यकतानुसार सयुक्त का व्यवहार करे —

क—प्रति दिन प्रात साय एक एक पक्का केला आधा तोला घी के साथ खाने से सप्ताह भर मे लाभ करेगा।

ख—पका केला और आवला समभाग का २ तोला स्वरस ४ तोला शक्कर मिला कर २४ घण्टे मे ३-४ बार खिलाये।

ग—पका केला का गूदा गोदुग्ध मे सानकर १५ दिन तक खाने से लाभकारी है।

घ—सुपक्वगूलर का चूर्ण २ तोला की मात्रा से प्रात दोपहर साय गोदुग्ध या जल से लें।

ङ—दो तोला अशोक की छाल गाय के दूध मे पका कर मिश्री मिला कर प्रात साय पिलायें।

तोरण वन्दनवार के लिये प्रयुक्त लहर या टेढे किनारे वाली पत्ती वाला अशोक नकली होता है। यह भी कुछ काम करता है। पर सीधे किनारे वाली पत्ती वाला अशोक असली होता है। यह अधिक काम करता है। इसे विशेषज्ञ ही जानते हैं।

च—नीम की छाल के रस मे आधा तोला या एक तोला जीरा पीस कर सवेरे

शाम एक सप्ताह तक पीने से लाभ होता है। नीम का तेल ६ माशा गाय के दूध मे डाल कर पीने से वडा लाभ होता है।

छ—चौराई की जड २ तोला तण्डुलोदक मे पीसकर रसौत १ माशा और मधु मिलाकर पीने से लाभ होता है।

ज—रसौत ३ माशा पीपर की लाख ६ माशा के चूर्ण को वकरी के दूध मे पीने से लाभ होता है।

झ—चूहे की लेंडी ६ माशा दही मे पीस कर पीने से वडा लाभदायी है।

सभी प्रदरो की कुछ औषधियाँ ये है —

पुष्यानुगचूर्ण २ माशा मधुयुक्त तण्डुलोदक से

प्रदरान्तक लौह २ रत्ती मधुघृत से

प्रदरारि लौह १ माशा कुशा की जड के स्वरस से

प्रदरान्तक रस १ रत्ती घीकुवार के रस से

इनमे से किसी एक का अथवा आवश्यकता पडने पर सयुक्त का व्यवहार करें।

भैषज्य रत्नावली का सुप्रसिद्ध अशोकारिष्ट या पत्रांगासव २ तोला की मात्रा मे समजल मिलाकर भोजनोत्तर पिलाये।

सोम रोग

स्त्रियो मे मूत्र मार्ग से अत्यधिक सोम (जलीय) धातु निकल जाती है इसलिये इस रोग का नाम सोम रोग है। यह प्रदर के कारण से ही होता है। इसमे स्त्री पेशाब के वेग को रोक नही सकती परिणामत सर्वदा कपडा गीला रहता है। अत्यधिक पेशाव करती रहती है। परिणामत सभी जलीय धातुओ का क्षय होता है। दाह, प्यास, दुर्बलता, कृशता और रुक्षता आदि वढ जाती है। यह स्मरणीय है कि प्रदर गर्भाशय का रोग है और यह वृक्क और मूत्राशय का रोग है। इसे स्त्रियो का उदक मेह या मूत्रातिसार ही समझिये। सुश्रुत की उल्हण टीका मे उल्लिखित

रज प्रसेकान्नारीणा मासि मासि विशुद्धयति।
सर्वं शरीर दोषाश्च न प्रमेहन्त्यत स्त्रिय ॥

श्लोक के आधार पर कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियो को प्रमेह नही होता। पर यह गलत है।

चिकित्सा—श्वेत प्रदर एव कफजमेह विशेषत उदक मेह की समस्त चिकित्सा, अनुपान, पथ्य यहाँ चलेगा।

इसमे सुप्रसिद्ध वसन्तकुसुमाकर रस १ रत्ती जामुन के वीज के चूर्ण १ माशा और मधु के साथ देने से निस्सन्देह उत्तम लाभ होता है। रस-रत्नाकर की इन्दु वटी २ रत्ती

की मात्रा से छोटी इलायची २ र० सेमल चूर्ण १ मा० और मधु के साथ देने से भी लाभ होता है।

रक्तप्रदर का क, ख, ग, घ और श्वेत प्रदर का क एवं घ नम्बर वाला योग भी बहुत लाभदायी होता है।

यदि पेशाब मे चीटी न लगती हो अर्थात् पेशाब मे चीनी न आती हो तो अफीम १-२ र० की मात्रा से मधु से २-३ वार चटाने से बडा लाभ करती है। इसके अतियोग मे हानि हो तो आर्द्रक रस या हीग का व्यवहार करें।

यौनिव्यापत्तियां

मिथ्या आहर विहार, दूषित आर्त्तव, वीज दोष से तथा दैववशात् योनि मे २० प्रकार की व्यापत्तिया होती हैं जिसमे अति प्रचलित का ही वर्णन हम करेंगे।

योनि की खुजली—अस्वच्छता, फिरंग, पूयमेह, उपदंश आदि यौन रोग, कोष्ठ-वद्धता, रक्त विकार आदि के कारण योनि मे खुजली हो जाती है जिससे लोक भाषा मे योनि का निनावा भी कहते हैं। खुजली के कारण योनि मे लाल लाल दाने और दाह भी होता है।

इसमे गुरूच (नीमकी) हर्रा, वहेरा, आवला और जमालगोटा की जड के क्वाथ से योनि का प्रक्षालन एक सप्ताह तक करने से अत्युतम लाभ होता है। यदि प्रक्षालन न कर सकें तो क्वाथ से भींगा रूई का स्वच्छ फाहा या स्वच्छ कपडा भिगो कर योनि मे रक्खें।

सुप्रसिद्ध कासीसादि तेल या कासीसादि घृत लगाये। कोष्ठ शुद्धि भी कर दें।

योनिशूल—विभिन्न कारणो से योनि मे शूल होता है, सोआ का वीज योनिशूल के लिये बड़ा लाभकारी है। इसका चूर्ण ३ माशा उष्ण जल से २-३ वार खिलायें।

और नीम के वीजो को नीम की पत्ती के रस मे पीसकर योनि मे लेप करें तथा भीतर धारण करायें। यह लेप खुजली मे भी लाभकारी है।

कष्टार्त्तव और वाधक—मासिक धर्म के समय अत्यन्त कष्ट होता है। प्राय रक्त कम निकलता है। किसी किसी रुग्णा के गर्भाशय मे गाठ होती है। पेडू मे दवाने पर गाठ प्रतीत होती है और वहा दर्द होता है।

चिकित्सा—गाजर का वीज सोआ का वीज, मूली का वीज और मेथी समभाग का चूर्ण ३ माशा की मात्रा से उष्ण जल के साथ ३-४ वार खाने से वड़ा लाभ होता है। इसका नाम वाधकारि चूर्ण है।

सुप्रसिद्ध फलघृत एक एक तोला प्रात साय मिश्री युक्त गरम दूध मे खिलायें। भोजनान्तर अशोकारिष्ट दें। चूर्ण, घृत और अरिष्ट तीनो का प्रयोग वडा हितकर

होता है। चूर्ण १५ दिन, घी १ मास तक और अरिष्ट ३ मास तक सेवन करायें। तीनो सम्भव न हो तो जो जो सम्भव हो करे। केवल चूर्ण १-२ मास तक चला सकते हैं। १५ दिन के बाद मात्रा १ माशा हो जायगी।

कोष्ठशुद्धि पर ध्यान दें।

नष्टार्त्तव और रजोरोध—शरीर मे रक्त न रहने के कारण अथवा बीमारी मे रक्तक्षीण होने के कारण आर्त्तव नष्ट हो गया हो तो वहा रक्तवर्धक उपाय यथा लौहभस्म, मण्डूरभस्म, कुमार्यासव, लौहासव, गोदुग्ध, आदि से ठीक करें। रक्तगुल्म के कारण रुके रक्त को रक्तगुल्म की चिकित्सा से ठीक करे। गर्भ से अन्य कारणो से रुके मासिक धर्म के लिये निम्नलिखित चिकित्सा करें—

सुप्रसिद्ध रज प्रवर्त्तनी वटी ३-४ र० की मात्रा से दिन रात मे तीन बार गरम जल या अन्य रज प्रवर्तक अनुपान से खिलाने से बडा लाभ करती है। किन्तु एक मास से कम प्रयोग न करायें। २-३ मास चले तो उत्तम है।

केवल बास की पत्ती का क्वाथ पाव पाव भर पिलाने से भी मासिक धर्म खुलता है। उपर्युक्त बाधाकारिचूर्ण साथ मे दें तो उत्तम है।

इन्द्रायण की पत्ती के स्वरस की पिचकारी एव उसी रस मे भीगा ऊन का टुकडा योनि मे रखें।

इन्द्रायण की जड के कल्क को कपडा पर दोनो ओर लेप करें। कपडे को ऐंठ कर योनि में जाने योग्य वत्ती बनायें। उसके ऊपर कल्क चुपड[1] दें। वत्ती को योनि मे प्रविष्ट करायें। एक दिन तक इसे धारण कराये रहे। मासिक धर्म खुल जायगा। एक दिन मे कार्य न हो तो २-३ दिन तक प्रतिदिन नयी वत्ती बनाकर धारण करायें। या मुसव्वर, कुटकी, बन्दाल, काला दाना और इन्द्रायण की जड को सम-भाग लेकर घीकुआर के रस मे कल्क बनाकर बास या सरपत की सलाई पर लेप कर सुखा दें। इस वत्ती को योनि मे प्रवेश करा दें। ६ घण्टे बाद खाली सलाई खीच ले। वत्ती भीतर रह जायगी। दिन भर वत्ती भीतर पडी रहने दें। मासिक धर्म खुल जायगा। एक वत्ती मे न हो तो दूसरी वत्ती मे सफलता मिल जायगी।

यह याद रखें (१) वत्तियो को योनिमार्ग के भीतर गर्भाशय मुख मे प्रविष्ट कराना चाहिये (२) भीतर की ओर प्रविष्ट कराने वाला सलाई का हिस्सा अपेक्षाकृत पतला होगा जिससे सलाई आसानी से निकल जाय। अन्य योनिव्यापत्तियो एव योनिकन्द पर इस ग्रन्थ मे प्रकाश नही डाला जायगा।

१—कपडा पर कल्क को न लपेट बास या सरपत की सलाई पर लेप कर सुखा लें। फिर इसे योनि मे प्रविष्ट करा ३ घण्टे बाद सलाई खीच कर बाहर कर दे। यह भी काम करती है।

मूढगर्भ—पूर्ण विकसित गर्भ मल-मूत्र आदि के दुष्ट होने से विकृत अपान वायु के कारण मूढ (अवरुद्ध) हो जाता है तो उसे मूढगर्भ कहते हैं। विकृत अपान के कारण गर्भ के सरलता से बाहर आने में विघ्न पड़ता है। कभी कभी गर्भ का टेढ़ा हो जाने या कभी एक पैर या एक हाथ का बाहर आकर अटक जाने के कारण अवरोध आदि हो जाया करता है। सभी अवस्थाओं का वर्णन यहाँ किया सम्भव नहीं। हम तो साधारण रुकावट का साधारण उपाय ही लिख रहे हैं। किन्तु उपाय जानने पर भी कुशल चिकित्सक स्वयं कुछ नहीं कर सकता। उसे प्रसविका पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारत में प्रचलित प्राचीन प्रथा में कुशल प्रसविकाओं की कमी नहीं रही है। और, न अब भी है। किन्तु अनपढ़, आधुनिक उपकरणों से रहित, घनघोर जंगलों आदि में देखा जा सकता है कि मूढगर्भ के कारण किसी गर्भिणी को मरते हुए कम सुना जाता है और शल्य क्रिया के द्वारा भी गर्भ निष्कासन की बात कम सुनी जाती है। केवल हस्तकौशल एवं प्रचलित साधारण उपायों से प्रसव करा दिया जाता है। दुःख है कि उस कौशल की परम्परा समाप्त होती जा रही है।

हमारे एक मित्र ने जेठ्ठान और कपुती द्वारा लिखित प्रसवतन्त्र की सामग्री संकलित की है। जिसमें पट्टोली और वस्तुओं की क्रियाओं द्वारा प्रसव कराये जाने का वर्णन है। परन्तु उसकी यथातथ्यता के विषय में हमारी जानकारी नहीं है। इसलिए उनपर भी प्रकाश डालने में हम असमर्थ हैं। हमने इसलिए इधर संकेत किया है कि बिना शल्य क्रिया के प्रसव की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हो। हमारा यह भी तात्पर्य नहीं कि प्रसव कर्म में शल्य क्रिया की सर्वथा आवश्यकता नहीं। तात्पर्य इतना ही है कि अन्य उत्तम उपायों की उपेक्षा न की जाय।

कुछ साधारण उपाय—

१—काले साप की केंचुल की धूनी योनि में देने से गर्भ बाहर आता है।

२—कलिहारी विष का लेप योनि एवं गर्भिणी के हाथ पैर में बाधे।

३—काली मूसली की जड को हाथ अथवा पैर मे बांधे।

४—अपामार्ग की जड का योनि मे लेप करें।

५—रजोरोध नाशक वर्त्तियों का भी प्रयोग कर सकते है।

नोट-उपर्युक्त मे से हमने किसी का भी प्रयोग नही किया है। ये शास्त्र मे लिखे हैं। लाचारी अवस्था मे इनका प्रयोग कर देखें।

मृत गर्भ—गर्भिणी के बैठने और सोने पर गर्भ मे गति न हो अर्थात् वह निश्चल हो जाय। करवट बदलने पर इधर उधर पत्थर के समान ढुलके, कडा हो, प्रसव के समय होने वाली वेदनायें न होती हो, रोगिणी काली या पीली हो जाय, उसकी निःश्वास मे दुर्गन्धि हो, हाथ पाव शीतल हो, लज्जा का एकदम त्याग कर दे,

फीटल हार्ट साउन्डस्कोप (गर्भ हृदय शब्द परीक्षण यन्त्र) को पेडू पर रखने पर गर्भ हृदय का शब्द न सुनायी पडे तो मृतगर्भ समझना चाहिये।

उसे निकालने का तत्क्षण उपाय करें। रजोरोधनाशक वर्तियो एव मूढ गर्भ के उपर्युक्त उपायो का अवलम्बन करे। उत्तम हो तत्क्षण विशेषज्ञो की शरण मे जाय।

अपरा या खेरी—प्रसव के बाद शीघ्र अपरा या खेरी न गिरे तो हानिकारक होती है। ऐसी अवस्था मे मूढगर्भ एव मृतगर्भ निष्कासन के सब उपाय करे।

गर्भिणी की बीमारियां--गर्भिणी की व्याधियो की चिकित्सा करते समय याद रखे कि गर्भ की सुरक्षा रहे और अधिक नियन्त्रण से गर्भिणी को हानि न हो। इस दृष्टिकोण मे विभिन्न व्याधियो की मृदु औषधियो का उपयोग करें। विशेष चिकित्सा यह है —

वमन—तण्डुलोदक मे जायफल घिसकर नीबू का रस और मिश्री मिलाकर पिलाये या भूनी इलायची के बीज का चूर्ण ४ र० मधु के साथ ५-६ बार चटाये। अथवा कपूर, पीपरमेंट और पोदीना के सत्व समभाग का घोल ५-१० बूद चीनी मे डालकर खिलाये। या एलादि वटी चूसने को दें और ५-७ बार मधु से खिलायें।

अतिसार--मण्ड, केला, मट्ठा का पथ्य दें। भात खिलाये। भैषज्य रत्नावली का धान्यचतुष्क (धनिया, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेल का गुदा) क्वाथ दें। स्त्री रोगाधिकार का लवगादि चूर्ण १ मा० की मात्रा से बकरी के दूध मे देने से लाभ करता है।

ज्वर--गोदन्तीभस्म, स्फटिकाभस्म, गुरुच स्वरस का व्यवहार करे।

कास—खर्जूरादि वटी, एलादि वटी, मिश्री, कत्था, लवगादि वटी, सितोपलादि, तालीशादि का व्यवहार करें।

श्वेतप्रदर—प्रदरोक्त योनि प्रक्षालन द्रव्यो से योनि प्रक्षालन करें।

योनिखुजली—इसमे पूर्व उल्लिखित क्वाथ से धोये।

कोष्ठबद्धता—गुलकन्द, मुनक्का, अजीर, इसबगोल की भूसी आदि मे से किसी एक मे सिद्ध उष्ण दुग्ध पिलाये। न लाभ होने पर मृदु निरुहणबस्ति दे।

शोथ—पुनर्नवा, मकोय का व्यवहार करे। दूध खूब दे।

यकृत प्लीहा की वृद्धि—पुनर्नवा स्वरस पुनर्नवा मण्डूर दे। दूध पथ्य दे। सुपाच्य मीठा आहार दे। नमक न दे।

अर्श—मृदु औषधियो से कोष्ठबद्धता दूर करे। नीमकौडी (नीम के फलो की मीगी) को मूली के रस मे घिसकर कपूर मिलाकर मस्से पर लेप करे। मूली का रस पिलाये।

उन्माद—ब्राह्मी, शख पुष्पी स्वरस मधु मिलाकर दे।

गर्भपात या गर्भस्राव—(१) गूलर की छाल या फल अथवा बिलनी के घर (घर के कोनों मे बिलनी या भौंरा नामक कीट मिट्टी का घर बना लेता है वही) की मिट्टी को गुलाबजल मे पीस कर पिलाये । (२) कुम्हार के चाक की मिट्टी को बकरी के दूध या मधु मे दें । (३) शाल और मिश्री समभाग का चूर्ण गोदुग्ध या जल मे पिलाये । (४) पीपर की छाल और गम्भारी का छिलका समभाग लेकर पीस कर ३-४ बार पिलायें ।

इनके अतिरिक्त रक्तावरोधक कोई दवा दे सकते है । योनि मे बर्फ का टुकड़ा रक्खें अथवा मुलहठी का चूर्ण और घृत या शतावरी घृत मे से किसी का फाहा रक्खे ।

गर्भिणी के समस्त रोगो के लिये सुप्रसिद्ध रस —

गर्भचिन्तामणि रस १ र० मधु से दें । विशेषत: सन्निपात ज्वर दाह प्रदर मे ।

गर्भपीयूषवल्ली १ र० मधु से सभी रोगो मे ।

गर्भविनोद रस १ र० मधु से सभी रोगो मे ।

इन्दुशेखर रस १ र०, दोषानुसार अनुपान दे । सभी रोगो मे ।

प्रसूति रोग

प्रसव के बाद साधारण दूसरे मासिक धर्म होने तक जो रोग होते हैं* वे सब प्रसूति रोग के अन्तर्गत आते हैं । ये प्रसव की विकृति और प्रसव के बाद मिथ्या आहार विहार से होते है । उनकी चिकित्सा तत्तद् रोगों की चिकित्सा के समान करे । अधिकतर प्रसूति ज्वर, जो बाद मे यक्ष्मा का रूप धारण करता है, होता है । जिसमे जीर्ण ज्वर की सभी चिकित्सा की जाती है । पर दशमूल क्वाथ एव दशमूलारिष्ट अवश्य देना चाहिये । भैषज्य रत्नावली के स्त्रीरोगाधिकार मे लिखित सूतिका दशमूल क्वाथ (लघु पचमूल, नीली झिण्टी, गन्ध प्रसारणी, सोठ, गुरुच, नागरमोथा) सामान्य दशमूल से उत्तम काम करता है। यक्ष्मा हो जाने पर उसकी विशेष चिकित्सा करे ।

सूतिका रोग की विशिष्ट औषधिया :—

महाभ्रवटी १ र० मधु से

सूतिकाविनोद रस १ र० त्रिकटु चूर्ण मधु

प्रतापलकेश्वर रस १ र० आर्दकस्वरस से

जीरकादि मोदक ६ मा० से १ तो०, जलपानार्थ प्रात साय । अग्निमान्द्य अतिसार अजीर्ण मे विशेष हितकर है ।

सौभाग्यशुण्ठी ६ मा० से २ तो० बकरी का दूध प्रात साय (दोपाठ मे से कोई)

भोजनोत्तर जीरकाद्यरिष्ट (भै० र०) २ तो० समजल, अग्निमान्द्य अतिसार अजीर्ण मे विशेष हितकर है ।

---

* प्रसूति रोग प्रसव के बाद कितने दिनों तक माना जाय इसमें मतभेद है । परन्तु प्रसूति ज्वर तो जन लोग ही समझते हैं ।

मक्कल्ल शूल—प्रसव के वाद कुपित वायु पेडू प्रदेश मे गाठ उत्पन्न कर पीडा उत्पन्न कर देता है। मूत्र रुक जाता है। पेडू फूल जाता है। इसी को मक्कल्ल शूल कहते हैं।

इसमे यवक्षार ४ र० की मात्रा से गरम घी या गरम जल से खिलायें। या पिप्पल्यादि गण का क्वाथ सेंधा नमक डाल कर पिलायें।

स्तन रोग

स्तनो मे विभिन्न कारणो से शोथ, पीडा और पाक हो जाता है। इन सब के लिये सम्भव हो तो प्रारम्भ मे जोंक द्वारा रक्तमोक्षण करा दिया जाय। इसके अतिरिक्त इन्द्रायण की जड को गोमूत्र या पानी मे पीस कर शीतल लेप करें। या हल्दी को घीकुआर के रस मे पीस कर कुछ गरम लेप करें। यदि स्तनो मे दूध आता हो तो उन्हे गारकर निकालते रहे। पाक होने पर व्रण के समान चिकित्सा करे।

स्तन्य (दूध) शोधन

माता का वात द्वारा शुद्ध दूध पीने से स्तनपायी शिशु का मल-मूत्र अधो वायु रुक जाता है। आध्मान हो जाता है। गला बैठ जाता है। पित्तद्वारा अशुद्ध दूध पीने से अतिसार, कामला, प्यास, दाह होता है। कफ द्वारा अशुद्ध दूध पीने से बालक को अधिक नीद, भारीपन, वमन और लालाधिक्य होता है। दूध का शोधन माता को निम्नलिखित काढा पिलाकर करे —

वात दूपित पर दशमूल क्वाथ, पित्त दूषित पर गुरुच शतावर परवल की पत्ती का क्वाथ, कफ दूपित पर शुण्ठी या आदी का क्वाथ।

दूध की वृद्धि

दूध कम होने पर माता को जीरा और साठी चावल को गोदूध मे पका कर खीर वना कर खिलाये। या जीरा घी दूध मे पीस कर पिलायें। अथवा विदारीकन्द का स्वरस पिलायें। या शतावर दूध मे पीस कर पिलायें।

——

चौवालीसवां अध्याय

बाल-रोग

निदान की प्रणाली—अपनी पीडा को स्पष्ट रूप से वताने मे वालक असमर्थ होते हैं। इसलिए उनके रोगो के निदान मे विशेष सावधानी वर्त्तनी चाहिये। रोगो को मलमूत्र परीक्षा मे पता लगाने पर भी ध्यान दें। इनकी नाडी से रोगज्ञान जरा कठिन है। निम्नलिखित विशिष्ट वातो से उनके रोगो को पहचानने मे विशेष सहायता मिलेगी —

पीडा का आधिक्य या न्यूनता—रोदन की अधिकता से पीडा की अधिकता और न्यूनता से पीडा की न्यूनता का अनुमान लगायें। क्षुधा के कारण रोने वाला वालक आहार के वाद तुरन्त रोना वन्द कर देता है।

पीडास्थल की जानकारी— जिस जिस स्थान को वालक वारम्वार छूता है उस स्थान पर पीडा का अनुमान करें या जहा पर वालक किसी को छूने न देता हो अथवा जहा दूसरे द्वारा छूये जाने पर तत्काल हाथ हटा देता हो वहा पीडा का स्थान समझना चाहिये। सिर मे पीडा होने पर वालक आख वन्द किये रहता है। आख के रोगो मे भी ऐसा ही होता है पर आख खोल कर देखने से आख के रोग का पता चल जायगा।

यदि उसका पुरीष रुक गया हो या उसमे कडी गाठ पड गयी हो, वह वमन कर रहा हो, दूध पिलाने पर स्तन काट लेता हो, आतो मे शब्द होता हो, पेट फूला हो, वारम्वार पीठ को नमाता और उदर को उठाता हो तो समझिये कि उसके उदर मे पीडा है। मल-मूत्र की रुकावट हो, भय होता हो और इधर उधर दिशाओ को देखता हो तो समझिये कि पीडा गुप्त स्थानो या वस्ति प्रदेश मे है। उदर के क्रिमियो का अनुमान निद्रावस्था मे दात कीटने एव चक्षु परीक्षा (देखिये क्रिमि रोग) से करें। सम्भव हो तो मल परीक्षा भी करें। सात मास से १ वर्ष के

बालरोग और उसके स्थान
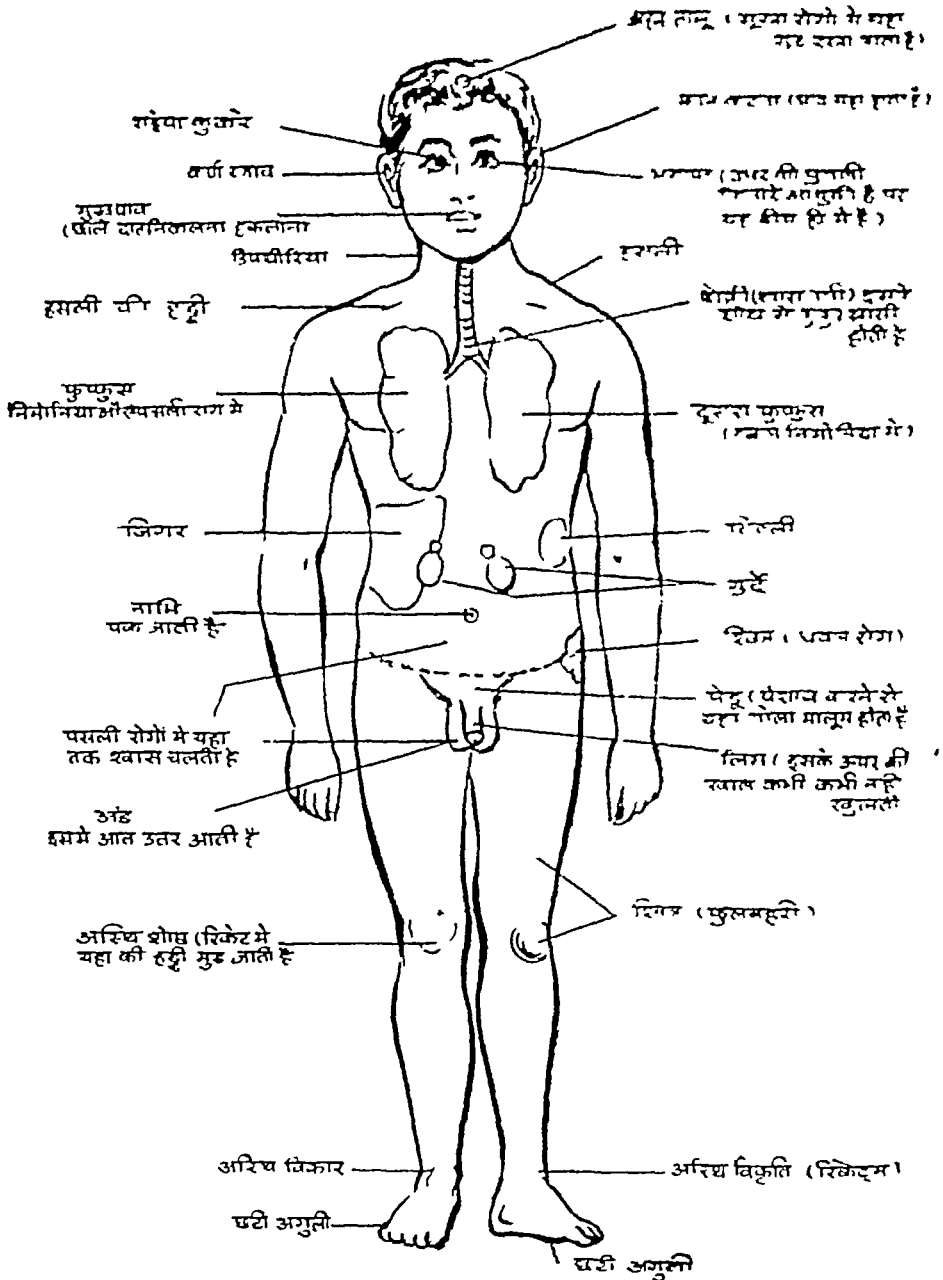
बीच मे वमन और हरा पीला मल निकले तो समझिये कि दाँत निकल रहा है। इस प्रकार यथासम्भव पूरी सावधानी से रोग का निदान कर ले।

जो रोग पुरुषो मे होते हैं वे सभी (शुक्र दोषो को छोडकर) बच्चो को होते हैं। उनका निदान एव चिकित्सा तत्तद् रोगो के समान करे। हा औषधियो की मात्रा इत्यादि के विषय मे पूर्वोक्त मात्रा प्रकरण का ध्यान रखे। इस अध्याय मे उल्लिखित औषधियो की मात्रा वालको के लिये ही है। उसमे कमी करने की साधारणत: आवश्यकता नही है।

वालको के विशिष्ट रोग

स्तन्य (मा के दूध) से होने वाले रोग—इन पर स्त्री रोग मे स्तन्य शोधन प्रकरण मे विचार किया गया है।

कुकूणक—दूध के दोष से नेत्र की पलको मे रोहे हो जाते है। जिससे नेत्रो मे खुजली और स्राव हुआ करता है। वालक नाक, आँख और ललाट को रगडता रहता है। न तो सूर्य की प्रभा देखने मे समर्थ होता है और न पलको को खोल ही सकता है।

चिकित्सा—नेत्र रोगोक्त रोहा की सारी चिकित्सा की जा सकती है। त्रिफला के तनिक उष्ण क्वाथ से नेत्रो को धोयें। सूखा काजल मे फिटकिरी का लावा घिस कर लगाने से भी वडा लाभ होता है।

पारिगर्भिक (दूधकट्टा)—गर्भिणी का दूध पीने से वालक कास, अग्निमान्द्य,उहाई, कृशता, अरुचि, चक्कर से पीडित रहता है। पेट वहुत फूला रहता है। हाथ पैर कृश रहते हैं। पुरीष मात्रा मे अधिक और दुर्गन्धयुक्त निकलता है। इसे परिभव भी कहते हैं। गलती से लोग इसको सुखण्डी कहते हैं।

चिकित्सा—तुरन्त गर्भिणी का दूध पिलाना वन्द कर किसी धाय, बकरी या गाय का दूध पिलायें। वाहर के दूध मे थोडी सोठ या आदी पका दें। नागकेशर चूर्ण २ या ४ र० की मात्रा से मधु से दें। अग्निदीपक औषधियो यथा खाने वाला सोडा २ या ४ र०, अग्निकुमार आधी र०, सोठ, आदी मे से किसी एक का प्रयोग करें।

तालुकण्टक—कुपित कफ के कारण वच्चो का तालू लटक जाता है। ऊपर सिर मे (जहा वालको को स्वाभाविक गड्ढा रहता है और वाद मे भर जाता है) गड्ढा पड जाता है। दूध नही पीता। अतिसार, प्यास, वमन, आख-गला-मुख के रोग हो जाते हैं। गर्दन सीधी नही रख सकता, सिर लटका देता है। इसे तालुकण्टक या तालू गिरना कहते हैं।

चिकित्सा—कुशल मातायें तालू को अगूठा या अगुली से ऊपर की ओर दवा देती हैं। यदि अगूठा या अगुली पर टकण भस्म या राख रख लिया जाय तो उत्तम

हो। हर्रा, वालवच, कूठ मीठा सबको समभाग लेकर ४ र० की मात्रा मे मधु और माता के दूध से पिलाये।

अहिपूतना (गुदा मे चूना लगना)—गुदा मे अस्वच्छता के कारण गुजरी हो जाती है। जिसके कारण लाल दाने वहा हो जाते है।

तुरन्त क्रिमिनाशक घोल (यथा फेनाइल के मदु घोल) से धाये। अच्छी तरह मुर्दा-कर शख, सफेद सुरमा और मुलहठी समभाग पानी से पीस कर लेप करे।

दन्तोद्भेद (दात निकलना)—इसका लक्षण इसी अध्याय मे पीडा स्थान की जानकारी मे लिखा है।

चिकित्सा—मसूडो पर मधु और चूना घिसें। वमन और अतिसार की अलग से चिकित्सा करे। घबडाये नही, ५-७ दिन में अच्छा हो जायगा।

सुखण्डी—प्रसिद्ध रोग है। इसमे वालक सूखता जाता है। नितम्ब सिकुड जाते है। किसी किसी वालक के कान मे चिकोटी काटने से उसे कष्ट नही होता। चिडचिडा रहता है। किसी का पेट फूला रहता है। मल पतला व दुर्गन्धित रहता है। पूर्वोक्त पारिगर्भिक के समान लक्षण मिलते हैं पर वह गर्भिणी के दूध पीने से होता है।

चिकित्सा—इस रोग मे शम्बूक (घोघा) का मास अत्यन्त हितकारी होता है। उसे घी पचफोरन (जीरा, मेथी, राई, मगरैला, सौंफ) या केवल जीरा घी मे छौंक कर धनिया लौंग नमक हल्दी आदि डालकर पका कर खिलायें, शम्बूक का मास सुखा कर चूर्ण अथवा गुटिका बना लें ४ र० की मात्रा मे दिन रात मे ४ बार दें। दूध में नागौरी असगन्ध पका कर पिलायें। सम्भव हो तो तीनो उपाय साथ ही विभिन्न समयो पर करें।

हव्वा डव्वा या पलही चलना—बच्चो का सास बहुत फूलता है यहा तक कि यकृत और प्लीहा के पास गड्ढा पडने लगता है। ज्वर और मलबद्धता रहती है। प्रसिद्ध रोग है।

चिकित्सा—किसी भी तरह कोष्ठ शोधन करें। गुदा मे फल वर्ति का प्रयोग, पेट पर रेडी का तेल मर्दन करे। तेल मर्दन के पश्चात् वकाइन की पत्ती गरम गरम वाध दें।

रेवन्दसार या उसारे रेवन्द २ र०की मात्रा से गरम पानी या गरम दूध से देने पर आधे घण्टे के अन्दर वमन और दस्त द्वारा कफ और मल निकल जाता है। रोगी को तत्क्षण आराम होता है। पर नाडी की क्षीणता मे इसे न दें। नही तो वाहर नही निकलेगा। इस रोग मे नाडी की क्षीणता घातक लक्षण है पर अपयश औपधि को मिलेगा।

सम्भव हो तो तालीशादि चूर्ण २ मा० मुलहठी चूर्ण १ मा० और टकण भस्म

४ र० को मधु मे मिलाकर रख दें। इसे वारम्बार चटायें। छाती पर पुराना घी मलें।

खासी श्वास ज्वर अग्निमान्द्य पर—नागरमोथा, पीपर, अतीस और काकडासिंगी सबको समभाग चूर्ण कर ४ र० से १ मा० तक की मात्रा से मधु से चटायें। यह सुप्रसिद्ध "बाल चतुर्भद्रिका" है जो तथोक्त रोगो पर लाभ करती है।

वालको की चिकित्सा मे ध्यान देने योग्य बाते —

(१) सावधानी से निदान करे। उदरी परीक्षा अवश्य करें।

(२) औषधि की मात्रा वालोपयोगी हो। इस अध्याय मे वालको की ही मात्रा लिखी है।

(३) अत्यन्त तीक्ष्ण और तीव्र औषधि न दें।

(४) अनुपान मे मधु, दुग्ध आदि वालक द्वारा स्वभावतः ग्राह्य पदार्थ अवश्य प्रयोग मे लायें।

(५) थर्मामीटर मुह मे न लगायें। काख से १ डिग्री अधिक ताप सामान्यत. मुख का होता है।

(६) वालक के मन के सर्वथा विपरीत न चलें। उसकी मानसिक प्रवृत्तियो को अधिक धक्का न लगाते हुए चिकित्सा करे। लाचारी पडने पर रोगनाशक क्रम पर ही ध्यान दें।

(७) स्वस्थ मा का दूध कभी न छुडाये। अस्वस्थ माता हो तो धाय या बकरी या गाय का दूध पिलाये।

(८) पानी भी बन्द न करें। यह याद रखे, वालक अधिक लघन नही सह सकता।

(९) क्षीरपायी रोगी वालक की मा या दूध पिलाने वाली अन्य स्त्री को भी दवा दे। यदि वालक औषधि न ग्रहण करता हो तो मा को ही तत्तद्रोग नाशक औषधि दे। माता के स्तनो पर बच्चे के मुख मे जाने योग्य रोगनाशक औषधि का लेप कर भी काम चलाते हैं जिसे बच्चा दूध पीते समय ग्रहण कर ले।

कुछ प्रसिद्ध औषधियां

महागन्धक २ र० मधु से, विशेषत अतिसार पर।

वालरस १।६ र० पान के रस से, विशेषतः जीर्ण ज्वर कास श्वास इत्यादि पर।

कुमार कल्याण रस १।२ र० मिश्रीयुक्त दूध से।

भोजनोत्तर अरविंदासव १।२ तो० से २ तो० तक समजल मिलाकर।

नोट—वालरस एव कुमार कल्याण को एक मे न मिलायें।

हा, महागन्धक दोनो मे से प्रत्येक मे मिला सकते हैं।

पैंतालीसवां अध्याय

योग संग्रह

कायचिकित्सा मे लिखी हुई वहु प्रयुक्त औषधियो मे पडी हुई वस्तुओ और उनके भावना द्रव्यो का यहा उल्लेख इसलिये किया जाता है कि चिकित्सक को यह पता चल सके कि उसके द्वारा प्रयुक्त औषधियो मे क्या है ? इसे जानकर वह मात्रा, अन्य मिश्रण एव परिणाम आदि के सम्वन्ध मे यथोचित कर सकेगा ।

अगस्ति सूतराज रस (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—कज्जली, हिंगुल, धतूरे का वीज, अफीम । भागरे के रस की भावना ।

अग्नि कुमार मोदक (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—खस, गन्धवाला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, सफेद जीरा, स्याह जीरा, काकडासिंगी, कटफल, पुष्करमूल, कचूर, सोठ, पिप्पली, मरिच, वेल का गूदा, धनियां, जायफल, लौंग, कपूर, कान्त लोह भस्म, छडीला, वशलोचन, इलायची, जटामासी, रास्ना, तगर, अतिवला, लाजवन्ती, अभ्रक भस्म, मरोडफली, वगभस्म, मेथी, भाग-पत्र, शक्कर घृत और मधु ।

अग्नि कुमार रस (भै० र० अग्निमान्द्याधिकार)—पारद, गन्धक, सुहागा, मीठा विष, कौडी-भस्म, शख भस्म, मरिच । जम्वीरी नीवू की भावना ।

अग्नि तुण्डी वटी (भै० र० अग्निमान्द्याधिकार)—पारद, गन्धक, मीठा विष, त्रिफला, अजमोदा, सज्जीक्षार, यवक्षार, चित्ता, सेंधा नमक, जीरा, सौंचर नमक, वाय विडङ्ग, सामुद्र नमक, सुहागा । जम्वीरी नीवू के रस की भावना ।

अग्नि मुख चूर्ण (भारत भैषज्य रत्नाकर उदर रोगाधिकार)—शुद्ध हींग, सोठ, चित्ता, वचा, अजमोदा, कूठ, पिप्पली, हरड ।

अचिन्त्य शक्ति रस (भै० र० ज्वराधिकार)—पारद, गन्धक, स्वर्ण माक्षिक

भस्म, मरिच चूर्ण। भावना द्रव्य—भृगराज, मेउडी, मण्डूक पर्णी, सफेद अपराजिता की जड, मरसा, सूरजमुखी स्वरस।

अजमोदादि चूर्ण (भै० र० स्वरभेदाधिकार)—अजमोद, हल्दी, आंवला, यवक्षार, चित्ता।

अजीर्ण कण्टक रस (भै० र० अग्निमान्द्यरोगाधिकार)—पारद, मीठा विष, गन्धक, मरिच। छोटी कटेरी (भटकटैया) के रस की भावना।

अञ्जन भैरव रस (भै० र० ज्वराधिकार)—शुद्ध पारद, लौह भस्म, पीपल, गन्धक, जमालगोटा। नीबू के रस की भावना।

अपामार्ग तैल (भै० र० शिरो रोगाधिकार)—अपामार्ग, मैनफल, त्रिकटु, हल्दी, हीग, नकछिकनी, विडग, सरसो का तैल, गो मूत्र।

अभयारिष्ट (भै० र० अर्शरोगाधिकार)—हरड, मुनक्का, वायविडग, महुये का फूल, गुड। प्रक्षेप—गोखरु, निशोथ, धनिया, धाय का फूल, इन्द्रायण, चव्य, सोठ, सौफ, दन्तीमूल तथा मोचरस।

अम्ल पित्तान्तक रस (भै०र० पित्ताधिकार)—रस सिन्दूर, ताम्र भस्म, लौह भस्म हरड।

अमृतधारा (ठाकुरदत्त शर्मा, देहरादून)—पिपरमिण्ट, अजवाइन सत्व एव कपूर सत्व प्रधान द्रव्य प्रतीत होते हैं।

अमृताद्य गुग्गुल (भै० र० स्थौल्याधिकार)—गुरुच, छोटी इलायची, वायविडङ्ग, कुरैया की छाल, इन्द्रजौ, हरड, आवला, शुद्ध गुग्गुल।

अभ्रनार्णव रस (भै०र० अतिसाराधिकार)—पारद, लौह भस्म, गन्धक, सुहागा, कचूर, धनिया, गन्धवाला, मोथा, पाढ़, जीरा, अतीस।

अरविन्दासव (भै० र० बालरोगाधिकार)—कमल, खस, गम्भारी फल, नीला कमल, मजिष्ठा, हरड, बहेडा, आवला, वच, कचूर, श्यामालता, पटोल पत्र, पित्त-पापडा, अर्जुन की छाल, महुए का फूल, मुलहठी, मुरामासी (कपूर कचरी) खाड, शहद।

अर्श कुठार रस (भै० र० अर्श रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, दन्तीमूल, सोठ, मरिच, पीपर, सूरन, वंशलोचन, सुहागा, यवक्षार, सेन्धा नमक। गोमूत्र की भावना।

अविपत्तिकर चूर्ण (भै० र० अम्ल पित्ताधिकार)—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड् नमक, वायविडङ्ग, छोटी इलायची, तेज पत्र, लौग, निशोथ, खाड।

अश्व कञ्चुकी रस (राजकीय औषधि योग सग्रह उदावर्तानाह प्रकरण

पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मरिच, शुद्ध हरताल, पिप्पली, हरड, वहेडा, आवला, शुद्ध जायफल। भृंगराज स्वरस की भावना–२१।

अश्वगन्धारिष्ट (भै० र० मूर्छाधिकार)—अश्वगन्ध, मूसली, मजीठ, हरड, हल्दी, दारु हल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारी कन्द, अर्जुन की छाल, मोथा, निशोथ, सारिवा, श्यामालता, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, वचा, चित्रा, धाय का फूल, मधु, सोठ, मरिच, पीपल, त्रिजातक, छोटी इलायची, प्रियगु, नागकेशर।

अशोकारिष्ट (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—अशोक की छाल, गुड, काला जीरा, मोथा, सोठ, दारु हल्दी, नील कमल, त्रिफला, आम की गुठली, जीरा, अडूसा, लाल चन्दन।

अष्टकट्वर तैल (भै० र० ऊरुस्तम्भ रोगाधिकार)—सरसों का तेल, दही, तक्र (कट्वर), कल्कार्थ-पिप्पलीमूल तथा सोंठ।

अष्टाग लवण (भै० र० मदात्ययाधिकार)—काला नमक, जीरा, वृक्षाम्ल, अम्लवेत, दाल चीनी, छोटी इलायची, मरिच, शक्कर।

अस्त्रहरारिष्ट (भै० र० राजयक्ष्माधिकार)—विशल्य करणी, मृत सजीवनी सुरा।

अहिफेन वटिका (भै० र० अतीसाराधिकार) पिण्ड खजूर, अफीम।

अहिफेनासव (भै० र० अतिसाराधिकार) महुए की शराब, अफीम, मोथा, जायफल, इन्द्र जौ, छोटी इलायची।

आनन्द भैरव रस (र० यो० सा० ज्वराधिकार द्वि० योग)—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकटु, मरिच, सुहागा, पिप्पली, जावित्री। जम्बीरी स्वरस की भावना।

आमलकी रसायन (भै० र० रसायनाधिकार)—आवले का चूर्ण, आवले स्वरस की २६ वार भावना, मधु, घी, पिप्पली, खाड।

आमवातारि रस (भै० र० आमवाताधिकार)—पारद, गन्धक, त्रिफला, चिता, गुग्गुल। एरण्ड तैल की भावना।

आरोग्यवर्धिनी वटी (सि० यो० स० यकृत्प्लीह-उदर-शोथ रोगाधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, त्रिफला, शिलाजतु, शुद्ध गुग्गुल। चित्रकमूल, कुटकी।

आह्निकारि रस (भै० र० ज्वराधिकार)—छोटी इलायची, हरड, पिप्पली, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, खर्पर भस्म, रस सिन्दूर। द्रोण पुष्पी स्वरस की भावना।

इच्छा भेदी रस (भै० र० उदर रोगाधिकार प्रथम योग)—पारद, गन्धक, वहेडा, आवला पिप्पली, सोठ, शुद्ध जयपाल। चागेरी स्वरस की भावना।

इन्दुकला वटी (भै०र० मसूरिका रोगाधिकार)—शुद्ध शिलाजीत, लौह भस्म स्वर्ण भस्म। तुलसी स्वरस की भावना।

इन्दुवटी (भै० र० कर्ण रोगाधिकार)—शुद्ध शिलाजतु, अभ्रक भस्म, लोह भस्म स्वर्ण भस्म। मकोय, शतावर, आवला, कमल के रसो की भावना।

इन्दुशेखर रस (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—शुद्ध शिलाजतु, अभ्रक भस्म, रस-सिन्दूर, प्रवाल भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध हरताल। भागरा, अर्जुन की छाल, मेउडी, अडूसा, कमल, कुटज के रसो की भावना।

उन्माद गज केसरी रस (भै० र० उन्मादाधिकार)—शुद्ध पारद, गन्धक, मैनशिल, शुद्ध धतूरे का बीज। बालवच क्वाथ तथा ब्राह्मी स्वरस की भावना।

उन्माद गुञ्जाकुश रस (भै० र० उन्मादाधिकार)—पारद (धतूरा, कुचिला, जल पिप्पली मे भावित), ताम्र चूर्ण, धतूरे का बीज, अभ्रक भस्म, गन्धक, मीठा विष।

उन्माद भञ्जन रस (भै० र० उन्मादाधिकार)—सोठ, मरिच, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, गजपिप्पली, वाय विडग, देवदारु, चिरायता, कुटकी, भटकटैया, मुलहठी, इन्द्र जौ, चित्ता, बला, पिप्पलीमूल, खस, सहिजन के बीज, निशोथ, इन्द्रायण की जड, वगभस्म, चादी भस्म, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म।

एरण्ड बीजादि प्रलेप(भै०र० वात रक्ताधिकार)—एरण्ड बीज, गिलोय, सोया, जीरा बला को बकरी के दूध मे पीस कर।

एलादि गुटिका (भै० र० रक्तपित्ताधिकार)—छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, पिप्पली, शक्कर, मुलहठी, पिण्ड खजूर, मुनक्का, शहद।

एलादि चूर्ण (भै०र० मूत्र कृच्छ्र एव प्रमेहाधिकार)—छोटी इलायची, पाषाण-भेद, शिलाजतु, पिप्पली।

(भै० र० मसूरिका रोगाधिकार)—छोटी इलायची, लौग, नागकेशर बेर की गुठली, लाजा, प्रियगु, मोथा, लाल चन्दन, पिप्पली।

एलाद्यारिष्ट (भै० र० मसूरिका रोगाधिकार)—छोटी इलायची, अडूसे की छाल मंजिष्ठा, कुरैया की छाल, दन्तीमूल, गुरुच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, रास्ना, मुलहठी, सिरस छाल, खदिर काष्ठ, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की छाल, चित्ता, कूठ, सौफ, धाय का फूल, मधु, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नाग केशर, त्रिकटु, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जटामासी, कपूर, कचरी, मोथा, छैल छबीला, अनन्तमूल, श्यामालता।

एलाद्यमोदक (भै०र० मदात्ययाधिकार)—छोटी इलायची, मुलहठी, चित्ता, हल्दी दारुहल्दी, हरड, बहेडा, आवला, लाल साठी का चावल, पिप्पली, मुनक्का, पिण्ड-खजूर, काले तिल, जौ, विदारी कन्द, गोखरु बीज, निशोथ, शतावर, शक्कर।

कनक सुन्दर रस (भै० र० ज्वराधिकार)—हिंगुल, काली मिर्च, गन्धक, पिप्पली सुहागा, मीठा विष, धतूरे का बीज।

कनकासव (भै० र० हिक्काश्वासाधिकार)—धतूरा, अडूसे की जड़ की छाल मुलहठी, पिप्पली, भटकटैया, नागकेशर, सोंठ, भार्ङ्गी, तालीशपत्र, धाय के फूल, मुनक्का, शक्कर।

कपित्थाष्टक (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—अजवाइन, पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, सोंठ, तेजपत्र, नागकेशर, मरिच, चित्रक, गन्धबाला, काला जीरा, धनिया, सौचर नमक, वृक्षाम्ल, धाय का फूल, पिप्पली, बेल का गूदा, अनारदाना, कुचिला।

कफ केतु रस (भै० र० ज्वराधिकार प्र०)—सुहागा, पिप्पली, शङ्खभस्म, मीठा विष। अदरख स्वरस की भावना।

करञ्जाद्य घृत (भै०र० उपदंश फिरङ्ग रोगाधिकार)—करञ्ज की जड़, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, साल की छाल, पच वल्कल की छाल, घी।

कर्पूरासव (भै० र० अग्निमान्द्य रोगाधिकार)—शुद्ध शराब, कपूर, छोटी इलायची, मोथा, सोंठ, अजवाईन, मरिच।

कर्पूर रस (भै० र० अतिसाराधिकार)—हिंगुल, अफीम, मोथा, इन्द्रजौ, जायफल, कपूर।

कल्याण गुड (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—आवला स्वरस, गुड, पिपलीमूल, सफेद जीरा, चव्य त्रिकटु, गज पिप्पली, हाऊबेर, अजमोद, वायविडग, सेंधा नमक, त्रिफला, अजवाइन, पाढ, चित्रा, धनिया, निशोथ, तिलतैल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र।

कल्याणावलेह (भै० र० स्वर भेदाधिकार)—हल्दी, वच, कुष्ठ, पिप्पली, सोंठ, जीरा, अजवायन, मुलहठी, सेंधा नमक।

कल्पतरू रस (भा० प्र० ज्वराधिकार)—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वत्सनाभ, मैनशिल, स्वर्ण माक्षिक, सोहागा, सोंठ, मरिच, पीपल।

कस्तूरी भैरव रस (भै० र० ज्वराधिकार)—वग भस्म, यशद भस्म, स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म, कस्तूरी, लौह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रस सिन्दूर, लवग चूर्ण, जायफल। द्रोण पुष्पी तथा पान स्वरस की भावना। कर्पूर, त्रिकटु।

कृमिकुठार रस (यो० र० कृमि रोगाधिकार)—सोंठ, हींग, सेंधा नमक, चित्रक, मरीच, वच, गुग्गुल, हल्दी, विडग, कुष्ठ, लहसुन पाटला, गन्धक, इन्द्रजव, पलास बीज, खैर, काली जीरी, पिप्पली, अजवायन, सौवरचल नमक, मधु की भावना।

कृमिघातिनी गुटिका (भै० र० कृमिरोगाविकार)—पारद, गन्धक, अजवायन, वायविडग, पलास का वीज व कुचिला ।

कृमिकाष्ठानल (भै० र० कृमिरोगाधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, वग भस्म, हरताल, कौडी भस्म, मैनशिल, काले काच की भस्म, वाकुची, वायविडग, जयपाल, हरड, सोहागा, चित्रक ।

कृमि कालानल रस (भै० र० कृमिरोगाधिकार)—वायविड ग, मीठा विप, लौह भस्म, पारद, गन्धक । भावना वकरी का दूध ।

कृमिघ्न रस (भै० र० कृमिरोगाधिकार)—वायविडग, पलास का वीज, नीम का वीज, रस सिन्दूर ।

कृमिमुद्गर रस (भै० र० कृमिरोगाधिकार)—पारद, गन्धक, अजवायन, कुचला, वायविडग, पलास का वीज ।

कृष्ण चतुर्मुख रस (भै० र० वात व्याध्यधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, घृतकुमारी स्वरस की भावना ।

क्रव्याद रस (भै० र० अग्निमाद्यादि रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, लौह भस्म, सोहागा, विड् लवण, काली मिर्च । भावना द्रव्य, पचकोल क्वाथ, अम्ल-वेतस क्वाथ, चने का अम्ल ।

कण्टकार्यवलेह (भै० र० कास रोगाधिकार)—कण्टकारी पचाग, गुरुच, चव्य, चित्रक, मोथा, काकडा सिंगी, मरिच, पीपल, सोठ, घमासा, भारगी, रास्ना, कचूर, शक्कर, घृत, सरसो का तेल, मधु, वशलोचन, पिप्पली ।

काकायन गुटिका (भै० र० गुल्माधिकार)—कचूर, पुष्करमूल, दन्तीमूल, चित्ता, अरहर की जड, सोठ, वच, गुरुच, निशोथ, हीग,यवक्षार, अम्लवेतस, अजवायन, जीरा मरिच, धनिया, काला जीरा, अजमोद, विजौरा नीबू की भावना ।

काचनार गुग्गुल (भै० र० गलगण्डादि रोगाधिकार)—कचनार की छाल, त्रिकटु, त्रिफला, तेजपत्र, छोटी इलायची, दालचीनी, वरुण की छाल और गुग्गुल ।

कामदुधा रस (र० यो० सा०)—मोती भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म, काड ।भस्म, शख भस्म, स्वर्ण गैरिक और गुरुच सत्व ।

कामलान्तक रस (भै०र० पाण्डु रोगाधिकार)—लौह भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म, वग भस्म, सोठ, पिप्पली, गज पिप्पली, पिप्पली मूल, तेजपत्र, दारु हल्दी, चव्य अजवायन, चित्रक, कटफल, रास्ना, देवदारु, त्रिफला, रसौत, अतीस । भावना द्रव्य-भगरैया, सोम, राजी, मण्डूकपर्णी ।

कासकुठार रस (भै० र० कास रोगाधिकार)—हिंगुल, मरिच, गन्धक, सोंठ, मरीच, पिप्पली सोहागा। अदरख रस की भावना।

कासीमाद्य तैल (भै० र० अर्शरोगाधिकार)—तिल तैल, कल्कार्थ—कसीस, दन्तीमूल, सेंधा नमक, कनेर की जड़, चित्ता।

कीट मर्द रस (भै०र० कृमि रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, अजवायन, वायविडंग, कुचिला, भारगी।

कुचिलादि वटी – शुद्ध कुचिला व मिर्च, आदी स्वरस की भावना।

कुटजादि वटी (सि० यो० स०)—कोरैया का घन सत्व और अतीस की छाल।

कुटजारिष्ट (भै० र० अतिसार रोगाधिकार)—कुटज मूल की छाल, मुनक्का, महुआ का फूल, गम्भार की छाल व गुड़।

कुटज लेह (भै०र० अतिसाराधिकार)—कुटज के जड की छाल, सोंचर नमक, विडनमक व सेंधा नमक पिप्पली, धाय का फूल, यवक्षार, इन्द्रजव, काला जीरा,

कुमार कल्याण रस (भै० र० बालरोगाधिकार)—रस सिन्दूर, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म घृतकुमारी स्वरस की भावना।

कुमार्यासव (यो० र० गुल्म चिकित्साधिकार)—घृतकुमारी का गूदा, गुड़, भाग, धातकी का फूल और मधु, प्रक्षेप द्रव्य, जाती फल, लवंग कंकोल चव्य जटामासी चित्रकमूल, कबाब चीनी जावित्री, कर्कट शृंगी बहेडा पुष्कर मूल, ताम्र भस्म व लौह भस्म।

कुलवधू रस (भै० र० ज्वराधिकार)—शुद्ध पारद, नाग भस्म, ताम्र भस्म, मनःशिला, तूतिया। भावना—इन्द्रायण स्वरस।

कुष्ठकालानल रस (भै० र० कुष्ठाधिकार)—गन्धक, पारद, सोहागा ताम्र भस्म, लौह भस्म, पिपली, निम्ब पचाङ्ग, त्रिफला। अमलतास के छाल की भावना।

कुष्ठ राक्षस तैल (भै० र० कुष्ठाधिकार)—सरसो तैल, कज्जली, कूठ, छितवन की छाल चित्रक की जड, सिन्दूर, लहसुन, हडताल, काला जीरा, अमलतास का बीज, ताम्रभस्म, मैनशिल।

कुष्ठारि रस (भै०र० कुष्ठ रोगाधिकार)—कठगूलर, भारगी, बला, अतिबला, नागबला, मधु।

कुष्माण्ड खण्ड (भै० र० रक्तपित्ताधिकार)—पेठा, गोघृत, शक्कर। प्रक्षेप चूर्ण—पिप्पली, सोंठ, जीरा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, मरिच, धनिया।

कैशोर गुग्गुल (भै०र० वात रक्ताधिकार)—महिषाक्ष गुग्गुल, त्रिफला, गुरुच।

प्रक्षेप चूर्ण—त्रिफला, त्रिकटु, वायविडग, निशोथ, दन्तीमूल, गुरुच, गोघृत।

कोकिला वर्ती(भैं० र० नेत्र रोगाधिकार)—त्रिकटु, गन्धक जारित लौह, सेंधा नमक, त्रिफला, सौवीराजन, त्रिफला क्वाथ।

कोशातकी तैल (भैं० र० उपदश)—तैल, कटु तरोई का वीज, सोठ।

क्षार तैल (भैं०र० कर्णरोगाधिकार)—तैल, मधु, विजौरा का रस, कदली रस।

कल्कार्थ—गन्धवाला क्षार, मूलीक्षार, शुण्ठीक्षार, हीग, सोठ, वच, कूठ, देव दारु, सहिजन की जड, रसौत, काला नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, उद्भिद् नमक, सेंधा नमक, भूर्जग्रन्थि, विड नमक, मोथा।

क्षीर पट्पलक घृत (भैं० र० गुल्मरोगाधिकार)—गोघृत, दूध। कल्कार्थ

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक, सोठ, यवक्षार।

क्षुधावती गुटिका (भैं० र० अम्लपित्ताधिकार)—पारद, लौह भस्म, गन्धक, अभ्रक भस्म, त्रिकुट, त्रिफला, वच, अजवाइन, सोया, चव्य, जीरा, कालाजीरा, घण्टाकर्ण (पलाश), पुनर्नवा, मानकन्द, पिप्पली की जड, इन्द्र जौ, भागरा, सुदर्शन, दण्डोत्पलामूल निसोत, दन्तीमूल, सूरजमुखी की जड, लाल चन्दन, भागरा, अपामार्ग, पटोल पत्र, मण्डूक पर्णी। अदरख स्वरस की भावना।

खदिर वटी (गुडिका) (यो० र० कास चिकित्सा)—खैर, पुष्करमूल, शृगी, कटफल, भारगी, हरड, लवग, त्रिकटु, वत्सनाभ, काली जीरी, गुरुच, रक्त दुरालभा, वहेडा, हर्रा, अनार का छिलका, मधु, अदरख, खैर का पानी, ववूल की छाल, अडूसा की भावना।

खदिरारिष्ट (भैं० र० कुष्ठाधिकार)—खैर की लकडी, देवदारु, काली जीरी, त्रिफला, मधु, शक्कर, धाय का फूल, शीतलचीनी, नागकेशर, जायफल, लौग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, पिप्पली।

गद मुरारि रस (भैं० र० ज्वराधिकार)—पारद, गन्धक, मैनशिल, लोहभस्म, सोठ, पीपर, मरिच, ताम्र भस्म, शुद्ध सिगरफ, नाग भस्म।

गलित कुष्ठारि रस (भैं० र० कुष्ठाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, लौह भस्म, गुग्गुल, चित्रक, शुद्ध शिलाजीत, कुचला, अभ्रक भस्म, करञ्ज वीज।

ग्रहणी कपाट रस (भैं०र० ग्रहणी रोगाधिकार तृतीय योग)—सोहागा, यवक्षार, गन्धक, पारा, जायफल, वेलगिरी, कत्था, श्वेतराल, केवाच के वीज, अगस्त, वेल-पत्र, शालिच मूल, कुटज की छाल तथा कैञ्चट और दुधिया की भावना।

ग्रहणी शार्दूलरस (भैं० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, स्वर्ण भस्म, लौग, निम्बपत्र, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची।

गर्भचिन्तामणिरस (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—रस सिन्दूर, रजत भस्म, लौह-भस्म, अभ्रक भस्म, कपूर, वगभस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोक्षुरू शतावर, वलामूल, (खिरेटी की जड), अतिवला, (कघी) की जड।

गर्भ पीयूषवल्ली रस (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, चाँदी भस्म, शुद्ध हरताल, वग भस्म, अभ्रक भस्म। भावना द्रव्य—ब्राह्मी, अडूसा, भागरा, पित्तापापडा स्वरस तथा दशमूल का काढा।

गर्भविनोद रस (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—त्रिकटु, हिंगुल, जावित्री, लौंग, स्वर्णमाक्षिक भस्म।

गुल्मकालानल रस (भै०र० गुल्माधिकार)—पारद, गन्धक, हरताल, ताम्र भस्म, सुहागा, यवक्षार, मोथा, त्रिकटु, गजपिप्पली, हरड, वच, कूठ भावना। द्रव्य—पित्त पापडा, मोथा, सोठ अपामार्ग, पाढ का काढा।

गुल्म कुठार रस (भै० र० गुल्माधिकार)—नाग भस्म, वगभस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म। जमीरी नीबू की भावना

गुल्म वज्रिणी वटिका (भै० र० गुल्मरोगाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्रभस्म, कास्य भस्म, सुहागा, हडताल।

चन्दनादितैल (भै०र० राजयक्ष्माधिकार)—रस तिल तैल, लाल चन्दन, गन्धवाला नखी कुष्ठ, मुलहठी, छडीला, पद्मकाठ, मजिष्ठ, चीड, देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, पूति, नागकेशर, तेजपत्र, शिलाजतु, मुरामासी, शीतलचीनी, प्रियगु, दारु-हल्दी, मोथा हल्दी, अनन्त मूल, श्यामालता, लताकस्तूरी, लौंग, अगरु, केशर, दालचीनी, रेणुका, नालुकाका कल्क, दही का पानी, लाक्षा रस, कच्ची लाख।

चन्दनवला लाक्षादितैल (भै०र० ज्वराधिकार)—लालचन्दन, वलामूल, लाख तथा खस का क्वाथ, तिल तैल, लालचन्दन, खस मुलेठी, सौफ, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ, मजीठ अगुरु नेत्रवाला, असगन्ध, वला, दारु हल्दी, मरोडफली, मोथा, मूली, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पा का पुष्प, पीला चन्दन, शारिवा, विड् तथा सैन्धव लवण का कल्क गो दुग्ध।

चन्दनादि लौह (भै०र० ज्वराधिकार—लाल चन्दन, गन्धवाला, पाठा, खस, पीपर, हरड, सोठ, नीला कमल, आवला, मोथा, चित्ता की जड, विडंग, लौहभस्म।

चन्द्रकला रस (भै०र० मूत्रघाताधिकार)—पारद, ताम्र, अभ्रक भस्म, गन्धक मोथा, अनारदाना, दूध, केवडा, सहदेवी, घीकुवार, पित्तपापडा, आरामशीतलिका शतावर, कुटकी, गुरुचसत्व, पित्तपापडा, खस, माधवी लता, सफेद चन्दन, अनन्तमूल मुनक्का के क्वाथ की भावना।

चन्द्रप्रभावटी—(शा र० स० प्रमेहाधिकार)—कपूर, अतिविषा, चव्य, धनिया सैन्धवलवण, पिप्पली, चिरायता, मुस्तक स्वर्णमाक्षिक, गजपिप्पली, विभीतक, विड-

लवण, हरिद्रा, देवदारु, चित्रक, यवक्षार, मरिच, गुरुच, दारुहल्दी, वच, विडग, हरीतकी, सौचर लवण, पिप्पली मूल, सज्जीक्षार, शुण्ठी, आमलकी, निशोथ, दन्तीमूल, लौह भस्म, मिश्री, तेजपत्र, दालचीनी, शिलाजतु, गुग्गुल, इलायची, वशलोचन, रक्तचन्दन।

चन्द्र प्रभा गुटिका (भै० र० अर्शोरोगाधिकार)—वाय विडग, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पिप्पलीमूल, मोथा, कचूर, वचा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सेंधा नमक, सौचर नमक, यवक्षार, सज्जी क्षार, हल्दी, दारु हल्दी, धनिया, गजपिप्पली, अतीस, शिलाजीत, विशुद्ध गुग्गुल, लौह भस्म, शक्कर, वशलोचन, दन्ती मूल, निशोथ, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची।

चन्द्रशेखर रस (भै० र० ज्वराधिकार)—पारद, गन्धक, कालिमिर्च, सोहागा, शक्कर। भावना द्रव्य—रोहू मछली का पित्त।

चन्द्रामृत (भै० र० कास रोगाधिकार)—त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, जीरा, सेधा नमक, पारद, गन्धक लौह भस्म, सोहागा मिर्च। भावना बकरी का दूध।

चन्द्रोदयावर्ती (भै० र० नेत्ररोगाधिकार)—हरड, वच, कूठ, पीपर, मिर्च, बहेडे, की मज्जा, शख नाभि, मैनशील,। बकरी के दूध से पीसना।

चतुर्भुज रस (भै० र० उन्मादाधिकार)—रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म, मैनशिल, कस्तूरी, हरताल - घृत कुमारी के रस से मर्दन।

चातुर्थकारि रस (भै० र० ज्वराधिकार)—हरताल, मैनशिल, तूतिया, शखभस्म, गन्धक। घृतकुमारी की भावना।

चुक्राद्य तैल (यो० र० विसूचिकादि चि०)—चुक्र, कुष्ठ, सेंधा नमक, जाती फल, कटु तैल।

च्यवनप्राश (भै० र० राजयक्ष्माधिकार)—अष्टवर्ग, पीपर, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, वलामूल, काकडासिंगी, भुइआवला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकर मूल' अगर, हरड, गुरुच, कचूर, मोथा, पुर्ननवा, छोटी इलायची, नीला कमल, लाल चन्दन, अडूसा की जड, काकनासा का क्वाथ। आवला तिल तैल, घृत, शक्कर। प्रक्षेप—वशलोचन, पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नाग केशर, मधु।

चित्रकादि वटी (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—चिता, पीपरा मूल, यवक्षार, सज्जी क्षार, सौवर्चल नमक, विड नमक, रेह का नमक, सामुद्र नमक, पिप्पली, सोठ, मरिच, हीग, अजमोदा, चव्य।

चिन्तामणि रस (भै० र० अतिसाराधिकार)—पारद, ताम्र भस्म, गन्धक, मीठाविष, इमली का बीज, मरिच।

ज्वर केसरी रस (भै० र० ज्वराधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकटु, गन्धक, त्रिफला, जयपाल। भावना—भागरा स्वरस।

ज्वर कुञ्जर पारीन्द्र रस (भै० र० ज्वराधिकार)—रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, चादी भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रसौत, खर्पर भस्म, ताम्र भस्म, मोती भस्म, प्रवाल भस्म, लोह भस्म, शिलाजतु, स्वर्ण गैरिक, मैनसिल, गन्धक, स्वर्ण भस्म। भावना द्रव्य—दूधिया, तुलसी, पुर्ननवा, अरणी, भुई आवला, चिरायता, सुदर्शन, कलिहारी, मालकागनी, मुद्गपर्णी, प्रमारणी।

ज्वरघ्नी वटी (भै०र० ज्वराधिकार)—पारद, एलुआ, पिप्पली, हरड, अकरकरा, कटुतैल से शोधित गन्धक, इन्द्रायण का फल। इन्द्रायण स्वरस की भावना।

ज्वर धूमकेतु रस (भै० र० ज्वराधिकार)—शुद्ध पारद, समुद्र फेन, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक। आर्द्रक स्वरस की भावना।

ज्वर मुरारि रस (भै० र० ज्वराधिकार) – हिंगुल, मीठा विष, पिप्पली, मरिच, सोहागा, हरड, सोठ, जयपाल।

ज्वराशनि रस (भै०र० ज्वराधिकार)—पारद, सेंधा नमक, मीठा विष, ताम्र भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, काली मरिच। निर्गुण्डी स्वरस की भावना।

जनरञ्जन अञ्जन (भै० र० नेत्ररोगाधिकार)—त्रिकटु, हल्दी, दारुहल्दी, करज की जड, सेंधा नमक, वेल की जड, वरने की जड, शखनाभि।

जम्ब्वाद्य तैल (भै०र० उपदश फिरग रोगाधिकार)—तिल तैल, जामुन का पत्ता, वेतस पत्र, आवले का पत्र, लता करंज का पत्र, कमल पत्र, नीलोत्पल पत्र, छोटी इलायची, अतीस, आम की गुठली, मुलहठी, प्रियगु, लाक्षा, लोध, कालीयक काष्ठ, लाल चंदन, निशोथ, बकरी का मूत्र।

जय मगल रस (भै०र० ज्वराधिकार)—हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, सोहागा, ताम्र भस्म, वग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सेंधा नमक, मरिच चूर्ण, स्वर्ण भस्म, कान्त लौह भस्म, रजत भस्म। भावना—धतूरा, हरिसिंगार, दशमूल क्वाथ तथा चिरायता स्वरस।

जलोदरारि रस (भै०र० उदररोगाधिकार)—पिप्पली, काली मिर्च, ताम्र भस्म, हल्दी चूर्ण, सेहुड के दूध से मर्दन, जयपाल बीज।

जाति फलादि वटी (भै० र० अर्शोऽधिकार)—जायफल, लौंग, पिप्पली, सैन्धव, सोंठ, धतूरा का वीज, सिंगरफ, सुहागा, जम्वीरी स्वरस की भावना।

जीरकादि मोदक (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—भाग के वीज का चूर्ण, लौह भस्म, वग भस्म, अभ्रक भस्म, तालीस पत्र, सौंफ, जावित्री, जायफल, धनिया, त्रिफला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, लौंग, छडीला, श्वेत चदन, लाल चन्दन, जटामासी, मुनक्का, कचूर, सुहागा, कुन्दरु, मुलहठी, वशलोचन,

शीतलचीनी, गन्धवाला, नागवला, सोठ, काली मिर्च, पिप्पली, धाय के फूल, वेल, गिरी, अर्जुन की छाल, सोये का वीज, देवदारु, कपूर, प्रियगु, जीरा मोचरस कटुकी पद्माख नलिका, खाड, मधु और घृत ।

जीरकादि मोदक (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—जीरा, सोठ, धनिया, सोये का वीज अजवाइन, काला जीरा, दूध, घी, खाँड़, त्रिकटु, त्रिजातक, दालचीनी छोटी, इलायची तेजपत्र, वायविडग, चव्य चित्रक, मोथा, लौग ।

जीरकादि वटी—भुना जीरा, सफेद सोठ, पीपर, मिर्च, हर्रा, वहेडा, आवला, सोठ, लाल भुनी तलाव हीग, काला नमक, दही से भावित लहसुन, यवक्षार, शुद्ध गन्धक—सब समभाग—नीवू स्वरस की भावना, देकर दो-दो मटर के वरावर गोलिया वनावें ।

जीरकाद्यारिष्ट (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार)—जीरा, गुड,धाय का फूल, जायफल, मोथा, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, नागकेसर, अजवाइन, शीतलचीनी, लौंग ।

तक्रारिष्ट (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—अजवाइन, आवला, हरड, मरिच, पाचो नमक ।

तालीसादि चूर्ण (शार० स०)—तालीसपत्र, मरिच, सोठ, छोटी पीपर, वंशलोचन, छोटी इलायची, दालचीनी ।

तालीसादि मोदक (भै० र० कास रोगाधिकार)—तालीसपत्र, त्रिकटु, वशलोचन दालचीनी, छोटी इलायची, शक्कर व मिश्री ।

तालाक रस (भै० र० ज्वराधिकार) हरिताल, तूतिया । घृतकुमारी की भावना ।

त्रिकण्टकादि क्वाथ (भै० र० मूत्रकृच्छ्राधिकार)—सामुद्र नमक, सेंधा नमक, यवक्षार, अजवायन, अजमोदा, पिप्पली, चित्ता, सोठ, हीग, विड नमक ।

त्रिनेत्र रस (भै० र० हृद्रोगाधिकार,—पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म । अर्जुन की छाल के क्वाथ की भावना ।

त्रिपुर भैरव रस (भाव प्र० ज्वराधिकार)—वत्सनाभ, सोठ, पीपल, मरिच, ताम्रभस्म, हिंगुल । अदरख स्वरस की भावना ।

त्रिभुवन कीर्तिरस (योग रत्नाकर ज्वराधिकार)—शुद्ध हिंगुल, मीठा विष, त्रिकटु, सोहागा, पिप्पलीमूल, तुलसी, आदी और धतूरा की भावना ।

त्रिलोचन वटी (भै० र० ज्वराधिकार)—शुद्ध हरताल, नागभस्म, काली मिर्च, मीठा विष ।

त्रिविक्रम रस (भै०र० अश्मरी रोगाधिकार—ताम्रभस्म, वकरी का दूध, शुद्ध पारद की समभाग कज्जली, निर्गुण्डी (म्यौंडी) स्वरस की भावना ।

त्रैलोक्य तापहर योग (यो०र० ज्वराधिकार)—पारद, गन्धक, निशोथ, ताम्र-भस्म, दन्तीबीज, पिप्पली, कुचिला । धतूरे स्वरस की भावना ।

त्रैलोक्य सुन्दर रस (भै०र० पाण्डु रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, लोहभस्म, त्रिफला, त्रिकटु, मोचरस, मुसली और गुरुच सत्व । भावना द्रव्य-त्रिफला क्वाथ, सहजन की छाल, चित्रकमूल का क्वाथ ।

त्र्यूषणाद्य घृत (भै० र० गुल्मरोगाधिकार)—गोघृत, दूध, कल्कार्थ, त्रिकटु, त्रिफला, धनिया, वायविडग, चव्य, चित्रक ।

त्र्यूषणादि मण्डूर (भै०र० पाण्डु रोगाधिकार)—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चव्य, वाय विडङ्ग, चित्रक, दारुहल्दी की छाल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, पिप्पलीमूल, देव-दारु, शुद्ध मण्डूर, गोमूत्र ।

त्र्यूषणाद्य वर्ती (भै०र० नेत्र रोगाधिकार)—त्रिकटु, त्रिफला, तगर, सेंधा नमक, मैनशिल ।

त्रयोदशाग गुग्गुल (वातव्याध्यधिकार)—बबूल की छाल, असंगध, हाउबेर गुरुच, शतावर, गोखरू, विधारा, रास्ना, सोया, कचूर, अजवाइन गुगुल, घृत ।

दन्त्यरिष्ट (अर्शोरोगाधिकार)—दन्तीमूल, चित्रकमूल, दशमूल, त्रिफला, गुड़ ।

दन्तीहरीतकी (गुल्म रोगाधिकार)—बड़ी हरड, दन्तीमुल, चित्ता, गुड, निशोथ, पिप्पली, सोंठ, मधु, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर ।

दशन सस्कार चूर्ण (मुख रोगाधिकार)—सोंठ, हरड़, मोथा, कत्था, कपूर, अन्तर्धूमदग्ध सोपारी, मरिच, लौंग, दालचीनी ।

दशमूल तैल (शिरोरोगाधिकार द्वितीय)—कटुतैल, दशमूल, जम्बीरी नीबू का रस अदरख, धतूरे का रस । कल्कार्थ—पीपल, गुरुच, दारुहल्दी, मोथा, सोया, पुनर्नवा, वच, सोंठ, पीपल, चित्ता, सहिजन की छाल, पीपल, कुटकी, करञ्जबीज, काला जीरा श्वेत सरसो, कचूर, देवदारु, बला, रास्ना, हुलहुल, कटफल, सम्भालू की जड, चव्य, मेरु, जीरा, कूठ, अजवाइन, पिप्पलीमूल, शुष्कमूली, अजमोदा, विधारा का बीज ।

दशमल घृत (भै० र० उदर रोगाधिकार) दशमूल क्वाथ, यवक्षार, पीपल, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, गोघृत, दही का पानी ।

दशमूलारिष्ट (भै० र० वीर्य स्तम्भाधिकार) दशमूल, चित्रकमूल, पुष्करमूल, लोध, गिलोय, आवला, यवासा, कत्था, वायविडङ्ग, हरड, कूठ, मजिष्ठा, कैथ, देवदारु, वाय विडङ्ग, मुलहठी, भारगी, बहेडा, चव्य, पुनर्नवा, जटामासी, प्रियगु, सारिवा, स्याह जीरा, निशोथ, रेणुका, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेसर, मोथा, इन्द्र जौ, काकडा सिंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महा मेदा,

काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मधु, गुड, धाय का फूल, शीतलचीनी. गन्धवाला, लाल चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पिप्पली, कस्तूरी।

दाडिमाष्टक चूर्ण (ग्रहणी रोगाधिकार) वंशलोचन, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, अजवाइन, धनिया, स्याहजीरा, पिप्पलीमूल, मरिच, पिप्पली, सोंठ, अनारदाना, खाड।

दार्व्यादि लौह (भै०र० पाण्डु रोगाधिकार)—दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडङ्ग, लोह भस्म।

द्राक्षाघृत (भै० र० पाण्डुरोगाधिकार)—पुराना घी, द्राक्षा का कल्क।

(भै०र० गुल्म रोगाधिकार) गोघृत, आवला स्वरस, गन्ने का रस, दूध, मुनक्का, मुलहठी, खजूर, विदारी कन्द, शतावर, फालसा, हरड, वहेडा, आवला।कल्कार्थ—हरड खाड, मधु।

द्राक्षादि चूर्ण—(योगरत्नाकर राज यक्ष्मा चि०)—मुनक्का, खस, मिश्री, कमल, मुलहठी, खजूर, काली सारिवा, सुगन्धवाला, आवला, चन्दन, ककोल, जातीफल, चतुर्जात, धनिया, शर्करा।

द्राक्षारिष्ट (भै०र० राजयक्ष्मा रोगाधिकार)—मुनक्का, खाड, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, प्रियगु, मरिच, पिप्पली, वायविडग।

द्राक्षासव (अर्श रोगाधिकार)—मुनक्का, खाड, वैर की छाल, धाय का फूल, सोपारी, लवग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, वडी इलायची, तेजपत्र नागकेशर, सोंठ, मरिच, पीपर, रुमी मस्तगी, कशेरु, अकरकरा, कूठ, कस्तूरी, केशर।

दुग्धवटी (भै०र० शोथाधिकार)—शुद्ध मीठा विष, धतूरे का वीज, हिंगुल, धतूरे के स्वरस की भावना।

दुरालभादि क्वाथ (भै०र० मूत्र कृच्छ्राधिकार)—यवासा, पाषाणभेद, हरड, भटकटैया, मुलेठी तथा धनिया।

दुर्लभ रस (भै र मसुरिकाधिकार)—रससिन्दूर, पारद भस्म, श्वेतवला, पिप्पली, आवला, रुद्राक्ष, घी, मधु।

दूर्वाद्य घृत (भै०र० पित्ताधिकार)—तण्डुलोदक, वकरी का दूध तथा घी। कल्कार्थ दूव, कमल केशर, मजीठ, एलवालुक, खाड, सफेद चन्दन लाल चन्दन, खश, मोथा, पद्माख।

देवदार्वादि चूर्ण—(भै०र० आमवाताधिकार)—देवदारु, वच, सोंठ, मोथा, हरड, अतीस।

देवदार्वाद्यरिष्ट (भै०र०प्रमेहाधिकार)—देवदारु, मट्ठूसा, मजीठ, इन्द्रजव, दन्तीमूल, तगर, हल्दी, दारु हल्दी, रास्ना, वायविडग, मोथा, सिरस की छाल, खैर, अर्जुन, अजवायन, कुटज, लाल चन्दन, गुरुच, कुटकी, चित्रक, धातकी फूल, मधु, त्रिकटु, त्रिजात, प्रियगु, नागकेशर।

धनञ्जय वटी (भै०र० अजीर्ण चि०)—जीरा, चित्ता, चव्य, सुगन्धवाला, वचा, इलायची, कचूर, नागकेशर, हपुष, काला जीरा, मिश्री जवाइन, पिप्पली मूल, सज्जी-खार, हरड, सोपारी, लवग, चित्रक, धनिया, कृष्णा, सांभर नमक, मरिच, त्रिवृत, समुद्र नमक, सेंधा नमक, सोठ, चुर्क, तितडी के फल की भावना—

धातुगर्भ योग राज गुग्गुल—शारगधर के मतानुसार योगराज गुग्गुल मे सप्त धातुओ का भस्म मिलाने से धातुगर्भ योग राज गुग्गुल कहलाता है।

धात्री लौह (भै०र० पाण्डुरोगाधिकार)—आवला, लोह भस्म, त्रिकटु, हल्दी, मधु, घृत, खाड।

नयन सुखावर्ति (भै०र० नेत्ररोगाधिकार)—पिप्पली हरड।

नवायस लौह (भै०र० पाण्डुरोगाधिकार)—सोठ, हरड, मोथा, मरिच, बहेडा, विडग, पीपल, आवला, चित्ता, लौह भस्म।

नागराद्य चूर्ण (भै०र० ग्रहणी रोगाधिकार)—सोठ, अतीस, मोथा, धाय का फूल, रसोत, कुटज, इन्द्रयव, पाढा, वेलगिरी, कुटकी।

नस्य भैरव रस (भ० र० ज्वराधिकार)—रससिन्दूर, ताम्र भस्म, लौह भस्म, चित्ता मूल की छाल, सुहागा, यशद भस्म, त्रिकटु। मदार के दूध की भावना।

नाराच रस (शार० द्वितीय खण्ड अ० १२)—पारा, सोहागा, मरिच, समभाग गन्धक, पीपल, सोठ, शुद्ध जयपाल।

नारायण चूर्ण (भै० र० उदर रोगाधिकार)—अजवाइन, हाऊवेर, धनिया, त्रिफला, काला जीरा, सोया, पिप्पलीमूल, अजमोदा, कचूर, वच, सोया, जीरा, त्रिकटु, सत्यानाशी, चिता, यवक्षार, सज्जीक्षार, पोहकरमूल, कूठ, पाचो नमक, वाय विडङ्ग, दन्ती, निसोथ, इन्द्रायण, चर्मकपा (सातला)

नारायण तैल (भै० र० वातव्याध्यधिकार)—तिल तैल, शतावरी स्वरस, बकरी का दूध। क्वाथ—विल्वमूल, अरलू मूल, पाढल मूल, प्रसारिणी, असगन्ध, भटकटैया, वन भण्टा, बला, अतिबला, गोखरु, पुनर्नवा। कल्कार्थ—सोया, देवदारु, जटामासी, छडीला, वच, लाल चन्दन, तगर, कुष्ठ, छोटी इलायची, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुदग्पर्णी, मापपर्णी, रास्ना।

नित्यानन्द रस (भै०र० विद्रधिरोगाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, वगभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, शख भस्म, विदारी कन्द, त्रिकटु, त्रिफला, लौह भस्म, वाय विडग, पाचो नमक, चव्य, पिप्पलीमूल, हाऊवेर, वच, कचूर, पाढ, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा वीज, निसोथ, चित्ता, दन्ती मूल । हरीतकी के क्वाथ की भावना ।

निद्रोदय रस (र० यो० सा०)—रस सिन्दूर, वशलोचन, शुद्ध अहिफेन, धाय का फूल, आँवले का चूर्ण, मुनक्का । भाग पत्र के स्वरस की भावना ।

निम्वादि चूर्ण (भै० र० वातरक्ताधिकार)—नीम की छाल, हरड, आवला, गुरुच, काली जीरी, सोठ, वाय विडग, चक्रमर्द, पिप्पली, अजवाइन, वच, श्वेत जीरा, मरिच, खैर, सेंधा नमक, यवक्षार, हल्दी, दारु हल्दी, मोथा, देवदारु, कूट ।

निशा लौह (भै०र० पाण्डु रोगाधिकार)—हल्दी, दारु हल्दी, त्रिफला, कुटकी, लौह भस्म ।

पत्रागासव (भै०र० स्त्री रोगाधिकार)—पत्राङ्ग, खैर, अडूसा की छाल, सेमल के फूल, भिलावा, सारिवा, श्यामलता, गुडहल की कली, आम की गुठली, दारु हल्दी, चिरायता, पोस्ता की डोडी, जीरा, लौह चूर्ण, रसौत, कच्चे बेल का गूदा, भाँगरा, दालचीनी, केसर, लवग, धाय का फूल, खाड व शहद ।

पलास वीजादि चूर्ण (भै०र० कृमि रोगाधिकार)—पलास वीज, इन्द्र जौ, वाय विडङ्ग, नीम की छाल, चिरायता ।

प्लीह शार्दूल रस (भै०र० प्लीह यकृत रोगाधिकार)—हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, लौह भस्म, त्रिकटु, ताम्र भस्म, मैनशिल, हीग, जयपाल, सोहागा, शिलाजीत, कौडी भस्म, यवक्षार, जयन्ती, केसर, सैन्धव नमक, विड नमक, चित्रक । भावना द्रव्य—निसोथ, चित्ता, अदरख स्वरस ।

पाण्डु सूदन रस (भै० र० पाण्डु रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, जयपाल, शुद्ध गुग्गुल । घृत की भावना ।

पानीय भक्त वटिका (भै० र० अम्ल पित्ताधिकार)—अभ्रक भस्म, कुष्ठ, वाय विडङ्ग, चव्य, चित्रक, त्रिफला, भागरा, दन्ती मूल, मोथा, पिप्पली, चित्रक, घण्टाकर्ण, पलाश की जड, मानकन्द, सूरण, श्वेत वनभण्टा की जड, निशोथ, सूरजमुखी की जड, पुनर्नवा, पारद । अदरख स्वरस की भावना ।

पारीशीकादि चूर्ण (भै० र० कृमि रोगाधिकार)—खुरासानी अजवाइन, मोथा, पिप्पली, काकडा सिंगी, वायविडङ्ग, अतीस ।

पाषाण वज्र रस (भै० र० अश्मर्यविकार)—पारद, गन्धक। पुनर्नवा श्वेत की भावना।

पिण्ड तैल (भै० र० वात रक्ताधिकार)—तिल तैल, मोम, मजिष्ठा, राल, अनतमूल।

पित्त कासान्तक रस (भै० र० कास रोगाधिकार)—ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म। भावना द्रव्य—कसौंजी, अगस्त या अम्लवेतस।

पिप्पल्यादि चूर्ण (भै० र० प्लीह रोगाधिकार)—पिप्पली, सोंठ, दन्तीमूल, छोटी हरड, विड नमक।

पिप्पल्याद्यरिष्ट (यो० र० राजयक्ष्मा चिकित्सा)—पिप्पली, लोध्र, पाठा, धात्री, मुसव्वर, चव्य, चित्रक, हींग, उशीर, चन्दन, देवदारु, मोथा, प्रियंगु, लवली, हल्दी, अजमोदा, कुष्ठ, तगर, नागकेसर दालचीनी, मुनक्का, धातकी, गुड़।

पीयूष वल्ली रस (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, अभ्रक, चांदी-लौह-स्वर्ण माक्षिक की भस्मे, सुहागा, रसौत, लौंग, लालचन्दन, मोथा, पाढ, जीरा, धनिया, मजीठ, अतीस, लोध, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, दलचीनी, जयपाल, सोंठ, बेल गिरी, धतूरा बीज, अनार का छिलका, लज्जालु, धाय का फूल। भांगरा स्वरस की भावना।

पुनर्नवा मण्डूर (भै० र० पाण्डु रोगाधिकार)—पुनर्नवा, निसोथ, सोंठ, पीपर, मरिच, वाय विडङ्ग, देवदारु, चित्ता, पुष्करमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पिप्पलीमूल, मोथा, मण्डूर। गोमूत्र मे पाक।

पुनर्नवादि तैल (भै० र० शोथाधिकार)—तिल तैल, पुनर्नवा। कल्कार्थ—त्रिकटु, त्रिफला, काकडासिंगी, धनिया, कटफल, कचूर, दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्माख, रेणुका, कुष्ठ, पुनर्नवा, अजवाइन, काला जीरा, छोटी इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपत्र, नागकेसर, वच, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्ता, सोया, रास्ना, गन्धवाला, मजिष्ठा, दुरालभा।

पुष्यानुग चूर्ण (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—पाढ, जामुन का बीज, आम की गुठली, पाषाण भेद, रसौत, अम्बष्ठकी, मोचरस, मजिष्ठा या लजालु, कमल, नागकेसर, अतीस, मोथा, बेल का गूदा, लोध, गेरू, कटफल, मरिच, सोंठ, किसमिस, लालचन्दन, आलू, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धाय का फूल, मुलहठी, अर्जुन छाल।

पूर्ण चन्द्रोदय रस (भै० र० वाजीकरणाधिकार)—स्वर्ण पत्र, पारद, गन्धक से निर्मित मकरध्वज, कर्पूर चूर्ण, जायफल, मरिच, लौंग, कस्तूरी।

पञ्चतिक्त घृत (भै० र० कुष्ठाधिकार)—घृत, नीम की छाल, गुरुच, अडूसा,

पटोल पत्र, कण्टकारी, गुग्गुल, पाढ, वाय विडङ्ग, देवदारु, गज पिप्पली, यवक्षार, सज्जी क्षार, सोठ, हल्दी, सोया, चव्य, कूठ, मालकागनी, मरिच, इन्द्रजौ, जीरा, चित्ता, कुटकी, भिलावा, वच, पिप्पली मूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला, अजवाइन।

पञ्च निम्ब चूर्ण, (भै० र० कुष्ठाधिकार)—नीम के फूल-फल-छाल-जड-पत्ते, त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरू, भल्लातक, चित्ता, वायविडङ्ग, वाराहीकन्द, लौह भस्म, गुरुच, दारुहल्दी, वाकुची वीज, अमलतास, इन्द्रजौ, पाढ, शक्कर।

पञ्च प्रकार चूर्ण—सनाय, सौंफ, सेंधा नमक, सोठ, हर्रा।

पञ्चानन रस (भै० र० गुल्माधिकार)—पारद, विशुद्ध तूतिया, गन्धक, जयपाल, पिप्पली, अमलतास के गूदे तथा सेहुण्ड दूध की भावना।

पञ्चामृत पर्पटी (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—गन्धक, पारद, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म।

पञ्चामृत रस (भै० र० कास रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, मरिच, अभ्रक भस्म, मीठा विष। नीबू स्वरस की भावना।

प्रचेतना वटी (भाव प्र०)—पीपल, मिर्च, वालवच, सेंधा नमक, करञ्ज वीज, हल्दी, त्रिफला, सरसो, तलाव हीग, सोठ। वकरी के मूत्र की भावना।

प्रताप लकेश्वर रस (यो० र०)—पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध वच्छनाग, मरिच, लौह भस्म, शख भस्म।

प्रतिसारणीय क्षार (रसायन सार परिभाषा प्रकरण)—लोटिया सज्जी, विना वुझा चूना, लहसुन स्वरस।

प्रदरारि रस (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—वङ्ग भस्म, लौह भस्म, अफीम, रस सिन्दूर, कमल की जड, लालचन्दन।

प्रदरारि लौह (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—कुटज क्वाथ, प्रक्षेप—मजीठ, मोचरस, कच्चे वेल का गूदा, मोथा, धाय का फूल, अतीस, अभ्रक भस्म, लौह भस्म।

प्रदरान्तक रस (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, वङ्ग भस्म, चादी भस्म, खर्पर भस्म, लौह भस्म। घी कुआर की भावना।

प्रदरान्तक लौह (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—लौह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, वङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, कौडी भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, वायविडङ्ग, पाचो नमक, चव्य, पिप्पली, शख भस्म, ह्राऊवेर, कूढ, कचूर, पाढ़, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा का बीज।

प्रभाकर रस (भै० र० ज्वराधिकार)—कज्जली, चित्रक रस मे पाक—रोहित मछली के पित्त की भावना ।

प्रभाकर वटी (भै० र० हृद्‌रोगाधिकार)—स्वर्ण माक्षिक भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शिलाजतु, अर्जुन के क्वाथ की भावना ।

प्रवाल पचामृत (भै० र० गुल्माधिकार)—मोती भस्म, शख भस्म, कौडी भस्म, मुक्ति भस्म, प्रवाल भस्म, दूध की भावना ।

प्रवाल मुक्तादि योग (सु० उत्तर तत्र)—प्रवाल भस्म, मुक्ता पिष्टी, काला अजन, शख भस्म, स्वर्ण गैरिक ।

प्रसारणी तैल (शार० द्वितीय खण्ड)—प्रसारणी तैल, दही, काजी, गोदूग्ध, कल्कार्थ—मुलहठी, पीपरामूल, चित्रक, सेंधा नमक, वच, प्रसारणी, देवदारु, रास्ना, गजपिप्पली, भिलावा, सौंफ, जटामासी ।

प्राणदा गुटिका (भै० र० अर्श रोगाधिकार)—त्रिकटु, चव्य, तालीसपत्र, नागकेशर, पिप्पलीमूल, तेजपत्र, छोटी इलायची, दालचीनी, खस, गुड ।

वडवानल चूर्ण (भै० र० अग्निमान्द्याधिकार)—सैन्धव नमक, पिप्पलीमूल, पिप्पली, चव्य, चित्रक, सोठ, हरड़ ।

वाल रस (भै० र० बाल रोगाधिकार) पारद, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, भृंगराज, भगरैय्या, सम्भालू ।

वंगेश्वर रस (भै० र० प्रमेहाधिकार) वंगभस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, नागकेसर, घी कुआर की भावना ।

वृहत्कनक सुन्दर रस (भै०र० अतिसाराधिकार)—पारद, गन्धक, मरिच, सोहागा, धतूरा का बीज, भगरैया स्वरस की भावना

वृहत्कस्तूरी भैरव रस (भै०र० ज्वराधिकार)—कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धाय का फूल, कौच का वीज, चादी भस्म, सोना भस्म, मोती भस्म, प्रवाल भस्म, लोह भस्म, पाठा, भाभीरग, मोथा, सोठ, वाला, हरिताल, अभ्रक भस्म, आवला का चूर्ण । मदार स्वरस की भावना ।

वृहत्काञ्चनाभ्र रस (भै० र० राजयक्ष्माधिकार)—रस सिन्दूर, स्वर्ण-मुक्ता, लौह भस्म, अभ्रक-प्रवाल-वैक्रान्त-चादी-ताम्र-वग की भस्मे, कस्तूरी, लौंग, जावित्री, एलवालुक । घी कुआर, भंगरैया तथा वकरी के दूध की भावना ।

वृहत्कासीसाद्य तैल (भै० र० अर्शोरोग०)—तिल तैल। कल्क द्रव्य-कासीस, सैन्धा नमक, पिप्पली चूर्ण, कुष्ठ, कलिहारी, पाषाण भेद, करवीर मूल, दन्तीमूल, वाय विडग, चित्ता, हरताल, मैनशिल, चोक, सेहुण्ड का दूध, मदार का दूध, गोमूत्र ।

वृहत्गगन सुन्दर रस (भै०र० अतिसाराविकार)—पारद, गन्वक, अभ्रक-कौडी-चादी की भस्मे, अतिविषा । धनिया और सोठ के क्वाथ की भावना ।

वृहत्मरिचाद्य तैल (भै० र० कुष्ठाधिकार)—कटु तैल, गोमूत्र, मरिच, निशोथ, दन्तीमूल, मदार का दूध, गोमय रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, लालचन्दन, इन्द्रायण की जड, कनेर की जड, हरताल, मैनशिल, चित्ता, कलिहारी, वाय विडग, चकवड के बीज, सिरस छाल, कुटज की छाल ।

वृहत्मेथी मोदक (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार) मेथी मोदक मे पडने वाली औषधियो के अतिरिक्त सोया, मुलहठी, पद्माख चव्य, सौफ तथा देवदारु अधिक पडते हैं ।

वृहल्लाक्षादि तैल (भै० र० ज्वराधिकार) तिल तैल, लाक्षारस, दही का पानी, सोया, हल्दी, मूर्वामूल, कूठ, हरेणु, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, अश्वगन्ध, देवदारु, मोथा, श्वेत चन्दन का कल्क ।

भृगराज घृत (भै० र० स्वरभेदाधिकार)—भागरा, गुरुच, अडूसा, दशमूल, कसौदी का रस, गोघृत और पीपल ।

वृहत्वातचिन्तामणि रस (भै० र० वात व्याध्यधिकार)--स्वर्ण-रजत-अभ्रक-लौह-प्रवाल-मोती की भस्मे, रस सिन्दूर । घी कुआर की भावना ।

वृहत् शृगाराभ्ररस (भै० र० कास रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, सोहागा, नागकेसर, कपूर, जावित्री, लौग, तेजपत्र, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, तालीस पत्र, मोथा, कूठ, जटामासी, दालचीनी, धाय का फूल, छोटी इलायची, सोठ, मरिच, पीपल, त्रिफला, गज पिप्पली । पिप्पली क्वाथ की भावना ।

वृहत्सर्वज्वरहर लौह (भै० र० ज्वराधिकार द्वितीय योग)—पारद, गन्धक, ताम्रभस्म अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, चादी भस्म, हरिताल, कान्टलव । भावना द्रव्य—करैली, दशमूल, पितपापडा, त्रिफला, गिलोय, पुर्ननवा, अदरख, पान, मकोय, सभालू ।

वृहदसूरण मोदक (भै० र० अर्शरोगाधिकार) जङ्गली सूरण, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, पिप्पलीमूल, तालीसपत्र, भिलावाँ, वाय विडङ्ग, मूसली, विधारा का बीज, दालचीनी, छोटी इलायची, गुड ।

बृहत्सैन्धवादि तैल (भै०र० आमवाताधिकार)—एरण्ड तैल, सोवा का क्वाथ काञ्जी। कल्कार्थ, सेन्धा नमक, गजपिप्पली, रासना, चव्य, सोया, अजवाइन, सज्जीक्षार, मरिच, कूठ, सोठ, काला नमक, विड नमक, वच, अजमोदा, मुलहठी, जीरा, पोहकरमूल, पिप्पली।

भल्लातक मोदक (भै० र० अर्शरोगाधिकार)—भिलावा, काला तिल, हरड तथा गुड।

भूलिम्बादिघृत (भै०र० उपदश रोगाधिकार)—गोघृत, चिरायता, नीम, त्रिफला, पटोल पत्र, पत्रलता, करञ्ज का वीज, चमेली का पत्ता, खैर की लकडी, असगध की छाल।

भार्गीगुड (भै०र० हिक्काश्वासाधिकार)—भारगी दशमुल, हरड, गुड, त्रिकटु, त्रिसुगध, यवक्षार, मद।

महाज्वराकुश रस (भै० र० ज्वराधिकार प्रथम योग)—पारद, गधक, विष, काला धतूरा का वीज, त्रिकटु, भावना द्रव्य, जम्वीरी नीबू—आदी का रस।

महागधक रस (भै०र० ग्रहणी रोगाधिकार)—पारद, गंधक, जायफल, जावित्री लौग, नीम का पत्ता।

महातालकेश्वर रस (भै० र० कुष्ठाधिकार) वश पत्री, हरताल, पेठे व घृतक्वार की भावना, काञ्जी, खट्टी दही तथा जल का मर्दन।

महाभ्रवटी (भै० र० स्त्रीरोगाधिकार द्वितीय योग)—अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, लौहभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, चौकिया सोहागा, यवक्षार, त्रिफला, शुद्ध विष, गूमा, अडूसा, पान की भावना।

महामाष तैल (भै० र० वातव्याध्यधिकार)—तिल तैल, दशमूल, उरद, दुग्ध, कल्कार्थ द्रव्य-असगध, कचूर, देवदारु, वला, रास्ना, प्रसारणी, कुष्ठ, फालसा, भारगी, विदारी कन्द, क्षीर विदारी कन्द, पुनर्नवा, विजौरा, जीरा, हीग, सोये, शतावर, गोखरु, पिप्पलीमूल, चित्रक, जीवनीयगण, सेंधा नमक।

महा चैतस घृतम् (भै० र० अपस्माराधिकार)—सन का वीज, निशोथ, एरड मूल, दशमूल, सतावर, रास्ना, पिप्पली, सहिजन की जड, विदारी कन्द, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, खाड, खजूर, मुनक्का, गो घृत, स्वल्प चैतस घृत मे पडी वस्तुयें।

महातालेश्वर रस (भै० र० कुष्ठाधिकार)—हरिताल, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध मन शिला, पारद, सुहागा, सेंधा नमक, गन्धक, लौह भस्म, मीठा विष, जम्वीरी स्वरस की भावना।

महा मृगाङ्क रस (भै० र० राजयक्ष्मा रोगाधिकार)—रस सिन्दूर तथा स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, गन्धक, स्वर्ण माक्षिक भस्म, चादी भस्म, प्रवाल भस्म, सोहागा, बिजौरा नीबू की भावना, हीरा भस्म।

महायोगराज गुग्गुल (शारङ्गधर स०)—सोठ, पीपर, चव्य, पिपरामूल, हीग, अजमोदा, पीली सरसो, दोनो जीरा, मगरैल, रेणुका, इन्द्र यव, पाढ, वाय विडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अजमोद, भारङ्गमूल, मूर्वा, वच, त्रिफला, शुद्ध गुग्गुल, वग भस्म, चादी भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, माक्षिक भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म, रस सिन्दूर।

महालक्ष्मी विलास (भै० र० शिरोरोगाधिकार)—लौहभस्म, अभ्रक भस्म, मीठा विष, मोथा, त्रिफला, त्रिकटु, धतूरा वीज, विधारा बीज, भाग बीज, छोटा गोखरू, पिप्पली मूल, धतूरे के रस की भावना।

महाशंख वटी (भै० र० अग्निमाद्यादिरोगाधिकार)—शख भस्म, पाचो नमक, इमली की छार, त्रिकटु, हीग, मीठा विष, गन्धक, पारद, भावना द्रव्य–अपामार्ग, चीता, नीबू।

मरिचादि वटी (शारङ्गधर स०)—मरिच, पीपर, यवक्षार, अनारदाना, गुड।

मरिचाद्य तैल (भै०र० कुष्ठाधिकार)—कटु तैल, मरिच, हरताल, मनसिल, मोथा, मदार का दूध, कनेर की जड, निशोथ मोम का रस, इन्द्रायण की जड, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, लालचन्दन, मिठा विष।

मरिचादि चूर्ण (भै० र० अर्शरोगाधिकार)—त्रिकटु, कूट, सेंधा नमक, सफेद जीरा, वच, हीग, वायविडग, हरड, चित्ता, अजमोद।

मृतसञ्जीवनी सुरा (भै० र० वीर्यस्तम्भाधिकार)—नया गुड, बैर और बबूल की छाल, लोघ, आदी, प्रक्षेप द्रव्य—सुपारी, एल वालुक, देवदारु, लौंग, पदमाख, खस, लालचन्दन, सोया, अजवाइन, मरिच, जीरा, कचूर, जटामासी, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, मोथा, सोठ, सौंफ, ग्रन्थिपर्णी, मेथी, सफेद चन्दन।

मृत्युञ्जय रस (भै० र० ज्वराधिकार)—प्रथम योग—मीठा विष, मरिच, गन्धक, सोहागा, शुद्ध हिंगुल, आदी स्वरस की भावना।

मृगाङ्क रस(भै० र० राजक्षमाधिकार)—पारद, गन्धक, स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, सोहागा, काञ्जी की भावना।

मृद्वीकासव (शार्ङ्गधर स० आशव प्रकरण)—मुनक्का, खाड, धाय का फूल,

ककोल, लौंग, जायफल, मरिच, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, पीपर, चव्य, चित्रक, पिपरामूल, सम्भालू।

मेघनाद रस (भै० र० ज्वराधिकार)—चादी भस्म, ताम्र भस्म, कासा भस्म, गन्धक, चौराई स्वरस की भावना।

मेघनाद (भै० र० प्रमेहाधिकार)—रस सिन्दूर, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शिलाजतु, स्वर्ण माक्षिक भस्म, मैनसिल, त्रिकटु, त्रिफला, अकोट वीज, जीरा, विनौला, हल्दी, चूर्ण। चित्रक क्वाथ की भावना।

मेथी मोदक (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, सफेद तथा काला जीरा, धनिया, कट्फल, पुष्करमूल, काकाडासिंगी, अजवाइन, सेंधा नमक, विड नमक, तालीस पत्र, नागकेसर, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, मुरामासी, कपूर, लाल चन्दन, गुड, घी, मधु, मेथी।

मञ्जिष्ठादि क्वाथ (भै०र० कुष्ठाधिकार)—मजिष्ठा, काली जीरी, चक्रमर्द पत्ता, नागवला, खस, नील की छाल, हरड, हल्दी, आवला, अडूसे की छाल, सतावर, मुलहठी, लाल मखाना, गुरुच, लाल चन्दन।

महाकल्याणवटी (भै० र० मदाययाधिकार)—स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, पारद गन्धक, लौह भस्म, मोती भस्म। आंवले स्वरस की भावना।

यकृतोप्लिहारि लौह (भै० र० यकृतोप्लिह रोगाधिकार)—हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, मैनशिल, हल्दी, शुद्ध जायफल, निशोथ, चित्रक। अदरख स्वरस की भावना।

यकृदरि लौह (भै० र० प्लीह यकृक् रोगाधिकार)—लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, नीबू की जड की छाल, मृगचर्म भस्म।

यवानी खाण्डव चूर्ण (शा० स० सग्रहणी आदि पर)—अजमोदा, अनारदाना, सोठ, इमली, अमल वेत, वैर, काली मिर्च, पीपर, दालचीनी, सचर नमक, धनिया, जीरा।

योगराज (भै० र० पाण्डु रोगाधिकार)—त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक मूल, वाय विडङ्ग, शिलाजीत, रौप्य माक्षिक, स्वर्ण माक्षिक, लौह भस्म, खाड।

योगेन्द्र रस (भै० र० वात व्याध्याधिकार)—रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म, कान्त लौह भस्म अभ्रक भस्म, मुक्ता भस्म, वग भस्म, घी क्वार के गूदे की भावना।

रक्त पित्तान्तक लौह (भै० र० रक्त पित्तरोगाधिकार)—आवला, पिप्पलीमूल, लौह भस्म व खाड ।

रक्त पित्तान्तक रस (भै० र० रक्त पित्तरोगाधिकार)—आवला, अभ्रक भस्म, मुण्ड लौह भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, पारद, हरताल, गन्धक, भावना द्रव्य—मुलहठी, मुनक्का, गुरुच ।

रज प्रवर्तनी वटी (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—मुसब्बर, कसीस, हीग, सोहागा, घृतकुमारी की भावना ।

रत्नगिरि रस (भै० र० ज्वराधिकार, प्रथम योग)—पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, वज्राभ्र भस्म, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, वैक्रान्त भस्म । भावना द्रव्य—भृंगराज, शोभान्जन, अडूसा, सम्भालू, वच, चित्रक, मुण्डी, मुनक्का, गुरुच, जयन्ती, अगस्त्य, ब्राह्मी, कुटकी तथा घृतकुमारी ।

रस पर्पटी (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—पारद, गन्धक ।

रस माणिक्य (भै० र० कुष्ठाधिकार)—तबकिया हरताल, पेठे का रस, खट्टी दही, अभ्रक पत्र ।

रसशेखर (भै० र० उपदश-फिरग-रोगाधिकार)—पारा, अफीम, हिंगुल । भावना द्रव्य—तुलसी, जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवाइन, अकरकरा ।

रसादि चूर्ण (भै० र० तृष्णाधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, छोटी इलायची, मरिच, खस, खाड ।

रसेन्द्र गुटिका (भै० र० राजयक्ष्मा रोगाधिकार)—पारद, जलकर्णी, मकोय, भृंगराज स्वरस मे भावित गन्धक, बकरी के दूध से निर्मित कज्जली ।

रसोनादि वटी (वै० जीवन)—लहसुन, शुद्ध गन्धक, सफेद जीरा, सोहागा, सोठ, मरिच, पीपर, भूनी हीग, तक्र तथा नीबू स्वरस की भावना ।

रसोनादि घृत (भै० र० गुल्म रोगाधिकार)—गो घृत, लहसुन स्वरस, वृ० पञ्च मूल क्वाथ, सुरा, काजी, खट्टी दही, सूखी मूली का क्वाथ । कल्क—सोठ, मरिच, पीपर, अनारदाना, वृक्षाम्ल, अजवायन, चव्य, सेंधा नमक, हीग, अम्ल वेतस, जीरा, अजमोदा ।

राज मृगाक रस (भै० र० राजयक्ष्मा रोगाधिकार)—रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म, मैनशिल, हरताल, गन्धक कौडी । बकरी के दूध की भावना ।

रामबाण रस (र० यो० सा० ज्वर चिकित्सा)—पारद, गन्धक, मरिच, लवग, जातीफल । भावना द्रव्य—इमली, सन्तरा, नीबू, अनार, मदार, आदी ।

रास्नादि प्रलेप (भै० र० वात रक्ताधिकार)—रास्ना, गुरुच मुलहठी बला ।

लघु क्रव्याद रस (यो० र० अजीर्ण चिकित्सा)—पारद, गन्धक, लौह भस्म, पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्ता, सोठ, लवग, लौह, सौवरचल नमक, टकरा, मरिच, आवले की भावना ।

लक्ष्मी विलास रस (भै० र० रसायनाधिकार)—अभ्रक, पारद, गन्धक, कपूर, जावित्री, जायफल, विधारा का बीज काला धतूरा का बीज, भाग का बीज, विदारी कन्द, सतावर, नागवला, अतिवला, गोक्षुर, हिज्जल बीज, पान रस की भावना ।

लक्ष्मी नारायण रस (भै० र० स्त्री रोगाधिकार)—शुद्ध गन्धक, सुहागा, मीठा विष, शुद्ध हिंगुल, कुटकी, अतीस, पिप्पली, इन्द्रजव, अभ्रक भस्म, सैन्धव नमक, दन्तीमूल क्वाथ व मदनफल क्वाथ की भावना ।

लवण भास्कर चूर्ण (भै० र० अग्निमाद्यादि रोगाधिकार मे भास्कर लवण नाम से है)—पिप्पली, पिप्पलीमूल, धनिया, काला जीरा, सैन्धव नमक, विड नमक, सावर्चल नमक, सामुद्र लवण, तेजपत्र, तालीसपत्र, नागकेशर, मरिच, जीरा, सोठ, दालचीनी, छोटी इलायची, अनारदाना, अम्ल वेतस ।

लवणोत्तमादि चूर्ण (भै० र० अर्शो रोगाधिकार)—सैन्धव लवण, चित्रक, इन्द्रजव, करञ्ज की जड वकायन की छाल ।

लवगादि चूर्ण (भै० र० गुल्माधिकार)—लवग, दन्तीमूल, निशोथ, अजवायन, सोठ, वच, धनिया, चित्रक, हरड, वहेडा, आँवला, पिप्पली, कुटकी, मुनक्का, चव्य, गोखरू, यवक्षार, छोटी इलायची, अजमोदा इन्द्रजव ।

लवगादि वटी (रा० श्री० स० कास प्रकरण)—लवग, मरिच, विभीतक व शुद्ध कत्था । भावना द्रव्य—बबूल की छाल का क्वाथ ।

लाई चूर्ण (यो० र० अतिसाराधिकार)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोठ, मरिच, पीपल, अजवाइन, सफेद और काला जीरा, सेंधा नमक, हीग, विड नमक और इन्द्र जौ ।

लीलाविलास रस (भै० र० अम्ल पित्ताधिकार)—पारद, गन्धक, अभ्रक-ताम्र-लौह की भस्मे । आवला, वहेडा और भागरा की भावना ।

लोहासव (भै० र० रक्त पित्ताधिकार)—लौह भस्म, मरिच, सोठ, पिप्पली, हरड, वहेडा, आवला, अजवाइन, वाय विडग, मोथा, चित्रक, शहद गुड़ ।

वज्र क्षार (भै० र० गुल्माधिकार)—सामुद्र नमक, सेंधा नमक, सचर नमक, सुहागा, सज्जी क्षार, यवक्षार, सेहुड दुग्ध की भावना, सोठ, मिरच, पीपल, हरें, वहेडा, आवला, अजवाइन, चित्रक ।

वज्र कपाट रस (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, अफीम, मोचरस, सोठ, मरिच, पिप्पली, पिप्पलीमूल, त्रिफला तथा भाग व भागरे के रस की भावना ।

वसन्त कुसुमाकर रस (भै० र० रसायन अधिकार, द्वितीय योग)—प्रवाल भस्म, रस सिन्दूर, मुक्ता भस्म, अभ्रक भस्म, रजत भस्म, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, नाग भस्म, वग भस्म, अडूसा पत्र, हल्दी, ईख, कमल, मालती का फूल, दूध, केला की जड और चन्दन की भावना देकर कस्तूरी मिलाया।

वसन्त मालती रस (भै० र० ज्वराधिकार)—स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, हिंगुल, काली मिरच, कर्पर भस्म, पहले मक्खन की भावना पुन नीवू रस की भावना।

वरादि गुग्गुल (भै० र० उपदश-फिरग-रोग)—त्रिफला, निम्ब छाल, अर्जुन छाल, पीपल छाल, खदिर, असन, अडूसा।

वात पित्तान्तक रस (र० स० ज्वर चिकित्सा)—पारद, अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, गन्धक, मुलहठी, मुनक्का, गुरुच स्वरस की भावना दें।

वात गजाकुश (भै० र० वात व्याव्याधिकार)—रस सिन्दूर, लौह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, गन्धक, हरताल, हरड, काकडासिगी, विप, त्रिकटु, भरणी की छाल, सोहागा, भावना द्रव्य—गोरखमुण्डी, सम्भालू।

वातेभ केशरी रस (सि० भै० म०)—शुद्ध सखिया, मरिच, लौंग, शुद्ध वत्स-नाभ, छुहारे की गुठली, जयपाल, करीर की कोपल, अफीम, मिश्री। वड का दूध।

वातारि रस (भै० र० वात व्याध्यधिकार)—कज्जली, त्रिफला, चित्ता शुद्ध गुग्गुल, एरण्ड तैल की भावना।

वारि शोषण रस (भै० र० उदर रोगाधि०)—गन्धक, वग भस्म, रससिन्दूर, अभ्रक-लौह-ताम्र-स्वर्ण-चादी-हीरक-माक्षिक-मोती की भस्मे, शुद्ध कसीस, शुद्ध तूतिया, हरताल, मैनशिल, शिलाजीत, सोहागा। भावना द्रव्य-जम्वीरी, नीवू मौलसिरी, भटकटैया, वनभण्टा, गुरुच, त्रिफला, विधारा, अपराजिता, रोहू मछली का पित्त।

वासाखण्ड (भै० र० रक्त पित्ताधिकार)—अडूसे की जड की छाल, शक्कर, हरड, पिप्पली, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, नाग केशर।

वासा घृत (भै० र० रक्त पित्ताधिकार)—अडूसा गोघृत, वासक फूल का कल्क।

वासावलेह (भै० र० राजयक्ष्याधिकार)—अडूसा, खाड, गोघृत पिप्पली।

विजय पर्पटी (भै० र० ग्रहणी रोगाधिकार)—गन्धक, भागरा स्वरस, पारद, चादी स्वर्ण-वैक्रान्त-मोती की भस्मे।

विजय भैरव तैल (भै० र० आमवाताधिकार)— पारद, गन्धक, मैनशील, हरताल, तिल तैल।

विडग लौह (भै० र० कृमि रोगधिकार)—वायविडग, पारद, गन्धक, मरिच, जायफल, लौंग, पिप्पली, हरताल, सोठ, वग भस्म।

विडंगारिष्ट (भै० र० विद्रधि रोगाधिकार) — विडंग, पिप्पलीमूल, रास्ना, कोरैया की छाल, इन्द्रजव, पाढ, एलवालुक, आंवला, शहद, धाय का फूल, त्रिसुगन्धि, प्रियगु, कचनार की छाल, लोध, त्रिकटु।

विडंगादि तैल (भै० र० कृमिरोगाधिकार)—तिल तैल, वायविडंग, काली जीरी। कल्कार्थ—वायविडंग, इन्द्रायण की जड, चित्ता, कलिहारी, प्रसारिणी नील झिन्टी, पीली झिन्टी, कटफल, त्रिकटु, त्रिफला, रास्ना, ऐरन्डमूल।

विश्वेश्वर रस (भै० र० ज्वराधिकार)—पारद, खर्पर भस्म, गन्धक। भावना द्रव्य–पीपल की जड की छाल, वेर की जड, भटकटइया, मकोय।

विषम ज्वरान्तक लौह (भै० र० ज्वराधिकार)—पारद गन्धक, रससिन्दूर, स्वर्ण भस्म, चादी भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, मोती भस्म, प्रवाल भस्म, वग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, हरताल का सत्व। भावना द्रव्य—स्योंटी, पान, मकोय, पित्तपापडा, त्रिफला, करेला, दशमूल, गुरुच, पुनर्नवा, अडूसा, भांगरा, काला भागरा।

विषगर्भ तैल (सि० यो० सं० वातरोग चि०[5]) अश्वगन्ध की जड, धतूर पचाङ्ग, कनेर की जड, निर्गुण्डी की पत्ती, मदार की जड, कटफल, तिल तैल, वत्सनाभ, गुन्जा, धतूर वीज, कूठ, लाङ्गली की जड, अफीम, पारसीक यवानी, कुचला, वच।

विसूची विध्वस रस (भै० र० अग्निमान्द्य रोगाधिकार)—सोहागा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सोठ, पारद, गन्धक, मीठा विष, कृष्ण सर्प विष, हिंगुल। नीबू की भावना।

विसूचिकान्तक रस (चि० त० प्र० पचनेन्द्रिय सं०) मल्ल चन्द्रोदय, आम की गुठली, कपूर, लाल मिर्च जायफल, लौंग, हीग, अजवाइन का सत। भावना द्रव्य-नीबू का रस, लहसुन रस, अदरख।

वीरतर्वादि क्वाथ (शा० ध०)—कोछ वृक्ष की छाल, वादा, कास, सफेद पियावासा, काला पियावासा, पीला पियावासा, दाभ, देवनल, पटेर, शिवलिंगी, अरणी की जड, मूर्वा, पाषाण भेद, टेंटू की जड, गोक्षुर, धोगा, कमल और ब्राम्ही की पत्ती।

वृद्ध गगाधर चूर्ण (शार० अतिसार)—नागरमोथा, टेंटू, सोठ, धाय का फूल, लोध्र, नेत्रवाला, मोचरस, वेलगिरि, पाढ, इन्द्र जौ, कुटज की छाल, आम की गुठली, अतीस, लज्जालु।

वृद्धि वाधिका वटिका (भै० र० वृद्धि ब्रध्नरोगा०)—शुद्ध पारद, गन्धक, लौह-वंग ताम्र-कांसा-शख-कौडी की भस्मे, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, वायविडग, विधारा, कचूर, पिप्पलीमूल, पाढ, हाऊवेर, वच, छोटी इलायची, देवदारु, पाचो नमक, हरड के क्वाथ की भावना।

वृश्चिराद्यरिष्ट (भै० र० गुल्मरोगाधिकार)—सफेद पुनर्नवा, एरण्ड मूल, वन भण्टा मूल, चित्ता, पीपर, चीता, त्रिफला, मधु।

व्योषाद्य चूर्ण (भै०र० अर्शरोगाधि०)—सोंठ, मरिच, पीपल, चित्रक मूल, शुद्ध भिलावा, वायविडंग, तिल तथा हरड़।

व्याघ्री हरीतकी (भै०र० काम रोगाधिकार)—भटकटइया, हरड़, गुड, त्रिकटु, चतुर्जात, मधु।

व्योषाद्य गुडिका (शार०द्वितीय खण्ड)—त्रिकटु, अम्ल वेतस, चव्य, तालीस पत्र, चित्रक, जीरा, इमली की छाल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, गुड के साथ गुटिका निर्मित।

शतावरी घृत (भै०र० रक्त पित्ताधिकार)—शतावर स्वरस, गोदुग्ध, गोघृत, जीवनीय गण के द्रव्य, शतावर, मुनक्का, फालसा, चिरौंजी, मुलहठी, मधु, पिप्पली का चूर्ण, खाड।

शतमूल्यादि लौह (भै० र० रक्त पित्ताधिकार)—शतावरी, खाड, धनिया, नागकेसर, लाल चन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, काला तिल, लौह भस्म।

शङ्खवटी (भै० र० अग्निमान्द्याद्य रोगाधिकार)—असगन्ध, मुसली, मजिष्ठ, हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारी कन्द, अर्जुन की छाल, मोथा, गिलोय, अनन्तमूल, श्यामालता, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, वचा, चित्रक, धाय का फूल, मधु, सोंठ, मरिच, पीपल, त्रिजातक, छोटी इलायची, प्रियगु, नागकेसर।

शखोदर रस (भै० र० ज्वरातिसाराधिकार)—शख भस्म, अफीम, जायफल, टङ्कण।

श्लीपद गज केशरी रस (भै० र० विद्रधिरोगाधिकार)—त्रिकटु, मीठा विष, अजवाइन, पारद, चित्रक, गन्धक, मैनशिल, सोहागा, शुद्ध जयपाल, भारगी, गोखरू, जम्बीर, अदरख के रस की भावना।

श्लेष्म कालानल रस (भै० र० ज्वराधि०)—हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, तुत्थ, मैनशिल, हरिताल, कायफल, धतूरे का बीज, हींग, स्वर्ण माक्षिक, भस्म, कूठ, त्रिवृत, दन्तीमूल, मरिच, सोंठ, पिप्पली, अमलतास, वगभस्म, सोहागा, थूहर के दूध की भावना।

श्वास कुठार (भै० र० हिक्काश्वासाधिकार) (दूसरा योग)—पारद, गधक मीठा विष, गधक, सुहागा, मैनशिल, मरिच, पिप्पली, सोंठ।

श्वास कास चिन्तामणि (भै० र० हिक्काश्वासाधिकार)—शुद्ध पारद, स्वर्ण माक्षिकभस्म, सोनाभस्म, मोतीभस्म, अभ्रकभस्म, गधक। भटकटैया, बकरी का दूध, मुलहठी का काढ़ा और पाढ की भावना।

श्वास चिन्तामणि (भै० र० हिक्काश्वासाधिकार)—लौह भस्म, गंधक, अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, मोती भस्म, सोना भस्म। भटकटैया, अदरख, बकरी का दूध, मुलहठी क्वाथ की भावना।

श्वेत करवीराद्य तैल (भै० र० कुष्ठाधिकार)—तिल तैल, गोमूत्र, करवीर की जड़, मीठा विष।

शिर शूलाद्रिवज्ररस (भै० र० शिर शूलादि रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, लोह-ताम्र की भस्म, शुद्ध गुग्गुल, त्रिफला चूर्ण, कूठ, मुलहठी, पिप्पली, सोंठ, गोखरु, वायविडग, दशमूल।

शिलाजत्वादि लौह (भै० र० राजयक्ष्माधिकार)—शिलाजीत, मुलहठी, त्रिकटु, स्वर्ण माक्षिक, लौह भस्म।

शीत भञ्जीरस (भै० र० ज्वराधिकार द्वितीय)—पारद, खर्पर, हरताल, तुत्थ, सोहागा, गन्धक, करेली स्वरस की भावना। काली मिर्च चूर्ण का प्रक्षेप।

शीतारि रस (भै० र० ज्वराधिकार द्वितीय)—हरिताल, हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, मैनसिल, विशुद्ध ताम्र। करेली स्वरस की भावना।

शुष्क मूलाद्यतैल (भै० र० शोथाधिकार)—तिल तैल, कल्कार्थ-शुष्क मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, सोंठ।

शूल गजकेशरी रस (भै० र० शूल रोगाधिकार)—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, ताम्र भस्म।

शूल वज्रिणी वटी (भै० र० शूल रोगाधिकार)—पारद, गन्धक, लौह भस्म, सोहागा, हींग, सोंठ, मिरच, पीपल सोंठ, हरड, बहेरा, आंवला, कचूर, दाल चीनी, लौंग, जीरा, धनिया, अजवाइन, तेजपत्र, जायफल, छोटी इलायची, तालीस पत्र।

शूल हरण योग (भै० र० शूलरोगाधिकार)—हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, हींग, सेन्धा नमक, गन्धक।

शोथ कालानल रस (भै० र० शोथाधिकार)—चित्रक, इन्द्रजौ, गजपिप्पली, सेन्धा नमक, पिप्पली, लवग, जायफल, सोहागा, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, गन्धक, पारद भस्म।

शोथारिलौह (भै० र० शोथाधिकार)—त्रिकटु, यवक्षार, लौह।

श्री बाहुशाल गुड़ (भै० र० अर्शोरोगाधिकार)—काली मरिच, पीपल, कुष्ठ, सैन्धव नमक, सफेद जीरा, सोंठ, वचा, हींग, वायविडग, हरड, चित्रक, अजमोदा।

श्रीखण्डासव (भै० र० मदात्याधिकार)—सफेद चन्दन, कालीमिर्च, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, मोथा, खस, तगर, मुनक्का, लाल चन्दन, नाग